प्रकाशक—
श्री चन्द्रराज भण्डारी
ज्ञान-मन्दिर, मानपुरा (मध्य प्रदेश)

लेखक की अन्य पुस्तकें

(१) भगवान् महावीर—ऐतिहासिक जीवनी पृष्ठ संख्या ५
प्रकाशन सन् १९२१।

(२) भारत के हिन्दू सम्राट्—ऐतिहासिक ग्रन्थ पृष्ठ संख्या १
भूमिका लेखक रायबहादुर गौरीशंकर
हीराचन्द 'ओझा' प्रकाशन सन् १९२६

(३) समाज-विज्ञान—समाज-शास्त्र का मौलिक ग्रन्थ कुछ वर्ष पूर्व
हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में
स्वीकृत, पृष्ठ संख्या ६ प्रकाशन सन् १९२७।

(४) अग्रवाल जाति का इतिहास—पृष्ठ संख्या १
प्रकाशन सन् १९१६।

(५) नैतिक-जीवन—पृष्ठ संख्या २ प्रकाशन सन् १९२२।

(६) सिद्धार्थ कुमार (बुद्धदेव सम्बन्धी नाटक) प्रकाशन सन् १९२१।

(७) सम्राट् अशोक (नाटक) प्रकाशन सन् १९२४।

(८) वनौषधि-चन्द्रोदय (वानस्पतिक विश्व-कोष) १ भाग
२१ पृष्ठ प्रकाशन सन् १९३८ से १९४४ तक।

(९) सम्पादक—जीव-विज्ञान (मासिक-पत्र) प्रकाशन सन् १९४६
से १९४८ तक।

(१०) भारत का औद्योगिक विकास—पृष्ठ संख्या ७
प्रकाशन सन् १९६ ।

(११) ओसवाल-जाति का इतिहास—पृष्ठ संख्या १

पुट्ठा-बाइंडर
दफ्तरी एण्ड को॰
बुलानाला,
बनारस।

मुद्रक—
मगन सिंह
प्रकाश प्रेस
मध्यमेश्वर बनारस।

विषय-सूची नं० १

(अकारादि क्रम से)

[इ—ई]

[ऋ]

[ए—ऐ]

पुस्तक मिलने के पते

देहली—राजकमल प्रकाशन देहली
अजमेर—हिन्दी साहित्य मन्दिर ब्रह्मपुरी अजमेर
इन्दौर—नूतन साहित्य सदन पतूरी बाजार इन्दौर-सिटी
बीकानेर—नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर (राजस्थान)
जयपुर—भारत पब्लिशिंग हाउस चौड़ा रास्ता जयपुर

विषय-सूची नं० २

(विषयानुक्रम से)

साहित्य

साहित्यकार

धर्मग्रन्थ और धर्माचार्य

विज्ञान और वैज्ञानिक

राजनीतिज्ञ और क्रांतिकारी

पत्र-पत्रिकाएँ और पत्रकार

दूसरे खंड के विशेष आकर्षण

इस खण्ड में इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ के करीब ४०० नामों का विवेचन है जिनमें कुछ मुख्य नाम—

इंगलैण्ड – अनेकों टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों और ऊँची-नीची घाटियों में से गुजरता हुआ इंगलैण्ड का लहरदार इतिहास मनोरंजन अध्ययन और मनन की काफी सामग्री पाठक के सामने उपस्थित करता है। राज सत्ता की पथरीली चट्टान पर साइमन डी-मांटफोर्ट द्वारा पार्लमेंट के लोकतंत्रीय पौधे की स्थापना और बाद में एक सम्राट् के सिर का बलिदान लेकर उस पौधे का पनपना एक आश्चर्यजनक कहानी है। बाद में यूरोप की इस पिछड़ी हुई जाति के द्वारा संसार के विस्तृत भाग पर अभूतपूर्व साम्राज्य की स्थापना इतिहास की एक हैरत अंगेज घटना है। अलफ्रेड महान्, एडवर्ड प्रथम क्रामवेल एलिजाबेथ, विक्टोरिया इत्यादि महान् हस्तियाँ इस इतिहास के प्रकाश स्तम्भ हैं।

ईरान—गुलाब के बगीचों और बुलबुल के अविराम गीतों से गूँजती हुई महान् प्रकृति की गोद में से ईरान में प्राचीन युग के अन्तर्गत एक महान् संस्कृति का जन्म हुआ था। उस संस्कृति का मनोहर इतिहास किस पाठक का मनोरंजन नहीं करेगा। सायरस महान्, दारा महान्, नौशेरवाँ अब्बास महान् इत्यादि अनेकों प्रतापी और उदार चेता सम्राटों के व्यक्तित्व ने इस इतिहास को प्रकाशित कर रखा है।

उत्तर प्रदेश—जिस देश में महान् आर्य संस्कृति के पौधे का विकास हुआ, जिस देश में 'रामराज्य' के समान आदर्श राज्यपद्धति का जन्म हुआ जिस भूमि को मान्धाता रघु, हरिश्चन्द्र रामचन्द्र दुष्यन्त और भरत के समान महान् व्यक्तियों ने धन्य किया। जिस भूमि में वाल्मीकि और व्यास ने अपनी अमर वीणा की झंकार से संसार के साहित्य को पल्लवित किया। जिस भूमि में दुष्यन्त और शकुन्तला की महान् प्रेम लीलाएं अभिनीत हुईं उस भूमि का गौरवपूर्ण इतिहास पढ़ते हुए कौन ऐसा पाठक होगा जिसका मस्तक गौरव से उन्नत न हो जावेगा।

उड़ीसा—जैन धर्म के ख्यातनामा सम्राट् खारवेल ने अपनी महान् वीरता और धर्मनिष्ठा से जिस भूमि को गौरवान्वित किया। महान् दिग्विजयी सम्राट् चोड़गंग ने जिस पवित्र क्षेत्र में महान् जगन्नाथ मन्दिर की स्थापना की सु-प्रसिद्ध केसरी राजाओं ने वहाँ भुवनेश्वर के समान विशाल मन्दिरों की स्थापना की उस उड़ीसा प्रान्त का इतिहास भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

इसी प्रकार इटली इजराइल इण्डोनेशिया इण्डोचायना उज्जैन इन्दौर इत्यादि कितने ही देशों और नगरों का गौरवपूर्ण इतिहास इस खण्ड में संकलित है।

साहित्य

ईरानी (फारसी) साहित्य—जिस वाटिका में अनेकों महान् कवियों ने अपनी क्यारियाँ बनाकर उन क्यारियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग बिरंगे और खुशबूदार फूलों से सुशोभित किया। जिस वाटिका में शेख सादी की गुलिस्ताँ और बोस्ताँ ने अपनी एक नवीन दुनिया कायम की, जिस वाटिका में हाफिज की बुलबुल ने अपने अमर गीत गाये और उमर खैयाम की

प्रकाश—स्तम्भ !

इस ग्रन्थ की रचना में जिन महान् ग्रन्थकारों और विद्वानों की रचनाओं ने प्रकाश-स्तम्भ की तरह हमारे मार्ग को प्रकाशित किया है उनके प्रति हम अपनी नम्र-श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। उन रचनाओं की संक्षिप्त सूची नीचे दी जा रही है। पूरी और विस्तृत सूची ग्रन्थ के अन्तिम भाग में दी जायगी।

हिन्दी

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा और डा० भगवत् शरण उपाध्याय (काशी नागरी प्रचारिणी)	हिन्दी-विश्व-कोष (भाग १–२)
श्री नगेन्द्र नाथ वसु	हिन्दी-विश्व-कोष (२२ भाग तक)
महापंडित राहुल सांकृत्यायन	मध्य-एशिया का इतिहास (भाग १–२) और अकबर
डा० भगवत् शरण उपाध्याय	विश्व-साहित्य की रूप-रेखा प्राचीन भारत का इतिहास
रा० ब० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	राजपूताने का इतिहास (८ भाग)
डा० सत्यकेतु विद्यालंकार	एशिया का आधुनिक इतिहास यूरोप का आधुनिक इतिहास
श्री गंगा प्रसाद एम० ए०	मंगोल जाति का इतिहास
श्री शिवचन्द्र कपूर एम० ए०	इंगलैंड का इतिहास
वर्मा और चतुर्वेदी	इंग्लैण्ड का इतिहास
श्री पट्टाभि सीतारामैय्या	कांग्रेस का इतिहास
श्री ज्योति प्रसाद सूद एम० ए०	राजनैतिक विचारों का इतिहास (भाग १–२)
श्री आचार्य नरेन्द्र देव	बौद्ध-दर्शन
श्री सुख सम्पत्ति राय भंडारी	भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम का इतिहास भारत के देशी राज्य
श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ	भारत के प्राचीन राजवंश (भाग १–२–३)
आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी-साहित्य का इतिहास
श्री पं० बलदेव उपाध्याय	संस्कृत-साहित्य का इतिहास
श्री ब्रजरत्न दास	उर्दू-साहित्य का इतिहास
श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय	शेर और शायरी
पं० द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी	भारतीय-चरिताम्बुधि

विश्व इतिहास कोष—प्रथम भाग १ पर

कुछ महत्वपूर्ण सम्मतियाँ

महान भारतीय राष्ट्र के भूतपूर्व राष्ट्रपति, महान विचारक और तत्वचिन्तक

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद

की सम्मति—तारीख २८-१०-६२

श्री चन्द्रराज भण्डारी के अपनी पुस्तक "विश्व-इतिहास-कोष" के प्रथम खण्ड के कुछ अंश को पढ़कर मुझे प्रसन्नता। लेखक ने बहुत परिश्रम करके विश्व-इतिहास में बिखरे सभी क्षेत्र के प्रमुख देशों, नगरों विषयों और व्यक्तियों का एक स्थान पर संकलन कर तथ्य-पूर्ण विवेचन किया है। पुस्तक की भाषा सरल और सरस है।

हिन्दी साहित्य में इस अभाव को पूरा करके श्री भण्डारी ने सराहनीय काम किया है इसलिये वे बधाई के पात्र हैं।

इस प्रयास मे लेखक को मेरी शुभ कामनायें हैं।

भारतीय संस्कृति के पारदर्शी तत्वचिन्तक विद्वान

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

की सम्मति—ता० १४-१०-६२

श्री चन्द्रराज भण्डारी हिन्दी के पुराने और प्रसिद्ध साहित्य-सेवी हैं। उन्होंने 'वनौषधि चन्द्रोदय' नामक भारतीय वनस्पतियों का विश्व-कोष आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था।

उसी संग्रहात्मक प्रतिभा और परिश्रम का सदुपयोग करते हुए अब आपने "विश्व इतिहास-कोष" नामक महान् ग्रन्थ का लेखन आरम्भ किया है।

इस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड मेरे सामने है। इसे देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई है।

इस भाग में लगभग ६६ ऐतिहासिक व्यक्तियों, देशों और संस्थाओं के परिचय अकारादि क्रम से बहुत ही बोलचाल सरल शैली में दिये गये हैं। भारतवर्ष और विश्व के अनेक देशों के महापुरुषों का परिचय एक ही स्थान मे पाठकों के लिये इस कोष में सुलभ है। राजनीति धर्म दर्शन-साहित्य और कला इन सभी क्षेत्रों में जिन व्यक्तियों ने कोई उल्लेखनीय कार्य किये हैं और जिनके परिश्रम से मानव-जाति का इतिहास समृद्ध बना है उनका यह सुलभ परिचय हिन्दी संसार के लिये विशेष उपयोगी होगा ऐसी आशा है। मैं ऐसे ज्ञान-वर्धक आयोजन की हृदय से सराहना चाहता हूं।

विशेषतः शिक्षा संस्थाओं में ऐसे ग्रन्थ का व्यापक प्रचार लाभप्रद होगा।

भारतीय राष्ट्र क उपराष्ट्रपति, महान विद्वान माननीय

डॉ० जाकिरहुसेन

की सम्मति—तारीख ४-६-६२

Dear Shri Bhandari,

I thank you for your letter of the 22nd August and the copy of the first Volume of the "Encyclopedia of World History in Hindi edited by you.

A book like this is undoubtedly of considerable Value to the general Hindi Reading Public and I Congratulate you on this laudable attempt.

विश्व-इतिहास-कोष

Encyclopedia of World History

[द्वितीय खण्ड]

ज्ञान-मन्दिर—प्रकाशन

डॉ० सत्येन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी०, डी-लिट्०	बंगला-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
के० भास्करन् नायर	मलयालम-साहित्य का इतिहास
श्री सुरेन्द्रनाथ विसारिया	आधुनिक राजनैतिक विचार-धाराएं
श्री परशुराम चतुर्वेदी	सन्त-काव्य उत्तर भारत की सन्त परंपरा
डॉ० प्रमाथ कुमार महाचार्य	प्रतिनिधि राजनैतिक विचारक
श्री देवीप्रसाद मुंसिफ	मारवाड़ राज्य का इतिहास
श्री जयचन्द्र विद्यालंकार	भारतीय इतिहास की रूपरेखा
श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य	हिन्दू-भारत का अन्त
प० रामनरेश त्रिपाठी	कविता-कौमुदी (२ भाग)
श्री गुलाबराय एम० ए०	विज्ञान-विनोद
श्री गुरुनाथ शर्मा	मिस्र की राष्ट्रीय प्रगति
श्री रामदास गौड़ एम ए०	हिन्दुत्व
श्री 'इन्द्र' विद्या वाचस्पति	आर्य-समाज का इतिहास
श्री पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी	समाचार-पत्रों का इतिहास
श्री शंकर राव जोशी	रोम-साम्राज्य
प्लुटार्क अनुवादक श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव	ग्रीस और रोम के महापुरुष
डॉ० प्राणनाथ विद्यालंकार	इंग्लैण्ड का इतिहास
एस मुकर्जी	यूरोप का इतिहास
श्री सुरेन्द्रनाथ सेन	अठारह सौ सत्तावन
श्री पी० वी० बापट	बौद्धधर्म के २५ वर्ष
श्री रामनारायण दूगड़	मुहणोत नैणसी की ख्यात
महाराज कुमार डा० रघुवीर सिंह	मालवा में युगान्तर
श्री रामदत्त सांकृत्य	मैकस्वीज का भारतीवर्णन
श्री सुरेश्वर प्रसाद एम० ए	विश्व-सभ्यता का इतिहास
श्री शान्तिकुमार गोम्बुल एम एस० सी०	सरल सामान्य विज्ञान
श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	मैगास्थनीज-इण्डिका
श्री नाथूराम प्रेमी	जैन साहित्य और इतिहास
श्री लक्ष्मी मिश्र बी ए०	कम्युनिस्ट कार्नेगी
श्री गोपाल नारायण बहुरा एम० ए	पत्र-माला
श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	विश्व-साहित्य
श्री सत्यदेव विद्यालंकार	हमारे राष्ट्रपति
श्री द्विजेन्द्रलाल राय	कालिदास और भवभूति
श्री कामता प्रसाद जैन	संक्षिप्त जैन इतिहास
पं रामकरण	मारवाड़ का मूल इतिहास
श्री सुखसम्पत्ति राय भंडारी	भारत के देशी राज्य

श्री सुन्दरलाल	भारत मे अंग्रेजी-राज्य
श्री हरिवंश राय 'बच्चन'	उमर खय्याम की रुबाइयाँ
श्री चन्द्रराज भंडारी	समाज-विज्ञान भगवान महावीर, भारत के हिन्दू-सम्राट भारत का औद्योगिक विकास और अग्रवाल-जाति का इतिहास

साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' और साप्ताहिक 'धर्मयुग' के करीब २०० प्राचीन अंक।

गुजराती—

श्री मोहनलाल दुलीचन्द	जैन-साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास
श्री रसीकलाल नायक	विज्ञान-कथा
श्री कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी	गुजराती-साहित्यना मार्ग-सूचक स्तंभो
श्री दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री	आयुर्वेदनो इतिहास
श्री मुनि विद्या विजय	म्हारी कच्छ-यात्रा

English

H. G Wells	Out line of History
K M Pannikar	A survey of Indian History
Moreland	India from Akabar to Aurangzeb
Homes	History of Indian Mutiny
K. M Pannikar	The future of South East Asia
Roy-Chaudhari	Political history of Ancient India
Bhandarkar	Early History of Daccan; Asoka
E. G Browne	Literary History of Persia
H H Howarth	History of Mangol
L. A Mills	The New World of South East Asia
Chaldea	The Story of the Nations
John Macy	Th Story of the World s Literature
Nawrice W Ph-d	A Story of Indian Literature
Hay C. J. H.	A History of Modern Europe
A. Beridale Keith	A H'story of Sanskrit Literature
Sarkar & Srivastava	The World Year-Book

विश्व इतिहास कोष—प्रथम भाग १ पर

कुछ महत्वपूर्ण सम्मतियाँ

महान भारतीय राष्ट्र के भूतपूर्व राष्ट्रपति, महान विचारक और तत्त्वचिन्तक

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद

की सम्मति—तारीख २८-१०-६२

श्री चन्द्रराज भण्डारी ने अपनी पुस्तक 'विश्व-इतिहास-कोष' के प्रथम खण्ड के कुछ अंश को पाकर मुझे सुख हुआ। लेखक ने बहुत परिश्रम करके विश्व-इतिहास में बिखरे सभी क्षेत्र के प्रमुख देशों, नगरों, विषयों और व्यक्तियों का एक स्थान पर संकलन कर तथ्यपूर्ण विवेचन किया है। पुस्तक की भाषा सरल और सरस है।

हिन्दी साहित्य में इस अभाव को पूरा करके श्री भण्डारी ने सराहनीय काम किया है इसलिये वे बधाई के पात्र हैं।

इस प्रयास में लेखक को मेरी शुभ कामनायें हैं।

भारतीय संस्कृति के पारदर्शी तत्वचिन्तक विद्वान

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

की सम्मति—ता० १४-१०-६२

श्री चन्द्रराज भण्डारी हिन्दी के पुराने और प्रसिद्ध साहित्य-सेवी हैं। उन्होंने "वनौषधि चन्द्रोदय" नामक भारतीय वनस्पतियों का विश्व-कोष आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था।

उसी संग्रहात्मक प्रतिभा और परिश्रम का सदुपयोग करते हुए अब आपने 'विश्व इतिहास-कोष' नामक महान् ग्रन्थ का लेखन प्रारम्भ किया है।

इस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड मेरे सामने है। इसे देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई है।

इस भाग में लगभग ११ ऐतिहासिक व्यक्तियों, देशों और संस्थाओं के परिचय अकारादि क्रम से बहुत ही बोधगम्य सरल शैली में दिये गये हैं। भारतवर्ष और विश्व के अनेक देशों के महापुरुषों का परिचय एक ही स्थान में पाठकों के लिये इस कोष में सुलभ है। राजनीति, धर्म, दर्शन-साहित्य और कला इन सभी क्षेत्रों में जिन व्यक्तियों ने कोई उल्लेखनीय कार्य किये हैं और जिनके परिश्रम से मानव-जाति का इतिहास समृद्ध बना है उनका यह सुलभ परिचय हिन्दी संसार के लिये विशेष उपयोगी होगा ऐसी आशा है। मैं ऐसे ज्ञान-वर्धक आयोजन की हृदय से सराहना करता हूँ।

विशेषतः शिक्षा संस्थाओं में ऐसे ग्रन्थ का व्यापक प्रचार लाभप्रद होगा।

भारतीय राष्ट्र के उपराष्ट्रपति, महान विद्वान माननीय

डॉ० जाकिरहुसैन

की सम्मति—तारीख ४-६-६२

Dear Shri Bhandari,

I thank you for your letter of the 22nd August and the copy of the first Volume of the "Encyclopedia of World History" in Hindi edited by you

A book like this is undoubtedly of considerable Value to the general Hindi Reading Public and I Congratulate you on this laudable attempt.

विश्व-इतिहास-कोष

Encyclopedia of World History

[द्वितीय खण्ड]

ज्ञान-मन्दिर—प्रकाशन

विश्व-इतिहास-कोष

द्वितीय खंड

(अकारादि क्रम से)

[इ]

इक़बाल

उर्दू और फ़ारसी के महाकवि डा० सर मुहम्मद इकबाल। दर्शन और क़ानून के उद्भट विद्वान, मुस्लिम राजनीति के एक प्रखर खिलाड़ी, जिनका जन्म सन् १८७६ में स्यालकोट (पंजाब) में हुआ।

सर मुहम्मद इक़बाल ने भारतवर्ष के मुस्लिम समाज में एक अद्भुत व्यक्तित्व और प्रभाव प्राप्त किया था। वे सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। काव्य, साहित्य, दर्शन शास्त्र और राजनीति में उनकी गति धाराप्रवाही थी।

सन् १९०५ में सर मुहम्मद इक़बाल उच्च शिक्षा प्राप्त करने यूरोप गये। वहां पर ईरानी दर्शन शास्त्र पर एक निबन्ध लिखकर उन्होंने पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की साथ ही बैरिस्टर की डिग्री भी प्राप्त कर ली। वहाँ से वापस आकर सर इक़बाल लाहौर में बैरिस्टरी करने लगे।

यहीं से सर इक़बाल का जीवन दो अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग तरह से विकसित होता है। एक विकास उनका साहित्यिक क्षेत्र में होता है और दूसरा राजनीति के क्षेत्र में।

साहित्यिक विकास

इक़बाल को कविता का शौक बचपन ही से था। इस लिए ज्ञान वृद्धि के साथ इनकी काव्य-शक्ति का भी बराबर विकास होता रहा। वे जो कुछ भी लिखते थे उसमें इनके गहन अध्ययन की छाया रहती थी। फ़ारसी और उर्दू दोनों ही भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। इनकी फ़ारसी रचना "असरारे खुदी" सन् १९१५ में प्रकाशित हुई। इससे फ़ारसी साहित्य में इन का नाम हो गया। इसके बाद "रमूज़े बेखुदी" नामक काव्य ने भी इनकी कीर्ति को बढ़ाया।

सर इक़बाल की कविता में ओज, प्रवाह, विषय की गहराई, भाषा का सौष्ठव इत्यादि सभी चीज़ें प्रचुर मात्रा में रहती थीं।

सर इक़बाल उर्दू भाषा के भी माने हुए कवि माने जाते हैं। इनकी उर्दू कविताओं का संग्रह "बाँगेदरा" के नाम से प्रकाशित हुआ और भी उर्दू फ़ारसी में इनके बहुत से काव्य और कविता संग्रह प्रकाशित हुए।

राजनैतिक जीवन

मगर राजनीति के क्षेत्र में सर इक़बाल के जीवन ने दूसरा मोड़ लिया। पहले वे भारतीय राष्ट्रीयता के उपासक थे और उस समय की उनकी कविताओं में भारतीय राष्ट्रीयता की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है। उनका "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" गीत बहुत समय तक राष्ट्रीय गान के रूप में गाया जाता था।

मगर यूरोपीय यात्रा से वापस आते समय वे "पान इस्लामिक" या संसार के मुसलमानों के एक विशाल संगठन की भावनाओं को साथ लेकर आये। यहीं से सर मुहम्मद इक़बाल का जीवन एक दम पलटा खाता है और वे भारतीय राष्ट्र को छोड़ कर विश्वव्यापी इस्लामी संगठन के पक्षपाती हो गए जिससे उनके सोचने का दृष्टिकोण ही

एक दम बदल जाता है और पान इस्लामिक की दृष्टि से वे भारतवर्ष के मुस्लिम बहुल इलाके को पाकिस्तान के स्वतंत्र देश के रूप में निर्माण करने के आन्दोलन में शरीक हो जाते हैं।

कई लोगों का ख्याल है कि "पाकिस्तान" का नाम और उसकी योजना सर मुहम्मद इकबाल के दिमाग की ही उपज है, मगर आगे जाकर यह भी पता चलता है कि यह योजना अंग्रेज राजनीतिज्ञों की सलाह से एक मुसलमान लेखक ने पहले से ही लन्दन में तैयार कर ली थी।

जो भी हो पाकिस्तान की योजना में सर इकबाल ने मि. जिन्ना का बड़ा प्रभावशाली साथ दिया। सर इकबाल ने सारे मुस्लिम भारत को इस दिशा में सोचने के लिए मजबूर कर दिया। समग्र मुस्लिम इतिहास में आज तक कभी भी धार्मिक भावनाओं के आगे राष्ट्रीय भावनाओं को अधिक महत्व नहीं दिया। इस घटना चक्र में भी इतिहास की पुनरावृत्ति हुई और भारत की सारी मुस्लिम जनता मुस्लिम लीग के प्लेटफार्म पर चली गई केवल कुछ मुट्ठी भर इस्लामी नेता भारतीय राष्ट्रीयता के प्लेटफार्म पर रह गये।

इस संघर्ष में एक ओर कांग्रेस के राष्ट्रवादी लोग थे जो किसी भी प्रकार अखण्ड भारत के टुकड़े नहीं होने देना चाहते थे और दूसरी ओर मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिक विचारधारा थी जो प्रत्येक मूल्य पर भारत का चीड़-फाड़ कर उस पर स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य की स्थापना करना चाहती थी और अंग्रेजी राजसत्ता इस मामले में उसका अप्रत्यक्ष समर्थन कर रही थी।

इस सारे घटना चक्र में सबसे अधिक वेदना जिस व्यक्ति को हो रही थी, वह महात्मा गांधी थे। इस महान व्यक्ति को देश के अंग भंग की कल्पना से ही इतनी भारी वेदना होती थी जैसे स्वयं उनका अंग भंग हो रहा हो। उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से इस समस्या को आपस में सुलझाने का प्रयत्न किया, इसके लिए वे दो बार मि. जिन्ना को समझाने के लिए उनके घर गये। अंग्रेज राजनीतिज्ञों को भी उन्होंने बहुत समझाया मगर उन प्रयत्नों के बावजूद कोई भी परिणाम नहीं निकला। भारतीय राजनीतिज्ञों को झुकना पड़ा और पाकिस्तान का निर्माण हो गया जो हमेशा के लिए भारतीय राष्ट्र के सामने ऐसा प्रश्नवाचक चिह्न बन कर उपस्थित हो गया जिसका समाधान खोजने पर भी नहीं मिल रहा है।

सर इकबाल उन लोगों में से एक प्रधान व्यक्ति थे। जिन्होंने भारतीय राष्ट्र के टुकड़े कराने में प्रभावशाली योग दिया और पाकिस्तान का निर्माण करवाया।

इकबाल की कविता के नमूने—

नया शिवाला

सच कह दूं ऐ बरहमन गर तू बुरा न माने।
तेरे सनम कदों के बुत हो गए पुराने।
अपनों से बैर रखना तूने बुतों से सीखा।
जंगो जदल सिखाया वाएज को भी खुदा ने।
तंग आकर मैंने आखिर देरोहरम को छोड़ा।
वाएज का वाज छोड़ा छोड़े तेरे फसाने।
पत्थर की मूरतों में समझा है तू खुदा है।
खाके वतन का मुझको हर जर्रा देवता है।
आ गैरियत के परदे एक बार फिर उठा दें।
बिछड़ों को फिर मिला दें नक्शे दुई मिटा दें।
सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती।
आ इक नया शिवाला इस देश में बना दें।
दुनिया के तीर्थों से ऊँचा हो अपना तीरथ।
दामाने आसमां से उसका कलस मिला दें।
हर सुबह उठके गाएँ मंतर वो मीठे-मीठे।
सारे पुजारियों को मय पीत की पिला दें।

ईंक्विजीशन

ईसाई धर्म की एक धर्म अदालत जिसके अन्दर नास्तिकता और धर्म के प्रति अविश्वास रखने वालों के अपराध के फैसले किये जाते थे। इस अदालत में न्यायाधीशों के स्थान पर धर्मध्वज पादरी लोग बैठा करते थे।

सबसे प्रथम इंक्विजीशन की स्थापना स्पेन और उसकी दूसरी रियासतों में हुई। इसके पहले भी रोमन कैथोलिक पोपों ने ईसाई धर्म पर अविश्वास करने वाले लोगों को

दखल देना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु प्रारम्भ में वे दखल पादरियों से ही होते थे। चर्च का उनमें कोई हाथ नहीं रहता था।

सबसे पहले पोप इनोसेण्ट प्रथम ने मामलों में हस्तक्षेप किया। उसके बाद पोप ग्रेगरी नवम ने इस विधान में और अभिवृद्धि की और पादरियों की एक अदालत स्थापित की। इस प्रकार तेरहवीं सदी में रोम के पवित्र चर्च ने इंक्विज़ीशन की स्थापना कर दी, जो शीघ्र ही सारे यूरोप में फैल गई।

इंग्लैंड में भी एडवर्ड द्वितीय के शासन काल में चौदहवीं सदी के प्रारम्भ में इंक्विज़ीशन की स्थापना हुई। इंक्विज़ीशन का कचहरा यह पोप ने सबसे पहले इंग्लैंड में ही स्थापित किया। उसके बाद यह भी सारे यूरोप में फैल गया।

इंक्विज़ीशन अदालत के मुकदमें बड़े विचित्र ढंग के होते थे। थोड़ा सा सन्देह होते ही, अभियुक्त को गुप्त रीति से गिरफ्तार किया जाता था। मामले की सुनवाई रहस्यपूर्ण ढंग से होती थी, जो गुप्त रखी जाती थी। अभियुक्त को गवाहों के नाम नहीं बताए जाते थे, न उसे जिरह करने का अधिकार होता था। अपराधी के विरुद्ध गवाही देने से कोई व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता था। इन्कार करने पर गवाह भी खुद अपराधी बन जाता था।

सजाएँ रविवार के दिन चर्च में खुले आम सुनाई जाती थीं। ये सजाएँ भिन्न-भिन्न होती थीं। जैसे फाँसी, जिन्दा जलाया जाना, कोड़े मारना इत्यादि। मृत्युदण्ड पाये हुए अपराधियों को दण्ड भुगताने के लिये राज्य सरकार के हाथों में सौंप दिया जाता था, क्योंकि चर्च रक्त को नहीं छूता था।

अभियुक्तों को प्रायः आधी रात के समय गिरफ्तार किया जाता था। यदि गिरफ्तारी के समय अभियुक्त कुछ शोर मचाता तो उसके मुँह में एक वस्त्र ठूँस दिया जाता था। वह वस्त्र मुँह में जाकर सूखता था और पीड़ित का मुँह सूखा का-सूखा रह जाता था। अगर अभियुक्त अपने अपराध को स्वीकृत नहीं करता था तो उसे यन्त्रणागार में भेज दिया जाता था। यन्त्रणागार में बहुत से पीड़ा दायक यन्त्र रक्खे जाते थे।

इंक्विज़ीशन का यंत्रणागृह

अभियुक्तों को यंत्रणा देने के लिए यन्त्रणागार बनाये गये थे। इस यंत्रणागार के लिए कई प्रकार के यंत्र भी तैयार किए गये थे। इन यंत्रों में 'रैक' 'कालर ऑफ टार्चर' और 'स्केवेंजर्स डॉटर, नामक यंत्र बहुत मशहूर थे। इन यंत्रों में अपराधी को, फिर वह नवयुवक, वृद्ध या कोमलांगी युवती ही क्यों न हो, नंगा करके फँसा दिया जाता था और इन्हीं के द्वारा उन्हें भीषण यंत्रणा दी जाती थी।

'रैक' अभियुक्तों के अंगों को खींचने का एक यंत्र था। इस यंत्र के द्वारा अभियुक्त की उँगलियाँ, हाथ, पैर तथा और अंग खींचे जाते थे। कभी इस खिंचाव में आकर वे अंग उखड़ भी जाते थे। इससे मनुष्य को भीषण यंत्रणा होती थी।

'कालर ऑफ टार्चर' एक दूसरा भीषण यंत्र था। इसमें एक कॉलर रहता था, जिसमें सैकड़ों सूइयाँ लगी रहती थीं। यह कॉलर अविश्वासियों के गले में लगाया जाता था, जिससे वे अपनी गर्दन इधर उधर नहीं हिला सकते थे। इधर उधर हिलाते ही वे सूइयाँ उन्हें चुभ जाती थीं।

"स्केवेंजर डॉटर" एक कैंची की तरह होता था। इसमें अपराधी के हाथ पैर और सिर को कसने के अलग-अलग खाँचे बने होते थे। इस यंत्र में अपराधी के हाथ पाँव और सिर फँसा कर कस दिए जाते थे, जिससे कि वह जैसे का तैसा जड़ वस्तु की तरह बन जाता था। बिलकुल हिल डुल नहीं सकता था।

इन भीषण यंत्रणाओं से दुखी होकर बहुत अपराधी और बहुत से निरपराधी भी अपराधों को स्वीकार कर लेते थे। जो लोग अपराध स्वीकार कर लेते थे उन्हें पहले गला दबा कर मार डाला जाता था और फिर उनका शव आग में फेंक दिया जाता था। मगर जो अपराधी अन्तिम समय तक अपने विचारों पर दृढ़ रहते थे, उन्हें 'स्टेक' से बाँधकर जीवित जलाया जाता था।

इंक्विज़ीशन से सजा पाये हुए मनुष्य एक-एक करके नहीं जलाए जाते थे बल्कि बहुत से इकट्ठे हो जाने पर एक साथ जला दिये जाते थे। जो दिन इनको जलाने के लिए निश्चित होता था, उस दिन एक बड़ा जलूस निकाला

जाता था। यह जलूस "ओटोडाफे" का जलूस कहा जाता था। उस दिन सब लोग त्योहार मनाते थे। स्वयं बादशाह भी इस अवसर पर ठाटबाट से उपस्थित होते थे। निश्चित समय पर सब कैदी कैदखाने से बाहर निकाले जाते थे। सब कैदियों के बदन पर एक पीले रंग का अँगरखा रहा करता था। इस अँगरखी पर भूत पिशाचादि के बीभत्स चित्र बने रहते थे। उनके सिर पर एक तिकोना चार फुट ऊँची टोपी लगी रहती थी। निश्चित स्थान पर पहुँच जाने पर सब अपराधियों की कलाइयाँ कस कर बाँध दी जाती थीं और फिर नाना प्रकार के धर्मग्रन्थों से भरे भाषण उनके सामने दिये जाते थे और उन्हें अन्तिम शान्ति देने के लिए कहा जाता था। इसके पश्चात् पादरी का भाषण होता था। उसके बाद जल्लाद उनको स्तेक से बाँध कर नीचे आग लगा देते थे। आग ऐसे ढंग से लगाई जाती थी, जिससे कि वे एक साथ न मर कर बल्कि धीरे-धीरे भयंकर यंत्रणा पाते हुए मृत्यु को प्राप्त हों। जब वे लोग यंत्रणा से चीखते-चिल्लाते थे उस समय हजारों दर्शक तालियाँ पीट-पीट कर हँसते थे।

अपने पहले ही वर्ष में इस अदालत ने केवल एक ही प्रान्त में दो हजार व्यक्तियों को स्तेक से बाँध कर जिन्दा जला दिया। 'लौरी' नामक लेखक का कथन है कि अकेले टौर्कीमेडा नामक व्यक्ति ने १८ वर्ष के अपने राज्य काल में एक लाख चौदह हजार चार सौ कुटुम्बों का सर्वनाश किया। इसके अतिरिक्त पंचम चार्ल्स के शासन-काल में एक लाख से अधिक अविश्वासियों को दण्ड दिया गया। इस प्रकार कहा जाता है कि लाखों व्यक्तियों के प्राण इन धर्म अदालतों ने लिए।

जिस समय इंग्लैण्ड में एडवर्ड षष्ठ के पश्चात् रोमन कैथोलिक मतानुयायी मेरी ट्यूडर इंग्लैण्ड की रानी बनी, तो उसने गद्दी पर बैठते ही रोमन कैथोलिक धर्म के कट्टर शत्रु प्रोटेस्टेण्ट धर्मानुयायी केण्टरबरी के आर्कबिशप टॉमस क्रैनमर, उसके साथी बिशप रिडले और लेटीमर तथा प्रोफेसर पेटर को जिन्दा जलाने का दण्ड दिया। इसका वर्णन करते हुए एक लेखक ने लिखा है—

"अन्तिम रविवार के दिन ज्यों ही अर्ध रात्रि व्यतीत हुई और सेण्टजॉन के घण्टे ने चार पर चोट की, एक शोक पूर्ण जुलूस धीमी गति से हामरगढ़ के प्रवेशद्वार पूर्व द्वार से चला। सबसे आगे चार प्रधान रक्षक दो-दो की कतार में निकले, जो काले रेशम का चोगा पहने हुए थे। इनके हाथ में बड़े बड़े सफेद 'क्रॉस' थे। इसके बाद बारह पादरी इसी अनुक्रम से काली पोशाक पहने हुए निकले। प्रत्येक के हाथ में जलती हुई मोमबत्तियाँ थीं। इनके सिर पर चौड़े छज्जे की टोपियाँ थीं। इनके पीछे पादरी का सहायक नंगे सिर सफेद चोगा पहने आया जिसके वक्ष पर सामने की ओर लाल क्रॉस बना था। इनके पीछे एक बुड्ढा पादरी सिर पर टोपी पहने था। इसके बाद दो साधु स्तोत्र पढ़ते हुए और करुण गीत गाते हुए चल रहे थे। उनके पीछे चार साधु थे जो जरीदार काम के एक चन्दोवे के चारों छोर पकड़े हुए थे। उस चन्दोवे के नीचे प्रधान धर्माचार्य चल रहा था जिसका चोगा गहरे लाल रंग का और पोशाक सफेद थी। इसके बाद रोम धर्म वालों की एक लम्बी कतार थी और उसके बाद वे तीन अभागे कैदी थे जो किसी समय चर्च के महान धर्माचार्य रह चुके थे।

ज्यों ही जुलूस रोमन चर्च के पास पहुँचा 'ओटोडाफे' का रिवाज जुलूस भी उसमें आकर मिल गया। ओटोडाफे अपराधियों का सामूहिक भीषण प्रदर्शन था जिसे एक धार्मिक समारोह का रूप दिया गया था। प्रत्येक कैदी के साथ इन्क्विजीशन का एक-एक आदमी चल रहा था और जिन्हें आग में जलाया जाना था उनके साथ एक-एक भिक्षुक साधु चल रहा था।

वधस्थल एक विस्तृत मैदान को घेरकर बनाया गया था जिसमें एक साथ ही दो-तीन हजार आदमियों को जलाया जा सकता था। जो अपराधी जीते जलाये जाने वाले थे उन्हें जंजीरों से कस कर जमपुरी से कस कर जीवित ही बाँध दिया गया। इसके बाद एक भारी शोर उठा और दर्शकों की भीड़ ने चिल्ला कर कहा—"कुत्तों की दाढ़ी में आग लगाओ!" सैकड़ों लोग जलती हुई मशाल लेकर दौड़ पड़े और इन बँधे हुए अपराधियों की दाढ़ियों को झुलसा दिया और उनके चेहरे पर तब तक मशालें लगाये रहे जब तक कि झुलस कर पहचान में न आ सके। अन्त में ... और इसके

हुए ईंधन में आग लगा दी, परन्तु क्रूस-यूप के साथ जंजीरों से बंधे हुए पीड़ित जन आग की लपटों से इतने ऊँचे रखे गये थे कि आग की लपटें उनके आधे शरीर तक ही पहुँच पाती थीं। इस प्रकार वे जलाये नहीं जा रहे थे, धीमे धीमे भूने जा रहे थे। पीड़ितों के वेदना-पूर्ण चीत्कार से सारा वातावरण गूँज रहा था। हजारों की संख्या में सभी आयु के स्त्री-पुरुष इस आर्तनाद को सुनते और प्रसन्न हो रहे थे।

मगर उन तीन बड़े कैदियों की अग्नि शय्यायें अलग ही बनाई गई थीं।

सबसे पहले टायस क्रेमनर को लिया गया। वह चर्च ऑफ इंग्लैण्ड का मुख्य और प्रतिष्ठित पादरी था। वह विद्वान, सुधारक और दृढ़ प्रकृति का प्रौढ़ पुरुष था। रोमन चर्च के एक पादरी ने उसके निकट आकर कहा कि 'अब भी समय है अपने विचार बदल डालो और अपने जीवन की रक्षा कर लो। पवित्र पिता पोप तुम पर कृपालु हैं उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।'' इस पर क्रेमनर ने उसे पीछे धकेल दिया और कहा— दूर हो जाओ, पोप के भेड़ियों, मुझ से दूर रहो। तुम प्रभु ईसा के नाम और धर्म पर कलंक रूप हो।'

पादरी के वहाँ से हटते ही क्रेमनर ने अपने चारों ओर उपस्थित भीड़ को सम्बोधन करके कुछ कहना चाहा। इस पर बोनर की आज्ञा से तुरन्त उसके मुँह में बड़ी घुसेड़ दी गई। उसके बाद बुश्कि और मोगर नामक दो जल्लादों ने क्रेमनर को पकड़ कर नंगा किया। वे उसे घसीट कर क्रूस यूप के निकट ले गये और क्रूसयूप के साथ उसे जन्जीरों से कस दिया। इसी समय मारगाल ने मशाल लेकर उसके नीचे के ईंधन में आग लगा दी। आग धीरे धीरे बढ़ रही थी और वह जलाया नहीं भूना जा रहा था। इसके बाद उसके साथी किन्मर और रिडले को भी उसी प्रकार मजबूर मन्जबूत पूर्वक भूना दिया।

इसी प्रकार सारे यूरोप में इंक्विजीशन की अदालतों के द्वारा हजारों आदमियों को फाँसी दी गई हजारों जीते जलाये गये, हजारों के बन्दीगृह में यन्त्रों के द्वारा अंग भंग किये गये, लाखों आदमियों को जेल की सजा दी गई। अकेले स्पेन में ३२३९२ आदमी इंक्विजीशन अदालत के द्वारा सन् १४८१ से १८०८ तक जीते जलाये गये और एक लाख से अधिक कैद किये गये तथा इन सभी की सम्पत्ति जब्त करके चर्च में मिला ली गई।

इक्वियन

ईसा के पूर्व सातवीं शताब्दी में रोम के समीप बसने वाली एक जाति, जिसका रोमवासियों से संघर्ष होता रहता था।

ईसा से ५७१ वर्ष पूर्व इक्वियन लोगों ने रोम पर चढ़ाई की। रोमन सेना उसका सामना करने के लिए भेजी गई मगर इक्वियन लोगों ने उसे इराकर चारों ओर से घेर लिया। उस घिरी हुई सेना की रक्षा के लिए रोम वासियों ने क्विंटीन्स सिन्सीनेटस नामक एक किसान को अपना डिक्टेटर चुना। उसने सब रोमन लोगों को पाँच दिन का भोजन और शस्त्रास्त्र लेकर तैयार रहने की आज्ञा दी। सेना तैयार होते ही सिन्सीनेटस ने रात के समय अचानक इक्वियन लोगों पर हमला कर दिया और उन को बुरी तरह हरा दिया।

इसी प्रकार और भी कई बार इक्वियन लोगों से रोम का संघर्ष हुआ मगर विजय रोम की ही हुई।

इगबर्ट

आठवीं सदी के अन्त और नौवीं सदी के प्रारम्भ में ब्रिटेन के वेसेक्स प्रान्त का राजा।

इगबर्ट एक बहादुर और प्रतापी राजा था। इसने मर्सिया नार्थम्ब्रिया और एसेक्स के राजाओं को हरा कर सारे इंग्लैंड पर अपना वास्तविक राज्य स्थापित कर लिया।

मगर इन्हीं दिनों इंग्लैंड पर डेन जाति के आक्रमण होने लगे और इगबर्ट तथा उसके पुत्र के अनेक उपाय करने पर भी डेन लोगों का इंग्लैंड में आना नहीं रुका और वे वहाँ स्थायी रूप से बस गये। तब इगबर्ट के पौत्र इतिहास प्रसिद्ध राजा अल्फ्रेड महान् ने सन् ८७८

में डेन लोगों से एक सन्धि कर इंग्लैंड को दो भागों में बाँट दिया। इस सन्धि के अनुसार दक्षिण और पश्चिम का भाग अलफ्रेड के आधीन रहा और शेष इंग्लैंड डेन लोगों के अधिकार में चला गया।

इगनेशियस

स्पेन का निवासी जेसुइट संघ का संस्थापक जिसने क्रिश्चियन धर्म का एक नया संघ स्थापित किया और उसका नाम 'सोसायटी आफ जीसस' रखा। इस सोसायटी के सदस्य जेसुइट कहलाये। यह जीसस संघ एक अद्भुत संगठन था। रोमन धर्म और पोप की सेवा के लिये पूरा समय देने वाले व्यक्तियों को तैयार करना इसका उद्देश था। इस संघ ने यूरोप में धर्म के आदर्श को ऊँचा उठा दिया।

इगनेशियस सोलहवीं सदी में करीब-करीब उन्हीं दिनों में हुआ था जब यूरोप में रोमन धर्म के विरुद्ध प्रसिद्ध सुधारक मार्टिन लूथर का प्रभाव बढ़ रहा था।

इंगलैण्ड

यूरोप के पश्चिमी हिस्से में चारों तरफ जल से घिरा हुआ देश। जिसके पूर्व में यूरोप पश्चिम में अमेरिका महाद्वीप, उत्तर में आर्क्टिक सागर और दक्षिण में भूमध्य सागर का दरवाजा जिब्राल्टर है।

ग्रेट ब्रिटेन के दक्षिणी भाग को इंगलैण्ड कहते हैं। इंगलैण्ड के साथ स्कॉटलैण्ड और वेल्स के संयुक्त राज्य का नाम ग्रेट ब्रिटेन है। इसकी राजधानी लन्दन में है। इसके प्रसिद्ध शहरों में बर्मिंघम लिवरपूल, ब्रिस्टोल ग्लासगो एडिनबरा, मैनचेस्टर, आक्सफोर्ड कैंब्रिज इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

इंगलैण्ड का इतिहास सारे संसार के इतिहास में अपना एक सर्वाधिक विशिष्ट स्थान रखता है। क्षेत्रफल और जन संख्या की दृष्टि से यह एक बहुत ही छोटा देश है। जिसका विस्तार भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश से अधिक नहीं है। प्राचीन इतिहास की दृष्टि से भी इसका कोई महत्व नहीं है। जिस समय रोम, स्पेन, फ्रान्स इत्यादि देश वैभव के शिखर पर पहुँचे हुए थे उस समय यह प्रायः असभ्य और जंगली लोगों का आवास बना हुआ था।

इंग्लैण्ड के वास्तविक विकास का इतिहास पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से प्रारम्भ होता है जिसे रेनेसां (Renaissance) या पुनर्जागरण का युग कहते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी से बीसवीं सदी तक के केवल चार-पाँच सौ वर्षों में इस देश के लोगों ने संसार के रंगमंच पर अपने जो महान् पार्ट अदा किये, वे समस्त संसार के इतिहास में अपनी जोड़ नहीं रखते। इन चार-पाँच शताब्दियों में इस छोटे से देश के निवासियों ने अपने सब उन्नत पड़ोसियों को पीछे छोड़ कर सारे संसार में अपना ऐसा विशाल साम्राज्य स्थापित किया जो सारे मानवीय इतिहास में इससे पहले कभी नहीं बना था। ऐसा साम्राज्य जिसमें सूर्य कभी अस्त नहीं होता था। सारा अमेरिका महाद्वीप अफ्रीका महाद्वीप का एक बड़ा भाग, भारतवर्ष, सीलोन बर्मा मिश्र सिंगापुर इत्यादि तो इस साम्राज्य में पूर्ण रूप से थे ही मगर चीन ईराक, अरब इत्यादि देश जो पूर्ण रूप से साम्राज्य में नहीं थे वे भी इसके पूर्ण प्रभाव क्षेत्र में थे। इन देशों के अन्दर भी अंग्रेजों की सलाह और उनकी इच्छा के अनुसार ही शासन होता था।

अपनी विशाल बुद्धि सैनिक साहस और राजनीतिज्ञता के बल पर इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित कर उसका सैकड़ों वर्ष तक उपभोग कर जब इस देश के राजनीतिज्ञों ने अनुभव किया कि अब साम्राज्यवाद का युग समाप्त हो गया है और अब साम्राज्य को बनाये रखना इज्जत और लाभ का काम नहीं है तो उस उपनिवेशवाद को समाप्त करने में भी इस जाति ने संसार का नेतृत्व किया विलम्ब नहीं किया। जिस विशाल साम्राज्य को उसके पूर्वजों ने अपने खून को बहाकर बड़ी कठिनाई से सैकड़ों वर्षों में निर्माण किया था साम्राज्य में होने वाले बड़े बड़े विद्रोहों और क्रान्तियों का जिन्होंने अपनी जान पर खेल कर बड़ी कुशलता से दमन किया था उसी विशाल साम्राज्य को छोड़ देने में भी उन्होंने देर न की। उसके लिए किसी तरह का पश्चाताप भी नहीं किया। बिना एक बूँद खून बहाये इस जाति ने सारे साम्राज्य को उसके वास्तविक अधिकारियों को सिपुर्द कर दिया।

इन घटनाओं से यह नहीं समझना चाहिए कि अंग्रेज जाति ने किसी त्याग या उदारता की भावना से प्रेरित होकर इतने बड़े साम्राज्य का त्याग किया। असल बात यह है कि अंग्रेज जाति प्रारम्भ से ही यथार्थवादी दृष्टिकोण की उपासक रही है। अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने जब अच्छी तरह समझ लिया कि अब विस्तृत साम्राज्य को गुलामी में बनाये रखना किसी भी तरह सम्भव नहीं है तो उन्होंने साहस पूर्वक साम्राज्यवाद का अन्त करने में भी अपना पहला कदम उठाया।

दूसरी तरफ दुनिया में मशीन युग के प्रादुर्भाव के पश्चात् जिस एक नवीन भौतिक संस्कृति का जन्म हुआ, जिस संस्कृति ने संसार में छाई हुई धार्मिक संकीर्णताओं के ताने बाने बिखेर कर विशुद्ध भौतिकवाद की दृष्टि से मनुष्य को सोचना समझना सिखाया उस संस्कृति का संसार में प्रचार करने के कार्य में भी अंग्रेज जाति सबसे आगे रही। सोलहवीं शताब्दी तक अर्थात् मेरी ट्यूडर के शासन-काल तक जिस जाति ने धार्मिक मतभेद रखने वाले रौलेण्ड टेलर, लेटीमर रिडले और क्रेनमर के समान लोगों को केवल प्रोटेस्टेण्ट मत के अनुयायी होने के कारण जीवित जला देने के समान नृशंस काम किये वही जाति, कुछ ही समय के पश्चात् धार्मिक क्षेत्र में उदारता का संदेश लेकर संसार के सम्मुख आई और जहाँ जहाँ भी उसने अपना साम्राज्य स्थापित किया, वहाँ राजनैतिक दृष्टि से चाहे कितने ही अत्याचार किये हों मगर धार्मिक दृष्टिकोण से किसी भी विधर्मी की स्वाधीनता पर उसने कभी हाथ नहीं डाला।

साम्राज्य विस्तार के साथ साथ इस जाति ने अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी साहित्य के विकास में भी एक अभूतपूर्व क्रान्ति पैदा कर दी। अंग्रेजी साहित्य और अंग्रेजी भाषा के विकास ने एलिज़ाबेथ युग से ही जो विद्युत्गति प्राप्त की वह आज तक कहीं भी नहीं रुकी। इसी जाति ने साहित्य के क्षेत्र में महाकवि शेक्सपीयर, टेनीसन वर्ड्सवर्थ इत्यादि महान् व्यक्तियों का पैदा किया। (अंग्रेजी साहित्य का पूर्ण वर्णन पहले भाग में अंग्रेजी साहित्य नाम के अध्याय में देखें) इसी प्रकार विज्ञान और मशीन के क्षेत्र में भी इस जाति ने अद्भुत बड़े बड़े महान् आविष्कार पैदा किए।

जैसे यूरोपीय भाषाओं में फ्रेंच भाषा का साहित्य आज भी सबसे उन्नत माना जाता है। फ्रेंच भाषा का इतिहास भी अंग्रेजी भाषा से बहुत पुराना है, उसका उद्गम भी लेटिन भाषा से है पर संसार के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आज जो महत्व अंग्रेजी को प्राप्त हो गया है वह संसार की किसी भी दूसरी भाषा को प्राप्त नहीं है। संसार के हर एक देश में आपको अंग्रेजी जानने वाले मिल जायेंगे और यदि आपका अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार है तो संसार के किसी भी क्षेत्र में भाषा विषयक आपकी गाड़ी नहीं रुकेगी।

जिन जिन देशों में इस जाति ने अपना साम्राज्य कायम किया उन सभी देशों में इस जाति के विद्वानों ने ज्ञान की खोज की धूम मचा दी। क्या इतिहास, क्या पुरातत्व, क्या वनस्पतिशास्त्र और क्या विज्ञान—सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी शासन काल में अभूतपूर्व खोजें हुई। अंग्रेजी शासन काल में ही मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की प्रसिद्ध खुदाइयाँ हुई, इसी शासनकाल में सर विलियम जोन्स ने मेगास्थनीज के यात्रा विवरण का अंग्रेजी अनुवाद कर मौर्य साम्राज्य के इतिहास पर प्रकाश डाला, इसी शासन काल में रॉक्सबर्ग ने भारतीय वनस्पतियों पर महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये।

ज्ञान की पिपासा अंग्रेजों का एक मनोवैज्ञानिक गुण है। इसी पिपासा ने इस जाति में महान साहित्यकार, महान् राजनीतिज्ञ और महान् वैज्ञानिकों की एक के बाद दूसरी परम्परायें कायम कीं।

इस प्रकार इंग्लैण्ड का इतिहास इस महान् सत्य का प्रतिपादन करता है कि अपने प्राचीन इतिहास के गौरव पर जीने वाली जातियों की अपेक्षा जीवन-संग्राम में वे जातियाँ आगे बढ़ जाती हैं जो अपने नवीन इतिहास का निर्माण करती हैं। अंग्रेज जाति का प्राचीन इतिहास कुछ भी नहीं है। आज से चार सौ बरस पहले तक यह जाति संसार की पिछड़ी हुई जातियों में गिनी जाती थी, मगर इन चार सौ बरसों में इस जाति ने संसार के अन्दर जिस विराट् इतिहास का, जिस विराट् सभ्यता का जिस विराट् साम्राज्य का जिस विराट् साहित्य का निर्माण किया—वह संसार के इतिहास में बेजोड़ है।

अब हम संक्षेप में इस देश और इस जाति के इतिहास का क्रमबद्ध विवेचन करते हैं।

प्राचीन इतिहास

इंगलैंड यूरोप महाद्वीप के पश्चिम में कुछ द्वीपों का एक समूह है जिसके तीन मुख्य भाग हैं—(१) इंग्लैण्ड (२) स्कॉटलैंड और (३) वेल्स। ये सब मिलकर ग्रेट ब्रिटेन कहलाते हैं।

दो हजार वर्षों से कुछ अधिक पूर्व, पूर्व की ओर से केल्ट नामक जाति के लोगों ने इस देश के आदि निवासियों को भगाकर अपना शासन जमाया। केल्ट जाति की गोडल (Godel) नामक शाखा पहले आई और बाद में इसी जाति की ब्रिटन नामक शाखा ने प्रवेश कर गोडल जाति को यहाँ से उत्तर-पूर्व की ओर भगा दिया। आयर्लैंड और स्कॉटलैंड के हाइलैंड प्रान्त के निवासी इन्हीं गोडलों की सन्तान हैं। वेल्स के निवासी ब्रिटन जाति की सन्तान हैं।

केल्ट जाति के लोग रथ चलाने की विद्या में बड़े निपुण होते थे। युद्ध क्षेत्र के अन्तर्गत भी वे रथों का प्रयोग करते थे। इनके पुरोहितों को ड्रूइड (Druids) कहते थे। ये पुरोहित जङ्गलों में रहते थे और अपने अनुयायियों को धर्म तथा सदाचार की शिक्षा दिया करते थे।

रोम का शासन

उन दिनों रोम का साम्राज्य सारे संसार में धूम मचाये हुए था। उसके बादशाह जूलियस सीजर का प्रताप चारों दिशाओं में फैल रहा था। उसने फ्रांस और बेल्जियम को विजय करके ईस्वी सन् पूर्व ५५ में बहुत से युद्ध पोत और १ पैदल सेना के साथ इंग्लैंड पर आक्रमण कर दिया। ब्रिटन लोगों ने बड़ी वीरता से उसका मुकाबिला किया। उन्होंने कैसिवेलन नामक व्यक्ति को अपना मुखिया बनाकर सीजर की सेनाओं पर हमला किया पर रोमन लोगों के आगे उनकी न चली और जूलियस सीजर ने उन पर विजय प्राप्त कर कैसिवेलन से सन्धि कर ली।

इसके सौ वर्षों बाद ई० सन् ४३ में क्लोडियस रोम का सम्राट् हुआ। इसने फिर ब्रिटेन पर चढ़ाई की और दस वर्षों में उसने सारे दक्षिणी भाग पर अधिकार कर लिया। उस समय [illegible] कैरेटक (Caradoc) वेल्स का राजा था। उसने एक बड़ी सेना लेकर रोम की सेना पर आक्रमण किया पर रोम की शक्तिशाली सेना के सामने उसकी सेना नहीं ठहर सकी और रोम की सेना ने उसे हराकर कैरेटक की पुत्री और रानी को कैद कर लिया।

इसके पश्चात् पूर्व की ओर नार्फक, सफक और इसेक्स प्रान्त में रोम का राज्य स्थापित हो गया। और इस राज्य की राजधानी कोलचेस्टर (Colchester) में बनाई गई। ई० सन् ६८ तक रोम के सेनापतियों ने इस देश के उत्तरी भाग पर भी अधिकार कर लिया।

पश्चिमी प्रदेशों में रोमन लोग इस प्रकार जब एक के बाद दूसरी विजय प्राप्त कर रहे थे, उसी समय पूर्वी प्रदेशों में केल्ट जाति की एक शाखा आइसनी जाति की रानी बोडिसिया ने कुछ सेना लेकर रोमन राजधानी कोलचेस्टर पर आक्रमण किया और उसे नष्ट भ्रष्ट कर डाला। बोडिसिया बड़ी बहादुर वीरांगना थी, मगर रोम की संगठित शक्ति के मुकाबिले उसका बस नहीं चला और अन्त में जहर खाकर उसने अपना जीवन समाप्त किया।

इस प्रकार धीरे धीरे सारा इंगलैंड रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया। रोमन लोगों ने नारविच (Norwich) में एक बड़ा भारी किला बनाया और सन् १२१ में सम्राट हैड्रियन के समय में न्यूकासल से लेकर कार्लाइल तक और सन् १४२ में फ़ोर्थ नदी से क्लाइड नदी तक एक मजबूत दीवार बनाई। इस प्रकार इंगलैंड पर रोमन साम्राज्य का पंजा मजबूती से जम गया। यह राज्य करीब ३५ वर्षों तक चला।

रोमन साम्राज्य ने अपने शासन काल में इंगलैंड का काया पलट कर दिया। उस समय इंगलैंड पर रोमन सभ्यता का जो प्रभाव पड़ा उसके चिह्न अभी तक इंगलैंड में दृष्टिगोचर होते हैं। इंगलैंड में चारों ओर रोमन लोगों ने सड़कें बना डालीं, जगह जगह पर किले बनाये गये। चेस्टर, ग्लोस्टर इत्यादि कई सैनिक नगरों की स्थापना हुई। लन्दन आदि व्यापारिक नगरों का निर्माण हुआ, नदियों पर पुल बनाये गये। जंगल काट कर भूमि को साफ करके उसे खेती के योग्य बनाया गया और बगीचे लगाये गये।

उन दिनों इंगलैंड की पैदावार इतनी बढ़ गई कि समस्त उत्तरी देशों को अन्न वहीं से जाने लगा।

केंट, कौन तथा मध्य देश में लोहे की खदानें आरम्भ की गई, टीन शीशे तथा नमक की खदानें भी अस्तित्व में आई। टेम्स तथा सेवर्न नदियों के किनारे पर मिट्टी के बर्तन बनाना आरम्भ हुए। ब्रिटिश लोगों ने जहाज बनाने का भी काम आरम्भ किया। जहाजों के बनते ही विदेशी व्यापार एक दम चमक उठा। इन जहाजों के द्वारा लोग अन्न धातुएँ, मोती, घोड़े कुत्ते, दास इत्यादि दूसरे देशों को ले जाने लगे तथा बदले में रेशम, सोना तथा जवाहिरात बाहर से अपने देश में लाने लगे।

रोमन अधिकारियों ने अपने रहने के लिए उत्तम उत्तम मकान बनवाये। सुन्दर मन्दिरों और न्यायालयों का निर्माण किया और इंग्लैंड को एक समृद्ध देश बना दिया।

रोमन लोगों का यह शासन सन ४१ ई तक रहा उसके पश्चात् स्वयं रोम में वहाँ के साम्राज्य की अधोगति हो जाने से इंग्लैंड से भी इन लोगों ने अपना शासन उठा लिया।

ऑंग्ल जाति का शासन

रोमन लोगों का शासन हटते ही ब्रिटेन अरक्षित हो गया। उस पर स्कॉट और पिक्ट जाति के लोगों के आक्रमण शुरू हो गये और उनके साथ ही इंगलैंड के पूर्व में जर्मन सागर के उस पार एल्ब नदी के मुहाने पर बसी हुई आंग्ल, सैक्सन तथा जूट जाति के लोगों ने भी इंगलैंड पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। सन ४४९ में हेंगिस्ट (Hengist) और होर्स (Horsa) नामक दो भाइयों के नेतृत्व में जूट जाति के लोग थानेट टापू में उतरे और शीघ्र ही केंट प्रदेश में बस गये। दक्षिणी इंगलैण्ड के अन्य भागों पर सैक्सन जाति के लोगों ने चढ़ाई की और पूर्व में एसेक्स, पश्चिम में वैसेक्स और दक्षिण में ससेक्स नामक तीन राज्यों की स्थापना हुई।

तीसरी एंग्लस जाति ने उत्तरी मध्य और पूर्वी इंग्लैण्ड पर अधिकार कर लिया। हम्बर नदी के उत्तर में नार्थम्ब्रिया की रियासत थी। पूर्वी राज्य ईस्ट एंग्लिया कहलाता था और मध्यवर्ती प्रदेश मर्शिया कहा जाता था।

जूट सेक्सन और एंग्लस ये तीनों जातियाँ ही मिल कर इंगलिश जाति के नाम से प्रसिद्ध हैं और इन्हीं के नाम पर इस देश का नाम इंग्लैण्ड पड़ा।

इंग्लिश जातियों ने यहाँ के मूल निवासी ब्रिटनों को मार-मार कर भगाना प्रारम्भ किया।

इंग्लिश लोग लम्बे और मजबूत होते थे। इनके केश सुनहले और आँखें नीली होती थीं। धनाढ्य व्यक्ति भुजाओं में सोने चाँदी के कड़े और आभूषण भी पहनते थे। ये लोग अनेक देवों की उपासना करते थे। इनके सबसे प्रसिद्ध देवता का नाम वोडेन (Woden) था। राजा लोग अपने को इसी देवता की सन्तान समझते थे। बिजली का देवता थार (Thor) युद्ध का देवता ट्यू (Tiw) और प्रेम की देवी फ्रेया (Fraya) मानी जाती थी।

एंग्लस सेक्सन और जूट लोगों का शासन होने पर इंग्लैंड से ईसाई धर्म तिरोहित हो गया। सिर्फ स्काटलैंड और वेल्स में इस धर्म के अनुयायी बचे रहे। मगर सन् ५९८ में आगस्टाइन के नेतृत्व में ४० ईसाई पादरियों का एक दल इंग्लैंड में आया। उस समय केंट प्रांत का राजा इथिलबर्ट था। उसकी रानी बर्था ईसाई मतावलम्बी थी। इन पादरियों ने फिर से इंग्लैंड में ईसाई धर्म का प्रचार किया।

इस समय सारा इंग्लैंड सात छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। इनमें केंट मर्शिया वैसेक्स और नार्थम्ब्रिया प्रधान थे। ये सब छोटे छोटे राजा हमेशा परस्पर लड़ा करते थे।

मगर वैसेक्स के राजा इगबर्ट ने सन् ८०८ से लेकर ८२० तक मर्शिया ऐसेक्स और नार्थम्ब्रिया को पराजित कर अपने राज्य में मिला लिया।

इसी समय डेन और नार्मन जाति के लोगों ने इंग्लैण्ड पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। राजा इगबर्ट ने इनको रोकने का बहुत प्रयत्न किया, मगर उसे सफलता नहीं हुई और डेन और नार्मन जाति के लोग इस देश पर हावी हो गये।

एगबर्ट के पोते राजा अल्फ्रेड महान् ने बड़ी बहादुरी से इस जाति का मुकाबिला किया। सात वर्ष तक वह इनसे लड़ता रहा मगर उसे भी सफलता न मिली। अन्त में सन् ८७८ में वेडमोर (Wedmore) की सन्धि में उसने इंग्लैण्ड का उत्तरी भाग डेन लोगों को दे दिया और दक्षिणी भाग अपने पास रक्खा।

अल्फ्रेड महान्

अल्फ्रेड इंग्लैण्ड के प्राचीनकाल के राजाओं में महान् राजा माना जाता है। इसने इंग्लैण्ड को गिरती हुई अवस्था से बचा लिया। उसने कई वर्षों तक डेन लोगों से बड़ी बहादुरी के साथ मोर्चा लिया और साथ ही अपने राज्य की शक्ति को भी बढ़ाता रहा। सबसे पहले उसने जहाजों का एक मजबूत बेड़ा तैयार कर अपनी जल शक्ति को बढ़ाया। उसने अपनी प्रजा के नवयुवकों के लिए सेना में भरती होना अनिवार्य कर दिया।

सैनिक तैयारी के साथ उसने देश की शिक्षा-व्यवस्था में भी बहुत सुधार किया। विदेशों से कई बड़े-बड़े विद्वानों को बुला कर उनको उसने गिरजों के पुरोहित और स्कूलों के शिक्षक बनाये। उसने अपने समय का एक विस्तृत इतिहास और धर्मशास्त्र का ग्रन्थ भी तैयार करवाया। इन्हीं सब बातों के कारण इंगलैण्ड के इतिहास में वह एक महान् राजा माना जाता है।

अल्फ्रेड के बाद उसके पुत्र एडवर्ड और उसके बाद उसके पुत्र एथिलस्टन ने भी अपने राज्य विस्तार का काम जारी रक्खा। एथिलस्टन के भाई ऐडरिक ने सारा देश डेन लोगों से ले लिया।

मगर इसके पश्चात् आगे चलकर इस वंश में एथिल-रेड (Ethelred) नाम का एक कमजोर राजा हुआ था जिसको इतिहास कमजोर एथिलरेड (Unready) के नाम से सम्बोधित करता है। इस राजा की कमजोरी से देश फिर कमजोर हो गया और सन् १०१६ में डेन जाति के प्रसिद्ध राजा कैन्यूट ने सारे इंग्लैंड पर अधिकार कर लिया।

मगर कैन्यूट की मृत्यु के कुछ वर्षों पश्चात् फिर सैक्सन की अंग्रेज जाति का राजा एडवर्ड कन्फेसर गद्दी पर बैठा और इंग्लैंड का उत्तरी भाग भी डेन लोगों के हाथ से छीन लिया गया।

सन् १०६६ में नार्मन जाति के राजा विलियम ने इंग्लैंड पर विजय प्राप्त कर वहाँ के राजा को भारी पराजय दी और वहाँ पर नार्मन जाति का राज्य स्थापित हुआ। यह राज्य इंग्लैंड में करीब सौ वर्ष तक रहा।

इसके पश्चात् नार्मन राजा हेनरी प्रथम के कोई सन्तान न होने से उसका नाती हेनरी द्वितीय इंग्लैंड का राजा बना जो अंजोवंश का था और नार्मन जाति का राज्य खतम होकर अंजोराजवंश का राज्य प्रारम्भ हुआ।

अंजो राजवंश

अंजो राजवंश में (१) हेनरी द्वितीय (२) रिचर्ड प्रथम (३) जॉन प्रथम (४) हेनरी तृतीय (५) एडवर्ड प्रथम (६) एडवर्ड द्वितीय (७) एडवर्ड तृतीय और (८) रिचर्ड द्वितीय ऐसे आठ शासक हुए और सन् ११५४ से १३८२ तक २२८ वर्ष इस वंश ने इंग्लैंड पर राज्य किया। अन्तिम राजा रिचर्ड द्वितीय का पार्लमेंट से मतभेद हो जाने पर वह जेल में डाल दिया गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई। अंजो राजवंश का पूरा वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम खंड में अंजो राजवंश शीर्षक के साथ देखें।

मेग्ना-चार्टा और पार्लमेंट

अंजो राजवंश का तीसरा राजा "जॉन प्रथम" बड़ा अत्याचारी और क्रूर था। इसके अत्याचारों से तंग आकर इंग्लैंड के जागीरदार, धर्माधिकारी और जनता—सब संगठित हो गये और कैंटरबरी के बड़े पादरी स्टीफन लैंगटन (Stephen Langton) को अपना नेता बनाकर वे जॉन के अत्याचारों का विरोध करने लगे। सन् १२१५ में उन्होंने मेग्नाचार्टा (Magna Charta) के नाम से एक स्वतंत्रता पत्र तैयार किया जिसमें यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया कि कोई भी राजा बिना राजसभा की स्वीकृति के कोई कर नहीं लगा सकेगा और न न्यायालय से निर्णय हुए बिना किसी व्यक्ति को जेल में रख सकेगा।

यह "मेग्ना चार्टा" पत्र इंग्लैंड के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहीं से इंग्लैंड में वैधानिक सरकार की स्थापना का सूत्रपात होता है यहीं से राजा के अधिकारों की मर्यादा आरम्भ होती है और यहीं से धीरे

धीरे इंग्लैंड की राज्य सभा पार्लमेंट का रूप धारण कर दिन प्रतिदिन शक्तिशाली होने लगती है।

आंजो वंश के राजा हेनरी तृतीय ने फिर निरंकुश शासन प्रारम्भ करके राज्य सभा की उपेक्षा प्रारम्भ की। तब जनता ने सायमन दी मान्टफोर्ट को अपना नेता बनाया। सायमन ने राजा हेनरी को हराकर उसे और उसके पुत्र एडवर्ड को गिरफ्तार कर लिया और राष्ट्र का भाग्य सुलझाने के लिए इंग्लैंड की ग्रेट कौंसिल की बैठक बुलाई। इस बैठक में प्रत्येक जिले और प्रत्येक नगर से जनता के दो-दो प्रतिनिधि बुलाये गये। इसी दिन से ग्रेट कौन्सिल का नाम 'पार्लमेंट' रक्खा गया जिसने आगे जाकर सारे इंग्लैंड के इतिहास का निर्माण किया। इसीलिए सायमन डी मान्टफोर्ट को इंग्लैंड के इतिहास में 'फादर ऑफ दी पार्लमेंट' कहा जाता है।

शतवर्षीय युद्ध

आंजो राजवंश के राजा एडवर्ड तृतीय के समय में इंग्लैंड का फ्रांस के साथ एक लम्बा युद्ध प्रारम्भ हुआ जो धीरे-धीरे करीब सौ वर्ष तक चला। इस सौ वर्षीय युद्ध में दो बार क्रेसी और पोयटियर्स की लड़ाइयों में इंग्लैंड की बहुत बड़ी जीत और दो बार बहुत बड़ी हार हुई। सन् १४१५ में एजिन कोर्ट की लड़ाई में इंग्लैंड की भारी विजय हुई। हेनरी षष्ठ के समय में फ्रांस की सुप्रसिद्ध महिला जोन ऑफ आर्क को अंग्रेजों ने पकड़ कर जीवित जला दिया।

आंजो राजवंश के राज्य में ही सन् १३४९ में इंग्लैंड में ब्लेक डेथ नामक महामारी (Black Death) अत्यंत भयंकरता से फैली जिसमें गाँव के गाँव उजाड़ हो गये। इस महामारी की वजह से मजदूरों की संख्या बहुत कम हो गई। जिसके परिणाम स्वरूप मजदूरी की दर बढ़ाने की माँग मंजूर न होने पर उन्होंने एक बड़ा संगठित विद्रोह किया जो इंग्लैंड के इतिहास में पीजेण्ट रिवोल्ट (Peasant Revolt) कहलाता है।

इसी आंजो राजवंश के समय में एशिया माइनर में तुर्कों से ईसाइयों के पवित्र धर्म युद्ध—जिन्हें क्रूसेड कहते हैं—हुए, जिनमें इंग्लैंड के राजवंश और ईसाइयों ने भी भाग लिया था। क्रूसेड का विस्तृत वर्णन क्रूसेड शब्द में अगले भाग में देखें।

आंजो राजवंश के अन्तिम राजा रिचर्ड द्वितीय के समय में इंग्लैंड में जॉन विक्लिफ नामक एक इतिहास प्रसिद्ध धर्म सुधारक हुआ। इसने रोमनचर्च की संस्था के दोषों को सबसे पहले जनता पर प्रकाशित किया। उसने बाइबिल का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। विक्लिफ के अनुयायी लोलार्डस (Lollards) कहलाते थे। मगर विक्लिफ का प्रयत्न उस समय की समाज स्थिति में सफल नहीं हुआ और उसके एक दो अनुयायी जीवित जला दिये गये। रिचर्ड द्वितीय को पार्लमेण्ट से झगड़ा हो जाने के कारण जेल में डाल दिया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हुई और उसके साथ ही आंजो राजवंश का अन्त हो गया। रिचर्ड द्वितीय ने सन् १३७७ से १३९९ तक २२ वर्ष राज्य किया।

गुलाबों का युद्ध

आंजो राजवंश का अन्त हो जाने पर इंग्लैंड के शासन के लिए एडवर्ड तृतीय के पुत्रों के उत्तराधिकारियों में बड़ी लड़ाई चली। यह लड़ाई इंग्लैंड के इतिहास में "गुलाबों का युद्ध" (War of the Roses) के नाम से प्रसिद्ध है। इंग्लैंड की पन्द्रहवीं सदी का सारा इतिहास इन झगड़े बखेड़ों से भरा हुआ है। एक तरफ एडवर्ड तृतीय के उत्तराधिकारी लंकास्टर वंश के लोग और दूसरी तरफ एडवर्ड तृतीय के दूसरे और चौथे पुत्रों से सम्बन्ध रखने वाले यार्क वंश के लोग राज्य पर अपना अपना दावा बतलाते थे। लंकास्टर वालों का निशान लाल गुलाब और यार्क वालों का निशान सफेद गुलाब था। इसलिए इन दोनों वंशों के पारस्परिक युद्ध को गुलाबों का युद्ध कहते हैं।

सन् १३९९ में इंग्लैंड की पार्लमेंट ने लंकास्टर वंश के प्रथम राजा हेनरी चतुर्थ को इंग्लैंड की गद्दी पर बिठाया। तब से सन् १४६१ तक इस वंश ने इंग्लैंड पर राज्य किया उसके पश्चात् सन् १४६१ से १४८३ तक यार्क वंश ने इंग्लैंड पर राज्य किया।

ट्यूडर राजवंश

यार्क वंश का राजा एडवर्ड चतुर्थ की सन् १४८३ में मृत्यु हुई और उसके स्थान पर उसका १२ वर्ष का नाबालिग पुत्र एडवर्ड पंचम के नाम से गद्दी पर बैठा और

उसका चाचा रिचर्ड उसका संरक्षक बना। मगर कुछ ही समय बाद रिचर्ड के दिल में बेईमानी आई और उसने एडवर्ड पंचम को गद्दी से उतार कर कुछ समय बाद मरवा डाला और स्वयं रिचर्ड (Richard) तृतीय के नाम से राजा बन बैठा।

मगर कुछ ही समय पश्चात् ट्यूडर वंश के हेनरी ट्यूडर ने कुछ सेना इकट्ठी कर रिचर्ड पर चढ़ाई कर दी और बड़ी घमासान लड़ाई के पश्चात् रिचर्ड तृतीय को मार कर इंग्लैण्ड की गद्दी पर हेनरी सप्तम के नाम से बैठा। हेनरी ट्यूडर का रिश्ता लंकास्टर वंश के साथ था और यार्क वंश की उत्तराधिकारिणी एडवर्ड चतुर्थ की कन्या एलिजाबेथ से विवाह करने का वचन देकर उसने यार्क वंश की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली थी। इस ट्यूडर राजवंश का काल इंग्लैण्ड के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें इंग्लैण्ड में कई धर्म सुधार हुए, भूमि पतियों की मनमानी का दमन हुआ अन्तर्देशीय राज विवाह प्रारम्भ हुए और सुदृढ़ परराष्ट्र नीति का निर्माण हुआ। इसी शासन के काल में समुद्र मार्गों से नये नये देशों की खोज हुई, उपनिवेश बने युद्ध कला में सुधार और हुए छापे की मशीन का निर्माण हुआ।

हेनरी सप्तम

१—हेनरी सप्तम का राज्यकाल सन् १४८५ से १५०९ तक रहा। उसने अपने राज्य काल में भूमिपतियों की शक्ति कम करने के लिए एक कानून (Statute of Livery) बनाया। जिसके द्वारा भूमि पतियों को अपनी निज की सेना रखने की मनाई कर दी गई। इससे पहले वे भूमिपति अपनी निज की सेना रखते थे। इन भूमि पतियों के लिए उसने "कोर्ट ऑफ स्टार चेम्बर" नामक (Court of Star Chamber) एक नवीन न्यायालय की स्थापना की। उसमें उच्च श्रेणी के सात न्यायाधीश बैठते थे और भूमिपतियों का प्रभाव वहाँ बिल्कुल नहीं चलता था।

इसके अलावा राजकोष को धन से भरा पूरा रखने के लिए भी हेनरी सप्तम ने कई तरीके अपनाये। उसने धनिक लोगों से राजप्रेम के लिए दान के रूप में सहायता लेने की एक प्रथा निकाली। इस प्रथा का नाम बेनेवोलेंस (Benevolence) रक्खा गया। इस प्रकार की प्रथाओं के द्वारा उसने अपने लिए और अपने उत्तराधिकारियों के लिए राजकोष में इतना धन संचय कर लिया कि पार्लियामेंट से कोई सहायता लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। इस प्रकार ट्यूडर शासन में पार्लमेंट अपने आप कमजोर हो गई।

हेनरी सप्तम ने अपनी परराष्ट्र नीति को बहुत उदार बनाया। इस नीति को सफल करने के लिए उसने राजवंश में अन्तर्राष्ट्रीय विवाह शुरू किये। उसने अपने पुत्र आर्थर का विवाह स्पेन की राजकुमारी कैथेराइन से किया और आर्थर के मरने पर उसी कैथेराइन का विवाह अपने छोटे पुत्र से कर दिया। इसी प्रकार स्कॉटलैण्ड से अपने सम्बन्ध सुधारने के लिए अपनी पुत्री मार्गरेट का विवाह स्कॉटलैण्ड के राजा जेम्स चतुर्थ से कर दिया। इसी विवाह के दूरवर्ती परिणाम हुए। इसके फलस्वरूप आगे चलकर इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के राज्य एक ही साम्राज्य के अंग हो गये।

हेनरी अष्टम

सन् १५०९ में हेनरी सप्तम की मृत्यु हो जाने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र हेनरी अष्टम के नाम से इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा। यह राजा बड़ा सुन्दर, शौकीन तबियत वाला और प्रजा का बड़ा प्रेम-पात्र था। गद्दी पर बैठते ही इसने अपने पिता के कर्णधार दो मंत्री एम्पसन और डडले को मरवा डाला और वूल्जे (Wolsey) नामक एक विद्वान पादरी को अपना प्रधान मंत्री बनाया। वूल्जे पहला अंग्रेज राजनीतिज्ञ था जिसने यूरोप में शक्ति संतुलन (Balance of Power) के सिद्धान्त का सूत्र पात किया। उस समय यूरोप में स्पेन और फ्रांस दो देश बड़े शक्तिशाली थे। इन दोनों में से जिसके साथ इंग्लैण्ड हो जाता उसी का पलड़ा भारी हो जाता था। इसलिए दोनों ही देश इंग्लैण्ड की सहायता के इच्छुक रहते थे और इस प्रकार यूरोपीय राजनीति में इंग्लैण्ड का दबदबा बैठ गया।

इसी समय हेनरी अष्टम का प्रेम एनी बोलन (Anne Boylen) नामक एक सुन्दर नव युवती से हो गया और उससे विवाह करने के लिए उसने पहली पत्नी कैथेराइन को तलाक देना चाहा मगर इसके लिए पोप की आज्ञा लेना आवश्यक था। इसलिए वूल्जे को उसने पोप की आज्ञा लेने का भार सौंपा मगर वूल्जे के प्रयत्न के बाद

मगर पोप ने इस तरह का फतवा देने से इन्कार किया। वूल्से की इस असफलता से नाराज होकर हेनरी ने वूल्से को सब पदों से हटा दिया और उसे बुरी तरह तंग करने लगा। इसी झमेले में वूल्से की मृत्यु हो गई।

तब हेनरी ने पार्लमेंट से कुछ कानून पास करवाकर पोप के अधिकार को ही इंग्लैंड में खतम करवा दिया और कैंटरबरी के बड़े पादरी से व्यवस्था लेकर कैथेराइन का परित्याग कर एनी बोलन से विवाह कर लिया।

इसके पश्चात् हेनरी ने इंग्लैंड में ईसाई धर्म के मठों को (Monasteries)—जिनमें बहुत से ईसाई साधु और साध्वियाँ रहा करते थे मगर जो समय पाकर अनैतिकता में डूब गये थे—तोड़कर उनकी सम्पत्ति और जायदादों को जब्त कर लिया। इन मठों की रक्षा करने के लिए इंग्लैण्ड में एक बड़ा धार्मिक आन्दोलन भी उठा मगर उसे निर्दयता पूर्वक दबा दिया गया। वूल्से के पश्चात् हेनरी ने टामस मोर और उसके बाद टॉमसक्रामवेल को अपना प्रधान मन्त्री बनाया मगर थोड़े-थोड़े समय बाद उनसे भी नाराज होकर उनपर राजद्रोह का अपराध लगाकर मरवा डाला। सन १५४७ में हेनरी अष्टम की मृत्यु हो गई।

एडवर्ड षष्ठ

हेनरी अष्टम के पश्चात् उसकी तीसरी पत्नी जेन सीमर के गर्भ से उत्पन्न पुत्र एडवर्ड षष्ठ के नाम से गद्दी पर बैठा। उस समय उसकी उम्र केवल दस वर्ष की थी। इस लिए उसका मामा एडवर्ड सीमर, ड्यूक आफ समर सेट बनकर उसका संरक्षक हो गया।

ड्यूक आफ समरसेट ने धर्म सुधार आन्दोलन में विशेष रूप से भाग लिया। उसने इंग्लैंड के धर्म को पूर्णतः प्रोटेस्टेण्ट बनाने का प्रयत्न किया मगर इससे जनता में बड़ा रोष उत्पन्न हुआ। दो एक स्थानों पर विद्रोह भी हो गये। एक विद्रोह को शान्त करने में वह असमर्थ रहा इसलिए राजा ने उसे अपने पद से हटा दिया और राजद्रोह का अभियोग लगाकर मरवा डाला।

एडवर्ड षष्ठ का सोलह वर्ष की अवस्था में क्षयरोग से देहान्त हो गया। उसके पश्चात् उसकी चचेरी बहिन जेनग्रे इंग्लैंड की गद्दी पर बैठी मगर वह केवल नौ दिन राज्य कर पाई बाद में मेरी के समर्थकों ने उसे गद्दी से हटा दिया। उसके बाद एडवर्ड षष्ठ की बड़ी बहन कैथराइन की पुत्री मेरी सिंहासन पर बैठी।

मेरी ट्यूडर

सन् १५५३ में एडवर्ड षष्ठ की मृत्यु के बाद रानी मेरी ट्यूडर गद्दी पर बैठी। रानी मेरी कट्टर रोमन कैथोलिक धर्म को मानने वाली थी और इंग्लैंड के धर्म पर छाये हुए प्रोटेस्टेंट रंग को मिटाकर उसे विशुद्ध कैथोलिक बना देना चाहती थी। इसी कारण उसने स्पेन के सम्राट फिलिप द्वितीय से विवाह करने की इच्छा प्रकट की मगर इंग्लैण्ड की जनता इस सम्बन्ध को बिलकुल पसन्द नहीं करती थी। इस कारण वॉट (Wyatt) के नेतृत्व में मेरी के इस निश्चय के खिलाफ एक विद्रोह भी हुआ पर उसे दबा दिया गया और रानी ने अपनी छोटी बहिन एलिजाबेथ को टॉवर में कैद कर दिया। पार्लमेंट को अन्त में मेरी के इस विवाह की स्वीकृति देनी पड़ी।

इसके बाद रानी मेरी ने अंग्रेजी धर्म को फिर से पोप के अधीन कर दिया सब प्रोटेस्टण्ट लोगों को कैथोलिक धर्म अंगीकार करने के लिए कहा और जिन लोगों ने कैथोलिक धर्म को अंगीकार नहीं किया उन्हें इंक्वीजीशन अदालत के द्वारा जीवित जलाये जाने की सजा दिलाई। करीब ३ प्रोटेस्टेंट लोग जीवित जलाये गये। इनमें रोलैंण्ड टेलर (Rowland Taylor), लैटिमर (Latimer) रिडले (Ridly) और क्रम्मर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मेरी के इन कुकार्यों से जनता उससे बहुत नाराज हो गई। उधर स्पेन के राजा फिलिप ने कुरूप होने की वजह से मेरी को तलाक दे दी। तीसरी बार फ्रांस की लड़ाई में उसकी हार हुई और कैले बन्दर उसके हाथ से निकल गया। इन सब घटनाओं के कारण उसका अन्तिम जीवन बड़ा दुःखपूर्ण रहा और सन् १५५८ में उसकी मृत्यु हो गई।

महारानी एलिजाबेथ (१५५८–१६०४)

ट्यूडर वंश की महारानी एलिजाबेथ के समय से इंग्लैण्ड का इतिहास एक नई करवट लेता है और नया जीवन प्राप्त करता है। वैसे ट्यूडर शासन के आरम्भ ही से शान्तिपूर्ण व्यवस्था, शिक्षा, साहित्य और विज्ञान की

उसका चाचा रिचर्ड उसका संरक्षक बना। मगर कुछ ही समय बाद रिचर्ड के दिल में बेईमानी आई और उसने एडवर्ड पंचम को गद्दी से उतार कर कुछ समय बाद मरवा डाला और स्वयं रिचर्ड (Richard) तृतीय के नाम से राजा बन बैठा।

मगर कुछ ही समय पश्चात् ट्यूडर वंश के हेनरी ट्यूडर ने कुछ सेना इकट्ठी कर रिचर्ड पर चढ़ाई कर दी और बड़ी घमासान लड़ाई के पश्चात् रिचर्ड तृतीय को मार कर इंग्लैण्ड की गद्दी पर हेनरी सप्तम के नाम से बैठा। हेनरी ट्यूडर का रिश्ता लंकास्टर वंश के साथ था और यार्क वंश की उत्तराधिकारिणी एडवर्ड चतुर्थ की कन्या एलिज़ाबेथ से विवाह करने का वचन देकर उसने यार्क वंश की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली थी। इस ट्यूडर राजवंश का काल इंग्लैण्ड के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें इंग्लैण्ड में कई धर्म सुधार हुए, भूमि पतियों की मनमानी का दमन हुआ अन्तर्देशीय राज विवाह प्रारम्भ हुए और सुदृढ़ परराष्ट्र नीति का निर्माण हुआ। इसी शासन के काल में समुद्र मार्गों से नये नये देशों की खोज हुई उपनिवेश बने युद्ध कला में सुधार और हुए छापे की मशीन का निर्माण हुआ।

हेनरी सप्तम

१—हेनरी सप्तम का राज्यकाल सन् १४८५ से १५०९ तक रहा। उसने अपने राज्य काल में भूमिपतियों की शक्ति कम करने के लिए एक कानून (Statute of Livery) बनाया। जिसके द्वारा भूमि पतियों को अपनी निज की सेना रखने की मनाई कर दी गई। इससे पहले वे भूमिपति अपनी निज की सेना रखते थे। इन भूमि पतियों के लिए उसने "कोर्ट ऑफ स्टार चेम्बर" नामक (Court of Star Chamber) एक नवीन न्यायालय की स्थापना की। उसमें उच्च श्रेणी के जाव न्यायाधीश बैठते थे और भूमिपतियों का प्रभाव वहाँ बिलकुल नहीं पड़ता था।

इसके अलावा राजकोष को धन से भरा पूरा रखने के लिए भी हेनरी सप्तम ने कई तरीके अपनाये। उसने धनिक लोगों से राजकोष के लिए दान के रूप में सहायता लेने की एक प्रथा निकाली। इस प्रथा का नाम बेनेवोलेन्स (Benevolence) रखा गया। इस प्रकार की प्रणाली के द्वारा उसने अपने लिए और अपने उत्तराधिकारियों के लिए राजकोष में इतना धन संचय कर लिया कि पार्लियामेंट से कोई सहायता लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। इस प्रकार ट्यूडर शासन में पार्लमेंट अपने आप कमज़ोर हो गई।

हेनरी सप्तम ने अपनी परराष्ट्र नीति को बहुत उदार बनाया। इस नीति को सफल करने के लिए उसने राजवंश में अन्तर्राष्ट्रीय विवाह शुरू किये। उसने अपने पुत्र आर्थर का विवाह स्पेन की राजकुमारी कैथराइन से किया और आर्थर के मरने पर उसी कैथराइन का विवाह अपने छोटे पुत्र से कर दिया। इसी प्रकार स्कॉटलैण्ड से अपने सम्बन्ध सुधारने के लिए अपनी पुत्री मार्गरेट का विवाह स्कॉटलैण्ड के राजा जेम्स चतुर्थ से कर दिया। इसी विवाह के दूरवर्ती परिणाम हुए। इसके फलस्वरूप आगे जाकर इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के राज्य एक ही साम्राज्य के अंग हो गये।

हेनरी अष्टम

सन् १५०९ में हेनरी सप्तम की मृत्यु हो जाने पर उसका छोटा पुत्र हेनरी अष्टम के नाम से इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा। यह राजा बड़ा सुन्दर, शौकीन तबियत वाला और प्रजा का बड़ा प्रेम पात्र था। गद्दी पर बैठते ही इसने अपने पिता के कर्तव्यदार दो मंत्री एम्पसन और डडले को मरवा डाला और वूल्ज़े (Wolsey) नामक एक विद्वान पादरी को अपना प्रधान मंत्री बनाया। वूल्ज़े पहला प्रमुख राजनीतिज्ञ था जिसने यूरोप में शक्ति संतुलन (Balance of Power) के सिद्धान्त का सूत्र पात किया। उस समय यूरोप में स्पेन और फ्रांस दो देश बड़े शक्तिशाली थे। इन दोनों में से जिसके साथ इंग्लैण्ड हो जाता उसी का पलड़ा भारी हो जाता था। इसलिए दोनों ही देश इंग्लैण्ड की सहायता के इच्छुक रहते थे और इस प्रकार यूरोपीय राजनीति में इंग्लैण्ड का दबदबा बैठ गया।

इसी समय हेनरी अष्टम का प्रेम एनी बोलेन (Anne Boylen) नामक एक सुन्दर नव युवती से हो गया और उससे विवाह करने के लिए उसने पहली पत्नी कैथराइन को तलाक देना चाहा मगर इसके लिए पोप की आज्ञा लेना आवश्यक था। इसलिए वूल्ज़े को उसने पोप की आज्ञा लेने का भार सौंपा मगर वूल्ज़े के प्रयत्न के बाद

कूर पोप ने इस तरह का फतवा देने से इन्कार किया। वूल्जे की इस असफलता से नाराज होकर हेनरी ने वूल्जे को सब पदों से हटा दिया और उसे बुरी तरह तंग करने लगा। इसी झमेले में वूल्जे की मृत्यु हो गई।

तब हेनरी ने पार्लमेंट से कुछ कानून पास करवाकर पोप के अधिकार को ही इंग्लैंड में खतम करवा दिया और केंटरबरी के बड़े पादरी से व्यवस्था लेकर कैथेराइन का परित्याग कर एनी बोलन से विवाह कर लिया।

इसके पश्चात हेनरी ने इंगलैंड में ईसाई धर्म के मठों को (Monasteries)—जिनमें बहुत से ईसाई साधु और साध्वियाँ रहा करते थे मगर जो समय पाकर अनैतिकता में डूब गये थे—तोड़कर उनकी सम्पत्ति और जायदादों को जब्त कर लिया। इन मठों की रक्षा करने के लिए इंग्लैण्ड में एक बड़ा धार्मिक आन्दोलन भी उठा मगर उसे निर्दयता पूर्वक दबा दिया गया। वूल्जे के पश्चात् हेनरी ने टामस मोर और उसके बाद टॉमसक्रामवेल को अपना प्रधान मन्त्री बनाया मगर थोड़े-थोड़े समय बाद उनसे भी नाराज होकर उसने उनपर राजद्रोह का अपराध लगाकर मरवा डाला। सन १५४७ में हेनरी अष्टम की मृत्यु हो गई।

एडवर्ड षष्ठ

हेनरी अष्टम के पश्चात् उसकी तीसरी पत्नी जेन सारमर के गर्भ से उत्पन्न पुत्र एडवर्ड षष्ठ के नाम से गद्दी पर बैठा। उस समय उसकी उम्र केवल दस वर्ष की थी। इस लिए उसका मामा एडवर्ड सारमर, ड्यूक आफ समर सेट बनकर उसका संरक्षक हो गया।

ड्यूक आफ समरसेट ने धर्म सुधार आन्दोलन में विशेष रूप से भाग लिया। उसने इंग्लैंड के धर्म को पूर्णतः प्रोटेस्टेण्ट बनाने का प्रयत्न किया मगर इससे जनता में बड़ा रोष उत्पन्न हुआ। दो एक स्थानों पर विद्रोह भी हो गये। एक विद्रोह को शान्त करने में वह असमर्थ रहा, इससे राजा ने उसे अपने पद से हटा दिया और राजद्रोह का अभियोग लगाकर मरवा डाला।

एडवर्ड षष्ठ का सोलह वर्ष की अवस्था में क्षयरोग से देहान्त हो गया। इसके पश्चात् उसकी छोटी बहिन जैनग्रे इंग्लैंड की गद्दी पर बैठी मगर वह केवल नौ दिन राज्य कर पाई बाद में मेरी के सहायकों ने उसे गद्दी से हटा दिया। उसके बाद एडवर्ड षष्ठ की बड़ी बहन कैथराइन की पुत्री मेरी सिंहासन पर बैठी।

मेरी ट्यूडर

सन् १५५३ में एडवर्ड षष्ठ की मृत्यु के बाद रानी मेरी ट्यूडर गद्दी पर बैठी। रानी मेरी कट्टर रोमन कैथोलिक धर्म को मानने वाली थी और इग्लैंड के चर्च पर छाये हुए प्रोटेस्टेंट रंग को मिटाकर उसे विशुद्ध कैथोलिक बना देना चाहती थी। इसी कारण उसने स्पेन के सम्राट फिलिप द्वितीय से विवाह करने की इच्छा प्रकट की मगर इंगलैण्ड की जनता इस सम्बन्ध को बिलकुल पसन्द नहीं करती थी। इस कारण वॉट (Wyatt) के नेतृत्व में मेरी के इस निश्चय के खिलाफ एक विद्रोह भी हुआ पर उसे दबा दिया गया और रानी ने अपनी छोटी बहिन एलिजाबेथ को टॉवर में कैद कर दिया। पार्लमेंट को अन्त में मेरी के इस विवाह की स्वीकृति देनी पड़ी।

इसके बाद रानी मेरी ने अंग्रेजी चर्च को फिर से पोप के अधीन कर दिया सब प्रोटेस्टन्ट लोगों को कैथोलिक धर्म अंगीकार करने के लिए कहा और जिन लोगों ने कैथोलिक धर्म को अंगीकार नहीं किया उन्हें इंक्वीजीशन अदालत के द्वारा जीवित जलाये जाने की सजा दिलाई। करीब ३ प्रोटेस्टेंट लोग जीवित जलाये गये। इनमें रौलैण्ड टेलर (Rowland Taylor) लैटिमर (Latimer) रिडले (Ridly) और क्रन्मर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मेरी के इन कुकार्यों से जनता उससे बहुत नाराज हो गई। उधर स्पेन के राजा फिलिप ने कुछ समय बाद ही मेरी को तलाक दे दी। तीसरी बार फ्रांस की लड़ाई में उसकी हार हुई और कैले बन्दर उसके हाथ से निकल गया। इन सब घटनाओं के कारण उसका अन्तिम जीवन बड़ा दुःखपूर्ण रहा और सन् १५५८ में उसकी मृत्यु हो गई।

महाराना एलिजाबेथ (१५५८–१६०४)

ट्यूडर वंश की महारानी एलिजाबेथ के समय से इंग्लैण्ड का इतिहास एक नई करवट लेता है और नया जीवन प्राप्त करता है। वैसे ट्यूडर शासन के प्रारम्भ ही से शान्तिपूर्ण व्यवस्था, शिक्षा, साहित्य और विज्ञान की

उत्पत्ति, तथा धार्मिक क्षेत्र सत्ता के विरुद्ध विद्रोह का प्रारम्भ हो चुका था लोगों का दृष्टिकोण विशाल होने लग गया था मगर महारानी एलिजाबेथ के राज्यकाल में सर्वांगीण विकास का यह क्रम अपनी परिपक्व अवस्था में पहुँच गया। अब इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा केवल यूरोप में ही नहीं सारे विश्व में चमकने लग रही थी। यह वह समय था जब अंग्रेज जाति का भाग्य सूर्य, मन्द मन्द मुस्कुरा रहा था उसकी सफलता पर सफलता मिलती जा रही थी और यह सफलता एक मुखी नहीं सर्वतोमुखी थी।

रानी एलिजाबेथ ने ४५ वर्ष के दीर्घकाल तक इंग्लैण्ड के सिंहासन पर राज्य किया। महारानी एलिजाबेथ शासन की असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न थी। वह अत्यन्त बुद्धिमती, अनुशासनप्रिय, धर्मनिरपेक्ष गम्भीर और धीर एवं संकल्प शक्तिशाली तेजस्वी महिला थी। व्यक्तिगत स्वाधीनता और शौर्य की रक्षा के लिए उसने विवाह करके किसी मर्द के सामने झुकना पसन्द नहीं किया। इसका यह मतलब नहीं कि नारी सुलभ चंचलता या यौवन की मादकता से वह वंचित थी मगर इन सब चीजों की पूर्ति के लिए विवाह की आवश्यकता को उसने कभी महसूस नहीं किया अपनी माता एनी बोलेन की तरह उसे भी सज धज और शृंगार का बहुत शौक था।

महारानी एलिजाबेथ के शासन के काल में देश में अनुकूल और प्रतिकूल अनेक घटनायें घटीं, मगर इन संघर्षों की तीव्रता ने उसकी सूझ और बुद्धि को कभी कुंठित नहीं किया। कठिन से कठिन समय में समस्याओं को सुलझाने की उसमें असीम योग्यता थी। यही कारण है कि उस समय के एक शक्तिसम्पन्न राज्य स्पेन के विशाल जहाजी बेड़े आर्मेडा के आक्रमण को उसने इस कुशलता के साथ विफल किया कि सारा संसार चकित रह गया।

एलिजाबेथ के शासन काल की प्रधान घटनायें इस प्रकार हैं।

(१) समुद्र यात्रा के द्वारा संसार के नये नये देशों की खोज और उनमें अंग्रेज उपनिवेशों का प्रारम्भ।

(२) स्पेन और इंगलैण्ड का युद्ध आर्मेडा की पराजय।

(३) लोक शिक्षा की वृद्धि।

(४) साहित्य और कला की उन्नति।

समुद्री शक्ति का विकास

एलिजाबेथ शासन के पहले तक यूरोप में स्पेन और पुर्तगाल वाले ही समुद्र की बड़ी यात्रायें करते थे। पन्द्रहवीं सदी का प्रसिद्ध यात्री कोलम्बस स्पेन के खर्च से समुद्र यात्रा पर गया था वास्कोडिगामा पुर्तगाल का निवासी था। स्पेन और पुर्तगाल के झगड़े को मिटाने के लिए पोप ने अजोर्स समझौते के अनुसार अजोर्स के पूर्वीय देश को पुर्तगाल को तथा पश्चिमी हिस्से को स्पेन की तरफ बाँट दिया था। इस समझौते के अनुसार अमेरिका महाद्वीप स्पेन के हिस्से में तथा भारत, चीन जापान इत्यादि पूर्वी मुल्क पुर्तगाल के हिस्से में आये। इन दोनों शक्तियों के ऊपर कोई तीसरी शक्ति भी हावी हो सकती है इसका ध्यान उस समय किसी को नहीं था।

मगर एलिजाबेथ ने अपनी समुद्री शक्ति बढ़ाने और सामुद्रिक उपनिवेशों की खोज में बड़ी दिलचस्पी ली और इस कार्य में उसे वाल्टर रैले हाकिन्स और ड्रेक जैसे सहयोगी भी मिल गये। वाल्टर रैले ने अमेरिका में पहला अंग्रेजी उपनिवेश स्थापित किया और उसका नाम "वर्जीनिया" रक्खा। ड्रेक पहला अंग्रेज था जिसने पैसिफिक महासागर को पार किया और कठिन समुद्रयात्रा में तीन वर्ष तक चक्कर लगाता रहा और फिर बहुत सा धन लेकर इंग्लैण्ड लौट आया। सारे भूमण्डल की समुद्र यात्रा करने के उपलक्ष में उसे रानी ने नाईट (knight) की उपाधि प्रदान की।

स्पेन और इंग्लैण्ड का युद्ध—आर्मेडा की पराजय

सन् १५८० में स्पेन और पुर्तगाल दोनों के सिंहासन एक ही राजा के अधिकार में आ जाने से राजा फिलिप द्वितीय की शक्ति बहुत बढ़ गई। फिलिप ने अपने शक्ति मद में आकर इंग्लैण्ड के कैथोलिक लोगों को रानी एलिजाबेथ के विरुद्ध भड़काना प्रारम्भ किया। एलिजाबेथ ने भी इसका बदला लेने के लिए स्पेन के विरुद्ध लड़ने वाले नीदरलैण्ड के प्रोटेस्टेण्टों के स्वतन्त्र प्रजातन्त्र आन्दोलन को सहायता पहुँचाई। उसने अपने दरबारी लार्ड अर्ल आफ लीसेस्टर को नीदरलैण्ड वासियों की सहायता पर भेजा।

दूसरी ओर रानी एलिजाबेथ ने समुद्र में लूटमार करने वाले वाल्टर रैले, ड्रेक, हाकिन्स इत्यादि साहसिक लोगों को स्पेन के जहाजों को लूट लेने के लिए उत्साहित किया। इन समुद्री लुटेरों ने स्पेन के जहाजों को लूटना अपना पेशा बना लिया।

इससे क्रुद्ध होकर स्पेन के राजा फिलिप ने आर्मेडा नामक एक विशाल जहाजी बेड़े के द्वारा इंग्लैण्ड पर आक्रमण कर दिया (विशेष वर्णन "आर्मेडा" शब्द में पहले भाग के अन्दर देखें) मगर लार्ड हावर्ड नामक एक अमीर के नेतृत्व में वाल्टररैले, ड्रेक और हाकिन्स के साहस पूर्ण मुकाबिले से और समुद्री हवा के अंग्रेजों के पक्ष में बहने से अंग्रेजी जल सेना ने आर्मेडा को भयङ्कर पराजय दी। बहुत से जहाजों में आग लगा दी और बहुत से भागते हुए डूब गए। बहुत ही थोड़े जहाज स्पेन पहुँच सके।

इस भारी विजय के उपलक्ष में इंग्लैण्ड में भारी जलसा मनाया गया। इस विजय से सारे यूरोप में इंग्लैण्ड की जलशक्ति का दब दबा बैठ गया और स्पेन का घमण्ड चूर-चूर हो गया।

साहित्य और कला की उन्नति

महारानी एलिजाबेथ के शासन काल में इंग्लैण्ड के व्यापार की बहुत वृद्धि हुई। देश में धन की प्रचुरता होने से लोगों का रहन-सहन भी ऊँचा होने लगा। लण्डन शहर में और देश के दूसरे शहरों में बड़ी-बड़ी भव्य इमारतों का निर्माण होने लगा। जिससे देश की रौनक बहुत बढ़ गई।

देश में साहित्य और कला का भी द्रुतगति से विकास हुआ। (विशेष वर्णन अंग्रेजी साहित्य" नाम के साथ पहले भाग में देखें) विश्व का महान् प्रतिभाशाली नाटककार "शेक्सपीयर" एलिजाबेथ युग की देन है। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड में रंगमंच का रचयिता थॉमसकीड, प्रसिद्ध नाटककार क्रिस्टोफर मार्लो प्रसिद्ध गद्यलेखक फ्रांसिस बेकन कविता जगत का महान् कवि एडमण्ड स्पेन्सर भी इसी युग में पैदा हुए। जिन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एक नवीन चेतना का संचार कर दिया।

सन् १६ ३ में महारानी एलिजाबेथ का देहान्त हुआ और उसके साथ ही ट्यूडरवंश की सत्ता इंगलैण्ड में समाप्त हो गई। ट्यूडर राज वंश में तीन-चार शासक बड़े प्रभावशाली और प्रजाप्रिय हुए। यद्यपि वे पूर्णरूप से स्वेच्छाचारी थे और पार्लमेंट को इन राजाओं ने अपनी चतुराई से अलमस्त शक्तिहीन कर दिया था मगर बुद्धिमानी पूर्ण शासन और राष्ट्र की शक्ति और विकास में पूरी दिल चस्पी लेने के कारण जनता के ये बड़े प्रियपात्र हो गये थे। इंगलैण्ड के पुनर्संगठन और उत्थान में इस राजवंश का बड़ा सहयोग रहा।

स्टुअर्ट राजवंश

एलिजाबेथ की मृत्यु के पश्चात् हेनरी प्रथम की बड़ी बहन मार्गरेट का पपौत्र स्काटलैण्ड का स्टुअर्ट राजा जेम्स इंगलैण्ड की गद्दी पर भी "जेम्स प्रथम" के नाम से बैठा। इस राजा के इंगलैण्ड की गद्दी पर आ जाने से इंगलैण्ड और स्काटलैण्ड के सिंहासन मिलकर एक हो गये और इन दोनों देशों के बीच चलने वाली परम्परागत शत्रुता भी समाप्त हो गई। इन दोनों देशों के झण्डे भी मिला दिये गये और सम्मिलित झण्डे का नाम भी यूनियन जैक रक्खा गया। तब से आज तक ये दोनों देश एक ही शासन के अधीन रह रहे हैं और स्काटलैण्ड इंगलैण्ड का एक भाग हो गया है।

स्टुअर्ट राजवंश के समय में भी इंगलैण्ड के इतिहास में बड़ी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। ऐसी घटनाएँ जिन्होंने इंगलैण्ड के इतिहास की धारा बदलदी।

इन घटनाओं में राजा और पार्लमेंट का झगड़ा पार्लमेंट द्वारा चार्ल्स प्रथम को मृत्यु दण्ड देना क्रामवेल का उदय, चार्ल्स की मृत्यु के पश्चात प्रजातन्त्र के नाम पर क्रामवेल द्वारा सैनिक तन्त्र की स्थापना, क्रामवेल के पश्चात् प्रजातन्त्र की पूर्ण असफलता और उसके पश्चात् फिर से राजा की स्थापना आदि का बड़ा महत्व रखती है।

राजा जेम्स प्रथम

राजा जेम्स प्रथम का राज काल सन् १६ ३ से १६२५ तक है। जिस समय जेम्स गद्दी पर बैठा उस समय यूरोप में रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट रियासतों के बीच एक तीस वर्षीय युद्ध चल रहा था। इस युद्ध में राजा

जेम्स का दामाद बोहीमिया का राजा फ्रेडरिक भी शामिल था। आस्ट्रिया की सेना ने राजा फ्रेडरिक को बुरी तरह हरा दिया। इंगलैण्ड की प्रोटेस्टेण्ट जनता इससे बड़ी दुःखी हुई और उसने फ्रेडरिक की मदद करने के लिए राजा से प्रार्थना की, मगर जेम्स ने फ्रेडरिक की कोई मदद नहीं की। उसकी परराष्ट्र नीति दोनों दलों से मित्रता करके यूरोप में शान्ति स्थापना करने की थी। इस उद्देश्य की सफलता के लिए उसने अपने लड़के चार्ल्स का विवाह स्पेन की कैथोलिक राजकन्या इन्फेण्टा से करना चाहा। मगर स्पेन वाले अपनी कन्या प्रोटेस्टेण्टों को देना पसन्द नहीं करते थे उन्होंने जेम्स की माँग को अपमान पूर्वक ठुकरा दिया। इससे क्रुद्ध होकर उसने फ्रेडरिक की मदद के लिए सेना भेजी मगर वह सेना कुछ भी नहीं कर सकी। इसी बीच जेम्स प्रथम की मृत्यु हो गई।

चार्ल्स प्रथम

चार्ल्स प्रथम का राज्य काल सन् १६२५ से १६४९ तक है। यह अपने पिता जेम्स की मृत्यु के पश्चात् इंगलैण्ड की राजगद्दी पर बैठा। इसका विवाह फ्रांस के राजा की बहन हेनरीटा मेरिया (Henrietta Maria) से हुआ। यह रानी कट्टर कैथोलिक थी। इसने अपने प्रभाव से चार्ल्स प्रथम का झुकाव भी कैथोलिक मत की ओर कर दिया था। यह भी एक कारण था जिसकी वजह से चार्ल्स इंगलैण्ड की प्रोटेस्टेण्ट जनता में लोकप्रिय न हो सका।

चार्ल्स प्रथम के राज्यकाल की सबसे मशहूर घटना जिसने इंगलैण्ड के इतिहास में नवीन युग का प्रारम्भ किया राजा और पार्लमेंट के बीच का तूफानी संघर्ष है। राजा चार्ल्स ने शासकीय खर्च चलाने के लिए धन की स्वीकृति देने के लिए दो बार पार्लमेंट की बैठकें बुलाईं, मगर पार्लमेंट ने धन देने से इन्कार कर दिया।

जब तीसरी बार सन् १६२८ में उसने पार्लमेंट की बैठक बुलाई उस समय पार्लमेंट की लोकसभा ने अपने नेता इलियट (Elliot) नामक व्यक्ति के नेतृत्व में एक अत्यन्त महत्व का राजनैतिक प्रस्ताव के रूप में पेश किया जो इंगलैण्ड के इतिहास में "मैग्नाचार्टा" के पश्चात् दूसरे स्वतन्त्रता पत्र के रूप में :—

पिटीशन ऑफ राइट
(Petition of Right)

के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रस्ताव की मुख्य धाराएँ इस प्रकार थीं।

१—बिना पार्लमेंट की स्वीकृति के राजा देश पर किसी प्रकार का कर नहीं लगा सकता और न ऋण या भेंट के लिए किसी को बाध्य कर सकता है।

२—न्यायालय में अपराध का नियमानुसार निर्णय हुए बिना राजा किसी को भी जेल नहीं भेज सकता।

३—गृहस्थ लोगों के यहाँ उनकी मरजी के बिना सैनिकों को नहीं ठहराया जा सकता।

४—शान्ति के समय किसी भी नागरिक पर फौजी अदालत में अभियोग नहीं चलाया जा सकता।

राजा को पार्लमेंट के दबाव से मजबूरन इस मसौदे पर दस्तखत करना पड़े और उसी समय से इस मसौदे की सब धाराएँ राज नियम के रूप में बन गईं।

मगर इसके बाद चार्ल्स ने ग्यारह वर्ष तक पार्लमेंट का अधिवेशन नहीं बुलाया और मनमाने ढंग से शासन किया। इस निरंकुश शासन में उसे टामस वेण्टवर्थ (Thomas Wentworth) नामक व्यक्ति से बड़ी मदद मिली।

मे-फ्लावर जहाज

इन्हीं दिनों चार्ल्स ने कैण्टरबरी के प्रधान पादरी लॉड (Laud) की सलाह से प्यूरिटन नामक धर्म सुधारक लोगों पर धार्मिक न्यायालय के द्वारा बड़े बड़े अत्याचार किये। इसी समय में बहुसंख्यक प्यूरिटन लोग इन अत्याचारों से तंग आकर इंग्लैण्ड छोड़कर मे-फ्लावर जहाज के द्वारा अमेरिका के प्रशान्त प्रदेश में चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित किये। इसका पूरा वर्णन 'अमरीका' नाम के अन्तर्गत प्रथम भाग में देखें।

लॉग पार्लमेंट (Long parliment)

सन् १६४ में धन की कमी पड़ जाने से चार्ल्स प्रथम ने पार्लमेंट का अधिवेशन बुलाया। इस अधिवेशन में लोकसभा का नेता पिम (Pym) नामक व्यक्ति था। इस पार्लमेंट ने सबसे पहले "स्टैफर्ड" और "लॉड" नामक

राजमंत्रियों पर देशद्रोह का अभियोग लगाकर मृत्यु दण्ड दिया। इंगलैण्ड में स्थापित धार्मिक न्यायालय (High commission court) और हेनरी सप्तम के द्वारा स्थापित स्टार चेम्बर (Star chamber) को समाप्त कर दिया।

इसी अधिवेशन में पिम और हैम्पडन के नेतृत्व में राजा के विरुद्ध महान विरोध पत्र (The grand remonstrance) पेश किया गया, इसमें चार्ल्स के समस्त अत्याचारों का उल्लेख किया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि लोकसभा के विश्वासपात्र व्यक्ति ही राजमंत्री बनाये जाय।

इन सारी बातों के परिणामस्वरूप तथा धर्म सुधार के प्रश्न पर पार्लमेंट में दो दल हो जाने के कारण राजा और पार्लमेंट के बीच खुली लड़ाई चल निकली। ह्वाईवर्य पार्टी ने राजा का पक्ष लिया और प्यूरीटिन दलवालों ने पार्लमेंट के पक्ष में राजा से युद्ध किया।

आलिवर क्रामवेल

इसी समय इंग्लैण्ड के राजनैतिक मंच पर आलिवर क्रामवेल अवतीर्ण होता है। वह बड़ा साहसी और बहादुर व्यक्ति था। इसके सैनिक आयरन् साइड्स या लौह पुरुष कहलाते थे। इसने एक नवीन सेना न्यू मॉडल आर्मी (The New model Army) के नाम से संगठित की।

राजा चार्ल्स को मृत्यु दण्ड

इस नई सेना ने राजा को पहली बार नेजबाई नामक स्थान पर और दूसरी बार स्काटलैण्ड वालों के साथ पराजय कर पकड़ लिया और उस पर देशद्रोह के अपराध में अभियोग चलाया। पार्लमेंट के जो सदस्य उसे सजा देने के पक्ष में थे सिर्फ उन्हीं को सेना ने पार्लमेंट भवन में आने दिया। तुरन्त ही सिर्फ ८ मेम्बरों की इस रम्प (Rump) पार्लमेंट ने एक न्याय समिति बनाकर ब्रेडशा को उसका प्रधान बनाया। इस समिति ने राजा को मौत की सजा सुनाई और १ जनवरी १६४९ को अपने ही राजभवन के सामने इंग्लैण्ड के इस प्रतापी राजा को मौत की सजा दी गयी।

राजा की मृत्यु के पश्चात् स्कॉटलैण्ड वालों ने तथा आयरलैण्ड वालों ने चार्ल्स प्रथम के पुत्र चार्ल्स द्वितीय को अपना राजा मानकर प्रजातन्त्र के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। तब क्रामवेल ने एक मजबूत सेना लेकर आयरलैण्ड और स्कॉटलैण्ड को अलग-अलग लड़ाइयों में पराजित किया।

मगर इसके बाद रम्प पार्लमेंट शासन करने में असफल रही और जनता में उसकी बहुत बदनामी हो गई। तब क्रामवेल ने सन् १६५३ के अप्रैल मास में कुछ सैनिकों के साथ सभा भवन में जाकर सब सदस्यों को वहाँ से निकाल दिया।

अभी तक इंग्लैण्ड में प्रजातन्त्र की भावनाएँ पूरी तरह परिपक्व नहीं हो पाई थीं। यही कारण था जिससे पार्लमेंट क्रामवेल के हाथ की कठपुतली हो गई। प्रजातन्त्र के संरक्षक के रूप में वह एक शक्तिशाली डिक्टेटर हो गया और पार्लमेंट के साथ उसका भी उसी प्रकार झगड़ा चलने लगा जिस प्रकार स्टुअर्ट राजाओं का पार्लमेंट के साथ चला था। जहाँ भी पार्लमेंट के साथ उसका मतभेद होता था वह पार्लमेंट को दबा देता था। सितम्बर सन् १६५४ में पार्लमेंट का एक चुनाव कराया गया मगर उसके मेम्बरों का निर्वाचन क्रामवेल को पसन्द नहीं आया, इस लिए चार महीने बाद ही उस पार्लमेंट को उसने भंग कर दिया गया। फिर १६५६ में एक और पार्लमेंट हुई क्रामवेल ने उसके भी १ सदस्यों को निकाल दिया।

अन्त में पार्लमेंट का एक ऐसा अधिवेशन हुआ जिसके सब सदस्य क्रामवेल के समर्थक थे। इस अधिवेशन ने दी हम्बल एडवाइस एण्ड पिटीशन (The Humble Advice and Petetion) या नम्र सलाह रूप में एक नई शासन प्रणाली का मसविदा तैयार कर उसे क्रामवेल के सामने पेश किया।

इस मसविदे में क्रामवेल को राजा बनाने और अपना उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार दिया गया और दूसरे प्रस्ताव में लोकसभा के साथ एक लार्ड सभा भी बनाने का अनुरोध किया गया था, मगर अपने विरोधियों की संख्या अधिक देख क्रामवेल ने राजा बनने से इन्कार कर दिया। मगर शासन का कार्य उसने राजा से भी अधिक शक्ति सम्पन्न होकर किया।

क्रामवेल ने इंग्लैण्ड की शक्ति को बढ़ाने और विदेशों में उसका गौरव बढ़ाने का बहुत प्रयत्न किया। उसने हालैण्ड के साथ और स्पेन के साथ युद्ध में विजय प्राप्त कर इंग्लैण्ड की जल शक्ति को बहुत बढ़ाया। जिससे इंग्लैण्ड का विदेशी व्यापार बहुत बढ़ा। सन् १६५७ में उसने फ्रांस के साथ सन्धि कर ली। स्पेन की लड़ाई में विजय होने से स्पेन का जमैका टापू इंग्लैण्ड मिल गया और सन् १६५८ में डंकर्क भी इंग्लैण्ड को मिल गया इस प्रकार उसकी विदेशी नीति बहुत सफल रही।

सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न निरंकुश डिक्टेटर होने पर भी क्रामवेल का नाम इंग्लैण्ड के इतिहास में अमर है। क्रामवेल की मृत्यु सन् १६५८ में हुई।

फिर भी जिस सैनिक शासन की स्थापना उसने इंग्लैण्ड में कर रक्खी थी उससे तो वहाँ की जनता का विरोध ही था वह अनुभव करने लगी थी कि सैनिक शासन से तो राज शासन ही बेहतर है। इन भावनाओं का परिणाम यह हुआ कि क्रामवेल के मरते ही उसका बनाया हुआ सारा ढाँचा बिखर गया और इंग्लैण्ड की जनता ने मस्त होकर सन् १६६० में नई पार्लमेंट बना कर प्रथम चार्ल्स के पुत्र को द्वितीय चार्ल्स के नाम से इंग्लैण्ड के सिंहासन पर बैठा दिया। इस प्रकार ग्यारह वर्ष के पश्चात् फिर राजतन्त्र का पुनरुत्थान हुआ।

राजतंत्र का पुनः प्रारम्भ

राजतन्त्र की पुनः स्थापना होते ही गत ग्यारह वर्षों की सारी कारवाई रद्द कर दी गई। तीन पल्टनें रखकर शेष सारी सेना विसर्जित कर दी गई जिस न्यायालय ने चार्ल्स प्रथम का शिरच्छेद करने का आदेश दिया था उसके सब सदस्यों को प्राण-दण्ड दिया गया। सबसे घृणित बात यह हुई कि सेनापति ब्रेडशा और क्रामवेल की लाशों को कबर से निकाल कर फाँसी पर लटकाया गया। मानवीय प्रतिहिंसा के इस घृणित और पतित रूप का यह अत्यन्त बीभत्स उदाहरण था।

नई पार्लमेंट में केवल राजसत्ता के कैवेलियर लोग ही लिये गये। चार्ल्स द्वितीय के समय की प्रधान घटनाओं में हालैण्ड के साथ इंग्लैण्ड का युद्ध महत्वपूर्ण है। इस युद्ध में इंग्लैण्ड को अमेरिका में हालैण्ड का उपनिवेश न्यू एम्सटरडम मिला जो बाद में न्यूयार्क के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

चार्ल्स द्वितीय के शासन की दूसरी महत्व पूर्ण घटना इंग्लैण्ड की फ्रांस के साथ डोवर की गुप्त सन्धि थी। जिसके अनुसार हालैण्ड को जीतकर उसे फ्रांस में मिला लेने की योजना इन लोगों ने बनाई थी।

डोवर की इस सन्धि के परिणाम स्वरूप फ्रांस ने हालैण्ड के नगरों पर आक्रमण कर दिया। जिससे तीसरा डचयुद्ध प्रारम्भ हो गया। मगर इस लड़ाई में उधर तो डच लोगों ने अपूर्व वीरता का प्रदर्शन किया इधर इंग्लैण्ड की जनता ने राजा का साथ नहीं दिया। जिसके फलस्वरूप चार्ल्स द्वितीय को डच लोगों से सन्धि करनी पड़ी।

चार्ल्स की कामुकता विलास लोलुपता और चतुर मुत्सद्दी बुद्धि से इंग्लैण्ड वाले बड़े असन्तुष्ट थे। उसका दरबार व्यभिचार के लिए सारे यूरोप में प्रसिद्ध था पर साहित्य और कला का वह बड़ा प्रेमी था। वह अस्थिर बुद्धि और दुर्बल हृदय का शासक था। भीतर से पक्का कैथोलिक होते हुए भी जनता के डर से वह अपने को कैथोलिक घोषित नहीं करता था। मरते समय ही उसने अपने आपको कैथोलिक घोषित करने का साहस किया।

चार्ल्स द्वितीय के समय में ही इंगलैण्ड की पार्लमेंट ने सन् १६७९ में हैबियस कार्पस ऐक्ट नामक प्रसिद्ध ऐक्ट को पास किया। इस ऐक्ट की गणना भी इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता पत्रों में होती है।

चार्ल्स द्वितीय के समय में इंग्लैण्ड पर दो भारी प्राकृतिक प्रकोप हुए। सन् १६६५ में इंग्लैण्ड पर प्लेग की महामारी का भारी प्रकोप हुआ और लाखों आदमी इसके शिकार हो गये। इसके साल भर बाद लन्दन नगर में एक भारी आग लगी जिसके प्रकोप से ४ रात्रियों ... और १३ ... घर जल कर भस्म हो गये।

इसी राजा के समय में पार्लमेंट के अन्तर्गत ह्विग और टोरी नामक दो दल बन गये जो तब से आज तक बराबर चले आते हैं।

चार्ल्स द्वितीय की मृत्यु सन् १६८५ में हो गई।

जेम्स-द्वितीय

चार्ल्स द्वितीय के पश्चात् उसका छोटा भाई ड्यूक आफ-यार्क द्वितीय जेम्स के नाम से गद्दी पर बैठा। इसके

विरुद्ध चार्ल्स द्वितीय के दोगले पुत्र मौनमथ ने विद्रोह किया मगर वह अत्यन्त निष्ठुरता के साथ दबा दिया गया।

जेम्स द्वितीय का शासन काल भी रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेन्ट लोगों के संघर्ष से भरा हुआ रहा। राजा कैथोलिक सम्प्रदाय का था और उसने प्रोटेस्टेन्ट लोगों के साथ हर प्रकार के अत्याचार करना आरम्भ किया। अन्त में प्रजा ने दुखी होकर उसके दामाद विलियम आरेंज को देश और धर्म की रक्षा के लिए आमंत्रित किया विलियम थोड़ी सी सेना के साथ इग्लैंड पहुँचा। उस समय जेम्स द्वितीय के खिलाफ सारे इंगलैंड का वातावरण भयंकर हो रहा था। यह देख कर जेम्स राजगद्दी छोड़ कर फ्रान्स भाग गया और इंग्लैंड की राजगद्दी पर वहाँ की जनता ने बड़ी खुशी के साथ विलियम और उसकी पत्नी मेरी का राज्याभिषेक किया।

बिल ऑफ राईट्स
(Bill of Rights)

इंग्लैंड के इतिहास में यह अद्भुत परिवर्तन गौरवपूर्ण राजक्रान्ति (The Glorious Revolution) के नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें सारा राज्य परिवर्तन हो गया मगर खून की एक बूंद भी न बही।

इसी समय इंग्लैंड की पार्लमेंट ने बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights) को कानून के रूप में स्वीकार किया। जो अंग्रेजी शासन के इतिहास में तीसरे स्वतंत्रता पत्र (Third Great Charter of Liberty) के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें भी राजा के अधिकारों को मर्यादित और पार्लमेंट के अधिकारों को विस्तृत किया गया है।

इस गौरवपूर्ण राज्यक्रान्ति से इंग्लैंड के इतिहास में राजा और पार्लमेंट के बीच चलने वाले दीर्घकालीन झगड़े का हमेशा के लिए अन्त हो गया जो स्टुअर्ट राजाओं के समय में बराबर चलता रहा था।

राजा विलियम और रानी मेरी

विलियम को राजगद्दी मिलते ही स्कॉटलैंड और आयरलैण्ड में उसके विरुद्ध तथा जेम्स द्वितीय के पक्ष में विद्रोह हुए मगर विलियम की सेना ने स्कॉटलैण्ड की बागी सेना को किलेक्रेन्की के युद्ध में और आयरलैंड की सेना को बोयन में बुरी तरह पराजित कर दिया।

विलियम एक साहसी वीर तथा राजनीतिज्ञ व्यक्ति था। उसने यूरोप में शक्ति सन्तुलन बनाये रखने, फ्रान्स की शक्ति का पलड़ा भारी न होने देने का पूरा प्रयत्न किया। सन् १६८९ से १६९५ तक उसने नीदर लैंड्स के लिए फ्रांस वालों से और सन् १७०२ से १७११ तक स्पेन के उत्तराधिकार के लिए युद्ध किया। स्पेन का राजा चार्ल्स द्वितीय जब मृत्यु के समीप पहुँच गया तब उसने अपनी वसीयत में अपना उत्तराधिकारी अपना भतीजा फ्रान्स के राजा चौदहवें लुई के पोते फिलिप को बना दिया।

इस घटना से सारे यौरप के राजनैतिक क्षेत्र में एक भूकम्प आ गया। चौदहवें लुई का फ्रेंच साम्राज्य वैसे ही बहुत बड़ा था और यदि उसमें स्पेन का साम्राज्य भी मिल जाता तो सारे यूरोप का शक्ति संतुलन फ्रान्स के हाथ में चला जाता।

विलियम ने इस योजना को विफल करने के लिए यूरोप के कई राज्यों का एक संघ बनाया। इस संघ का उद्देश्य यह था कि स्पेनिश साम्राज्य में कुछ बँटवारा करके आस्ट्रिया के राजकुमार चार्ल्स को स्पेन का सिंहासन दिलाया जाय क्योंकि यह राजकुमार भी फिलिप की तरह स्पेन का भानजा था।

इस प्रकार स्पेन के उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हुआ मगर इसी बीच विलियम की मृत्यु हो गई और उसकी छोटी साली एन गद्दी पर बैठी।

स्पेन की लड़ाई में इंग्लैंड की सेना का सेनापति ड्यूक ऑफ मार्लबरो बड़ा कुशल सेनापति था। ब्लेन हेम (Blen heim) के प्रसिद्ध युद्ध में फ्रेंच सेना को हराकर उसने भारी विजय प्राप्त की और आस्ट्रिया को एक भारी संकट में पड़ने से उसने बचा लिया। स्पेन की लड़ाई में अभी तक फ्रांसीसी सेना को इतनी बुरी तरह से किसी ने पराजित नहीं किया था।

इन्हीं दिनों अंग्रेजों की जल सेना ने रूक (Rook) और शोवल (Schovell) के नेतृत्व में भूमध्य समुद्र में "जिब्राल्टर" के प्रसिद्ध मुहाने पर अधिकार कर लिया और यह बन्दरगाह सदा के लिए अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

यूट्रेक्ट की संधि

इसी समय सन् १७११ में इंग्लैण्ड की पार्लमेंट में व्हिग दल का मंत्रिमण्डल समाप्त होकर टोरी दल का मंत्रिमण्डल स्थापित हुआ। यह दल शुरू से ही यूरोपीय लड़ाइयों में शामिल होने का विरोधी था। अतः सत्ता पर आते ही इस दल ने मार्लबरो को पदच्युत करके सन् १७१३ में यूट्रेक्ट की सन्धि कर ली। इस सन्धि में इंग्लैण्ड को जिब्राल्टर तथा अमेरिका में नोवास्कोशिया और न्यूफाउण्डलैण्ड नामक उपनिवेश मिल गये। स्पेनिश साम्राज्य का इटली वाला भाग तथा नीदरलैण्ड आस्ट्रिया के सम्राट चार्ल्स को दे दिये गये और स्पेन तथा स्पेन के अमेरिकन उपनिवेशों का राजा "फिलिप" को मान लिया गया, मगर यह निर्णय कर लिया गया कि स्पेन तथा फ्रांस को संयुक्त कभी न किया जाय। जिससे यूरोप का शक्ति संतुलन कायम रहे।

रानी एन के राज्यकाल की दूसरी महत्वपूर्ण घटना स्कॉटलैण्ड और इंग्लैण्ड की पार्लमेंट का संयुक्त होना है। जेम्स प्रथम के समय में स्कॉटलैण्ड और इंग्लैण्ड के राज सिंहासन तो एक हो गये थे मगर अभी तक दोनों देशों की पार्लमेंट अलग अलग थीं। सन् १७०७ में दोनों देशों की पार्लमेंट को मिलाकर एक कर दिया गया। इस नवीन पार्लमेंट की लार्ड सभा में स्कॉटलैण्ड के १६ प्रतिनिधि और लोकसभा में ४५ प्रतिनिधि निश्चित किये गये और सारे संयुक्त राज्य का नाम 'ग्रेट ब्रिटेन' रक्खा गया।

सन् १७१४ में रानीएन की मृत्यु के साथ ही इंग्लैण्ड में स्टुअर्ट राजवंश का शासन समाप्त हुआ और इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर हनोवर राजवंश का अधिकार हुआ।

स्टुअर्ट वंश में इंग्लैण्ड के उपनिवेशों का अमेरिका में स्थापित होना प्रारम्भ हुआ। भारतवर्ष में इन लोगों की व्यापारिक कोठियाँ बनना प्रारम्भ हुई। चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगाल की राजकुमारी से विवाह करने के उपलक्ष में बम्बई का बन्दरगाह दहेज के रूप में मिला। इसी शासन में इंग्लैण्ड की जलशक्ति का एक संगठित रूप बन कर उसका विस्तार हुआ। कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में विजय पाने से इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठा बढ़ी। जनतंत्र की मान्यताओं का विकास हुआ। जिसके फलस्वरूप पार्लमेंट की शक्ति बढ़ गई। साहित्य और विज्ञान में भी काफी उन्नति हुई।

हनोवर राजवंश—जार्ज प्रथम और द्वितीय

रानी ऐन की मृत्यु के पश्चात् प्रथम जेम्स की नातिनी सोफिया का पुत्र जार्ज इंगलैण्ड की राजगद्दी पर बिठाया गया।

जार्ज का पिता अर्नेस्ट आगस्टस (Ernest Augustus) जर्मनी के हनोवर प्रान्त का इलेक्टर था। इसी से यह वंश हनोवर राजवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जिस समय जार्ज गद्दी पर बैठा उस समय उसकी अवस्था ५४ वर्ष की थी। जार्ज जर्मन सभ्यता के वातावरण में पला था। वह अंग्रेजी भाषा नहीं जानता था इसलिए न अंग्रेजी भाषा से उसे दिलचस्पी थी न अंग्रेज लोगों से उसे दिलचस्पी थी। इसके शासनकाल की प्रधान घटना साउथ सी कम्पनी का दिवालिया होना था। यह कम्पनी अमरीका में इंगलैण्ड का व्यवसाय बढ़ाने के लिए स्थापित हुई थी मगर अन्त में कुछ लोगों की बेईमानी से दिवालिया हो गई और लोगों की काफी पौंड की सम्पत्ति उस कम्पनी में डूब गई। इस समय इंगलैण्ड का प्रधान मन्त्री राबर्ट वालपोल था। उसने बड़ी चतुराई से कम्पनी के संचालकों को गिरफ्तार कर कम्पनी की करीब बीस लाख पौंड की जायदाद लेकर लोगों में बाँट दी। इस काम से वालपोल का उस समय बड़ा नाम हुआ।

वालपोल इंग्लैण्ड का पहला प्रधान मंत्री था। अभी तक राजा लोग ही मंत्रिमण्डल के प्रधान होते थे मगर जेम्स प्रथम ने प्रधान मंत्री का पद वालपोल को दे दिया। वालपोल की खास नीति यह थी कि विदेशों से युद्ध न हो देश में शान्ति रहे और व्यापार तथा उद्योग का विकास हो। यह पूरे बीस वर्षों तक इंग्लैण्ड का प्रधान मंत्री रहा। उसके समय में इंग्लैण्ड लड़ाई झगड़ों से प्रायः मुक्त रहा और उसके व्यापार वाणिज्य की बहुत तरक्की हुई मगर अन्त में एक ऐसा अवसर आया जब इंग्लैण्ड की जनता स्पेन के विरुद्ध बहुत उत्तेजित हो गई और उसने स्पेन से युद्ध छेड़ दिया। इसी युद्धकाल (सन् १७४२) में वालपोल के मन्त्रिमण्डल का पतन हो गया।

विलियम पिट

वालपोल मंत्रिमंडल के पतन के पश्चात् जार्ज द्वितीय के समय में इंग्लैण्ड के राजनैतिक मञ्च पर "विलियम पिट" नामक एक और प्रसिद्ध पुरुष का आविर्भाव हुआ। यह वह समय था जब कि अमेरिका, भारतवर्ष इत्यादि दूरवर्ती प्रदेशों में अपने उपनिवेश बढ़ाने के लिए इंगलैण्ड और फ्रान्स में बड़ा संघर्ष हो रहा था। यह संघर्ष लगातार सात वर्षों तक (Seven Year War) चलता रहा। इस युद्ध में अंग्रेजों को बड़े बड़े संकटों का सामना करना पड़ा। इस संकट काल में विलियम पिट ने अपने साहस और राजनैतिक योग्यता से इंगलैण्ड की रक्षा की।

इस युद्ध के सञ्चालन में विलियम पिट ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। उसने प्रशिया के राजा फ्रेडरिक को सेना और धन की सहायता देकर फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध में फँसा दिया, जिससे फ्रांस इसी युद्ध में लगा रहे और उपनिवेशों में अधिक सेना न भेज सके। वह कहा करता था कि 'हम कैनेडा को जर्मनी में एल्ब नदी के तट पर जीतेंगे। अन्त में किसी प्रकार कैनेडा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया और सन् १७६३ में पेरिस की मशहूर सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार कैनेडा और उत्तरी अमेरिका के तमाम फ्रान्सीसी उपनिवेशों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। स्पेन का उपनिवेश फ्लोरिडा भी अंग्रेजों के अधिकार में चला गया और सन् १७५७ में लार्ड क्लाइव के नेतृत्व में प्लासी की लड़ाई जीत लेने के कारण भारतवर्ष में भी अंग्रेजी राज्य की धाक जम गई।

यह सारा समय अंग्रेज जाति के महान् सौभाग्य का और फ्रांस तथा स्पेन के लिए महान् दुर्भाग्य का था।

सन् १७६० में जार्ज द्वितीय की मृत्यु हो गई और उसकी जगह उसका पोता जार्ज तृतीय राजगद्दी पर बैठा।

जार्ज तृतीय

जार्ज तृतीय ने पूरे ६० वर्ष तक राज्य किया। इसके शासनकाल में इंगलैण्ड के इतिहास में बड़ी बड़ी घटनाएँ हुईं। इन घटनाओं में निम्नलिखित घटनाएँ प्रमुख हैं।

(१) अमेरिकन स्वतन्त्रता का युद्ध (२) फ्रान्स की राज्यक्रान्ति और (३) नैपोलियन से युद्ध।

अमेरिकन स्वतन्त्रता का युद्ध

जार्ज तृतीय ने ह्विग पार्टी के मन्त्रिमण्डल को हटाकर टोरी दल का मन्त्रिमण्डल बनाया। जिसका प्रधान मंत्री लार्ड नार्थ (Lord North) था।

अमेरिका के लिए ब्रिटेन का फ्रान्स के साथ जो 'सप्तवार्षिक युद्ध' चला, उसमें इंगलैण्ड को बहुत बड़ी धनराशि व्यय करनी पड़ी थी। इस धन का एक विशेष हिस्सा अमेरिकन उपनिवेशों से भी वसूल करना चाहिए, इस उद्देश्य से लार्ड नार्थ ने पार्लमेंट में स्टॉम्प एक्ट पास करवाया जिसके अनुसार अमेरिका वालों को कानूनी दस्तावेजों पर स्टॉम्प लगाना आवश्यक हो गया। इसी प्रकार पार्लमेंट ने अमेरिका जाने वाली "चाय" और कुछ अन्य वस्तुओं पर भी टैक्स लगा दिया।

इन टैक्सों के लगते ही अमेरिका में असन्तोष की ज्वाला भभक उठी। उन लोगों का कहना था कि जब इंगलैण्ड की पार्लियामेंट में अमेरिका का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है तो उसे अमेरिका पर टैक्स लगाने का भी कोई अधिकार नहीं है। अमेरिकन जनता के नेता और सेनापति इतिहास-प्रसिद्ध जार्ज वाशिंगटन तथा पूर्वीय तट के सब उपनिवेशों के प्रतिनिधियों ने फिलाडेल्फिया नामक नगर में एकत्रित हो कर घोषणा कर दी कि अब अमेरिकन उपनिवेश स्वतन्त्र हैं, वे जार्ज तृतीय के अधीन नहीं हैं। यह स्वतन्त्रता की घोषणा (Declaration of Inde pendence) ४ जुलाई सन् १७७६ को की गई और इसी दिन से 'संयुक्त अमेरिका राज्य' सिद्धान्त रूप से अस्तित्व में आया। इसके पश्चात् ही इंग्लैण्ड और अमेरिका की सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हो गया।

यह स्वतंत्रता युद्ध करीब आठ वर्षों तक चला, जिसका पूरा वर्णन इस ग्रन्थ के पहले भाग में "अमेरिका" के प्रकरण में दिया गया है।

इस युद्ध में अंग्रेजी सेनाओं की पराजय हुई जिसके परिणाम स्वरूप सन् १७८३ में 'वार्सेलीज' की मशहूर सन्धि हुई जिसमें इंग्लैण्ड को अमेरिका के पूर्वीय तट के उपनिवेशों की स्वतन्त्रता स्वीकार कर लेनी पड़ी।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति

इसी समय फ्रांस में इतिहास प्रसिद्ध राज्य-क्रान्ति भड़क उठी, जिसने सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित

किया। कहने को तो यह फ्रांस के अत्याचारी लुई शासकों के विरुद्ध जनता की लड़ाई थी, मगर आगे चलकर इसके नेताओं ने इसको इतना बीभत्स रूप दे दिया और इतना खून-खराबी और कत्लेआम का ऐसा रोमांचकारी दृश्य उपस्थित कर दिया कि सारे यूरोप में उसका आतंक छा गया।

शुरू शुरू में इंग्लैण्ड की जनता की और खास करके ह्विग पार्टी की इस क्रान्ति से सहानुभूति रही मगर जब प्रति दिन होने वाले वहाँ के हत्या काण्डों की खबरें इंग्लैण्ड वालों को मिलने लगीं तो वे क्षोभ कर उठे और फ्रांस के राज्य-विप्लवकारियों के प्रति घृणा व्यक्त करने लगे। सुप्रसिद्ध लेखक एडमण्ड बर्क ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "रिफ्लेक्शन्स ऑन दी फ्रेंच रेवोल्यूशन" में फ्रांस की घटनाओं का वास्तविक चित्रण किया।

नेपोलियन का उत्थान

फ्रांस की राज्य क्रान्ति की भूमि में से डिक्टेटर शाही का पौधा नेपोलियन के रूप में विकसित हो रहा था। यह एक अत्यन्त साहसी, मेधावी महत्वाकांक्षी और आग से खेलने वाला युवक था। सेना के एक छोटे से पद से बढ़ते बढ़ते वह फ्रांस के प्रधान सेनाध्यक्ष सैनिक अफसर माना जाने लगा। वह एक भारी सेना लेकर रवाना हुआ और सबसे पहले उसने इटली के आस्ट्रियन शासकों को निकाल कर इटली पर कब्जा किया। उसके बाद रूम सागर में माल्टा को विजय कर मिस्र पहुँचा और मिस्र पर विजय प्राप्त कर ली। वहाँ से वह पारस और अफगानिस्तान होता हुआ हिन्दुस्तान पहुँचना चाहता था।

नैपोलियन की इस अद्भुत कार्यवाही को देखकर इंग्लैण्ड की सरकार बड़ी चिन्तित हो गई मगर शीघ्र ही उसने प्रसिद्ध जहाजी कमाण्डर एडमिरल नेल्सन के नेतृत्व में एक जहाजी बेड़ा भेजा। एडमिरल नेल्सन ने फ्रांस के जहाजी बेड़े को भारी पराजय दी। इस पराजय ने नैपोलियन के सारे मन्सूबे पर पानी फेर दिया और वह वापस फ्रांस को लौट आया।

इसके पश्चात् इंग्लैण्ड और नैपोलियन के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं। जल-युद्ध में अंग्रेज प्रायः सभी की टक्कर लगाते थे और स्थल-युद्ध में अंग्रेजों से नैपोलियन जीतता था।

मगर अन्त में सन् १८१५ में 'वाटरलू' के मैदान में अंग्रेजों की सेना ने ड्यूक ऑफ वेलिंगटन के नेतृत्व में नैपोलियन को भारी पराजय दी और उसे कैद कर सेण्ट्हेलेना भेज दिया।

इस प्रकार एक महान शक्तिशाली, पराक्रमी और महान् डिक्टेटर नैपोलियन का अन्त हुआ। इस विजय का साथ श्रेय अंग्रेजी सेना के सेनापति "वेलिंगटन" को है विलियम और 'नेल्सन' का नाम अंग्रेज जाति को इस महान् संकट से बचाने के लिए इतिहास में अमर हो गया, मगर इन सारे संघर्षों के कारण इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय हो गई।

सन् १८२० में जार्ज तृतीय की मृत्यु हो गई।

तीसरे जार्ज के पश्चात् चौथा जार्ज और उसके बाद सन् १८३० में चौथा विलियम गद्दी पर बैठा।

औद्योगिक क्रान्ति

इससे कुछ समय पूर्व ही अर्थात् अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध ही से इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ होता है। कपड़े बनाने की मशीनों का आविष्कार हो जाने से इंग्लैण्ड के पूँजीपतियों ने तेजी के साथ इन कारखानों की स्थापना में अपनी पूँजी लगाना शुरू की। देश में सैकड़ों पुतलीघर बन गये और जो इंग्लैण्ड अभी तक खेती पर जीवन निर्वाह करता था वह अब उद्योग और व्यवसाय का केन्द्र हो गया। सन् १७८५ में जेम्स वॉट के द्वारा भाप के इंजिन का आविष्कार हो जाने से इस क्रान्ति में पूरा वेग आ गया।

मशीन क्रान्ति के कारण पूँजी, मजदूरी और जमीन की जो समस्याएँ पैदा हुईं, उनका सामना भी इंग्लैण्ड को पहले करना पड़ा। पूँजीपतियों के द्वारा शोषण की नीति और मजदूरों की सम्पत्ति का निर्माण हो जाने से इनका संघर्ष जोर पकड़ता गया। कार्ल मार्क्स ने जर्मन होते हुए भी अपनी सारी योजना का निर्माण इंग्लैण्ड में बैठ कर ही किया था। इस प्रकार इतिहास में इंग्लैण्ड व्यावसायिक क्रान्ति के एक नेता के रूप में माना जाता है।

उन्नीसवीं सदी में जॉर्ज स्टीफन्सन ने रेलगाड़ी और पटरी पर चलने योग्य इंजिन का आविष्कार किया।

इधर इंग्लैण्ड औद्योगिक क्रान्ति के कारण धन-धान्य से सम्पन्न हो रहा था, दूसरी ओर संसार में उसके साम्राज्य का क्षेत्र भी बढ़ता चला जा रहा था। अमेरिकन उपनिवेशों के निकल जाने पर भी भारतवर्ष में उसका साम्राज्य पूरी तरह जम गया था और अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया, कनाडा इत्यादि पर भी उसका अधिकार था।

इस प्रकार क्या उद्योग, क्या साम्राज्य, क्या विज्ञान, क्या साहित्य, सभी क्षेत्रों में यह जाति पूर्ण चाहे कहाती कर आने लग गई थी। इसी समय इंग्लैण्ड के राज सिंहासन पर महारानी विक्टोरिया का आविर्भाव होता है।

विक्टोरिया काल और महारानी विक्टोरिया

विलियम चतुर्थ के कोई सन्तान न होने से उसकी भतीजी महारानी विक्टोरिया सन् १८३७ में इंग्लैण्ड के राजनैतिक रंगमंच पर आई।

संसार की जाति-जाति के इतिहास में एक सम्राज्ञी के नाते और एक कुशल शासक के रूप में महारानी विक्टोरिया की तरह कोई भी दूसरी स्त्री राजनैतिक रंगमंच पर नहीं आई।

महारानी विक्टोरिया बड़ी भाग्यवान स्त्री थी। उसका शासन लगातार चौंसठ वर्ष तक इंग्लैण्ड में चला। उसके शासनकाल में इंग्लैण्ड चरम उत्कर्ष की सीमा पर जा पहुँचा। अंग्रेज जाति की सर्वांगीण उन्नति के लिए महारानी विक्टोरिया का समय इंग्लैण्ड के इतिहास में हमेशा याद किया जायगा जिसके साम्राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था। साहित्य कला, विज्ञान, कविता, पुरातत्त्व इत्यादि जीवन के हर एक क्षेत्र में अंग्रेज जाति संसार के अन्दर एक नया रेकार्ड स्थापित करने लगी थी।

सन् १८७७ में महारानी विक्टोरिया ने भारत की सम्राज्ञी का विरुद भी ग्रहण किया। महारानी विक्टोरिया का विवाह जर्मनी की रियासत कोबर्ग के राजकुमार प्रिन्स एलबर्ट के साथ हुआ था मगर वैवाहिक जीवन में सिर्फ बीस वर्ष जीवित रहकर इस राजकुमार का देहा त हो गया।

महारानी विक्टोरिया के शासनकाल म यह विशेषता रही कि उसके मंत्रिमण्डल में प्रधान मंत्री के रूप में एक के बाद एक बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ आते रहे। इन प्रधान मंत्रियों में (१) राबर्ट पील (२) लार्ड पामर्स्टन (३) डिजरायली और (४) ग्लेडस्टन इन चार के नाम उल्लेखनीय हैं इन चारों ने ही देश-विदेशों में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव मजबूत करने में महारानी विक्टोरिया को बड़ी मदद दी।

सर राबर्ट पील टोरी दल का नेता था, मगर इसने इस दल के संकीर्ण राजनैतिक विचारों को उदार बनाने का बड़ा प्रयत्न किया। राबर्ट पील ने ही टोरी दल का नाम बदल कर कन्जरवेटिव दल रक्खा।

सन् १८५५ में इंग्लैण्ड का प्रधान मंत्री पामर्स्टन बना। इस समय रूस और टर्की के बीच इतिहास प्रसिद्ध *क्रीमियन लड़ाई चल रही थी, रूस चाहता था कि टर्की के* अधिकार में जेरूसलेम इत्यादि जितने ईसाइयों के धार्मिक क्षेत्र हैं, वे स्वतंत्र कर दिये जाँय। लार्ड पामर्स्टन ने इस प्रश्न को धार्मिक दृष्टि से नहीं, प्रत्युत राजनैतिक दृष्टि से देखा। उसका खयाल था कि टर्की का पतन हो जाने से रूस को एशिया में घुस कर खेलने का साफ मैदान मिल जायगा और अंग्रेजों का एशियायी साम्राज्य खतरे में पड़ जायगा, इसलिए वह प्रत्येक स्थिति में टर्की को जीवित रखना चाहता था, इसीसे क्रीमिया की लड़ाई में उसने टर्की का साथ देकर रूस को पराजित कर दिया।

पामर्स्टन के समय में ही भारतवर्ष में सन् १८५७ की मराहूर क्रांति हुई। इस कठिन समय में भी पामर्स्टन ने अपनी राजनैतिक कुशलता से भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की रक्षा की।

पामर्स्टन के पश्चात इंग्लैण्ड की राजनीति में एक महान् राजनीतिज्ञ की तरह ग्लेडस्टन का नाम आता है जो चार बार इंग्लैण्ड का प्रधान मंत्री बना। सन् १८६८ में इसके पहले मंत्रित्व काल में इंग्लैण्ड में एजूकेशन एक्ट पास हुआ जिससे वहाँ के शिक्षा-विभाग में क्रांतिकारी सुधार हुए। इसका पहला मंत्रित्व काल सन् १८७४ तक रहा।

ग्लेडस्टन के बाद सन् १८७४ में डिजरायली इंग्लैण्ड का प्रधान मंत्री बना। इसने मिस्र के शासक इस्माइल पाशा से 'स्वेज नहर कम्पनी' के सारे हिस्से सस्ते भाव में

खरीद लिए। उसके पश्चात् भी मिस्र पर इंग्लैंड का ऋण बाकी रह गया उस ऋण की वसूली के लिए मिस्र की अर्थव्यवस्था की देखरेख करने का अधिकार भी ले लिया। इस प्रकार डिज़रायली ने मिस्र पर अंग्रेज़ी का सौदागरी पंजा मज़बूती से कस दिया।

डिज़रायली के मंत्रित्वकाल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना बाल्कन का युद्ध है जिसमें उसने एक कॉन्फ्रेन्स के द्वारा रूमानिया सर्विया और मान्टीनिग्रो के बाल्कन राष्ट्रों को टर्की के साम्राज्य से निकालकर स्वाधीन राष्ट्र घोषित कर दिया जिससे टर्की तो कमज़ोर पड़ गया मगर रूस का कोई लाभ नहीं हुआ।

डिज़रायली के बाद फिर ग्लैडस्टन प्रधान मंत्री हुआ। उसने आयर्लैंड को स्वतन्त्रता देने का बिल पार्लमेंट में रक्खा मगर इस प्रश्न पर उसके दल में फूट पड़ गई और उसे सफलता नहीं मिली।

इस प्रकार ६४ वर्ष तक लगातार गौरवपूर्ण शासन कर सन् १९ १ में महारानी विक्टोरिया का देहान्त हो गया।

सप्तम एडवर्ड

महारानी विक्टोरिया के पश्चात् उनका पुत्र सप्तम एडवर्ड के नाम से ६ वर्ष की उम्र में सन् १९ १ में गद्दी पर बैठा।

सप्तम एडवर्ड अत्यन्त शान्तिप्रिय और सुलझे हुए मस्तिष्क का व्यक्ति था, इसलिए इतिहास इसे "एडवर्ड दी पीसमेकर' (शान्ति का निर्माता एडवर्ड) के नाम से सम्बोधित करता है।

इसके समय में दूर दूर तक ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें मज़बूती से जम चुकी थीं और शान्तिपूर्वक साम्राज्य का संचालन हो रहा था शान्ति और विकास की उन्नति हो रही थी। केवल एक दो बार लड़ाई का मौका आया। फ्रांस और इंग्लैण्ड के मतभेद बढ़ १९० मगर स्वयं एडवर्ड ने पेरिस जाकर उन मतभेदों को शान्त किया। सन् १९ ७ में उसने रूस के साथ [illegible] । कर लिया जिससे उधर भी युद्ध का खतरा [illegible] । १९११ में सप्तम एडवर्ड का देहान्त हो [illegible] न पर उसका पुत्र [illegible] पर बैठा।

सम्राट् पंचम जार्ज

सम्राट् पंचम जार्ज के शासनकाल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना यूरोप का प्रथम महायुद्ध है।

यूरोपीय महायुद्ध

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी में प्रिंस बिस्मार्क नामक महान् राजनीतिज्ञ हुआ। संसार के राजनैतिक क्षेत्र में उसकी तुलना महान् कौटिल्य से की जाती है। इसने छोटी छोटी रियासतों में बटे हुए जर्मन साम्राज्य को वस्तुतः रूप से संगठित कर एक विराट् साम्राज्य का निर्माण करने का प्रयत्न, प्रशिया के राजा की सहायता से किया।

सन् १८७१ में प्रशिया के राजा ने दक्षिणी जर्मनी की समस्त रियासतों का एकीकरण कर "दी जर्मन एम्पायर" की स्थापना की और स्वयं "जर्मन सम्राट् कैसर" की उपाधि प्राप्त की। उसका प्रधान मंत्री प्रिंस बिस्मार्क बना। बिस्मार्क की बुद्धिमत्ता से यह नवयुवक जर्मन राष्ट्र तेज़ी से सर्वतोमुखी उन्नति करने लगा और उन्नति के प्रत्येक कदम पर उसकी महत्त्वाकांक्षा विश्व का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य बनने की ओर बढ़ती गई।

बढ़ते हुए जर्मन राष्ट्र की यह असीम महत्त्वाकांक्षा ही प्रथम विश्वव्यापी महायुद्ध का कारण बनी और अन्त में २८ जून सन् १९१४ को युद्ध का ज्वालामुखी भभक उठा। महायुद्ध का पूरा वर्णन 'महायुद्ध' शब्द के अन्दर आगामी भागों में देखें। इस युद्ध में इंग्लैण्ड को भी शामिल होना पड़ा। इस युद्ध के शुरू शुरू में तो जर्मनी का विजय डंका तेज़ रहा। उसका आक्रमण तेज़ी से हुआ और उसकी पनडुब्बियों ने इंग्लैण्ड के कई जहाज़ों को डुबो दिया। इंग्लैण्ड वाले इससे घबरा उठे। उस समय इंग्लैण्ड की पार्लमेंट में प्रधान मंत्री एस्क्विथ का मंत्रिमण्डल काम कर रहा था मगर सन् १९१६ तक जब युद्ध में उसको सफलता नहीं मिली तो उसने इस्तीफ़ा [illegible] और उसकी जगह लायड जार्ज प्रधानमंत्री हुए। जार्ज ने तुरन्त सभी मित्र राष्ट्रों की सहायता प्राप्त को एक में मिलाकर फ्रांस के प्रधान सेना [illegible] फॉश' को इन सेनाओं की संगठित कमान का दिया।

इधर अमेरिका भी युद्ध में कूद पड़ा और अन्त में ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रों की विजय में यह युद्ध समाप्त हुआ और वर्साई की सन्धि में सारे यूरोप का नक्शा बदल दिया गया।

चार्ल्स पंचम का स्वर्गवास सन् १९३६ में हुआ। सम्राट् पंचम चार्ल्स ने अपने हनोवर वंश का नाम बदलकर "विण्डसर वंश' कर दिया।

अष्टम एडवर्ड

सम्राट् पंचम चार्ल्स के पश्चात् इंग्लैण्ड के राजसिंहासन पर उसका बड़ा लड़का अष्टम एडवर्ड के नाम से गद्दी पर बैठा।

जनवरी १९३६ ई. में पिता की मृत्यु पर वह सिंहासनासीन हुआ, किन्तु इसी समय उसका मिसेज सिम्सन नामक एक ऐसी युवती के साथ प्रेम हो गया, जिसके साथ इंग्लैण्ड के विधान के अनुसार वह शादी नहीं कर सकता था। जब यह वैधानिक समस्या उपस्थित हुई तो उसने अपने हृदय की आवाज के अनुसार मिसेज सिम्सन की प्रेम वेदी पर अपने साम्राज्य को बलिदान कर दिया और इंग्लैण्ड का राजसिंहासन छोड़ अपनी प्रेमिका से शादी कर ली।

चार्ल्स षष्ठ

अष्टम एडवर्ड के सिंहासन त्याग के पश्चात् उसका भाई चार्ल्स छठा के नाम से इंग्लैण्ड के सिंहासन पर आसीन हुआ।

द्वितीय विश्वमहायुद्ध

चार्ल्स छठा के समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना, द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ होना है जिसने कुछ समय के लिये इंग्लैण्ड के विशाल साम्राज्य की गद्दी वालों को भी हिला कर रख दिया था।

प्रथम महायुद्ध में पराजित जर्मनी ने बहुत ही शीघ्र 'हिटलर के समान एक तेजस्वी नेता को प्राप्त कर लिया। जिसने थोड़े ही समय में मृतप्राय जर्मनी में संजीवनी शक्ति फूँक दी। उसने अपने देश को वैज्ञानिक रूप से समृद्ध कर सैनिक रूप से इतना संगठित कर लिया—जल, स्थल और आकाश तीनों ही क्षेत्रों में अपनी शक्ति को इतना बढ़ा लिया कि—सारे संसार की सैनिक शक्ति उसे तुच्छ मालूम पड़ने लगी। वह सारे संसार पर जर्मन साम्राज्य का झण्डा फहराने की महत्वाकांक्षाओं का शिकार हो गया।

शक्ति के मद में मुसोलिनी को अपना साथी बना कर उसने वर्साई की सन्धि को तोड़-मरोड़ कर जर्मन साम्राज्य की सीमाओं को बढ़ाना शुरू कर दिया। प्रजातन्त्रीय देश उसकी इस गति से चौकन्ने हो गये, मगर फिर भी मानसिक सन्तुलन को न खोकर इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री मि चेम्बरलेन उसके यहाँ दो दो बार समझाने गये।

मगर किसी प्रकार से यह युद्ध रोका नहीं जा सका। यह प्रारम्भ हुआ और जर्मनी की राक्षसी शक्ति बेल्जियम और फ्रांस को कुचलती हुई, इंग्लिश चैनल के किनारे आ पहुँची। डंकर्क के मैदान में जर्मन सेनाओं ने अंग्रेजी सेनाओं का जिस बुरी तरह से नाश किया, उसकी उपमा इंग्लैण्ड के इतिहास में कहीं नहीं है।

यह समय इंग्लैण्ड के इतिहास में सबसे अधिक संकट का था। ऊपर से जर्मन वायुयान लन्दन पर दिन-रात गोले बरसाते थे। सारे लन्दन की बड़ी-बड़ी इमारतें चकनाचूर होकर मलबे के रूप में परिवर्तित हो गई थीं। यह समय अंग्रेज जाति के चरित्र और उसके पराक्रम की कठिन परीक्षा का था।

मगर अंग्रेज-जाति का चरित्र इस महान् संकट की घड़ी में भी स्थिर रहा। उसका मनोबल डिगमिगाने के बजाय बड़ी मजबूती के साथ जमा रहा और उसने तत्काल मि चर्चिल के समान महान राजनीतिज्ञ का पद आँधी का ताज पहना दिया।

चर्चिल ने अत्यन्त बुद्धिमानी के साथ युद्ध का संचालन किया। उसने अमरिका को अपने साथ मिलाया। इधर हिटलर की दुर्बुद्धि ने उसको रूस के ऊपर आक्रमण करने को प्रेरित किया। इन दोनों घटनाओं से युद्ध का पासा एकदम पलट गया। रूस के मोर्चे पर उसको मुँह की खानी पड़ी। परमाणु बम से जापान का पतन हुआ और जीत प्रजातन्त्रीय शक्तियों की हुई।

चर्चिल की वैधानिक पराजय

युद्ध समाप्त होते ही इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट के चुनाव हुए। चर्चिल भी उसमें खड़े हुए, मगर सारे संसार

ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि इंगलैण्ड की जनता ने चर्चिल को करारी हार दी। जिस चर्चिल ने अपनी राजनैतिक सूझ-बूझ से एक महान भयानक संकट से इंगलैण्ड के शत्रु की रक्षा की, युद्ध समाप्त होते ही उसी चर्चिल को वहाँ की जनता ने प्रयोग करने में विलम्ब नहीं किया। इसका कारण यह था कि चर्चिल राजनीतिज्ञ और चतुर होते हुए भी साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रतीक था और इंगलैंड की जनता दो दो लम्बे युद्धों के कारण साम्राज्यवाद से बिलकुल ऊब गई थी।

मजदूर दल की विजय

नये चुनाव में मजदूर दल की विजय हुई और मि. एटली प्रधान मन्त्री की तरह इंगलैण्ड के रंग-मंच पर आया।

अंग्रेज राजनीतिज्ञ समझ चुके थे कि इस नवीन और आने वाले युग में विस्तृत साम्राज्य का रखना नफे के बदले नुकसान का कारण हो सकता है। सारे उपनिवेशों में जो साम्राज्य विरोधी भावनाएँ फैली हुई हैं, उन्हें केवल सेना के बल पर दबाये रखना सम्भव नहीं है।

इसलिए उन्होंने अपना सबसे पहला साहस-पूर्ण कदम उपनिवेशों को आजादी देने के सम्बन्ध में उठाया और भारतवर्ष के समान ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रधान अंग को, १५ अगस्त १९४७ ई. को आजाद घोषित कर दिया। इसी प्रकार सीलोन, बर्मा, मिस्र इत्यादि अनेकों उपनिवेश भी आजाद कर दिये गये।

ये घटनाएँ अंग्रेज जाति के इतिहास में और संसार के इतिहास में हमेशा गौरवपूर्ण समझी जायेंगी।

जिन लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्य के समान इतने विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी वे भी इतिहास में महान कहे जायेंगे मगर जिन्होंने इतने बड़े साम्राज्य का इतनी आसानी से विसर्जन कर दिया उनकी महानता की तुलना नहीं हो सकती।

महारानी एलिजाबेथ द्वितीय

सन् १९५१ में जार्ज छठे के बाद उनकी पुत्री, एलिजाबेथ द्वितीय के नाम से इंग्लैण्ड के सिंहासन पर आईं। दूसरे महायुद्ध के बाद इंग्लैण्ड की राजनीति विश्वव्यापी कम्युनिज्म की बाढ़ को रोकने के प्रयत्न में लगी हुई है। इसके लिए इंग्लैंड अमेरिका और फ्रांस ने अलग एक संगठन खड़ा किया है और इस संगठन में विश्व के अनेक राष्ट्रों को सम्मिलित कर रहे हैं। बीच में मिस्र सरकार के द्वारा स्वेज नहर बन्द कर देने के कारण इंग्लैण्ड और फ्रांस ने मिल कर मिस्र पर आक्रमण किया था, मगर उसमें इन दोनों राष्ट्रों को बहुत नीचा देखना पड़ा।

इस प्रकार अपनी मन्थर गति से संसार के रंग-मञ्च पर बड़े-बड़े संघर्षों में से गुजरता हुआ अपनी साहित्यिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक गरिमा को अक्षुण्ण रखे हुए इंग्लैण्ड का इतिहास आगे बढ़ रहा है।

इंग्लैण्ड की शासन पद्धति

इंग्लैण्ड की जनता में प्रजातंत्रीय भावनाओं और राजा के अधिकारों को मर्यादित करने की भावनाओं का कितनी तेजी के साथ विकास हुआ यह पहले बताया जा चुका है। इन्हीं भावनाओं की उग्रता का प्रदर्शन रिचर्ड द्वितीय को जेल में डालना, चार्ल्स प्रथम को मृत्युदण्ड देना और द्वितीय जेम्स के निर्वासन के समान इतिहास की महान् घटनाओं में पाया जाता है।

फिर भी क्रामवेल के शासन के पश्चात् इंग्लैंड की जनता यह महसूस करने लगी कि, चाहे नाममात्र की शक्तियों के साथ ही हो मगर शासन चलाने के लिए एक राजा का उसके आसन पर होना जरूरी है, और वह राजा जनता की भावनाओं का मूर्तिमान प्रतीक हो। इसी भावना से प्रेरित होकर इंग्लैंड की जनता ने क्रामवेल के पश्चात् फिर राजा द्वितीय चार्ल्स को गद्दी पर बैठाया और फिर कभी इस पद को नहीं उठाया। यही कारण है कि शक्तियों में अत्यन्त मर्यादित होने पर भी इंग्लैंड का राजा जनता की दृष्टि में अत्यन्त आदर और मान्यता का भाजन है। इसी कारण इंग्लैंड का शासन मर्यादित राजतंत्र (Limited monarchy) कहलाता है।

यह शासन तीन संस्थाओं पर आश्रित है। (१) राजा (२) हाउस ऑफ कामन्स (लोक सभा), (३) हाउस ऑफ लार्ड्स (राज्य सभा)

राजा—राजा का पद वंशपरम्परागत है अर्थात् राजा का बड़ा लड़का राज्य का उत्तराधिकारी होता है। लड़का न होने पर लड़की को राज्य का उत्तराधिकारी मिलता है।

इंग्लैण्ड के समाचारपत्र

ब्रिटेन में पहले दैनिक समाचारपत्र को निकले हुए ढाई सौ वर्ष से अधिक हो चुके हैं और इसके पहले कोई डेढ़ सौ वर्षों तक समाचार पर्चियाँ निकला करती थीं। कभी कभी निकलने वाली ये पर्चियाँ बहुधा हाथ से लिखी जाया करती थीं। इन्हीं के जरिये थोड़े बहुत लोगों को थोड़ी बहुत खबरें प्राप्त हो जाया करती थीं।

ब्रिटेन में छपाई का काम पन्द्रहवीं शताब्दि की समाप्ति से पहले शुरू हुआ था; लेकिन छपाई की आजादी के लिये एक लम्बा संघर्ष आवश्यक हुआ था। इस संघर्ष को कई यशस्वी समर्थक मिले थे। अंग्रेजी के अमर कवि जान मिल्टन, विश्वप्रसिद्ध उपन्यास रॉबिन्सन क्रूसो के लेखक डैनियल डिफो; तथा निबन्धकार ले हण्ट—इनके नाम भुलाये नहीं जा सकते।

समाचार प्रकाशन के लिये लाइसेन्स लेना जरूरी बनानेवाला कानून जिसका उपयोग कड़ाई के साथ इसलिये किया जाता था ताकि सरकार पर धब्बा लगाने योग्य कोई खबर छपने न पाये समाचार प्रकाशन के रास्ते में पहला रोड़ा था। सन् १६९५ में यह कानून उठा लिया गया और इसके सात वर्ष बाद सन् १७०२ में पहला समाचारपत्र निकला।

समाचार प्रकाशन पर टैक्स और अपमानसूचक बातें छापने पर रोक लगानेवाले कानून के रूप में दो रुकावटें इस मार्ग में अभी भी बाकी थीं। किसी पर यदि अपमानसूचक बात लिखने का मुकदमा दायर किया जाता तो इसके बारे में फैसले का पूरा अधिकार जज को होता था। और स्वयं ये जज प्रायः सरकारी आदमी होते थे इसलिए इनके द्वारा उन लोगों को जो सरकार के बारे में अप्रिय चीजें छापते, कारावास या जुर्मानों के रूप में कड़ी सजा दी जाती थी। स्वतन्त्रता के एक वीर समर्थक जान विल्क्स ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई थी।

१७९२ में पास हुए कानून ने अपमानसूचक शब्द छापने के आरोपों पर विचार के लिये जूरी द्वारा न्याय की पद्धति लागू की थी। समाचार प्रकाशन की आजादी पर टैक्स रूपी बन्धन अभी कायम बाकी थे। इसकी वजह से समाचार इतने मँहगे होते थे कि उन्हें खरीदने की ताकत बहुत कम लोगों में थी।

"समाचारपत्र की आजादी ब्रिटेनवासी का जन्मसिद्ध अधिकार है" समाचारपत्रों की आजादी के दृढ़ समर्थक, जान विल्क्स की राय यह थी। "विल्क्स और आजादी" इन नारों को दोहराते हुए मजदूरों की भीड़ जान विल्क्स के पास जहाँ कहीं वे जाते, इकट्ठी हो जाती थी। समाचार पत्रों पर लगे ये टैक्स सन् १८६१ में पूरी तौर पर उठा लिये गये।

उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे भाग में ब्रिटेन में शिक्षा का चलन बढ़ा। १८७१ में शिक्षा अनिवार्य बनायी गयी। इस प्रकार पढ़ने-लिखने योग्य जनता तैयार हुई। समाचार पत्रों की उन्नति के मार्ग में अब कोई बाधा नहीं रह गयी थी। आधुनिक समाचारपत्र की शुरुआत होने में कोई कसर नहीं थी।

प्रेस और कानून

वैयक्तिक स्वतन्त्रता की भाँति ब्रिटेन में प्रेस स्वाधीनता भी है। प्रकाशकों को समाचार के रूप में दर्ज कराने आदि के नियम के अतिरिक्त, खास तौर पर समाचारपत्रों के लिये कानून इस देश में नहीं है। अदालतों में चलने वाले घरेलू या निजी मामलों की सूचना प्रकाशित नहीं की जाती, और न खास अदालतों की कार्यवाहियाँ छापी जा सकती हैं, विचाराधीन मामलों पर ऐसी कोई बात नहीं छपी जा सकती जिसका असर मुकदमे के फैसले पर पड़ सकता है। इस कानून का उल्लंघन अदालत का अपमान माना जाता है।

स्थानीय शासन के अधिकारी यदि चाहें तो प्रेस के प्रतिनिधियों को अपनी सभाओं में आने से रोक सकते हैं पर वास्तव में ऐसा किया नहीं जाता। कापीराइट नियम का तथा किसी धर्म के खिलाफ कुछ लिखने, या किसी के लिये मानहानिकारक शब्द लिखने पर रोक लगानेवाले कानून का पालन करना भी समाचारपत्रों के लिये जरूरी है। समाचारपत्र के खिलाफ कोई भी व्यक्ति कानूनी कार्यवाही कर सकता है यदि वह समझता है कि उसकी मानहानि करनेवाली बात उसमें छपी है। यदि उसका आरोप उचित माना जाता है तो लेखक के अलावा

लन्दन में तो हैं ही, इंग्लैण्ड के उत्तर में तथा स्काटलैण्ड में भी हैं।

समाचार प्राप्ति के दो साधन

समाचार एजेंसियाँ तथा समाचारपत्रों के सम्वाददाता इन दो साधनों से समाचार प्राप्त किये जाते हैं। ब्रिटेन में ऐसी कई एजेंसियाँ हैं, कुछ आम खबरों से सम्बन्ध रखती हैं, और किन्हीं खास प्रकार की खबरों में कुछ एजेंसियों ने विशेषता प्राप्त कर ली है। देश की खबरों के लिए प्रेस एसोसियेशन और विदेश की खबरों के लिए रायटर इनसे अधिक प्रसिद्ध है। रायटर पर ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड के पत्रों का स्वामित्व है।

ब्रिटेन के अधिकतर सरकारी विभागों के लिए पब्लिक रिलेशन्स आफिसर्स या प्रेस आफिसर नियुक्त किये जाते हैं, जो अपने विभाग के द्वारा से जनता और समाचारपत्रों को सूचना प्राप्त कराने में सहायता पहुँचाते हैं। प्रेस सम्मेलनों का प्रबन्ध ये करते हैं जहाँ मंत्री या विभाग के बड़े अधिकारी, पत्रकारों के सामने भाषण करते हैं और उपस्थित पत्रकारों के सवाल का जवाब देते हैं।

सम्वाददाताओं और सम्पादकों को सरकारी वक्तव्य की प्रतियाँ दी जाती हैं। बहुत सारी सूचना जो अन्यथा इतनी आसानी से प्राप्त नहीं हो सकती इस प्रकार उन्हें सुलभ हो जाती है। इनका उपयोग करना जरूरी नहीं है। विभिन्न विभागों के इन जन सम्पर्क अधिकारियों और प्रेस अधिकारियों में से लगभग सभी स्थायी कर्मचारी होते हैं और सरकार बदल जाने पर भी व अपने स्थान पर बने रहते हैं।

सायंकालीन पत्र

शाम को निकलने वाले लन्दन के दो पत्र हैं ईवनिंग न्यूज (पढ़नेवालों की संख्या १६,४५,५६१) और ईवनिंग स्टैण्डर्ड (६५८,४६६)। क्रमशः डेलीमेल और डेली एक्सप्रेस के स्वामी ही इनके स्वामी हैं और इनकी राजनैतिक रीति नीति भी वही है। राजधानी में या उसके आस-पास बसने वाले ही अधिकतर इन पत्रों के पाठक होते हैं। अपने पाठकों का मनोरंजन करने के अतिरिक्त ताजी से ताजी सूचना भी ये दोपहर से लेकर शाम को छः बजे तक प्रकाशित होने वाले अनेक संस्करणों के रूप में पाठकों को दिया करते हैं।

लन्दन के बाहर से प्रकाशित होने वाले और शाम को छपने वाले पत्रों की संख्या लगभग सत्तर है। स्थानीय दिलचस्पी की कई खबरें इनमें छपती हैं और जिस नगर से इनका प्रकाशन होता है, उसके आस-पास बसने वाले पाठक इन्हें खरीदते हैं। ऐसे नगर भी कई हैं जहाँ से एक ही पत्र के कई संस्करण निकलते हैं।

रविवासरीय पत्र

लन्दन से निकलनेवाले रविवासरीय पत्रों की संख्या आठ है, एक का प्रथम संस्करण स्काटलैंड से निकलता है। इनमें से दो (आबजर्वर तथा सण्डे टाइम्स) उच्चकोटि के पत्र माने जाते हैं जिनमें प्रकाशित लेख पुस्तक समीक्षा, नाटकादि की खूब लोकप्रियता है। शेष आठ लोकप्रिय पत्र हैं और इनमें से दो सचित्र हैं। इनकी पाठक संख्या बहुत ज्यादा है।

ब्रिटेन के अन्य स्थानों के पाँच रविवासरीय पत्रों में से दो स्काटलैंड से निकलते हैं। यद्यपि ये उन्हीं मशीनों का उपयोग करते हैं जिनपर दैनिक छपते हैं पर दैनिक पत्रों के रविवारीय संस्करण ये नहीं हैं। उनके अपने सम्पादकीय विभाग हैं अपने अपने सम्वाददाता हैं और अपनी अपनी विशेषतायें भी हैं।

साप्ताहिक पत्र

कुछ छपनेवाले दैनिकों में से कुछेक साप्ताहिकों में उनके दैनिक संस्करणों में प्रकाशित समाचारादि का सार संक्षेप दिया जाता है। इंग्लैंड के लोगों को जो ब्रिटेन के बाहर हैं भेजने के लिए ये मुख्य तौर पर प्रकाशित किये जाते हैं। १ हजार से लेकर ५ तक की पाठक संख्या वाले एक हजार से अधिक उपनगरीय और प्रान्तीय पत्र भी हैं, कोई तो किसी एक व्यक्ति का व्यापार है, जो इनमें का काम करनेवाली उसी स्थान की किसी फर्म द्वारा निकाला जाता है। इन्हें स्थानीय पत्र कहते हैं और उस स्थान में रहने वालों के लिए दिलचस्पी रखनेवाली खबरें इनमें अधिकतर प्रकाशित हुआ करती हैं। जन्म मृत्यु विवाहादि की खबरें भी इन पत्रों में जगह पा लिया करती हैं।

इंग्लैण्ड के इतिहास की प्रमुख घटनाएँ

अलफ्रेड महान् द्वारा देश की शक्ति का वर्धन	सन् ८९८
मेग्नाचार्टा (Magna Caarta) नामक महान् स्वतंत्रता पत्र की घोषणा	सन् १२१५
गुलाबों का युद्ध	सन् १४८३
मेरी ट्यूडर के द्वारा प्राटेस्टट लोगों को जीवित जलाया जाना	सन् १५५४
समुद्र यात्रा द्वारा नवीन देशों की खोज	सोलहवीं सदी
स्पेन के आर्मेडा नामक विशाल जहाजी बेड़े को हराना	सन् १५८०
शेक्सपियर का आविर्भाव	१५८७
पिटीशन ऑफ राइट (द्वितीय स्वतंत्रता पत्रक)	सन् १६२८
ओलिवर क्रामवेल का उदय	सन् १६४२–
चार्ल्स प्रथम को मृत्यु दण्ड	सन् १६४९
राजतंत्र का पुनः प्रारंभ	सन् १६६०
बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights) तीसरास्वतंत्रता पत्रक	सन् १६८९
यूट्रेक्ट की संधि	सन् १७१३
इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड का संयुक्त राज्य	१७०७
महान कवि मिल्टन के "पैरेडाइज लॉस्ट" का प्रकाशन	१६६७
मेफ्लावर जहाज द्वारा पिलिग्रिम फादर्स का इंग्लैंड छोड़कर अमेरिका चला जाना	१६२०
आइजकन्यूटन के प्रिंसिपिया (Principia) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का प्रकाशन	१६८७
सप्तवर्षीय युद्ध (The seven years War)	१७५६–१७६३
जेकोबाइट विद्रोह	१७१५
अमेरिकन स्वतंत्रता का युद्ध	१७७५–८३
वर्सेल्स की संधि	१७८३
फ्रान्स की राज्य क्रांति	१७८९–९३
वाटरलू की लड़ाई	१८१५
सरजेम्स वॉट के द्वारा भाप के इंजिन का आविष्कार	१७८५
हारग्रीव्स के द्वारा सूत कातने की मशीन का आविष्कार	१७६४
औद्योगिक क्रांति	१९वीं सदी का प्रथम चरण
स्टीफेन्सन द्वारा रेलगाड़ी का आविष्कार	१८३०
विद्युत शक्ति का आविष्कार	१८३०
अलेक्जेण्डर बेल द्वारा टेलीफोन का आविष्कार	१८७३
टेलीग्राफ की पहली लाइन की स्थापना	१८४४
पार्लमेंट सुधार का पहला नियम	१८३२
,, ,, दूसरा ,,	१८६७
,, तीसरा ,,	१९११
भारतवर्ष का सैनिक विद्रोह	१८५७
मिस्र पर ब्रिटेन का आधिपत्य	१८८२
प्रथम महायुद्ध	१९१४–१९१८
वर्साई की संधि	१९१९
द्वितीय महायुद्ध	१९३९–४५
उपनिवेशों को स्वाधीनता प्रदान	१९४७

लन्दन में तो हैं ही, इंग्लैण्ड के उत्तर में तथा स्काटलैण्ड में भी हैं।

समाचार प्राप्ति के दो साधन

समाचार एजेंसियाँ तथा समाचारपत्रों के संवाद दाता इन दो साधनों से समाचार प्राप्त किये जाते हैं। ब्रिटेन में ऐसी कई एजेंसियाँ हैं; कुछ आम खबरों से सम्बन्ध रखती हैं; और किन्हीं खास प्रकार की खबरों में कुछ एजेंसियों ने विशेषता प्राप्त कर ली है। देश की खबरों के लिए प्रेस एसोसिएशन और विदेश की खबरों के लिए रायटर सबसे अधिक प्रतिष्ठित है। रायटर पर ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड के पत्रों का स्वामित्व है।

ब्रिटेन के अधिकतर सरकारी विभागों के लिए पब्लिक रिलेशन्स आफिसर्स या प्रेस आफिसर्स नियुक्त किये जाते हैं, जो अपने विभाग के द्वारा ये जनता और समाचारपत्रों को सूचना प्राप्त करने में सहायता पहुँचाते हैं। प्रेस सम्मेलनों का प्रबन्ध ये करते हैं जहाँ मंत्री या विभाग के बड़े अधिकारी, पत्रकारों के सामने भाषण देते हैं और उपस्थित पत्रकारों के प्रश्नों का जवाब देते हैं।

समाचारदाताओं और सम्पादकों को सरकारी वक्तव्य की प्रतियाँ दी जाती हैं। बहुत सारी सूचना जो अन्यथा इतनी आसानी से प्राप्त नहीं हो सकती इस प्रकार उन्हें सुलभ हो जाती है। इनका उपयोग करना जरूरी नहीं है। विभिन्न विभागों के इस काम सम्बन्धी अधिकारियों और प्रेस अधिकारियों में से लगभग सभी स्थायी कर्मचारी होते हैं और सरकार बदल जाने पर भी वे अपने स्थान पर बने रहते हैं।

सायंकालीन पत्र

शाम को निकलने वाले लन्दन के दो पत्र हैं ईवनिंग न्यूज (पढ़नेवालों की संख्या १५,७८,५९१) और इवनिंग स्टैण्डर्ड (१,१८,४९६)। क्रमशः डेलीमेल और डेली एक्सप्रेस के स्वामी ही इनके स्वामी हैं और इनकी राजनैतिक नीति मिलती भी वही है। राजधानी में या उसके आस-पास बसने वाले ही अधिकतर इन पत्रों के पाठक होते हैं। अपने पाठकों का मनोरंजन करने के अतिरिक्त ताजी से ताजी सूचना भी ये दोपहर से लेकर शाम को बजे तक प्रकाशित होने वाले अनेक संस्करणों के रूप में पाठकों को दिया करते हैं।

लन्दन के बाहर से प्रकाशित होने वाले और शाम को छपने वाले पत्रों की संख्या लगभग सत्तर है। स्थानीय दिलचस्पी की कई खबरें इनमें छपती हैं और जिस नगर से इनका प्रकाशन होता है, उसके आस पास बसने वाले पाठक इन्हें खरीदते हैं। ऐसे नगर भी कई हैं, जहाँ से एक ही पत्र के कई संस्करण निकलते हैं।

रविवासरीय पत्र

लन्दन से निकलनेवाले रविवासरीय पत्रों की संख्या आठ है; एक का अलग संस्करण स्काटलैण्ड से निकलता है। इनमें से दो (आबजर्वर तथा सण्डे टाइम्स) उच्च-कोटि के पत्र माने जाते हैं, जिनमें प्रकाशित लेख, पुस्तक समीक्षा, नाटकादि की खूब लोकप्रियता है। शेष आठ लोकप्रिय पत्र हैं और इनमें से दो सचित्र हैं। इनकी पाठक संख्या राष्ट्र व्यापी है।

ब्रिटेन के अन्य स्थानों के पाँच रविवारीय पत्रों में से दो स्काटलैण्ड से निकलते हैं। यद्यपि ये उन्हीं मशीनों का उपयोग करते हैं जिनपर दैनिक छपते हैं पर दैनिक पत्रों के रविवारीय संस्करण ये नहीं हैं। इनके अपने सम्पादकीय विभाग हैं अपने अपने संवाददाता हैं और अपनी अपनी विशेषतायें भी हैं।

साप्ताहिक पत्र

मुख्य छपनेवाले दैनिकों में से कुछेक साप्ताहिकों में उनके दैनिक संस्करणों में प्रकाशित समाचारादि का सार संक्षेप दिया जाता है। इंग्लैण्ड के लोगों को जो ब्रिटेन के बाहर हैं भेजने के लिए ये मुख्य तौर पर प्रकाशित किये जाते हैं। ५ हजार से लेकर ५ तक की पाठक संख्या वाले एक हजार से अधिक उपनगरीय और प्रान्तीय पत्र भी हैं, कोई तो किसी एक व्यक्ति का व्यापार है जो दूसरे का काम करनेवाली उसी स्थान की किसी फर्म द्वारा निकाला जाता है। इन्हें स्थानीय पत्र कहते हैं और उस स्थान में रहने वालों के लिए दिलचस्पी रखनेवाली खबरें इनमें अधिकतर प्रकाशित हुआ करती हैं। जन्म मृत्यु विवाहादि की खबरें भी इन पत्रों में पढ़ने को मिला करती हैं।

इंग्लैण्ड के इतिहास की प्रमुख घटनाएँ

घटना	सन्
अल्फ्रेड महान् द्वारा देश की शक्ति का वर्धन	सन् ८७८
मेग्नाचार्टा (Magna Caarta) नामक महान् स्वतंत्रता पत्र की घोषणा	सन् १२१५
गुलाबों का युद्ध	सन् १४८५
मेरी ट्यूडर के द्वारा प्रोटेस्टन्ट लोगों को जीवित जलाया जाना	सन् १५५५
समुद्र यात्रा द्वारा नवीन देशों की खोज	सोलहवीं सदी
स्पेन के आर्मेडा नामक विशाल जहाजी बेड़े को हराना	सन् १५८८
शेक्सपियर का आविर्भाव	१५६४
पि टिशन ऑफ राइट (द्वितीय स्वतंत्रता पत्रक)	सन् १६२८
ऑलिवर क्रामवेल का उदय	सन् १६४२–
चार्ल्स प्रथम को मृत्यु दण्ड	सन् १६४९
राजतंत्र का पुनः प्रारंभ	सन् १६६०
बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights) तीसरा स्वतंत्रता पत्रक	सन् १६८९
यूट्रेक्ट की संधि	सन् १७१३
इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड का संयुक्त राज्य	१७०७
महान कवि मिल्टन के "पैराडाइज लॉस्ट" का प्रकाशन	१६६७
मेफ्लावर जहाज द्वारा पिलग्रिम फादर्स का इंग्लैंड छोड़कर अमेरिका चले जाना	१६२०
आइजक न्यूटन के प्रिन्सिपिया (Principia) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का प्रकाशन	१६८७
सप्तवर्षीय युद्ध (The seven years War)	१७५६–१७६३
जेकोबाइट विद्रोह	१७४५
अमेरिकन स्वतंत्रता का युद्ध	१७७५–८३
वर्सेल्स की संधि	१७८३
फ्रान्स की राज्य क्रांति	१७८९–९३
वाटरलू की लड़ाई	१८१५
सरजेम्स वॉट के द्वारा भाप के इंजिन का आविष्कार	१७६५
हारग्रीव्ज के द्वारा सूत कातने की मशीन का आविष्कार	१७६४
औद्योगिक क्रांति	१९वीं सदी का प्रथम चरण
स्टीफेन्सन द्वारा रेलगाड़ी का आविष्कार	१८३०
विद्युत शक्ति का आविष्कार	१८३०
अलेक्ज़ेंडर बेल द्वारा टेलीफोन का आविष्कार	१८७६
टेलीग्राफ की पहली लाइन की स्थापना	१८४४
पार्लमेंट सुधार का पहला नियम	१८३२
" " दूसरा "	१८६७
" " तीसरा "	१९११
भारतवर्ष का सैनिक विद्रोह	१८५७
मिस्र पर ब्रिटेन का आधिपत्य	१८८२
प्रथम महायुद्ध	१९१४–१९१८
वर्साई की संधि	१९१९
द्वितीय महायुद्ध	१९३९–४५
उपनिवेशों को स्वाधीनता प्रदान	१९४७

इजराइल

दक्षिण पश्चिमी एशिया में यहूदी लोगों का एक सार्वभौम राष्ट्र । इसकी पूर्वी सीमा पर जोर्डन उत्तर में लेबनान, दक्षिण में अकाबा की खाड़ी तथा दक्षिण पश्चिम में मिस्र का देश है ।

संसार के इतिहास में इजराइल या यहूदी जाति का इतिहास मयङ्कर संघर्षों रक्तपात और कत्लेआम की घटनाओं से भरा हुआ है । इस जाति को संसार की अन्य जातियों या धर्मों से कोई विशेष सहानुभूति प्राप्त नहीं हुई । थोड़ी संख्या में होने के कारण हमेशा विरोधी लोगों के भयङ्कर आक्रमणों का यह जाति शिकार होती रही ।

यहूदी धर्म के संस्थापक हजरत इब्राहिम माने जाते हैं । ये यहूदी धर्म के पहले पैगम्बर हैं । इनका समय ईसी सन् से २ वर्ष पूर्व माना जाता है । दूसरा नाम हजरत मूसा का आता है जिन्होंने सदाचार के दस नियमों का विधान बनाया । हजरत मूसा ने सारे संसार में बिखरी हुई यहूदी जाति को फिलीस्तीन में लाकर बसाया और उसे एक देश का रूप देकर उसका नाम "इजराइल" रखा था ।

हजरत मूसा के पश्चात् यहूदी जाति के इतिहास में जो नाम एक चमकीले नक्षत्र की तरह प्रकाशमान हो रहा है वह दाऊद के पुत्र सुलेमान का है । सुलेमान ने इजराइल की उन्नति में अपना असाधारण महत्वपूर्ण कार्य अदा किया । सबसे पहले उसने इजराइल की जल शक्ति या जहाजी बेड़े का विस्तार किया । जिससे समुद्र मार्ग से देश देशान्तरों के साथ इजराइल के बहुत बड़े पैमाने पर व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गए । इससे इजराइल की भारी व्यावसायिक उन्नति हुई । इसके साथ ही राष्ट्र की आन्तरिक एकता के लिए उसने इब्रानी भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाई । सुलेमान की मृत्यु ईसी सन् पूर्व ९३० में हुई । चालीस वर्ष के शासन में सुलेमान ने जो वैभव और कीर्ति इजराइल को प्रदान की वह शायद उसके बाद फिर कभी इस देश को प्राप्त नहीं हुई ।

उसके बाद इजराइल हमेशा बाहरी आक्रमणों का शिकार रहा और यहाँ की जनता विदेशियों के पैरों तले कुचलती रही । सन् ५३८ ई० पू० में यह प्रदेश स्थायी रूप से ईरान के अखामनी साम्राज्य के अन्दर आ गया । ईरानी साम्राज्य के अन्दर यहूदी जाति को शान्तिपूर्वक रहने और उन्नति करने का अवसर मिला । इसके कई वर्षों पश्चात् अर्थात् ईसी सन् पूर्व ४४४ में इनके धार्मिक सिद्धान्तों का संग्रह करके कुछ विद्वानों ने उसे एक धर्म ग्रन्थ का रूप दिया गया । इस धर्म ग्रन्थ का नाम "तौरेत" रक्खा गया । यह पुस्तक यहूदी धर्म में वेद की भाँति पूजनीय मानी जाती है ।

इसके पश्चात् इजराइल पर सिकन्दर का आक्रमण हुआ । उसके बाद करीब दो सौ वर्षों तक यह ग्रीक सत्ता के हाथ में रहा ।

सन् ११५ ई० में रोम के सम्राट हाड्रियान का यरुशलेम के यहूदियों पर कोप हुआ और उन्होंने वहाँ के एक एक यहूदी को पकड़ कर कत्ल करवा दिया । वहाँ के सब बड़े निवास मकानों और धर्म स्थानों को जमींदोज करके हलों के जरिये सारी भूमि को समतल करके अपने नाम से एक नया नगर बसा दिया और उसमें यहूदियों को आने की सख्त मनाई कर दी । घृणा प्रतिहिंसा और पैशाचिकता के ऐसे उदाहरण इतिहास में बहुत कम मिलेंगे जिसमें मनुष्यों से ही नहीं बल्कि जड़ सांस्कृतिक चिह्नों पर भी ऐसा जुल्म किया गया हो ।

सातवीं सदी में इस्लाम के सुप्रसिद्ध खलीफा हजरत उमर ने इजराइल पर हमला करके उसे रोम के पंजे से छुड़ाकर अपने शासन में मिला लिया । अरबों की यह सत्ता इस देश पर ग्यारहवीं सदी के अन्त तक कायम रही ।

इसके पश्चात् ईसा की इस पवित्रभूमि को प्राप्त करने के लिए ईसाइयों ने अरबों से सन् ११४० से १२४४ तक यूरोप की इतिहास प्रसिद्ध लड़ाइयाँ लड़ीं । उसके बाद चौदहवीं शताब्दी में प्रसिद्ध आक्रमणकारी हलाकू ने और उसके बाद में तैमूर लंग ने इसे अपने पैरों तले रौंदा ।

प्रथम युद्ध के बाद सन् १९१७ में यह प्रदेश अंग्रेजों के हाथ में आया और उन्होंने दूसरे मित्र राष्ट्रों की राय से इसे यहूदियों का धर्म देश बना दिया । दूसरे महायुद्ध के पश्चात् अंग्रेजों और अमेरिका ने मिलकर "इजराइल" नामक एक स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना कर दी ।

यद्यपि ब्रिटेन और अमेरिका ने संसार के नक्शे में इसराइल नामक स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना कर दी पर उनका यह कार्य अरब राष्ट्रों को बिलकुल पसन्द नहीं है, इसराइल के साथ इन अरब राष्ट्रों का विरोध बराबर बना हुआ है और इसी लिए अरब राष्ट्रों का एक संगठन बनाया जा रहा है। मगर मिस्र-राष्ट्र मध्य एशिया में शक्ति सन्तुलन बनाए रखने के लिए इसराइल को पूरा संरक्षण दे रहे हैं और इसी से यह राष्ट्र धीरे-धीरे अपने पैरों के बल खड़ा होने के योग्य बन रहा है।

इजाबेला

पन्द्रहवीं सदी के अन्त और सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में स्पेन की महारानी जिसके समय में यूरोप के स्पेन देश की गौरवपूर्ण उन्नति हुई।

यूरोप के अन्तर्गत स्पेन एक ऐसा देश था जिस पर दसवीं शताब्दी के पहले से ही मुसलमानी साम्राज्य स्थापित हो गया था और इसी कारण स्पेन के इतिहास का विकास ईसाई यूरोप के इतिहास की अपेक्षा स्वतंत्र रूप से हुआ। दसवीं शताब्दी में जब कि सारा यूरोप अन्धकार में डूबा हुआ था, स्पेन की अरब सभ्यता उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई थी। उस समय सारे यूरोप में 'कारडोवा' के समान सम्पन्न नगर कहीं भी नहीं था, शिक्षा के लिए इस नगर में विश्वविद्यालय था। १ सार्वजनिक स्नानागार, १ मसजिदें और ऊँचे-ऊँचे सैकड़ों 'प्रासाद' बने हुए थे।

मगर इसके साथ ही उत्तरी स्पेन के पहाड़ी देशों में कुछ ईसाई राज्य भी बचे हुए थे। सन् ९९१ तक कैस्टील ऐरेगान नेवार इत्यादि कई राज्यों का जन्म हो चुका था। और ये राज्य धीरे-धीरे क्रमशः अपनी सीमाएँ बढ़ाते जाते थे।

इजाबेला इसी कैस्टील नामक राज्य की रानी थी। और ऐरेगान का युवराज फर्डिनण्ड था। सन् १४६९ में कैस्टील की रानी इजाबेला का ऐरेगान के युवराज फर्डिनण्ड से विवाह हो गया और इस विवाह के परिणाम, यूरोप के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण हुए। इस ने सारे यूरोप में स्पेन का एक महत्वपूर्ण स्थान बना दिया।

स्पेन के उल्लेखनीय शासकों में रानी इजाबेला का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। रानी इजाबेला बड़ी चतुर, महत्वाकांक्षी और सफल शासिका थी। इसने अपने देश स्पेन का ऐसे मजबूत हाथों से निर्माण किया कि वह अगले सौ वर्षों तक यूरोप का सबसे अधिक बलशाली राज्य बना रहा।

रानी इजाबेला के द्वारा किया हुआ सबसे महत्वपूर्ण कार्य समुद्रयात्रा के द्वारा अमेरिका इत्यादि नये-नये देशों की खोज का था। मूर लोगों के अधिकार का सम्पूर्ण विनाश कर सारे मायद्वीप पर अपना एक छत्र शासन स्थापित कर लेने के तुरन्त पश्चात् रानी इजाबेला ने कोलम्बस को सहायता देकर समुद्रयात्रा पर भेजा। कोलम्बस ने अपनी यात्रा में अमेरिका को ढूँढ निकाला। वह अमेरिका से अटूट धनराशि का प्रवाह स्पेन में आने लगा। सोलहवीं शताब्दी में अमेरिका से आने वाले धन ने स्पेन को अत्यन्त उन्नतिशील देश बना दिया।

इन सब बातों के बावजूद इस काल में स्पेन में ईसाइयों के द्वारा गैर ईसाई यहूदियों और मूरों के साथ बड़े भयंकर अत्याचार होने लगे। इजाबेला ने स्पेन में इतिहास प्रसिद्ध कुनाम "इंक्विजीशन" नामक धार्मिक अदालतों की फिर से स्थापना की। इन अदालतों द्वारा हजारों मनुष्य जिन पर विधर्मी और नास्तिक होने का अभियोग लगाया जाता था जिन्दे जला दिये जाते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे सारे मूर स्पेन से निकाल दिये गये। ये लोग स्पेन में प्रथम श्रेणी के परिश्रमी और योग्य व्यवसायी थे। इसका परिणाम यह हुआ कि सोलहवीं शताब्दी में स्पेन को महान् प्रतापी राष्ट्र होने का जो गौरव प्राप्त हुआ था, वह एक शताब्दी से अधिक न ठहर सका। सन् १५ २ में रानी इजाबेला की मृत्यु हो गई।

इजियन संस्कृति

होमर के महाकाव्य 'ईलियड' में वर्णित सुप्रसिद्ध ट्राय नगर तथा क्रीट और उसके निकटवर्ती द्वीपों में प्राचीन युग में निर्मित एक सुसंगठित संस्कृति, जिसका समय ईसा

पूर्व १   वर्ष से लेकर ईसा पूर्व २   वर्ष तक माना जाता है।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी विश्व-मानव के लिए खोज और अनुसन्धान का युग है। मनुष्य की तीव्र जिज्ञासा और उसकी महती ज्ञान-पिपासा ने इस सदी में वैसे साकार रूप ग्रहण कर लिया है। जीवन के हरएक क्षेत्र में खोज का जो निरन्तर प्रयास चल रहा है, उससे मानव को प्रतिदिन ऐसी-ऐसी अद्भुत चीजें प्राप्त हो रही हैं जिनका उसे अनुमान भी न था।

पुरातत्त्व के क्षेत्र में भी मनुष्य की खोज प्रवृत्ति बहुत गहराई में घुसती चली जा रही है। जिस समय भारतवर्ष में मनुष्य की खोज प्रवृत्ति ने मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई का पता लगाया मानवीय इतिहास में एक नया अध्याय-सा हो गया। बहुत सी पुरानी निश्चित की हुई इतिहास सम्बन्धी धारणाएँ खत्म हो गईं और कई नवीन धारणाओं का जन्म हो गया। इसी प्रकार रूस के पुरातत्त्व विभागों के द्वारा भरवाई गई पतों की खुदाई में एक संस्कृति की ऐसी महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का पता लगा जिनसे प्राचीनता सम्बन्धी, मिस्र के अवशेष भी पीछे पड़ गये।

मनुष्य की इसी खोज प्रवृत्ति ने जर्मनी के रहने वाले हाइनरिख श्लीमान नामक व्यक्ति को ट्राय नगर की खोज करने को मजबूर कर दिया। हाइनरिख का जन्म जर्मनी के एक छोटे से गाँव मेकलेनबर्ग में एक गरीब परिवार में हुआ था। उसका पिता श्लीमान कथा-कहानियों का बड़ा शौकीन था और वह 'होमर' के इलियड काव्य की कहानियाँ बड़े प्रेम से अपने लड़के को सुनाया करता था। कहानी सुनते सुनते एक दिन हाइनरिख ने पूछा—"अगर प्राचीन ट्राय की दीवार इतनी चौड़ी और मजबूत थी कि शत्रुओं की मजबूत चोटों के बावजूद वर्षों तक उसका पतन नहीं हुआ तो उसके कुछ हिस्से तो अभी भी हमें खोज करने पर मिल सकते हैं?"

बस यह भावना उसके हृदय में घर कर गई सो कर गई। उसके बाद कई वर्षों तक वह गरीबी के अभाव में फँसकर इधर-उधर नौकरी करता रहा। उसके बाद उसने "नील" का व्यापार प्रारम्भ किया और उसमें बहुत धन उपार्जित किया। धन प्राप्ति के बाद वह अपने हृदय में संजोये हुए सपने को चरितार्थ करने के लिए सन् १८७० में अपने मजदूरों के साथ एशिया माइनर के "हिसारलिक" नामक स्थान पर आया और "ट्राय" नगर की खोज के लिए खुदाई आरम्भ कर दी। बहुत लम्बे परिश्रम के बाद उसका सपना सत्य हुआ और एक दिन उसे साढ़े तीन हजार वर्षों से दबी हुई ट्राय नगरी के अवशेषों का दर्शन हुआ। *उसने अपनी कल्पना में जिस समृद्धिशाली ट्राय नगरी* का चित्र बना रक्खा था वह नगरी उससे भी अधिक वैभवपूर्ण और शानदार निकली।

इसके बाद हाइनरिख श्लीमान ने इजियन समुद्र को पार करके ग्रीस में आकर प्रागैतिहासिक माइसिनी और तिरिन्थ नगरियों की खोज के लिए खुदाई प्रारम्भ करके इजियन सभ्यता के केन्द्र—इन नगरियों के अवशेष ढूँढ निकाले। पाँच हजार वर्ष पूर्व यही इजियन सभ्यता ग्रीस और एशिया माइनर के *मध्यवर्ती क्षेत्रों में फैली हुई थी।* इन्हीं द्वीपों में सबसे बड़े द्वीप क्रीट और एशिया माइनर के उपकूल में स्थित ट्राय नगरी में इस सभ्यता का चरम विकास हुआ था। अभी तक मानवीय इतिहास में जिन महान् संस्कृतियों का पता लग चुका है वह संस्कृति उनसे भिन्न और प्राचीन थी। इजियन सागर के द्वीपों में इसका विकास होने के कारण इसका नाम इजियन संस्कृति रक्खा गया।

इस खुदाई में माइसीनि युग के स्थापत्य के नमूने, संगमरमर और हाथी दाँत की कलापूर्ण चीजें, सोने और चाँदी के मनोहर आभूषण चमत्कारपूर्ण प्यालें दीवारों और बर्तनों पर अद्भुत चित्रकारी और नक्शे पाये गये हैं। इन अवशेषों से उस समय की सामाजिक स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है। मालूम होता है कि उस सभ्यता में स्त्री को भी पुरुष की तरह पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। राज-दरबार के उत्सवों और आमोद-प्रमोद में वे पुरुषों ही की तरह आजादी से भाग लेती थीं।

इस युग में क्रीट में मिनोस वंश राज्य करते थे। और क्रीट के उत्तरी तट पर बसे हुए क्नोसस नगर में उनकी राजधानी थी। अपनी बड़ी बढ़ती के समय में इन राजाओं ने क्रीट और उसके आसपास के सब द्वीपों पर

अधिकार कर लिया था। होमर के महाकाव्य इलियड में वर्णित ट्राय नगर मिनोई राजवंश का एक उपनिवेश था।

अन्त में इस शान्तिपूर्ण सभ्यता पर उत्तर से इण्डो-यूरोपीय ग्रीक जाति के लोगों का हमला हुआ और इन दुर्धर्ष लोगों के आक्रमण से यह संस्कृति हमेशा के लिए जमीन के गर्भ में समा गई। जिसके अवशेषों का उद्धार कर मानवीय इतिहास में एक नवीन अध्याय जोड़ने का श्रेय हाइनरिख श्लीमान को है।

इन अवशेषों में जिन बड़े-बड़े भवनों के खण्डहर, सोने चाँदी के आभूषण और अन्य वस्तुओं का पता लगा है उनसे मालूम होता है कि ईसा के पूर्व करीब तीन हजार वर्ष पूर्व, इस क्षेत्र में जिसमें क्रीट भी शामिल है, एक महान् संस्कृति का उदय हुआ था, जिसे मिनोई इजियायी सभ्यता कहा जाता है।

इस युग के राजा मिनोस कहलाते थे और क्रीट के उत्तरी तट पर बसे क्नोसस में उनकी राजधानी थी। मिनोई काल की बाद्यो अवस्था के समय में मिनोस राजाओं ने प्रायः सारे क्रीट और आस पास के द्वीपों पर अधिकार कर लिया। इस सभ्यता के अन्तर्गत भवन-निर्माण-कला, मिट्टी के तरह-तरह के बर्तन, तीरन्दाजार मूर्तियाँ, पत्थर के बर्तन धातुओं की चीजें इत्यादि का निर्माण मनुष्य के ज्ञान की सीमा में आ गया था और मनुष्य आराम के साथ अपना सामाजिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय के बने हुए भित्तिचित्र बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनसे भास होता है कि दरबार के आमोद प्रमोद में स्त्रियाँ उसी आजादी से भाग लेती थीं जिस आजादी से पुरुष लेते थे।

होमर के महाकाव्य इलियड में जिस ट्राय नगर पर घेरा डाला गया था, वह इसी मिनोई राजवंश का एक उपनिवेश था।

इजेकियल

यहूदी जाति के धर्मगुरु जो ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में अवतीर्ण हुए।

उस समय बेबिलोनियन साम्राज्य बड़े उत्कर्ष पर था और इसकी गृद्ध दृष्टि हमेशा जेरूसलेम और इजराइल पर रहा करती थी। ईसा से ५९८ वर्ष पूर्व बेबिलोनियन सेनाओं ने जेरूसलेम पर आक्रमण करके उसे तहस-नहस कर दिया और हजारों यहूदियों को कैद करके बाबुल में पहुँचा दिया। इजेकियल भी इन्हीं बन्दियों में थे और इसी निर्वासित अवस्था में उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया।

इन्होंने 'इजेकियल" नामक धर्मग्रन्थ की रचना की जो आज भी यहूदी लोगों का पूज्य ग्रन्थ माना जाता है।

इटपल्ली-राघवन पिल्ला

मलयालम भाषा में दुःखान्त काव्य का एक प्रसिद्ध कवि, जिसका जन्म सन् १९ ९ में और मृत्यु सन् १९३६ ई में हुई।

इटपल्ली राघवन-पिल्ला का जन्म एक गरीब घर में हुआ था। बाल्य काल में इसको कई प्रकार के कष्ट उठाने पड़े मगर संयोगवश एक सम्पन्न परिवार की महिला के प्रति उसका मन अनुरक्त हो गया। किन्तु कई कारणों से उसके साथ उसका विवाह सम्बन्ध न हो सका, इससे निराश होकर सन् १९३६ में उसने आत्महत्या कर ली।

राघवन पिल्ला की भाषा और कविता में ओज और माधुर्य भरे हुए रहते थे यद्यपि उसकी कविताएँ दुःख-पूर्ण वातावरण का अधिक निर्देश करती थीं। उसकी 'काहारिटे करघिल्लू' (मन से मरने वाली नदी का विलाप) और 'मणि नादम्' (घंटा निनाद) आदि कविता संग्रह विशेष प्रसिद्ध हैं। आदर्शपूर्ण जीवन बिताने के लिए कठोर परिश्रम करने पर भी पराजित होने वाले व्यक्ति की निराशा भरी मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब उसकी कविताओं में पाया जाता है।

इटली

यूरोप का एक देश जहाँ से प्राचीन इतिहास में प्रसिद्ध रोमन साम्राज्य का विकास हुआ। यूरोप के दक्षिण में स्थित तीन बड़े प्रायद्वीपों में बीच का प्रायद्वीप जो भूमध्यसागर के मध्य में स्थित है। इसकी आबादी चार करोड़ हजार (१९५) है। इसके प्रसिद्ध शहर रोम, जेनेवा नेपल्स, मिलान इत्यादि हैं।

यूरोप के सुप्रसिद्ध रोम साम्राज्य की बुनियाद इटली के प्रसिद्ध शहर रोम में ही रखी गई थी।

प्राचीन रोमन लोग, जिन्होंने यूनानी नगर-राज्यों को जीतकर रोमन साम्राज्य की नींव रखी थे संभवतः आर्य जाति की एक शाखा के वंशज थे। ईसा के लगभग ८०० वर्ष पूर्व रोमन लोग टाइबर नदी के पास की पहाड़ियों पर अपनी कुछ बस्तियाँ बसाए हुए थे। धीरे-धीरे ये बस्तियाँ या नगरराज्य बढ़ते बढ़ते इटली भर में फैल गये। इसकी सीमा सिसली के सामने वाले दक्षिण सिरे पर मेसीना तक पहुँच गई और इटली का ज्यादातर हिस्सा उसके अधिकार में आ गया। (रोम साम्राज्य का सिलसिलेवार इतिहास 'रोम' नाम के अन्तर्गत आगे के भाग में दिया जायेगा।)

रोमन साम्राज्य की स्थापना होने के पूर्व रोम के इस राज्य का शासन, गणराज्य के शासन से मिलता जुलता था। शासन का काम 'सिनेट' नामक एक संस्था करती थी जिसके सदस्य कुलीनवर्ग के अमीर लोग ही हुआ करते थे। उस समय रोम में गुलामी की प्रथा बड़े जोर शोर से चालू थी। गुलामों की बिक्री के लिये बड़ी बड़ी मण्डियाँ बनी हुई थीं।

जूलियस सीजर के पहले रोम के इस प्रजातान्त्रिक इतिहास में पैट्रीशियन और प्लेबियन लोगों के अधिकारों का संघर्ष सबसे अधिक महत्व रखता है। रोम के पुराने राजवंशी और सम्पन्न नागरिक जिन्हें राजकार्यों में भाग लेने का पूरा अधिकार था "पैट्रीशियन" कहलाते थे और बाहर से आकर बसने वाले नवीन मनुष्य, मजदूर, निर्धन इत्यादि लोग, जिन्हें राजकार्यों में भाग लेने का कोई अधिकार न था 'प्लेबियन' कहलाते थे। आस पास के देशों से जब लड़ाई का काम पड़ता था तब ये प्लेबियन सैनिक अपने राष्ट्र की शत्रुओं से रक्षा करते थे और जब लूट के माल का बटवारा होता तो तब पैट्रीशियन लोग उसे हड़पकर खा जाते थे। प्लेबियन लोगों को कुछ भी नहीं मिलता था।

प्लेबियन और पैट्रीशियन लोगों का यह संघर्ष कई सदियों तक चलता रहा जिसका सिलसिलेवार वर्णन 'रोम' शब्द के साथ दिया जायेगा।

प्यूनिक युद्ध

जिस समय रोम की सत्ता इटली में बढ़ रही थी, उस समय उत्तरी अफ्रीका में फिनिशियन लोगों के वंशज कार्थेज नगर के निवासी कार्थेज लोगों की ताकत बढ़ रही थी। कार्थेज लोग समुद्री ताकत और जहाज चलाने की कला में बड़े प्रवीण थे। रोम और कार्थेज की दोनों शक्तियों के बीच में केवल भूमध्य सागर का एक तंग भाग पड़ता था जो उन दोनों के संघर्ष को रोकने में असमर्थ था। परिणामस्वरूप दोनों की बढ़ती हुई नवीन शक्तियाँ रोम और कार्थेज आपस में टकराईं और इनमें तीन बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं जो इतिहास में 'प्यूनिक' युद्ध के नाम से मशहूर हैं।

इन लड़ाइयों में पहली लड़ाई ई० सन् पूर्व २६४ में दूसरी ई० सन् पूर्व २१८ में और तीसरी लड़ाई ई० सन् पूर्व करीब १५० में हुई जिसमें रोमन शक्ति ने कार्थेज शक्ति को बिल्कुल मटियामेट कर दिया और कार्थेज नगर, जो भूमध्यसागर की रानी कहलाता था बिल्कुल जमींदोज कर दिया गया। कार्थेज पर विजय प्राप्त करने के बाद रोम की शक्ति तेजी से बढ़ने लगी। स्पेन भी उसके अधिकार में आ चुका था मगर राज्य की शक्ति के विस्तार के साथ-साथ वहाँ की सीनेट का शासन कमजोर पड़ने लगा आन्तरिक विद्रोह बढ़ने लगे सेनायें शासन पर हावी होने लगीं और रोमन सेना के प्रसिद्ध सेनापति जूलियस सीजर और पाम्पी दोनों प्रतिद्वन्द्वियों के रूप में मैदान में आ गये। अन्त में सीजर ने पाम्पी को हरा दिया और वह रोमन गणतन्त्र का प्रमुख नेता बन गया। सीजर ने गाल (आधुनिक फ्रान्स) और ब्रिटेन को भी जीतकर रोम साम्राज्य में मिला लिया। इस भारी विजय से मदोन्मत्त होकर उसने रोमन साम्राज्य का ताज सिर पर रख कर सम्राट् बनने की कोशिश की। यह बात ब्रूटस को सहन न हुई जो कि गणतन्त्र का पक्षपाती था। ब्रूटस ने उत्तेजित होकर सीनेट भवन जो कि उस समय पौम्पे कहलाता था की सीढ़ियों पर जूलियस सीजर को छुरा भोंक कर मार दिया। यह घटना ई० सन् पूर्व ४४ में हुई।

मगर जूलियस सीजर की हत्या रोम में आने वाले साम्राज्यवाद से उसकी रक्षा न कर सकी और सीजर का

पोष्य पुत्र आक्टेवियस सीज़र की हत्या का बदला उचित तरह लेकर आगस्टस सीज़र के नाम से रोम की गद्दी पर बैठा और तब से 'सीज़र' शब्द का अर्थ ही सम्राट हो गया।

आगस्टस सीज़र के समय में रोम या इटली का साम्राज्य पश्चिम में स्पेन और गाल (फ्रांस) तक, पूर्व में यूनान और एशिया कोचक तक फैला हुआ था। उत्तरी अफ्रीका में मिस्र रोम का रक्षित राज्य समझा जाता था। आर्मेनिया और भूमध्य सागरीय देशों के कुछ दूसरे हिस्से भी रोमन साम्राज्य के अधीन थे।

आगस्टस सीज़र के बाद लगभग तीन सौ वर्षों तक उसके वंशज रोम साम्राज्य का शासन करते रहे, मगर इस दीर्घकालीन अवधि में बढ़े हुए ऐश्वर्य और भोग विलास के कारण रोमन जनता का जीवन ऐश्वाशी में डूबने लगा और साम्राज्य की जड़ें क्रमशः कमजोर होती गईं।

यह स्थिति देखकर ई० सन् ३२९ में रोम के तत्का-लीन सम्राट कान्स्टेन्टाइन ने रोम से बहुत दूर दरें दानि-याल के किनारे पर एशिया और यूरोप की मिली हुई सरहद पर 'कान्स्टेन्टीनोपल' नामक एक नया शहर बसाया और रोम साम्राज्य की राजधानी को वह रोम से बहुत दूर इस नगर में ले आया। मगर राजधानी के इस परिवर्तन से एक दिक्कत यह खड़ी हो गई कि इस राजधानी में बैठ कर सुदूरवर्ती पश्चिमीय साम्राज्य पर शासन करना कठिन हो गया। फलस्वरूप रोम साम्राज्य की दो राजधानियाँ बनानी पड़ीं और दोनों राजधानियों के सम्राट अलग अलग बनने लगे। इस प्रकार रोमन साम्राज्य दो भागों में विभक्त हो गया और रोम का पश्चिमी साम्राज्य बाहरी बर्बर जातियों के आक्रमणों से दिन पर दिन क्षीण होने लगा।

इसी बीच पश्चिमी रोमन साम्राज्य में धीरे धीरे एक दूसरी शक्ति उदय होकर उसे अपनी छाया में ले रही थी। यह शक्ति रोमन कैथोलिक पंथ की शक्ति थी। कैथोलिक गिर्जे के धर्माध्यक्ष पहले 'बिशप' कहलाते थे मगर अन्य गिर्जों के बिशपों से जब अपना दर्जा बड़ा हो गया तो वे 'पोप' कहलाने लगे।

सन् ३७८ ई० में गाथ नामक जर्मन जाति के लोगों से, जो कि हूणों के आक्रमण के डर से रोम साम्राज्य में आकर बस गई थी, रोमन सेनाओं का झगड़ा हुआ और उसके फलस्वरूप एड्रियानोपुल की भयंकर लड़ाई हुई जिसमें गाथ लोगों ने रोमन सेनाओं को करारी हार दी और रोम के सम्राट वालेन्स को पराजित करके मार डाला। कुछ दिनों के पश्चात् आलेरिक नामक एक जर्मन सरदार ने सेना एकत्र कर इटली पर धावा किया और सन् ४११ में रोम पर अधिकार कर लिया मगर उसने रोम की सभ्यता से प्रभावित होकर शहर या गिर्जे को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाया।

सन् ४७६ में ओडेसर नामक एक जर्मन सरदार ने रोम पर हमला करके वहाँ के सम्राट् को निकाल दिया और पश्चिमी सम्राट् के राजदण्ड और छत्र इत्यादि को लेकर उसने 'कुस्तुन्तुनिया' के पूर्वीय सम्राट् के पास भेज दिये। इस ओडेसर को गाथ जाति के सरदार थियोडोरिक ने पराजित किया और उसे मार डाला। थियोडोरिक ने पश्चिमी रोम में सम्राट की तरह ही शासन किया, मगर उसने अपने आपको सम्राट् घोषित नहीं किया। अपने सिक्कों पर उसने पूर्वीय सम्राट् की मूर्ति ही बनवाई। सन् ५२६ में इसका देहान्त हुआ।

इस समय रोम का पश्चिमी साम्राज्य कई टुकड़ों में विभक्त हो गया। फ्रान्क नामक प्रसिद्ध जाति ने गाल पर अपना राज्य जमा कर उसको फ्रान्स का नाम दिया। पूर्वीय गाथ जाति के लोग इटली पर शासन कर रहे थे। पश्चिमी गाथ जाति के लोग पहले से ही स्पेन में शासन कर रहे थे और वाण्डाल जाति के लोग उत्तरी अफ्रीका में पहुँच गये थे। इसी समय, जिस समय कि फ्रान्क जाति अपनी शक्ति को बढ़ा रही थी, धर्म की शक्ति का विस्तार हो रहा था। शुरू-शुरू में रोमन धर्म की स्थापना ईसा मसीह के प्रधान शिष्य 'सेण्ट पीटर' की स्मृति में एक विशुद्ध धार्मिक संस्था के रूप में हुई थी लेकिन आगे चलकर इस संस्था ने राजनैतिक रूप भी धारण कर लिया और सम्राटों को बनाने और बिगाड़ने में पोप लोगों का प्रधान रूप से हाथ रहने लगा और अन्त में रोम साम्राज्य की विरोधी

आक्रमणों से रक्षा करने और यूनानी चर्च के उपासक पूर्वीय रोम साम्राज्य से नाता तोड़ देने के लिये रोमन चर्च के तत्कालीन पोप लिओ तृतीय ने फ्रांक जाति के महान विजेता शार्लमेन के सिर पर रोमन साम्राज्य का ताज रखकर, रोमन साम्राज्य का सम्राट घोषित कर दिया।

सेंट पीटर के गिर्जाघर में हुई इस घटना का सारे यूरोप के इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अब जो साम्राज्य स्थापित हुआ वह यद्यपि नवीन था तथापि आगस्टस के हो बनाये हुए रोमन साम्राज्य का परम्परागत साम्राज्य समझा जाने लगा। इस घटना से एक ओर जहाँ शार्लमेन को असीमित सत्ता मिल गई वहाँ दूसरी ओर रोमन चर्च के पोप की शक्ति भी अभिवर्द्धित हो गई। इसके बाद रोम का यह साम्राज्य धर्म शक्ति और राज शक्ति का समन्वय और पोप इनकी प्रतिद्वन्द्विता का एक अखाड़ा सा बन गया। पोप की गद्दी पर ग्रेगरी महान, बोनीफेस अलेक्जेण्डर ग्रेगोरी इत्यादि कई महान व्यक्ति आसीन हुए।

पुनर्जागरण युग

पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग इटली में एक नवयुग का उदय हुआ जिसे पुनर्जागरण युग कहते हैं। इस जमाने में इटली यूरोपियन सभ्यता का केन्द्र बना हुआ था। इसके नगर विशेष कर फ्लोरेन्स वेनिस मिलान इत्यादि इतने समृद्ध तथा उन्नत हो रहे थे कि जिसका आल्पस पर्वत के दूसरे तरफ रहने वालों को ख्याल भी न था। उस समय प्राचीन यूनान की भाँति इटली के नगरों में भी छोटे छोटे राज्य थे। इनमें आपसे दल का शासन तथा शासने ही दल का प्रभाव था। ये छोटे छोटे राज्य आपस में लड़ते भी रहते थे। फ्लोरेन्स के प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ मेकियावेली ने उस समय के तत्कालीन शासकों के लिए प्रिन्स नामक एक छोटा सा राजनीति विषयक ग्रन्थ लिखा था जिसके पढ़ने से उस समय के स्वेच्छाचारी और क्रूर राजाओं की शासन प्रणाली का पूरा पता चलता है।

फिर भी इस अशान्ति के समय में भी इटली का फ्लोरेन्स नगर सभी कलाओं का केन्द्र था। इटली निवासियों के सजग तथा मर्मस्पर्शी भावों का प्रतिबिम्ब फ्लोरेन्स निवासियों में चार रूप से वर्तमान था। सम्पूर्ण इटली देश साहित्य, कला कानून तथा विज्ञान में भी रोम की प्रधानता को मानता था।

इसी युग में इटली में नये नये विद्यापीठों की स्थापना हुई तथा मारसिल मैगनस, थामस, आइक्विनस तथा रोजर बेकन के समान बड़े बड़े विद्वानों ने धर्म, विज्ञान और दर्शन पर बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे।

इसी युग के कुछ पहले इटली ने "दान्ते" और "पेट्रार्क" के समान महान कवियों को पैदा किया।

इसी युग में 'ह्यूमेनिस्ट' नामक साहित्यिकों की एक प्रणाली का इटली में जन्म हुआ। ह्यूमेनिस्टों ने शिक्षा के आदर्शों में लैटिन तथा ग्रीक साहित्य को प्रधानता देकर नवीन विचारधारा का प्रारम्भ किया, इन्होंने यहाँ के विद्यालयों में लैटिन और ग्रीक साहित्य के अध्ययन को प्रधान स्थान दिया।

सन् १४६५ में इटली में छापेखाने की कला का पहले-पहल प्रचार हुआ। इस छापे के अक्षर प्राचीन रोम के शिलालेखों के अक्षरों के सदृश थे। इटली वालों ने एक विशेष प्रकार के टाइप जो टेढ़े होते थे निकाले। ऐसे टाइपों को आजकल "इटैलिक टाइप" कहा जाता है। भवन निर्माण कला का भी इस सदी में भारी विकास हुआ। उस समय के लोग ऊँची महराबों और पत्थर की नक्काशी का उपयोग विशेष रूप से करते थे।

मूर्तिकला के अन्दर भी पीसा नगर के प्रसिद्ध मूर्तिकार "निकोला" ने भारी ख्याति प्राप्त की। चौदहवीं शताब्दी में इटली के विख्यात चित्रकार "जोटो" ने चित्रकला के विकास में बहुत उत्साह दिखलाया इससे इस कला में बड़ी शीघ्रता से विशेष उन्नति हुई।

चौदहवीं शताब्दी से इटली के साहित्य और कला में जो उन्नति हुई, वह सोलहवीं शताब्दी में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। पन्द्रहवीं शताब्दी में फ्लोरेन्स नगर कला और व्यवसाय का केन्द्र था। फ्लोरेन्स नगर के गिर्जे का काँसे का बना हुआ द्वार, जिसे गिबर्टी ने सन् १४५२ में तैयार किया था नवयुग के शिल्प के उत्कृष्ट उदाहरणों में से है। प्रसिद्ध चित्रकार माइकेल एंजेलो ने इस द्वार को स्वर्ग के द्वार की उपमा दी है।

इसी युग में रोम में पोप द्वितीय जूलियस तथा दशम लियो ने बड़े प्रयत्न से उस समय के बड़े चित्रकारों और शिल्पियों को एकत्रित करके सेंटपीटर के महान् चर्च की सजावट तथा उस गिर्जे के गुम्बद को बनाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। इसका निर्माण कार्य सन् १५०६ ई० में प्रारम्भ हुआ। यह कार्य उस समय के प्रसिद्ध कारीगर "रॉफिल" और "माइकेल एन्जलो" के निरीक्षण में प्रारम्भ हुआ और सारी सोलहवीं सदी और सत्रहवीं सदी के कुछ भाग तक चलता रहा। यह भवन क्रॉस के आकार का है और इसके गुम्बद का व्यास १३८ फुट है। क्रिश्चियन धर्म-मन्दिरों में यह सबसे अधिक विशाल है।

छापे की कला के आविष्कार के साथ ही इटली के लोगों ने समुद्र-यात्रा के अन्तर्गत भी विशेष उन्नति करना प्रारम्भ किया। इसके पहले इटली के निवासी, दक्षिणी यूरोप, उत्तरी अफ्रीका तथा पश्चिमी एशिया के अतिरिक्त दूसरे संसार के सम्बन्ध में बहुत कम जानते थे।

महाकवि दान्ते के समय में वेनिस के पोलो नामक दो व्यापारी चीन देश में गये थे। सन् १२९५ में दूसरी यात्रा के अन्तर्गत उनके साथ उनका लड़का मार्को-पोलो भी गया था बीस वर्ष तक भ्रमण करके सन् १११५ पर वापस आया उसने अपनी यात्रा का जो वर्णन लिखा है, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है। उसमें स्वर्णद्वीप जिपान्गू (जापान) तथा मसाले उत्पन्न करने वाले द्वीप मलक्का का जो वर्णन लिखा उसने यूरोप वालों को बहुत आकृष्ट और उत्साहित किया।

हम ऊपर लिख आये हैं कि साहित्य और कला के क्षेत्र में अत्यन्त विकसित होने पर भी राजनैतिक दृष्टि से इटली छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था और वे छोटे-छोटे राज्य आपस में लड़ा करते थे। नेपोलियन महान् के आक्रमण के समय जब इटली उसके अधिकार में चला गया तो उसने सारे इटली को एक संयुक्त रूप दे दिया। मगर नेपोलियन के बाद फिर उसकी हालत बहुत खराब हो गई और सन् १८१५ में वियेना की कांग्रेस में विजयी पार्टी ने इस देश के टुकड़े टुकड़े करके आपस में बाँट लिये। आस्ट्रिया ने वेनिस और उसके आस पास का बड़ा प्रान्त अपने अधिकार में कर लिया। पोप ने रोम और उसके आस पास की रियासतों को पोप का राज्य बना लिया। नेपल्स और दक्षिणी इटली को मिला कर एक बोरबन राजा के अधिकार में दे दिया। इस प्रकार देश के टुकड़े टुकड़े हो गये और इन छोटे छोटे शासकों ने जनता पर बड़े बड़े अत्याचार करना शुरू किये।

इन अत्याचारों की प्रतिक्रिया जनता में बड़ी तेजी से हुई और जनता के अन्दर से इतिहास-प्रसिद्ध "जिसेप मेजिनी" नामक एक तेजस्वी और क्रान्तिकारी युवक प्रकट हुआ। जिसने सन् १८३१ में "यंग इटली" नामक एक संगठन किया। जिसका उद्देश्य सारे इटली देश में एक गणतन्त्र राज्य की स्थापना करना था। इस कार्य के लिये उसे बरसों तक बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े। सन् १८४८ ई० में मेजिनी ने रोम जाकर वहाँ के पोप को निकाल दिया और तीन आदमियों की एक समिति बना कर इटालियन गणराज्य की घोषणा कर दी। इस गणराज्य पर चारों तरफ से आस्ट्रिया, फ्रान्स और नेपल्स के द्वारा हमले होने लगे मगर इसी समय रोम के गणराज्य की तरफ से लड़ने वाला महान् सेनापति गेरिबाल्डी आगे आया। उसने अपने स्वयंसेवकों की सहायता से आस्ट्रिया और फ्रान्स को कुछ समय तक आगे न बढ़ने दिया, मगर अंत में फ्रान्स की संगठित शक्ति के सम्मुख रोमन गणतन्त्र की हार हुई और फ्रान्स वालों ने पोप को फिर से लाकर रोम की गद्दी पर बिठा दिया।

मगर मेजिनी और गेरिबाल्डी इन विपरीत घटनाओं से निराश नहीं हुए। वे अपना प्रचार और प्रयत्न पूरी तेजी के साथ आगे बढ़ाते रहे। हालाँकि दोनों के स्वभाव और आदर्शों में अन्तर था। मेजिनी एक विचारक और राजनीतिज्ञ श्रेणी का व्यक्ति था जबकि गेरिबाल्डी एक सैनिक प्रकृति का और गुरिल्ला युद्ध का विशेषज्ञ था। मगर इटली की आजादी की लगन में दोनों का हृदय समान था। इसी समय पीडमायट के राजा विक्टर इमानुएल का प्रधानमन्त्री काबूर भी मेजिनी की इस लड़ाई में शामिल हुआ मगर इसका उद्देश्य इन दोनों से बिल्कुल भिन्न था। वह इटली में गणतन्त्र की बजाए अपने राजा इमानुएल को इटली का बादशाह बनाना चाहता था।

सन् १८५९ में जब काबूर के षड़यंत्र से फ्रांस और आस्ट्रिया दोनों देश आपस में लड़ रहे थे गेरिबाल्डी ने अपने एक हजार सैनिकों के साथ बिना किसी से सलाह किये, नेपल्स और सिसली पर फौजी आक्रमण कर दिया। यद्यपि दुश्मनों की संख्या गेरिबाल्डी के स्वयं सेवकों से अधिक थी, मगर गेरिबाल्डी के सैनिकों की संगठन कुशलता और जनता की सद्भावना से उन्हें एक के बाद दूसरी विजय प्राप्त होती गई। गेरिबाल्डी की कीर्ति चारों तरफ फैल गई और उसके नाम के जादू से आकर्षित होकर हजारों स्वयंसेवक उसके झण्डे के नीचे आ गये।

अन्त में गेरिबाल्डी के सैनिक साहस और वीरता तथा मेजिनी के आदर्शवाद और राजनीतिज्ञता तथा काबूर की कूटनीतिज्ञता से सन् १८६१ ई० में इटली का राष्ट्र विदेशी शासन से मुक्त हो गया और पीडमाण्ट का राजा विक्टर इमानुएल इटली का बादशाह बना दिया गया।

मगर इससे मेजिनी के गणतन्त्र का स्वप्न पूरा न हुआ फिर भी इतना अवश्य है कि विक्टर इमानुएल का राज्य एक वैधानिक राज्य था।

इतने पर भी इटली का नाम यूरोप के आधुनिक इतिहास में विशेष आगे नहीं रहा। यूरोप की दूसरी शक्तियाँ इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रान्स, आस्ट्रिया उससे बहुत आगे बढ़ गये और इटली दूसरी श्रेणी की शक्तियों में हो गया।

प्रथम महायुद्ध के शुरू होने के पूर्व इटली भयंकर आर्थिक संकट में फँसा था। सन् १९११–१२ में टर्की के साथ उसका युद्ध हुआ और उस युद्ध की जीत के फल स्वरूप अफ्रीका के त्रिपोली उपनिवेश पर उसका अधिकार हो गया मगर फिर भी उसकी अन्तरंग स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। सन् १९१४ में जब कि महायुद्ध शुरू हुआ पहले इटली जर्मन गुट के साथ रहा मगर बाद में कुछ अधिक प्रलोभन दिये जाने पर वह जर्मन गुट से निकल कर एंग्लो-फ्रान्स गुट में शामिल हो गया।

प्रथम महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रों की विजय हो गई मगर फिर भी इटली की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। उसकी अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। मजदूरों में असन्तोष फैल रहा था जिसके परिणाम स्वरूप सन् १९२ में धातु का काम करने वाले पाँच-लाख मजदूरों ने "काम रोको" हड़ताल कर दी और उन कारखानों पर अधिकार करके उन्हें समाजवादी ढंग पर चलाने का प्रयत्न किया। उस समय इटली में समाजवादी दल का काफी जोर था। मजदूर दलों के सिवाय कई नगर-पालिकाओं की बागडोर भी उसके हाथ में थी।

इसी समय बेनीतो मुसोलिनी नामक व्यक्ति ने फासिस्ट दल की स्थापना करके बेकार लोगों को इस दल में भर्ती करना शुरू किया और उसके दल ने समाजवादी आन्दोलन को दबाना शुरू कर दिया। इटली की नियमित सेना भी 'फासिस्ट' लोगों की तरफ बहुत झुकी हुई थी और उसके सेनापतियों को मुसोलिनी ने अपनी तरफ मिला लिया था।

अन्त में सन् १९२२ ई० में नियमित सेना के सेनापतियों द्वारा संचालित इन फासिस्ट दलों ने रोम पर चढ़ाई कर दी। उसकी शक्ति को देखकर इटली के बादशाह ने मुसोलिनी को अपना प्रधानमंत्री बना दिया। जिसके फल-स्वरूप मुसोलिनी इटली का पूर्ण सत्ताधारी निरंकुश शासक बन गया और इटली के परराष्ट्र विभाग, गृह विभाग, उपनिवेश विभाग युद्ध विभाग श्रम विभाग इत्यादि सारे विभागों का वह मालिक बन बैठा। बादशाह और पार्लिमेंट शक्तिविहीन हो गये। विरोध करने वाले असंख्य लोगों को उसने जेल में डाल दिया और निर्वासित कर दिया।

इन्हीं दिनों जर्मनी में 'हिटलर' का 'नात्सीवाद' प्रकट हो रहा था और स्पेन में जनरल 'फ्रान्को' का उदय हो रहा था। ये तीनों तानाशाह मिलकर सारे संसार पर विजय प्राप्त करने के स्वप्न देख रहे थे और अपनी शक्तियों का अनियन्त्रित विस्तार कर रहे थे। जिसके परिणाम स्वरूप दूसरे महायुद्ध की प्रचण्ड विभीषिका शुरू हुई और उसमें हिटलर और मुसोलिनी का बुरी तरह से पतन हुआ।

महायुद्ध के समय इटली ने जो आशायें बाँध रखी थीं, वे पूरी नहीं हुईं। इस युद्ध में भी वह एक बीभत्स पराजय स्वीकृत हुआ और अन्त में जर्मनी के साथ-साथ इसका भी बुरी तरह से पतन हुआ। सन् १९४८ में नये विधान के अनुसार इटली ने राजतंत्र को समाप्त कर अपने यहाँ प्रजातंत्र की घोषणा कर दी।

इटालियन साहित्य

इटली देश का साहित्य जिसको महाकवि दान्ते और पेट्रार्क के समान साहित्यकारों ने अपनी महान् प्रतिभा से सम्पन्न किया।

समस्त विश्व साहित्य में नवीनता, प्रौढ़ता और मधुर अभिव्यक्ति के लिए इटालियन साहित्य भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

जिस समय इंग्लैण्ड और फ्रान्स 'शतवर्षीय युद्ध' में फँस कर पारस्परिक कलह में अपनी शक्तियों का विसर्जन कर रहे थे और जर्मनी के छोटे छोटे राज्य बिना नेता के अपने मरनों को हल कर रहे थे, उस समय इटली यूरोप की सभ्यता साहित्य और कला का केन्द्र बना हुआ था। पन्द्रहवीं सदी के मध्य से सोलहवीं सदी के मध्य तक वहाँ के साहित्य में विशेषरूप प्रगति हुई, उसके कारण यह युग रैनेसान्स या पुनर्जागरण युग कहलाता है।

तेरहवीं सदी में फ्लोरेन्स नगर इटली में साहित्य, कला और धर्म का केन्द्र बना हुआ था। तेरहवीं सदी के मध्य से चौदहवीं सदी के मध्य तक यह नगर अपने पूरे उत्कर्ष पर था। इसी युग में अर्थात् सन् १२६५ और १३२१ ई के बीच महाकवि दांते ने अवतीर्ण हो कर इटालियन साहित्य के गौरव को बढ़ाया। दांते की महान प्रतिभा देश और काल के आधारों की उपेक्षा करती हुई समस्त विश्व साहित्य को आलोकित कर रही है। दांते की कल्पना को प्रेरणा देने में उसकी प्रेमिका बेआत्रीचे का विशेष हाथ था। समकालीन संस्कृति और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर रची हुई रचनाओं से उसने इटालियन साहित्य को एक नया मोड़ दे दिया। उसकी रची हुई रचनाओं में 'वीता नोवा', अपने आदर्शवादी प्रेम विषयक गीतों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इस काव्य ग्रन्थ में संगीत आश्चर्य, कल्पना इत्यादि सभी विषयों का समन्वय है। उसके अन्य ग्रन्थों में 'कोमेडिया' एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। दांते ने अपने जीवन में इतिहास धर्म और दर्शन का जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया था, वह सब इस ग्रन्थ में उसने उँडेल दिया है। यह काव्य समस्त संसार के काव्य-जगत् में एक उच्च-शिखर की तरह जग-मगा रहा है। इसलिए इस कृति की महानता को प्रदर्शित करने के लिए इस ग्रन्थ के पीछे 'दीवीना' (महान) नाम जोड़ दिया गया है। 'दीवीना कोमेडिया' आज भी इटालियन साहित्य में प्रकाश स्तंभ का काम कर रहा है।

फ्रांचेस्को पेट्रार्क

महाकवि दांते के पश्चात् इटालियन साहित्य को उन्नता के शिखर पर पहुँचाने वाला महाकवि पेट्रार्क हुआ। इसका समय सन् १३०४ से १३७४ ई तक है। इसने इटालियन साहित्य के अन्दर पुरानी शैली को हटा कर यथार्थ अनुभूति पर अवलंबित सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को अपनी कविता में स्थान दिया। पेट्रार्क ने लेटिन साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था। इस महाकवि को भी अपने काव्य की प्रेरणा 'लाउरा' नामक अपनी प्रेमिका से मिलती थी। उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कांजो-निएरे' उसके प्रेम का इतिहास कहा जाता है। उसके अन्य काव्यों में 'रीमे', 'त्रियोंफी' इत्यादि काव्य बहुत प्रसिद्ध हैं। उसकी भाषा बहती हुई अलंकृत और भावुकता से ओत-प्रोत मालूम होती है। उसकी रचनाओं में एक स्वर्ग कलाकार के दर्शन होते हैं।

बोकाचो

महाकवि पेट्रार्क के साथ ही इटालियन साहित्य को सम्पन्न करने वाला महान साहित्यकार बोकाचो माना जाता है। यद्यपि इसने पद्य रचनाएँ भी की हैं, पर इसकी प्रसिद्धि एक गद्यकार की तरह ही अधिक हुई है। यद्यपि आज के युग में उसका गद्य कुछ बोझिल और अस्वाभाविक सा लगता है पर ग्रंथों में उसके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'देकामेरोन' (१० दिन) की बड़ी ख्याति हुई और पिछली सदियों में संसार की कई भाषाओं में उसके अनुवाद होते रहे। इटालियन-गद्य में उसकी यह कृति असाधारण और महान मानी जाती है। इस ग्रन्थ में सौ कहानियाँ हैं जो १० दिनों में कही गई हैं। फ्लोरेंस नगर में भयंकर महामारी के कारण भागकर वहाँ की सात नवयुवतियाँ और तीन युवक एक गाँव घर में जाकर ठहरते हैं और वहीं पर इन कहानियों को कहते-सुनते हैं। ये

१७ वीं सदी का समय इटालियन-साहित्य के लिए दुर्भाग्यपूर्ण समय रहा। इसमें भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से कुरुचिपूर्ण साहित्य का अधिक उत्पादन हुआ। इस कुरुचि को मिटा कर साहित्य में सुरुचि और सम्पन्नता पैदा करने के लिए कुछ विद्वानों ने सन् १६६ में 'आर्केडिया एकेडेमी' के नाम से एक साहित्यिक संस्था की स्थापना की। यह एकेडेमी तत्कालीन इटली की एक प्रभावशाली संस्था बन गई। इस एकेडेमी के लेखकों ने गद्य को अलंकार और परम्परा के बोझों से मुक्त करके साहित्य में एक सुरुचिपूर्ण नवजीवन का संचार किया।

१८ वीं सदी का अन्त होने तक इटालियन साहित्य पर फ्रेंच बुद्धिवादी विचारधारा जिसे 'इल्युमिनिज्म' कहते हैं—का बड़ा प्रभाव पड़ा। मगर फ्रेंच शब्दों मुहावरों और वाक्यरचना का अन्धानुकरण होने के कारण इटालियन भाषा के स्वच्छन्द विकास पर इसका बड़ा बुरा असर पड़ा।

१९ वीं सदी के प्रारम्भ में जिस समय इटली का प्रसिद्ध नेता 'ग्वीसेप मेजिनी' इटली की जनता में राजनैतिक चेतना फूँक रहा था, उस समय इटालियन साहित्य में भी राष्ट्रीय चेतना की भावनाओं का संचार हुआ। 'जीउस्ती' (Giuseppe Giusti) की कविताओं ने जनता में देश प्रेम की ज्योति जगा दी। इसी सदी में इटालियन साहित्य में यथार्थवादी आन्दोलन का प्रचलन हुआ। इस आन्दोलन के प्रवर्तक 'अलेसेन्ड्रो मेन्जोनी' और 'लुईजो कापुआना' थे। मेन्जोनी का 'बेट्रोथेड' उपन्यास, इस दिशा का प्रतीक था।

बीसवीं सदी में इटली के अन्दर मुसोलिनी के नेतृत्व में 'फासिस्ट' विचारधारा का धीरे धीरे विकास होने लगा। उस स्थिति का अध्ययन करके 'बेनेडेटो क्रोचे' ने 'एस्टेटिका' नामक ग्रन्थ के द्वारा इटालियन साहित्य का मार्ग दर्शन किया। यह ग्रंथ सन् १९ २ से १९४१ तक इटालियन दर्शन और साहित्य का प्रकाशस्तंभ बना रहा। इतिहास, दर्शन और साहित्य—सभी क्षेत्रों में उनके सिद्धांत अत्यन्त महत्वपूर्ण समझे जाते हैं।

इस प्रकार उत्थान और पतन की अनेक घाटियों में से निकलता हुआ इटालियन साहित्य अपनी प्रगति कर रहा है।

इंडिका (Taa Indika)

मेगास्थनीज के द्वारा लिखा हुआ भारत-यात्रा का वर्णन।

मेगास्थनीज 'सिल्यूकस' का राजदूत बनकर सम्राट् चन्द्रगुप्त की सभा में ५ वर्ष तक रहा था। इसी समय में उसने टा-इंडिका के नाम से भारतवर्ष का सुप्रसिद्ध विवरण लिखा। यही विवरण इस समय मौर्य साम्राज्य और तत्कालीन भारत के इतिहास की आधार-शिला माना जाता है। दुर्भाग्यवश यह पुस्तक पूरे रूप में प्राप्य नहीं है। उसके कुछ अंश प्लिनी (Pliny), स्ट्रेबो (Strabo) इरैटोस्थनीज (Eratosthenes) इत्यादि यूनानी तथा रोमन लेखकों ने अपने अपने ग्रंथों में उद्धृत किये हैं।

इन्हीं बिखरे हुए उद्धरणों को एकत्रित करके डा० स्वानबेक ने उन्हें संग्रह के रूप में प्रकाशित किया जो 'मेगास्थनीज इंडिका' के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी के आधार पर सर विलियम्स जोन्स ने मौर्य-साम्राज्य के इतिहास पर प्रकाश डाला है।

मेगास्थनीज के वर्णन में तत्कालीन सम्राट् का नाम सैण्ड्राकोटस (Sandrakottos), उसकी राजधानी पाली-बोथा और वहाँ के जनपद का नाम प्रेसियायी लिखा है।

मेगास्थनीज लिखता है—'कि प्रेसियायी शक्ति और प्रताप में समस्त दूसरे राजाओं से बढ़े चढ़े हैं। उनकी राजधानी पालीबोथा में है जो एक बहुत बड़ा और धनाढ्य नगर है। यहाँ पर इरन्नाबोअस और गंगा की धारा मिलती है। यह नगर ८० स्टेडिया की लम्बाई और १५ स्टेडिया की चौड़ाई में बसा हुआ है एक खाई उसके चारों ओर से घेरे हुए है। जो छः सौ क्यूबिट्स चौड़ी और ३० क्यूबिट गहरी है। इसके चारों ओर काठ की मजबूत दीवार बनाई गई है, जो ५७० बुर्जों से मंडित है और उसमें ६४ फाटक लगे हुए हैं। इसका राजा अपने अधिकार में ६ लाख पैदल ३ हजार सवार और ६ हजार हाथी रखता है जिससे उसकी शक्ति और सम्पत्ति का कुछ अनुमान किया जा सकता है।"

"इसके पश्चात् उक्त भूभाग में 'मोनेडीज (Monedes) और 'सुआरी (Suari) जाति के लोग रहते हैं, जिनके देश में मेलियस पर्वत है मेनीम नदी

पालिब्रोथ से होकर मेथोरा (Methora) और कैरीसोबोरा नगरों के बीच गंगा में गिरती है। इंडस प्रेसियाई की सीमा को घेरे हुए है जिसकी पर्वतस्थली पर चोनों का निवास है।

"इस को यहाँ के निवासियों के द्वारा सिंडस कही जाती है, काकेशस पर्वत की उस शाखा से जो पेरोपेमीसस कहलाती है निकल कर बहती है। इसमें १९ नदियाँ मिलती हैं। यह एक अत्यन्त बड़ा टापू बनाती है।"

सर विलियम जोन्स ने मेगास्थनीज के सैंड्राकोटस को चन्द्रगुप्त मौर्य पालीब्रोथा को पाटलीपुत्र प्रेसियाई जनपद को मगध, और इरन्नाबोआस नदी को सोन मानकर मौर्य साम्राज्य की कल्पना कर डाली है। उन्होंने महेन्द्र पहाड़ को पारसनाथ पहाड़ माना है और उसके आस पास के प्रदेश को मोनोकेली तथा सुआरियों की निवास भूमि सिद्ध किया है और इसी पृष्ठभूमि में मौर्य साम्राज्य के इतिहास की रूपरेखा बनाई है।

मगर मेगास्थनीज के सम्बन्ध में आधुनिक के इतिहासकारों में एक ऐसी विचारधारा प्रचलित हुई है जो कुछ मजबूत प्रमाणों के आधार पर सर विलियम जोन्स के द्वारा निकाले हुए तथ्यों को गलत साबित करती है। इस विचारधारा की मुख्य दलीलें इस प्रकार हैं—

१—मेगास्थनीज के कथनानुसार सिकन्दर के आक्रमण के समय, पालीब्रोथ में सैंड्रोकोट्स राजा था। यदि पालिब्रोथ को पाटलिपुत्र और सैंड्रोकोट्स को चन्द्रगुप्त मानते हैं तो उपरोक्त सारे तथ्य गलत हो जाते हैं क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त मौर्य्य सिंहासन पर बैठा ही नहीं था। उस समय मगध के सिंहासन पर महानन्द आसीन था।

२—मेगास्थनीज लिखता है कि जोमेनीज (जमुना) नदी पालिब्रोथ से होकर मेथोरा (मथुरा) और कैरीसोबोरा नगरों के बीच गंगा में गिरती है। ऐसी स्थिति में जब कि जमुना नदी का पाटलिपुत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है पालिब्रोथ पाटलिपुत्र कैसे माना जा सकता है।

३—मेगास्थनीज ने लिखा है कि पालिब्रोथ चारों ओर काठ की दीवार से घिरा हुआ है और वहाँ के मकान मिट्टी और ईंटों से बने हुए हैं। मगर पाटलिपुत्र या उसके आस पास, इतिहास के किसी भी काल में काठ की दीवारें बनाने का उल्लेख नहीं पाया जाता। इससे पालिब्रोथ और पाटलिपुत्र को एक मानना इतिहास संमत नहीं हो सकता।

४—सर विलियम जोन्स ने 'इरन्नाबोआस' नदी को सोन नदी मान कर भी भूल की है, क्योंकि मेगास्थनीज ने सोनस नदी का अलग उल्लेख किया है।

५—मेगास्थनीज ने स्पष्ट लिखा है कि प्रेसियाई की सीमायें सिंधु नदी के तट से मिलती थीं, मगर मगध देश की सीमा कभी भी सिंधु तट से मिलती दिखाई नहीं दी।

६—मेगास्थनीज ने अपने वर्णन में कहीं भी चाणक्य या कौटिल्य का वर्णन नहीं किया है जो कि उस समय का एक समर्थ पुरुष था। अगर मेगास्थनीज चन्द्रगुप्त के दरबार में होता तो उसके ग्रन्थ में चाणक्य का वर्णन जरूर आता।

उपरोक्त दलीलों के साथ और कई दलीलों के आधार पर इतिहास की यह विचारधारा मेगास्थनीज के आधार पर सर विलियम जोन्स के निकाले हुए तथ्यों को गलत मान कर नीचे लिखे तथ्य प्रस्तुत करती है।

१—मेगास्थनीज द्वारा वर्णित सैण्ड्रोकोट्स चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं बल्कि भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित मालव देश के राजा पर्वतेश्वर का पुत्र "चन्द्रकेतु" है। सैण्ड्रोकोटस शब्द "चन्द्रगुप्त" की अपेक्षा "चन्द्रकेतु" शब्द से अधिक मिलता हुआ है। सिकन्दर के समय से इसका समय भी मेल खाता है। इसका दूसरा नाम मलयकेतु भी था उस समय यह उत्तर पश्चिमी भारत का एक प्रबल शासक बन गया था।

एरियन लिखता है कि मेगास्थनीज सेण्ड्रोकोट्स की राजसभा में रहता था। यह इण्डस का सबसे बड़ा राजा था। मेगास्थनीज पोरोस (पोरस) की राजसभा में भी रहता था। पोरस सेण्ड्रोकोट्स से भी बड़ा था। इससे पता चलता है कि सेण्ड्रोकोटस पोरस की अपेक्षा कुछ कम शक्तिशाली था यह चन्द्रगुप्त कैसे हो सकता है—

मुद्राराक्षसकार विशाखदत्त के अनुसार उस समय पर्वतेश्वर और उसके पुत्र मलयकेतु (चन्द्रकेतु) की

इस विशाल जहाज में ४६   व्यक्तियों के रहने का स्थान है। इनमें से १५   व्यक्ति जहाज का संचालन करते हैं। और ११   व्यक्तियों में उच्च अधिकारी तथा वाहाजी रहते हैं। इण्टर प्राइज को चलाने के लिए आठ अणुभट्टियाँ हैं जो इतनी शक्ति पैदा कर सकती हैं जिससे यह जहाज बिना दुबारा ईंधन लिए सारी पृथ्वी के २० चक्कर लगा सकता है।

इतने बड़े जहाज को समुद्र में कैसे उतारा जाय यह भी एक समस्या थी। साधारण जहाज लकड़ी की पटरियों पर फिसला कर समुद्र में उतारा जाता है मगर इण्टर प्राइज जैसे भारी जहाज के लिए यह सम्भव नहीं था। इसलिए जिस गोदी में उसका निर्माण किया गया उसी में गहरा पानी भर कर इसे उतारा गया।

तेज हवाई उड़ान में १६   मील प्रति घण्टे का रिकार्ड कायम करने वाले हवाई जहाज तथा दूसरे कई हवाई जहाज इण्टर प्राइज के काफिले में शामिल हैं। १८   माख की गति से उड़ान करने वाले हवाई जहाजों के तीन काफिले हाइड्रोजन बमों के साथ इण्टर प्राइज पर हमेशा उड़ान के लिए तैयार रहते हैं। हवाई जहाजों को जहाज पर से हवा में उछालने के लिए चार यन्त्र लगाए गये हैं। ये यन्त्र इतने शक्ति सम्पन्न हैं कि विशाल काय "बैटिलेक" कार को तेज मील ऊँचे उछाल सकते हैं।

इण्टर प्राइज हर पन्द्रह सेकण्ड में एक हवाई जहाज को उड़ाने की शक्ति रखता है।

यह जहाज विस्फोटकों से पूर्ण रूप से सुरक्षित है। दरवाजे खिड़कियाँ इस तरह बन्द किये जा सकते हैं कि रज भीतर न जा सके।

इण्टर ल्यूड

लघिम और कॉमेडी नाटिकाओं का अंग्रेजी नाम। सोलहवीं शताब्दी से पहले तक अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार की छोटी-छोटी नाटिकाओं का प्रचार था। ये इण्टर ल्यूड उस समय की जनता के लिए मनोरंजन का एक प्रधान साधन बन गई थीं। खासकर ट्यूडर राजवंश के शासन काल में सामन्त परिवारों में इनका बहुत प्रचार हो गया था। हेनरी मेडवाल की लिखी हुई "फुलजेन्स एण्ड लूक्री" और हेवुड द्वारा लिखित "दी फोर पी' ज़" इत्यादि नाटिकाएँ उस समय के जन समाज में बहुत प्रिय हो गई थीं। अंग्रेजी साहित्य के नाटकों के विकास में ये इण्टरल्यूड अपना खास महत्व रखती हैं। एक तरह से अंग्रेजी नाटक साहित्य की इन्हें प्रारम्भिक आधार शिलायें कहा जा सकता है।

इटरुस्कन

प्राचीनकाल में रोम नगर के समीप बसनेवाली एक शक्तिशाली जाति। ईसा के पूर्व सातवीं सदी में इस जाति के लोग बड़े बलवान थे और रोम के साथ इनका हमेशा संघर्ष होता रहता था।

इटरुस्कन राष्ट्र एक सुधरा हुआ राष्ट्र था। कला कौशल और व्यापार में इसने काफी उन्नति कर ली थी। इसके पास बहुत से जहाज भी थे। उस समय भूमध्य सागर पर इटरुस्कन और कार्थेज वालों का ही अधिकार था। इस कारण कार्थेज वालों से भी इन लोगों की हमेशा लड़ाइयाँ होती रहती थीं। इनकी राजधानी "वी" नगर में थी। एक बार रोमन लोगों को इस जाति ने हरा दिया था। इन्होंने रोमन लोगों के हथियार भी छीन लिए, जिससे फिर वे ऊँचा सिर न कर सकें, मगर रोमन लोगों ने संगठित हो आरीसिया के मैदान में इटरुस्कन लोगों को हरा दिया।

ईसा से ४८० वर्ष पूर्व ग्रीक लोगों ने इटरुस्कन जाति को हरा दिया इसी समय इटली के उत्तर में रहने वाली गाल जाति ने भी इस देश पर हमला किया और दक्षिण की ओर से रोम की सेना ने भी इटरुस्कन की राजधानी "वी" को घेर लिया। मगर "वी" नगर का कोट इतना मजबूत था कि वह रोम वालों से नहीं टूट सका। कई बरसों तक रोम की सेना इस नगर पर घेरा डाले पड़ी रही मगर किले को नहीं तोड़ सकी। अन्त में शीघ्र विजय प्राप्त करने के लिए रोम के लोगों ने "मार्कस फ्यूरियस कैमिलस" को अपना डिक्टेटर चुना।

उदासीनता का वातावरण पैदा हो गया। लोगों को इस बात का विश्वास हो गया कि अब अंग्रेजी राज्य से टक्कर ले कर विजय प्राप्त करना किसी प्रकार सम्भव नहीं है और किसी भी प्रकार के विद्रोह की कामना करना, अब मूर्खता पूर्ण है।

दूसरी तरफ सम्राज्ञी विक्टोरिया की घोषणा ने लोगों को यह भी विश्वास दिला दिया कि उनकी धार्मिक भावनाओं सामाजिक उन्नति और शिक्षा की व्यवस्था में सरकार पूर्णतः सहयोग करेगी।

इस प्रकार शान्ति और सुव्यवस्था की इन ठण्डी थपकियों में भारत की जनता उसी प्रकार गर्क हो गई जिस प्रकार एक अफीमची अफीम के नशे में गर्क होकर खर्राटे लेता हुआ आनन्द का अनुभव करता है। यहाँ का सार्वजनिक जीवन भंग हो चुका था। लोग यह समझने लग गये थे कि भारत में अंग्रेजी राज्य 'ईश्वर की एक देन' है। और सारा राष्ट्र अंग्रेजी राज्य की छत्र-छाया में अपने दैनिक कार्य शान्तिपूर्वक करने लग गया था।

फिर भी अंग्रेजी राज्य का कानून अंग्रेजों और भारतीयों के बीच से विभिन्नता की दीवार को नहीं मिटा सका था। शासक और शासितों के संघर्ष समय समय पर होते रहते थे जिसमें भारतीयों को हर समय बड़ा अपमान सहन करना पड़ता था। पोलिस के अत्याचार भी अनन्त असह्य हो रहे थे।

ये सब चीजें भारतवासियों के अतिरिक्त कई विचार शील अंग्रेजों को भी वेदना पहुँचाती थीं। वे समझते थे कि जनता के साथ यदि उचित व्यवहार नहीं रखा तो विद्रोह के बीज फिर पनप सकते हैं। ऐसे विचार-शील लोगों में सुप्रसिद्ध अंग्रेज ए. ओ. ह्यूम भी एक थे। उन्होंने सर आकलैण्ड कोलविन को एक पत्र लिखकर उसमें भारतीय शासन की अव्यवस्थाओं का उल्लेख किया और इस बात की भी चेतावनी दी कि यदि सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो विद्रोह की आग फिर भड़क सकती है। सन् १८८० के प्रारम्भ के समय इसी प्रकार के आसार नजर आने लग गये थे।

सर विलियम वेडरबर्न ने लिखा है कि—"एक और तो वे अशुभ और प्रतिगामी कानून जिनके द्वारा समाचार पत्रों की, समाप्त करने की यूनिवर्सिटियों की और विश्व विद्यालयों की स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध लगाये गये दूसरी ओर पुलिस का भयंकर दमन—इन कारणों से लार्डलिटन के समय कोई भयंकर विस्फोट होना ही चाहता था कि मि. ह्यूम को ठीक मौके पर सूझी और उन्होंने इस काम में हाथ डाला।"

इसी समय मि. ह्यूम को अचानक कहीं से सात ऐसी मिसलें प्राप्त हुईं जिनमें भिन्न भिन्न प्रान्तों के अन्दर असन्तोष की भावनाएँ फैलने का वर्णन था। भिन्न भिन्न धर्माचार्यों और महन्तों का उनके शिष्यों के साथ जो पत्र व्यवहार हुआ था उसके आधार पर ये रिपोर्टें तैयार की गई थीं।

इस सारे वातावरण को देखकर मि. ह्यूम के दिमाग में यह ख्याल आया कि यदि भारतवासियों की एक राष्ट्रीय सभा स्थापित करके उसी के द्वारा सरकार का ध्यान इस पक्षपात पूर्ण अव्यवस्था की ओर आकर्षित किया जाय तो विशेष अच्छा रहेगा।

इसी भावना से प्रेरित हो मि. ह्यूम ने १ मार्च सन् १८८३ को कलकत्ता विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों के नाम एक पत्र लिखा यह पत्र भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में एक ऐतिहासिक पत्र था। इसका अन्तिम भाग इस प्रकार है—

"देश के विचारशील नेता भी या तो सब के सब ऐसे निकम्मे लोग हैं या अपनी स्वार्थ-साधना में वे ऐसे निमग्न हैं कि अपने देश के लिए कोई भी साहसपूर्ण काम नहीं कर सकते तब कहना ही होगा कि वे सही और वाजिब तौर पर ही दबाकर रक्खे गये हैं और पददलित किये गये हैं। क्योंकि वे इससे ज्यादा अच्छे व्यवहार के योग्य ही नहीं हैं। प्रत्येक राष्ट्र ठीक-ठीक वैसी ही सरकार प्राप्त कर लेता है जिसके वह योग्य होता है। यदि आपके समाज के देश के चुनिंदा लोग हैं और जो ऊँची शिक्षा प्राप्त हैं वे भी यदि अपने सुखचैन और स्वार्थों को छोड़कर अधिकाधिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए लड़ने का निश्चय नहीं कर सकते तो उस हालत में यह मानना ही होगा कि हम जो कि आपके मित्र हैं, गलती पर हैं और जो हमारे विरोधी

है, उनका कहना ही सही है। तब मानना होगा कि वाइसराय लार्ड रिपन की आपके हित के सम्बन्ध में जो उच्च आकांक्षाएँ हैं वे निष्फल होंगी। तब यह भी मानना होगा कि उन्नति की तमाम आशाएँ अब नष्ट समझना चाहिए और यदि यही बात सच है तो फिर न तो आपको इस बात पर मुँह ही बनाना चाहिए और न शिकायत ही करना चाहिए कि हम जंजीरों में जकड़ दिये गये हैं और हमारे साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता है।"

"जो मनुष्य होते हैं वे जानते हैं कि काम कैसे करना चाहिए। इसलिए आगे से आप इस बात की शिकायत मत करना। आपकी बनिस्बत अंग्रेजों को बड़े-बड़े ओहदों पर क्यों रक्खा जाता है क्योंकि आपमें वह सार्वजनिक सेवा का भाव नहीं है जो सार्वजनिक हित के सामने व्यक्तिगत ऐशो आराम को नगण्य बना देता है। देशभक्ति का वह भाव नहीं है जिस भाव ने अंग्रेजों को वैसा बना दिया है जैसे वे आज हैं।

"जिस दिन आप इस चिरन्तन सत्य को समझ लेंगे कि बलिदान और निःस्वार्थ भावना ही सुख और स्वातंत्र्य के अचूक पथ प्रदर्शक हैं, उसी दिन आपकी प्रगति का मार्ग खुल जायेगा।"

इसके पहले ही सन् १८७६ में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के नेतृत्व में बंगाल में इण्डियन एसोसिएशन नामक प्रान्तीय संस्था की स्थापना हो चुकी थी और सन् १८८४ में कलकत्ते के अलबर्ट हॉल में एक राजनैतिक परिषद् की आयोजना हुई जिसमें सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने एक अखिल भारतीय राजनैतिक संस्था की आवश्यकता पर जोर दिया। इसके दूसरे ही वर्ष कलकत्ते में अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना हुई।

इसी वर्ष अर्थात् सन् १८८५ में मि ह्यूम शिमला में तत्कालीन वाईसराय लार्ड डफरिन से मिले और उन्होंने उनके सामने एक ऐसे अखिल भारतीय संगठन की योजना पेश की जिसमें भारत के हर एक प्रान्त के शिक्षित और राजनैतिक पुरुष वर्ष भर में एक बार, एक प्लेट फार्म पर इकट्ठे हों और सामाजिक विषयों पर चर्चा कर लिया करें। जिस प्रान्त में यह सभा हो वहीं का गवर्नर उसका सभापति बना करे।

लार्ड डफरिन ने मि ह्यूम की योजना को बड़े ध्यान से सुना, सुनकर उन्होंने कहा कि मेरी समझ में यह तजवीज कि प्रान्त का गवर्नर उसका सभापति, उपयोगी नहीं होगी। क्योंकि उसके सामने लोग अपने विचार दिल खोलकर जाहिर नहीं कर सकेंगे। इसलिए ऐसी दशा में यही अच्छा होगा कि यहाँ के राजनीतिज्ञ प्रतिवर्ष अपने सम्मेलन किया करें और सरकार को बताया करें कि शासन में क्या-क्या त्रुटियाँ हैं और उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

मार्च १८८५ में यह तय हुआ कि बड़े दिनों की छुट्टियों में देश के सब प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय। इस सभा के लिए एक गश्ती चिट्ठी जारी की गई।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

२८ दिसम्बर १८८५ को दिन के बारह बजे बम्बई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज के भवन में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में मि ह्यूम उमेशचन्द्र बनर्जी नरेन्द्रनाथ सेन कलकत्ता वामन सदाशिव आपटे और गोपालगणेश आगरकर पूना दादाभाई नौरोजी काशीनाथ त्र्यंबक तेलंग, फिरोजशाह मेहता दिनशाएदलजी वाचा, नारायण गणेशचन्दावरकर, एस सुब्रमण्य ऐयर, पी सुब्रमण्य ऐयर, एम वीर राघवाचार्य, इत्यादि देश के अनेक गणमान्य नेता अनेक पत्र पत्रिकाओं के सम्पादक और कुछ सरकारी अधिकारी भी सम्मिलित थे।

इस प्रथम अधिवेशन के सभापति बंगाल के श्री उमेशचन्द्र बनर्जी बनाये गये। श्रीमती एनीबीसेण्ट ने इस अधिवेशन का बयान करते हुए लिखा है कि "वह एक बड़ा गम्भीर और ऐतिहासिक दृश्य था। जिसमें मातृभूमि के द्वारा सम्मानित अनेकों व्यक्तियों में प्रथम पुरुष ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा में अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया।"

कांग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान दिलाते हुए, अध्यक्ष ने कांग्रेस का उद्देश्य इस तरह बतलाया।

(१) साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों में देश हित के लिए लगन से काम करने वाले लोगों का संगठन करना और पारस्परिक मित्रता बढ़ाना।

(२) समस्त देश प्रेमियों के अन्दर वंश धर्म और प्रान्त सम्बन्धी संकीर्ण संस्कारों को मिटाना तथा राष्ट्रीय एकता की उन भावनाओं का परिवर्धन करना जो लार्ड रिपन के चिरस्मरणीय शासन काल में उद्भूत हुईं।

(३) आवश्यक और महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्नों पर चर्चा करके उनके सम्बन्ध में शिक्षित लोगों की जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों, उनका उपयोग करना। उन तरीकों और दिशाओं का निश्चय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश हित के कार्य कर सकें।

इस प्रथम अधिवेशन में कुल ९ प्रस्ताव पास हुए। पहले प्रस्ताव के द्वारा भारत के शासन-कार्य की जाँच करने के लिए एक 'रॉयल कमीशन' बैठाने की माँग की गई।

दूसरे प्रस्ताव के द्वारा 'इण्डिया कौंसिल' को तोड़ देने की राय दी गई।

तीसरे प्रस्ताव के द्वारा 'व्यवस्थापिका सभाओं' में अधिकतर सदस्यों के बजाय चुने हुए सदस्यों को रखने की और प्रश्न पूछने का अधिकार देने की सिफारिश की गई।

सातवें प्रस्ताव में अपर बर्मा को भारत में मिला लेने की तजवीज का विरोध किया गया।

इसी प्रकार और भी कुछ प्रस्ताव पास हुए।

यहाँ पर यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि अपनी स्थापना के बाद कांग्रेस का यह अखिल भारतीय संगठन विकास के अनेक परिवर्तनों में से होकर निकला है। सबसे पहले ब्रिटिश सरकार की न्याय प्रियता पर विश्वास रखते हुए, वैध और नम्र आन्दोलन के द्वारा आवश्यक शासन सुधार के लिए, सरकार से प्रार्थना करना यही इसका प्रधान उद्देश्य था।

सन् १८८५ से १९०५ तक कांग्रेस इसी प्रकार प्रार्थना-सभा की तरह काम करती रही। सन् १८९६ के अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष पद से मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी ने अपने भाषण में कहा था कि अमुक कौम से बढ़कर ज्यादा ईमानदार और ज्यादा मजबूत कौम इस दुनिया के पर्दे पर कहीं नहीं है।

सन् १८९८ की मद्रास कांग्रेस में अध्यक्ष के पद से श्री आनन्द मोहन बसु ने जोर देकर कहा था कि भारतवर्ष का शिक्षित वर्ग इंग्लैण्ड का दोस्त है दुश्मन नहीं। इंग्लैण्ड के सामने जो महान कार्य है, उसमें भी हम उसके स्वाभाविक मित्र और सहायक हैं।

सन् १९११ में जब 'शाही घोषणा' के द्वारा बंग भंग रद्द कर दिया गया, तब भी अम्बिकाचरण मजूमदार ने कहा था कि ब्रिटिश राज के प्रति कृतज्ञता से भरा प्रत्येक हृदय आज एक तान से धड़क रहा है, वह ब्रिटिश राजनीतिज्ञता के प्रति कृतज्ञता और नवीन विश्वास से परिपूर्ण हो रहा है।

मतलब यह कि अपने जन्म के प्रारंभिक २० वर्षों तक कांग्रेस अंग्रेजी राज्य के प्रति पूर्ण वफादार रहते हुए शासन सुधार की माँगें करती रही। स्वयं सरकार को भी कांग्रेसी नेताओं की वफादारी में कोई सन्देह नहीं था और जब जब हिन्दुस्तानियों को ऊँचे पद पर स्थान देने का अवसर आता था तब वे पद कांग्रेस के नेताओं में से चुनकर ही उन्हें दिये जाते थे। सर सुब्रह्मण्य ऐय्यर, श्री वी कृष्ण स्वामी ऐय्यर, सर शंकर नायर, श्री एलेशन श्री टी वी शेषगिरि ऐय्यर, श्री पी आर सुन्दरम् ऐय्यर—कांग्रेस के ये सभी नेता मद्रास हाईकोर्ट के जज बनाये गये थे और इनमें से दो तो व्यवस्थापिका कौंसिल के सदस्य भी बनाये गये थे। बम्बई में श्री बदरुद्दीन तैय्यबजी और नारायण चन्दावरकर, जो क्रमशः सन् १८८७ की मद्रास कांग्रेस और १९ की लाहौर कांग्रेस के सभापति हुए थे, बम्बई हाईकोर्ट के जज बनाये गये। कलकत्ते में श्री ए चौधरी, जिन्होंने 'बंग भंग' के विरुद्ध होने वाले आन्दोलनों में प्रमुख भाग लिया था लगभग उसी समय कलकत्ता हाईकोर्ट के जज बना दिये गये।

तदुपरान्त में सर तेजबहादुर सप्रू जैसे प्रभावशाली व्यक्ति को भारत सरकार का ला मेंबर बनाया गया। बिहार के लीडर हसन इमाम पटना हाईकोर्ट के जज बन गये और सच्चिदानन्द सिंह को बिहार की कार्यकारिणी कौंसिल का सदस्य बना दिया गया।

इस प्रकार सन् १९०५ के पहले तक कांग्रेस ब्रिटिश सरकार में विश्वास रखते हुए वैध उपायों के द्वारा शासन-सुधार प्राप्त करने वाली एक संस्था थी। इसके नेता सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी गोपाल कृष्ण गोखले, दीनशा वाचा, जी सुब्रमण्य ऐय्यर, काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग उमेशचन्द्र बनर्जी बदरुद्दीन तैय्यब जी इत्यादि व्यक्ति थे।

लेकिन इन्हीं दिनों सौभाग्य या दुर्भाग्य से लार्ड कर्जन ब्रिटिश शासन का प्रतिनिधि होकर वाइसराय के रूप में सन् १८९९ में भारत में आया। उसने आने के साथ ही भारतीय लोगों के चरित्र की निन्दा करते हुए बतलाया कि भारतीयों का वातावरण, परम्परा से मिले हुए उनके संस्कार और उनके पालन पोषण का ढंग ही ऐसा है जिससे कि वे ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत किसी उच्च पद की जिम्मेदारी संभालने के योग्य नहीं हैं।

आते ही उसने कलकत्ता कारपोरेशन के अधिकारियों में कमी की। सरकारी गुप्त समितियों का कानून बनाया। विश्वविद्यालयों को सरकारी नियंत्रण में ले लिया और अंत में बंगाल के दो टुकड़े करके उसने सारे देश में एक तूफान खड़ा कर दिया।

लार्ड रिपन के समान उदार वाइसराय की मीठी थपकियों से, भारत जिस मोह निद्रा में अभिभूत हो गया था, लार्ड कर्जन ने अकुंश की नोक लगाकर उसे एकदम जगा दिया।

सन् १९ से १९०५ तक के समय का भारतीय इतिहास बहुत नाजुक दौर में से गुजर रहा था। एक तरफ राष्ट्र में आत्म-गौरव और जागृति की लहर अधिकाधिक फैल रही थी और दूसरी ओर सरकार की दमन नीति भी उत्तरोत्तर कठोर और नंगी शक्ल में सामने आ रही थी।

इन सब घटनाओं से जनता में एक व्यापक और प्रभावशाली आन्दोलन उत्पन्न हुआ। स्थान-स्थान पर सभाएँ, जुलूस, सभा तथा प्रदर्शन किये जाते थे और सरकार धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ कर रही थी। सम्पूर्ण भारत ने बंगाल के सवाल को अपना सवाल बना लिया। इसी समय सन् १९०६ की कलकत्ता कांग्रेस में उसके अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने सबसे पहले 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया। इस शब्द के प्रयोग ने झकझोरे लोगों की रोष ज्वाला को और भी प्रचण्ड कर दिया।

श्री विपिनचन्द्र पाल १९०५-६ से ही अपने साप्ताहिक पत्र न्यू इण्डिया के द्वारा राष्ट्रीय जागृति का प्रशंसनीय और शानदार काम कर रहे थे। वे अब सम्पूर्ण देश में घूम-घूम कर राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय शिक्षा और नवचैतन्य का जोर शोर से प्रचार करने लगे।

सन् १९०७ में राष्ट्र ने केवल प्रस्ताव पास करना छोड़कर विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा के क्रियात्मक प्रस्तावों पर भी अमल किया।

बहिष्कार का झण्डा सबसे पहले ७ अगस्त को फहराया गया। कई सालों तक यह दिन इतवार उतने ही जोश और खरोश के साथ मनाया जाता रहा जितने जोश से १६ अक्टूबर को बंग भंग का विरोधात्मक दिन मनाया जाता था।

इसी समय बंगाल के दो व्यक्तियों ने भारतीय इतिहास के रंगमंच पर आकर बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया। इनमें से पहले विपिनचन्द्र पाल और दूसरे अरविन्द घोष थे, जो वर्षों तक भारत के राजनैतिक आकाश में जाज्वल्य सितारे की तरह चमकते रहे।

इन्हीं दिनों बंगाल और महाराष्ट्र में कुछ क्रान्तिकारी संगठनों की स्थापना भी हुई, जिन्होंने आतंकवादी तरीकों से ब्रिटिश सरकार का विरोध करना प्रारम्भ किया। 'अलीपुर षड़यन्त्र केस' में श्री अरविन्द घोष भी पकड़ लिये गये। उन पर हत्या और राजद्रोह के भयंकर आरोप लगाये गये मगर उस समय के प्रमुख और तरुण वकील देशबन्धु चितरंजन दास की तर्कपूर्ण पैरवी से वे उस केस से छूट गये। अरविन्द घोष 'वन्दे मातरम्' नामक अंग्रेजी पत्र का सम्पादन करते थे। अंग्रेजी भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार था और उनके लेखों में लोकमत को उत्तेजित करने की भारी शक्ति थी। बंगाल के राजनैतिक जागरण में वे वहाँ के एक प्रभावशाली नेता थे।

नरम और गरम दल का प्रादुर्भाव

हम ऊपर लिख आये हैं कि अभी तक कांग्रेस की सारी गतिविधि नम्र निवेदन के द्वारा अंग्रेज सरकार से शासन सुधार माँगते रहने की रही थी, मगर अंग्रेज अधिकारियों की मनमानी और इस लोगों की बेबसी को देख कर कुछ ऐसे लोग भी थे जिनका खून जोश खाता था और अपने देश के लिए कुछ कर जाने की भावना उनके अन्दर ज़ोर पकड़ रही थी।

ऐसे लोगों में 'लोकमान्य तिलक' का नाम सबसे आगे था। वे सन् १८८९ से ही कांग्रेस को इस बात के लिए प्रेरित कर रहे थे कि कोई कड़ा कदम उठाया जाय, मगर अंग्रेजी सरकार का रौब और दबदबा उस समय ऐसा छाया हुआ था कि लोगों को कुछ करने की हिम्मत नहीं पड़ती थी, मगर लोकमान्य तिलक को उनकी वीरोचित भावनाएँ बराबर प्रेरणा दे रही थीं, उन्होंने महाराष्ट्र में 'शिवाजी जयन्ती' का उत्सव बड़े समारोह से मनाना आरम्भ किया और इसी सिलसिले में उन्हें सरकार ने सन् १८९७ में अठारह महीने की सजा देकर जेल भेज दिया मगर कुछ प्रभावशाली लोगों के निवेदन पर साल भर में ही उन्हें छोड़ दिया गया।

लेकिन इन घटनाओं ने तिलक के अन्दर जाग्रत ज्योति को और भी प्रखर कर दिया और उन्होंने कांग्रेस के अन्दर अपना एक 'गरम दल' स्थापित करने का प्रयत्न किया।

सूरत कांग्रेस

सन् १९०७ में सूरत की कांग्रेस के अन्तर्गत यह मतभेद बड़े उग्ररूप से सामने आया। कांग्रेस २७ दिसम्बर को दिन में २॥ बजे शुरू हुई और डॉ० रासबिहारी घोष का नाम सभापति पद के लिए प्रस्तावित किया गया मगर उसी समय सभा में इतना शोरगुल हुआ कि अधिवेशन दूसरे दिन के लिए स्थगित हो गया। इस कांग्रेस में १६ प्रतिनिधि आये थे।

दूसरे दिन लोकमान्य तिलक ने कुछ भाषण करने के लिए सभापति के पास स्लिप भेजी, मगर सभापति ने उन्हें बोलने की इजाज़त नहीं दी। इस पर सारी सभा में भारी शोर-गुल हुआ और किसी ने एक जूता उठाकर फेंका, जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से टकराता हुआ, फिरोज़ शाह मेहता को लगा। उसके बाद तो मानों लड़ाई ही शुरू हो गई। लोग कुरसियाँ उठा उठा कर फेंकने लगे और आपस में लड़ने लगे।

मगर इसका नतीजा कुछ भी नहीं हुआ। 'नरम दल' वालों का उस समय इतना बहुमत था कि गरम दलवालों की एक न चली और नरम दलवालों ने कांग्रेस का ऐसा विधान बना लिया जिसमें गरम दलवाले घुस ही न सकें।

इसके कुछ समय पश्चात् लोकमान्य तिलक छः साल के लिए जेल चले गये और कांग्रेस पर नरम दलवालों का ही अधिकार रहा।

होमरूल लीग की स्थापना

सन् १९१५ में कांग्रेस के इतिहास ने एक नई करवट ली। इस समय दो बड़े व्यक्तित्व देश के राजनैतिक मञ्च पर एक साथ प्रकट हुए। सन् १९१४ के जून में लोकमान्य तिलक मण्डाले जेल से छूट कर आ गये और दूसरी ओर सुप्रसिद्ध अंग्रेज महिला श्रीमती एनीबीसेण्ट भी थियासोफिकल सोसायटी के धार्मिक क्षेत्र को छोड़कर भारत के राजनैतिक आन्दोलन में कूद पड़ीं। श्रीमती एनीबीसेण्ट अपने साथ नये विचार, नई योग्यता नये साधन, नया दृष्टिकोण और संगठन का एक विस्तृत नया दल लेकर कांग्रेस में प्रविष्ट हुईं। उनका व्यक्तित्व पहले ही से सारे संसार में प्रसिद्ध हो चुका था। पूर्व और पश्चिम के देशों में उनके हज़ारों अनुयायी थे। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपने पीछे इतने प्रबल भक्तों अनुयायियों और व्यापक कार्यशक्ति के होते हुए, उन्होंने भारतीय राजनीति को एक नया जीवन प्रदान किया।

इसी समय श्रीमती एनीबीसेण्ट ने नरम और गरम दल तथा तिलक और गोखले को मिलाने का एक और प्रयत्न किया मगर लोकमान्य तिलक की उग्रनीति से गोखले तथा नरम दल के अन्य नेता शंकित थे। इसलिए उन्होंने कांग्रेस में तिलक को मिलाना पसन्द नहीं किया।

इस पर सन् १९१६ में लोकमान्य तिलक ने अपनी स्वतंत्र संस्था "होमरूल लीग" के नाम से स्थापित की।

इसमें उनको जोसेफ बैप्टिस्टा के रूप में एक बहुत ही उत्तम सहयोगी मिल गये और उन्हीं के सभापतित्व में पूना में, उनके दल के लोगों की एक परिषद् हुई, जिसमें एक हजार प्रतिनिधि सम्मिलित हुए और जनता को 'होमरूल" का एक नया नारा, युद्ध-घोष के रूप में मिल गया।

इसके छह मास के पश्चात् श्रीमती एनी बीसेण्ट ने भी अपनी 'होमरूल लीग' स्थापित की।

लोकमान्य की होमरूल लीग ने कांग्रेस के 'ध्येय' को स्वीकार किया। इस समय उनकी आयु साठ वर्ष की हो गई और जनता ने इस जयन्ती के उपलक्ष में उन्हें एक लाख रुपये की थैली भेंट की। इस रुपये को लोकमान्य ने राष्ट्र कार्य के लिए अर्पित कर दिया, मगर इसी समय से लोकमान्य का स्वास्थ्य खराब रहने लगा और वे भारत में अधिक प्रचार-कार्य नहीं कर सके।

इसी समय श्रीमती एनी बीसेण्ट ने "न्यू इण्डिया" नामक एक दैनिक पत्र और "कामन वील" नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाल कर अपने 'होमरूल' आन्दोलन का प्रारम्भ किया। होमरूल की आवाज को उन्होंने बुलन्द बना दिया इसके लिए देश के एक छोर से दूसरे छोर तक उन्होंने तूफान मचा दिया। उन्होंने अपनी होमरूल लीग की शाखा लन्दन में भी स्थापित कर तेजी से काम प्रारम्भ किया।

साम्प्रदायिक प्रश्न

इण्डियन नेशनल कांग्रेस के इतिहास में हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता के प्रश्न ने शुरू से ही अवरोध डालना प्रारम्भ किया और यह अवरोध अन्त तक कायम रहा। कांग्रेस ने ज्योंही धीरे धीरे भारत राजनैतिक रूप ग्रहण करना प्रारम्भ किया त्योंही अंग्रेज अधिकारियों के कान खड़े हो गये और उन्होंने इसके प्रतिकार में मुसलमानों को कांग्रेस के विरुद्ध भड़काना प्रारम्भ किया। सन् १८८८ में जब सर ऑकलैण्ड कॉलविन संयुक्त प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर थे उस समय यह दिखाने की कोशिश की गई थी कि मुसलमान कांग्रेस के विरोधी हैं।

वास्तव में लार्ड मिण्टो के जमाने में मुसलमानों के पृथक प्रतिनिधित्व के प्रश्न ने जोर पकड़ा। मिण्टो की शासन सुधार-योजना में मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन संघ की योजना रक्खी गई थी, परन्तु साथ ही संयुक्त निर्वाचन में भी राय देने का उनका हक ज्यों का त्यों कायम रक्खा गया था। सबसे मजेदार बात यह थी कि मताधिकार की कसौटी भी हिन्दू और मुसलमानों के लिए अलग अलग रक्खी गई थी। १ रुपये साल की आमदनी वाला एक मुसलमान मतदाता हो सकता था मगर किसी भी गैर मुस्लिम के लिए आमदनी की यह मर्यादा तीन लाख रक्खी गई थी। मुसलमान ग्रेजुएट को मतदाता बनने के लिए यह काफी था कि उसे 'ग्रेजुएट' हुए तीन साल हो गये हों, परन्तु गैर मुस्लिम के लिए यही अवधि तीस साल की रक्खी गई थी। इस प्रकार पक्षपात करके अंग्रेज अधिकारी मुसलमानों की पृथक्तावादी मनोवृत्ति को बराबर उभारते रहे।

लखनऊ कांग्रेस

अंत में सन् १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस में कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने मिलकर साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न को हल करके अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी। इस नियम के अनुसार मुसलमानों को पंजाब में ५ प्रतिशत बंगाल में ४ प्रतिशत संयुक्त प्रान्त में ३ प्रतिशत, बिहार में २५ प्रतिशत, मध्यप्रदेश में १५ प्रतिशत मद्रास में १५ प्रतिशत और बम्बई में एक तिहाई प्रतिनिधित्व दिया गया। यही हिन्दू मुसलमानों की वह सम्मिलित योजना थी, जो बाद में 'मान्टफोर्ड रिपोर्ट' में ज्यों की त्यों जोड़ दी गई।

मांटेगू चेम्सफोर्ड योजना

सन् १९१८ में मांटेगू चेम्सफोर्ड शासन-सुधार योजना प्रकाशित हुई। यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा तैयार किये गये राजनैतिक लेखों के समान भारत को स्वशासन देने के सम्बन्ध में एक बयान था, जिसमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में लखनऊ कांग्रेस की योजना को ज्यों का त्यों मान लिया गया था। इसमें सुधारों के मार्ग में आने वाली रुकावटों का स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया गया था फिर भी इस बात पर जोर दिया गया था कि सुधार अवश्य मिलने चाहियें।

इस रिपोर्ट पर विचार करने के लिए २९ अगस्त १९१८ को बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन बुलाया गया। सर इमामहसन इस अधिवेशन के अध्यक्ष और विट्ठल भाई पटेल स्वागताध्यक्ष थे। इस कांग्रेस में १८७१ प्रतिनिधि आये थे। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी दिनशा वाचा भूपेन्द्र नाथ बसु इत्यादि नरम दल के लोग इसमें नहीं आये थे। चार दिनों के वाद-विवाद के पश्चात् कांग्रेस ने इस रिपोर्ट की विस्तार पूर्वक आलोचना करते हुए इससे असहमति घोषित कर दी और यह घोषणा की, कि भारत अवश्य ही उत्तरदायी शासन के योग्य है तथा माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट में इसके सिवाय जो बात नहीं है उसका विरोध किया।

रौलेट एक्ट

११ नवम्बर १९१८ को अस्थायी संधि के बाद महायुद्ध का अन्त हुआ। इस युद्ध में मित्र राष्ट्रों को पूर्ण सफलता मिली और प्रेसिडेण्ट विल्सन, मि लॉयड जार्ज और अन्य राजनीतिज्ञों ने आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की घोषणा कर दी। इसी समय पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में देहली में कांग्रेस का ३३ वाँ अधिवेशन हुआ मगर इस अधिवेशन गतिविधि से देश को संतोष नहीं हुआ।

इतने ही में फरवरी १९१९ में भारतीय धारासभा के क्षेत्र में बम विस्फोट करने वाले 'रौलेट एक्ट' ने अपना दर्शन दे दिया। इस बिल को बनाने के लिए करीब साल भर पहले सरकार ने सर सिडनी रौलेट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी, जिसके सदस्य कुमार स्वामी शास्त्री और प्रभासचन्द्र मित्र भी थे। भारतवर्ष में उस समय किस प्रकार और किस हद तक क्रान्तिकारी आन्दोलन और षड्यंत्र कैसे हुए हैं और उनका मुकाबिला करने में क्या दिक्कतें पेश आती हैं उनकी छानबीन करके यदि किसी कानून को बनाने की जरूरत हो तो उसकी रिपोर्ट यह कमेटी सरकार को पेश करे। कमेटी ने जाँच करके अपनी रिपोर्ट सरकार के पास भेज दी थी।

६ फरवरी १९१९ को विलियम वीन्सेण्ट ने बड़ी कौंसिल में दोनों रौलट बिलों को पेश किया। एक बिल का उद्देश्य था भारत-रक्षा कानून के समाप्त होने पर देश, में जो स्थिति पैदा हो उसका मुकाबिला करना। इस बिल की धाराओं के अनुसार क्रान्तिकारियों के मुकदमे तीन जजों की एक अदालत में तुरन्त निर्णय के लिए पेश करना, इस अदालत के फैसले पर कोई अपील न होना पुलिस के अपराधी की तुरन्त जमानत तलब करना, उसे किसी स्थान विशेष में रहने से या किसी विशिष्ट कार्य्य के करने से रोक दिया जाना या गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर दिया जाना — इत्यादि ऐसी धाराएँ थीं जिन्हें कोई जाग्रत जाति सहन नहीं कर सकती थी।

इनमें से पहला बिल मार्च १९१९ में पास हो गया और दूसरा वापस ले लिया गया।

महात्मा गांधी का प्रवेश

इसी समय महात्मा गांधी ने एक अत्यन्त प्रभावशाली शक्ति के रूप में कांग्रेस के रंगमंच पर प्रवेश किया।

वे अपने साथ एक नया सिद्धान्त एक नयी स्फूर्ति और एक ऐसी नवीन योजना लेकर आये, जिसका राजनैतिक क्षेत्र में समग्र मानवीय इतिहास में गांधीजी के पहले कभी प्रयोग नहीं हुआ था। वह सिद्धान्त सत्य, अहिंसा और मग्न सक्रिय प्रतिरोध का था। उन्होंने घोषणा कर दी कि यदि सरकार ने रौलेट-कमीशन की सिफारिशों को बिल का रूप दे दिया तो वह सत्याग्रह की लड़ाई छेड़ देंगे। इसके लिए महात्मा गांधी ने सारे देश का दौरा किया और सारे देश में उनका बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ।

१८ मार्च १९१९ को उन्होंने रौलेट बिल के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित करवाया वह इस प्रकार है।

"सच्चे हृदय से मेरा यह मत है कि रौलेट-कमेटी द्वारा प्रस्तुत इण्डियन क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेण्ट बिल नं० १ और क्रिमिनल लॉ इमरजेन्सी पॉवर बिल नं० २ अन्यायपूर्ण है और न्याय तथा स्वाधीनता के सिद्धान्तों के घातक हैं इनसे व्यक्ति के उन मौलिक अधिकारों का दमन होता है जिन पर भारत और स्वयं राज्य की रक्षा निर्भर है। अतः हम शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि इन बिलों को कानून का रूप दिया गया तो जब तक इन्हें वापस न लिया जायेगा तब तक हम इन तथा अन्य कानूनों को भी, जिन्हें कि इसके बाद नियुक्त की जाने वाली कमेटी उचित सम

कमेटी, मानने से नम्रतापूर्वक इन्कार कर देंगे। हम इस बात की भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस युद्ध में हम ईमानदारी के साथ सत्य और अहिंसा का पालन करेंगे और किसी के जान-माल को नुकसान नहीं पहुँचायेंगे।"

महात्मा गांधी ने उपवास के साथ आन्दोलन का श्रीगणेश किया। ३० मार्च १९१९ का दिन हड़ताल ईश्वर प्रार्थना, प्रायश्चित तथा सार्वजनिक सभाएँ करने के लिए निश्चित किया गया मगर बाद में यह तारीख बदलकर ६ अप्रैल कर दी गयी, परन्तु इस परिवर्तन की सूचना ठीक समय पर दिल्ली नहीं पहुँची। इसलिये वहाँ ३० मार्च को ही स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में जुलूस निकला और हड़ताल हुई। एक गोरे सिपाही ने स्वामी श्रद्धानन्द को गोली मारने की धमकी दी तो स्वामी जी छाती खोलकर उसके सामने खड़े हो गये और उन्होंने कहा—"लो, मारो गोली" इससे गोरा सैनिक लज्जित हो गया मगर उसी दिन देहली रेलवे स्टेशन पर उपद्रव हो जाने से गोली चलाई गई और कई आदमी मारे गये तथा घायल हो गये।

गांधी जी की घोषणा होते ही सारे देश में एक ऐसी बिजली की लहर दौड़ गई जैसी इससे पहले कभी नहीं दौड़ी थी। मगर जनता के लिए गांधीजी का यह आन्दोलन एकदम नया था, वह इसके मूलभूत सिद्धान्तों को ठीक से समझ नहीं सकी और उत्साह तथा जोश में देश के कई भागों में हिंसात्मक उपद्रव प्रारम्भ हो गये जिसमें पंजाब सबसे आगे था।

पंजाब का शासक उस समय माइकेल ओडवायर था वह आन्दोलन को सख्ती के साथ दमन करने पर तुला हुआ था। अप्रैल की दस तारीख को सबेरे ही अमृतसर के जिला मजिस्ट्रेट ने डॉ॰ किचलू और सत्यपाल को पकड़ लिया। इस घटना से सारे अमृतसर में सनसनी फैल गई और लोगों का एक जुलूस जिला मजिस्ट्रेट के यहाँ इस बात का पता लगाने के लिए चला। रास्ते में सेना के सिपाहियों ने उसे रोक लिया और गोली चला दी।

इसके बाद तो सारे अमृतसर में जगह जगह उपद्रव प्रारम्भ हो गये। नेशनल बैंक की इमारत को आग लगा दी और उसके गोरे मैनेजर को मार डाला। कुछ मिलाकर भीड़ ने ५ अंग्रेजों को मार डाला और रेलवे गोदाम तथा कई सरकारी इमारतों को जला दिया।

इन घटनाओं से सरकार एकदम क्षुब्ध हो गई और उसी दिन अर्थात् १० अप्रैल को ही स्थानीय अधिकारियों ने शहर को सेना के अधिकार में दे दिया।

फिर तो वहाँ विनाश का तांडव नृत्य मच गया। सेना का प्रधान अधिकारी जनरल डायर था।

पंजाब हत्याकाण्ड

१३ अप्रैल को वर्ष प्रतिपदा का दिन था। इस दिन अमृतसर के जलियानवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा करने की घोषणा की गई और वहाँ एक भारी सभा हुई। अमृतसर के बीच में जलियानवाला बाग एक खुला हुआ स्थान है, जो चारों ओर मकानों से घिरा हुआ है। इसमें घुसने और निकलने का सिर्फ एक ही फाटक है जो बहुत छोटा है।

बाग में जब करीब बीस हजार आदमी इकट्ठे हो गये तब जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया। उसके पीछे १०० सशस्त्र भारतीय सिपाही और पचास गोरे सिपाही थे। जिस समय वे लोग घुसे उस समय हंसराज नामक एक व्यक्ति भाषण कर रहा था। स्वयं जनरल डायर के बयान के अनुसार उसने लोगों को तीतर-बीतर होने के लिए तीन मिनट का समय दिया और तीन मिनिट पूरे होने से पहले ही गोलियाँ चलाना प्रारम्भ कर दिया। गोलियाँ तब तक चलती रहीं जब तक कारतूस खतम नहीं हो गये। कुल सोलह सौ फायर किये गये जिनसे सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ४०० व्यक्ति मारे गये और दो हजार के करीब घायल हुए। अमृतसर में बिजली और पानी का कनेक्शन तोड़ दिया गया। जिससे रोशनी और पानी के अभाव में त्राहि त्राहि मच गई।

गुजरानवाला और कुसूर में भी बहुत भयंकर खून खराबी हुई। वहाँ पर कर्नल जॉनसन नामक सैनिक शासक था उसने यह हुक्म जारी किया था कि कोई भी हिन्दुस्तानी किसी अंग्रेज को देखे तो उसे सलाम करे, अगर सवारी में जा रहा हो या घोड़े पर हो तो नीचे उतर कर उसे

सलाम बजाना चाहिए। इस हुक्म का पालन न करने वाले लोगों के सार्वजनिक रूप से कोड़े लगाये गये। इस प्रकार और भी अनेक भयानक अत्याचार हुए।

इसी प्रकार की दुर्घटनायें अहमदाबाद कलकत्ता इत्यादि देश के दूसरे स्थानों पर भी हुईं।

उत्साह और जोश तो सारे देश में बहुत पैदा हुआ मगर उसकी गति गलत दिशा में हो गई यह देखकर महात्मा गांधी को बड़ा धक्का लगा उन्होंने उसी समय अपनी गलती मंजूर करते हुए कहा—

"मैंने हिमालय के समान भारी भूल की है जिसकी वजह से उपद्रवी लोगों को जो कि सच्चे सत्याग्रही नहीं थे, उत्पात करने का मौका मिल गया। अतः एक तरफ तो उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन को वापस ले लिया और दूसरी तरफ घोषणा की कि मैं शान्ति स्थापन के काम में हर तरह सरकार की मदद करने को तैयार हूँ।"

इसी वर्ष अर्थात् सन् १९१९ में कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ। यह कांग्रेस भिन्न भिन्न विचारधाराओं के संघर्ष का एक अखाड़ा बन गई। इस कांग्रेस में देश के राजनैतिक रंगमंच पर एक और विशिष्ट प्रतिभा श्री चित्तरंजनदास के रूप में प्रकट हुई। शासन सुधार के बारे में जो प्रस्ताव अमृतसर कांग्रेस में रक्खा गया था उसका मसविदा देशबन्धु दास का ही बनाया हुआ था।

गांधी जी और मालवीयजी उस समय चाहते थे कि सरकार लोगों के साथ जितना सहयोग करना चाहे उतना ही सहयोग करने की नीति पर सुधारों को कार्यान्वित किया जाय, मगर देशबन्धु दास और उनके साथी उग्रनीति के समर्थक थे।

इसके सिवा गांधीजी कांग्रेस में ऐसा प्रस्ताव लाना चाहते थे कि पंजाब और गुजरात में जो मारकाट लोगों की तरफ से हुई है उसकी निन्दा की जाय। लेकिन उस समय लोगों की भावनायें इतनी उग्र हो रही थीं कि गांधीजी का यह प्रस्ताव विषय समिति में पास न हो सका। तब उन्होंने अत्यन्त नम्रता मगर दृढ़ता के साथ यदि कांग्रेस इस दृष्टिबिन्दु को न अपना सके तो कांग्रेस में रहने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

अन्त में दोनों प्रस्ताव थोड़ी-बहुत खींच-तान और भाषा सम्बन्धी हेरफेर के साथ गांधीजी की इच्छा के माफिक पास हो गये।

खिलाफत का प्रश्न

इसी समय भारत की मुसलिम जनता में खिलाफत आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। प्रथम महायुद्ध में टर्की जर्मनी की तरफ से लड़ा था। इसलिए लड़ाई के बाद उसका ग्रेस प्रान्त यूनान को दे दिया गया और उसके एशियायी प्रदेशों को ब्रिटेन और फ्रान्स ने आपस में बाँट लिये। मुसलमान चाहते थे कि जजीरतुल अरब मेसो पोटेमिया अरबिस्तान सीरिया फिलिस्तीन इत्यादि मुसलमानों के सारे पवित्र स्थान हमेशा टर्की के 'खलीफा' के अधिकार में रहना चाहिए।

मगर ब्रिटेन की सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। वायसराय ने अपने सन्देश में भारतीय मुसलमानों को सान्त्वना देते हुए कहा कि 'सन्धि की शर्तों से भारत के मुसलमानों के दिलों को अवश्य ठेस पहुँचेगी, मगर इसके साथ ही उनसे कहा गया कि वे अपने धर्म पर ... धर्मियों के इस दुर्भाग्य को धैर्य और सन्तोष के साथ सहन करें।"

इस सन्देश के प्रकाशित होते ही खिलाफत कमेटी की बैठक बम्बई में हुई। महात्मा गांधी भी इस आन्दोलन में मुसलमान जनता का पूरा साथ देने को तैयार थे इसके लिए उन्होंने असहयोग का कार्यक्रम प्रस्तावित कर दिया। २८ मई १९२० को खिलाफत कमेटी ने इस कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया।

'असहयोग' की इस योजना का श्रीगणेश प्रारम्भ १ अगस्त १९२० को हुआ।

इसके पश्चात् ही कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन कलकत्ता में अत्यन्त जोश खरोश के साथ हुआ। गांधी जी के असहयोग का प्रस्ताव ८८४ के विरुद्ध १८८६ प्रतिनिधियों के मतों से पास हुआ। इस कार्यक्रम में सरकारी उपाधियों और अवैतनिक पदों को छोड़ना, स्कूल व कालेजों का बहिष्कार, नवीन कौन्सिलों के चुनाव का बहिष्कार, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार आदि कई प्रोग्राम शामिल थे।

नागपुर कांग्रेस

असहयोग के इस प्रस्ताव पर अन्तिम स्वीकृति नागपुर कांग्रेस में मिलना थी, इसलिए कांग्रेस के इस अधिवेशन में सारा देश उमड़ पड़ा। कहा जाता है कि जितने प्रतिनिधि नागपुर कांग्रेस में आये थे, उतने उसके पहले की या उसके बाद की, किसी कांग्रेस के अधिवेशन में नहीं आये। कुल प्रतिनिधियों की संख्या १४५८२ थी।

इस प्रस्ताव का विरोध करने के लिए देशबन्धु दास अपने साथ प्रतिनिधियों की एक पूरी ट्रेन भर कर लाये थे। महाराष्ट्र का विरोध भी बहुत तगड़ा था। कनल वेजवुड श्री बैनर्जी इत्यादि व्यक्तियों ने अपनी सारी शक्ति इस प्रस्ताव का विरोध करने में लगा दी।

मगर इन सब विरोधों के बावजूद असहयोग का प्रस्ताव फिर दोहराया गया और उसमें कांग्रेस का ध्येय इस तरह बदल डाला कि उसमें ब्रिटिश सम्बन्ध और वैध आन्दोलन, जिसमें कांग्रेस अभी तक विश्वास करती थी, उसका कोई उल्लेख ही नहीं रहा।

अधिवेशन में गांधीजी के व्यक्तित्व की विजय हुई। विपिनचन्द्रपाल, मालवीय जी, मि जिन्ना, सी आर दास, लाला लाजपतराय इत्यादि के समान पुराने और तपे हुए लोग देखते के देखते रह गये और अन्त में ऐसी परिस्थिति आ गई कि स्वयं देशबन्धु दास ने कांग्रेस के मंच पर 'असहयोग का प्रस्ताव' पेश किया और लाला लाजपत राय ने उसका समर्थन किया।

अहमदाबाद कांग्रेस

कांग्रेस में गांधीजी के आगमन और नागपुर कांग्रेस के साथ ही भारत के इतिहास में एक नया युग पैदा होता है। निर्भय कोप और आग्रह पूर्वक मार्गनाओं का स्थान, अपने अधिकारों की वाजिब माँग ने ले लिया था। सरकार की खुल्लमखुल्ला आलोचना करते हुए तथा अपने अधिकारों की माँग करते हुए लोगों को जो भय कम्प करता था, उसको महात्मा गांधी की निर्भीकता ने बिलकुल दूर कर दिया था। लोगों के व्याख्यानों और चर्चाओं में अब प्रार्थना का नहीं, प्रत्युत अधिकारों के मांगों का जागरण हो रहा था और यह जागरण शहरों की सीमाओं को लाँघकर तेजी से गाँवों में फैल रहा था।

अगले साल सन् १९२१ ई में कांग्रेस-अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। नागपुर-कांग्रेस और अहमदाबाद कांग्रेस के बीच के समय में देश में कई घटनाएँ तेजी के साथ हो चुकी थीं। दक्षिण भारत में मोपला मुसलमानों का सशस्त्र विद्रोह हो चुका था। अलीबन्धु गिरफ्तार किये जा चुके थे। १७ नवम्बर को बम्बई में प्रिन्स ऑफ वेल्स के आगमन और बहिष्कार के समय एक भीषण उपद्रव हो चुका था।

ऐसे अनोखे वातावरण में अहमदाबाद कांग्रेस का भी संयोग हुआ। कांग्रेस के मनोनीत सभापति देशबन्धु दास गिरफ्तार किये जा चुके थे और उनके स्थानापन्न सभापति हकीम अजमल खाँ बने थे। चारों तरफ दमन का दौर-दौरा था।

लोगों का उत्साह दर्शनीय था, वे कुछ कर गुजरने की भावनाओं से ओतप्रोत थे।

चौरीचौरा काण्ड

मगर गवर्नमेंट के कर्कश दमन से त्रस्त होकर स्थान स्थान पर लोगों की हिंसात्मक भावनाएँ भड़क उठीं। १७ नवम्बर १९२१ को बम्बई में हिंसात्मक उपद्रव हो चुके थे। ५ फरवरी १९२२ को गोरखपुर के निकट चौरीचौरा नामक स्थान पर कांग्रेस के जुलूस ने २१ पोलिस के सिपाहियों और १ थानेदार को थाने की बिल्डिंग में बन्द कर उस बिल्डिंग में आग लगा दी और उन्हें जिन्दा जला दिया। उधर मद्रास में भी बम्बई की तरह हिंसात्मक उपद्रव प्रारम्भ हो गये जिसमें ५३ आदमी मरे और चार सौ घायल हुए।

इन घटनाओं से दुःखी होकर कांग्रेस कार्य समिति ने गांधीजी की सलाह से सामूहिक-सत्याग्रह का प्रोग्राम बन्द कर दिया और चर्खा कातना, राष्ट्रीय विद्यालय खोलना मद्य निषेध करना इत्यादि रचनात्मक प्रोग्राम बनाया।

इस घटना से सारे देश में एक भयंकर शान्ति छा गई लोगों के मनसूबे खतम हो गये नेताओं में देशबन्धुदास, और मोतीलाल नेहरू जैसे नेता गांधीजी के इस निश्चय से

तिलमिला उठे मगर गांधी जी का निर्णय अडिग था और उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

देश की इस कमजोर मनःस्थिति का पता लगते ही सरकार ने गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया और उन पर केस चलाकर उन्हें छः साल की सजा दे दी।

इस केस को चलाते समय गांधी जी ने कोर्ट के सम्मुख जो बयान दिया था वह एक ऐतिहासिक बयान था उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

"मैं एक राजद्रोही हूँ मैं जानता हूँ कि मैं आग के साथ खेल रहा हूँ और यदि मुझे छोड़ दिया जाय तो मैंने जो कुछ किया है वही फिर करूँगा। यदि मैं ऐसा न करूँ तो अपना फर्ज अदा नहीं करूँगा। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी मेरे देशवासियों ने पागलपन से भरे काम किये हैं और ऐसे कार्यों की जवाबदारी मेरे पर ही है। इसलिए यहाँ जो मैं खड़ा हूँ तो कोई मामूली सजा सुनने के लिए नहीं, बल्कि बड़ी से बड़ी सजा पाने के लिए। मैं दया की प्रार्थना नहीं करता। मैं तो ऐसे काम के लिए जो कानून की निगाह में जान बूझकर किया गया अपराध है पर मेरे दृष्टिकोण से एक नागरिक का सबसे बड़ा कर्तव्य है, बड़ी से बड़ी सजा चाहता हूँ।"

"न्यायाधीश महोदय! आपके आगे दो ही मार्ग हैं या तो आप अपने पद को छोड़ दें या यदि आप समझते हैं कि जिस शासन-व्यवस्था और जिस कानून के व्यवहार में आप सहायता दे रहे हैं, वह मंगलदायक है तो फिर मुझे बड़े से बड़ा दण्ड दें।"

गाँधीजी के जेल में जाते ही सारे देश में एक निराशा पूर्ण वातावरण छा गया। इसी वातावरण में गया की कांग्रेस हुई। इस कांग्रेस में कौन्सिलों में प्रवेश करना या नहीं करना इस प्रश्न पर दो दल हो गये। कांग्रेस ने कौन्सिल का प्रवेश नामंजूर कर दिया तो कौन्सिल वादियों ने स्वराज्य पार्टी का निर्माण कर लिया, जिसमें देश बन्धु दास, पं मोतीलाल नेहरू विट्ठल भाई पटेल इत्यादि प्रभावशाली लोग सम्मिलित हो गये।

उधर टर्की में कमाल पाशा ने स्वयं खिलाफत का अन्त कर दिया जिससे भारतवर्ष का खिलाफत आन्दोलन एकदम ठण्डा हो गया, खिलाफत आन्दोलन के ठण्डा होते ही देश के अनेक भागों में हिन्दू मुसलमानों के जोरदार दंगे प्रारम्भ हो गये। १९२२ में मुलतान में हिन्दू-मुसलमानों में दंगा हुआ। १९२३ में मुहर्रम पर बंगाल और पंजाब में भयंकर दंगे हुए।

५ फरवरी १९२४ को गांधीजी को अपेन्डीसाइटिस की बीमारी के कारण छोड़ दिया गया। मगर छूट आने पर भी उन्हें संतोष और विश्रान्ति नहीं मिली। कांग्रेस की फूट और साम्प्रदायिक दंगों ने उन्हें अशान्त बना रक्खा था। इधर हिन्दू और मुसलमानों का तनाव प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था और मि. जिन्ना का प्रभाव मुसलमानों में व्याप्त हो रहा था। इस बीच अनेक घटनाओं के होते रहने पर भी आन्दोलन ने विशेष जोर नहीं पकड़ा।

लाहौर कांग्रेस

सन् १९२९ में लाहौर की ऐतिहासिक कांग्रेस हुई जिसके अध्यक्ष पं. जवाहरलाल नेहरू थे। इस कांग्रेस में डोमिनियन, स्वराज्य शासन सुधार इत्यादि सारे शब्द उड़ाकर पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य घोषित किया गया। २६ जनवरी को रावी नदी के किनारे लाहौर में पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य घोषित किया गया। जिसकी जयन्ती आज भी हरसाल मनाई जाती है।

नमक सत्याग्रह

सन् १९३० में देश में फिर जोश और उत्साह की एक लहर आई। महात्मा गाँधी ने वायसराय को एक अल्टिमेटम पत्र लिखकर उसके पश्चात् ११ मार्च १९३० को नमक सत्याग्रह की घोषणा कर दी और १२ मार्च १९३० को अपने ७९ साथियों के साथ अहमदाबाद से २०० मील दूर दाण्डी की पैदल यात्रा को निकल पड़े जहाँ समुद्र तट पर पहुँचकर सत्याग्रह का आरम्भ करना था।

कूच के समय ही गाँधीजी ने घोषित कर दिया था कि 'स्वराज्य नहीं मिला तो या तो रास्ते में मर जाऊँगा या आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक कर नहीं उठा तब तो आश्रम में लौटने का भी इरादा नहीं है।"

नमक सत्याग्रह के साथ ही फिर एक बार जैसे बापू का डंका सारे देश पर घूम गया। सारे देश में एक प्रबल

जागृति की लहर दौड़ गई। हजारों आदमी सत्याग्रह करके जेल जाने लगे।

५ अप्रैल को प्रातःकाल २४ दिन में गाँधीजी डाण्डी पहुँचे और प्रार्थना करके विधिवत् नमक कानून को भंग किया।

६ अप्रैल से सारे देश में एक छोर से दूसरे छोर तक एक ज्वालामुखी भड़क उठा। बड़े २ शहरों में लाखों की उपस्थिति में बड़ी-बड़ी सभाएँ हुई। पेशावर में सेना की गोलियों से कई आदमी मारे गये।

इसके बाद गाँधीजी ने धारासना और सुरसाना के नमक भण्डारों पर धावा करने की सूचना वाइसराय को दी। इस सूचना के पहुँचते ही ५ मई की तारीख प्रारम्भ होते ही महात्मा गाँधी रात को एक बजे गिरफ्तार कर के यरवदा जेल भेज दिये गये।

इस बार गाँधीजी की गिरफ्तारी से न केवल भारत में प्रत्युत् सारे संसार के लोकमत में एक तहलका सा मच गया। अमेरिका के १ २ प्रभावशाली पादरियों ने इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री को लम्बा तार भेजकर भारतवर्ष से समझौता करने की अपील की, मगर ऐसे समय में सरकार अपनी प्रतिष्ठा के लिए अड़ी रही और सारे देश में दमन का भयंकर दौर दौरा चालू हो गया।

गुजरात में तो यह दमन इतने जोर शोर से चालू हुआ कि उससे तंग आकर वहाँ के करीब ८ किसान अंग्रेजी राज्य की सीमाओं को छोड़कर देशी राज्यों की सीमा में चले गये मगर आन्दोलन की तीव्रता में कोई अन्तर नहीं आया।

इसी बीच मध्यस्थ लोग सरकार से समझौता वार्त्ता भी चला रहे थे। लन्दन में पहली गोलमेज कान्फ्रेंस भी हो रही थी। इन सब परिस्थितियों से प्रेरित होकर २६ जनवरी सन् १९३१ को सरकार ने महात्मा गांधी तथा और सारे सत्याग्रही कैदियों को छोड़ दिया। उसके तुरन्त बाद महात्मा गांधी लार्ड इरविन से मिले जिसके फलस्वरूप जो समझौता हुआ वह "गांधी-इरविन समझौते" के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सरकार ने गांधीजी को संतुष्ट करने योग्य एक वातावरण तैयार कर दिया और गांधीजी ने उसे स्वीकार कर सत्याग्रह बन्द कर दिया।

इसके बाद करांची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इन्हीं दिनों पंजाब सरकार ने सरदार भगत सिंह, राज गुरु और सुखदेव को फांसी पर चढ़ाया और इन्हीं दिनों कान पुर के हिन्दू मुसलिम दंगे में श्रीगणेश शंकर विद्यार्थी की हत्या हुई। इसी शोकपूर्ण वातावरण में करांची कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसके कुछ समय पश्चात् लन्दन की दूसरी गोलमेज परिषद् में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करने के लिए सितम्बर १९३१ में महात्मा गांधी को भेजा गया, मगर गोलमेज परिषद् की कार्यवाही से गांधीजी बिलकुल असन्तुष्ट रहे कोई समझौता नहीं हो सका। परिषद् असफल हुई और अन्त में गांधीजी ने सभापति को धन्यवाद देते हुए कहा—

"अब हमें अलग-अलग रास्तों पर जाना होगा। मनुष्य स्वभाव का गौरव तो इसी में है कि हम जीवन में आने वाली आँधियों से टक्कर लें। मैं नहीं जानता कि मेरा रास्ता क्या होगा लेकिन इसकी मुझे चिन्ता नहीं है।'

गाँधीजी वहाँ से वापस लौटे, मगर उनके भारत पहुँचने के पहले ही सरकार ने युक्त प्रान्त बंगाल, सीमा प्रान्त इत्यादि कई स्थानों पर आर्डिनेंस निकाल कर बहुत से लोगों को गिरफ्तार कर लिया था जिनमें पं जवाहर लाल नेहरू और पुरुषोत्तम दास टण्डन भी थे।

गाँधीजी ने यहाँ पहुँचते ही यहाँ की स्थिति को देख कर वाइसराय लार्ड वेलिंग्डन से पत्र व्यवहार किया मगर कोई परिणाम नहीं निकला। वाइसराय ने बड़ी सख्ती से उनके उत्तर दिये और अन्त में ४ जनवरी १९३२ को सवेरे महात्मा गांधी और सरदार पटेल को भी गिरफ्तार कर लिया और प्रान्तीय तथा जिला कांग्रेस कमेटियों, आश्रमों और दूसरी राष्ट्रीय संस्थाओं को गैर कानूनी घोषित कर दिया। चारों तरफ आतंक और सर्वनाश का बोल बाला हो गया।

इसी समय भारत सरकार ने धारासभाओं के निर्वाचनों में हरिजन लोगों के पृथक् निर्वाचन की घोषणा कर दी।

आमरण अनशन और पूना पैक्ट

जेल में महात्मा गांधी को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने सरकार को तुरन्त नोटिस दे दिया कि यदि सरकार

दलित जातियों के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को बन्द नहीं करेगी तो मैं २ अप्रैल १९३२ से आमरण अनशन करूँगा मगर सरकार ने महात्मा गांधी की सलाह को मंजूर नहीं किया और गांधीजी ने २ अप्रैल से अपना इतिहास प्रसिद्ध अनशन चालू कर दिया।

इसके पहले ही महात्मा गांधी के निश्चय से सारे देश में खलबली मच चुकी थी और देश के तमाम बड़े-बड़े नेता और अछूत नेता पूना में इस समस्या को सुलझाने के लिए एकत्र हो चुके थे। वहीं पर सुप्रसिद्ध पूना पैक्ट पास हुआ जिसमें हरिजनों के लिए सरकार के पृथक् निर्वाचन प्रस्ताव में जितनी सीटें रक्खी गई थीं उनसे भी अधिक सीटें इस पैक्ट में रख दीं और दोनों पक्ष के नेताओं ने अपनी स्वीकृति की सूचना सरकार को दे दी। सरकार ने भी इस पैक्ट को मान लिया और पृथक् निर्वाचन को रद्द कर दिया।

तब २६ जनवरी को महात्मा गाँधी ने अपना उपवास तोड़ा। इसके बाद ८ मई १९३३ से गांधीजी ने आत्मशुद्धि के लिए फिर से २१ दिन का उपवास शुरू किया। इस उपवास से सारा देश आतंकित हो उठा, क्योंकि गांधीजी का स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि वे इतने लम्बे अनशन को सहन कर लें। सरकार ने भी इस खतरे को उठाना ठीक न समझ कर उन्हें रिहा कर दिया सब दूर प्रार्थनाएँ होने लगीं। प्रसिद्ध डॉक्टर लोग अत्यन्त चिन्ता से उनकी सुश्रुषा करते हुए रिपोर्ट निकालने लगे। सब लोगों का ऐसा चिन्तापूर्ण वातावरण देखकर एक दिन गांधीजी ने हँसते हुए कहा कि आप लोग चिन्तित न हों, "मैं इस उपवास से मरूँगा नहीं" और सचमुच नहीं हुआ। महान् इच्छा शक्ति की विजय हुई। उपवास के इक्कीस दिन पूरे कर लेने पर होने की भांति प्रसन्न वदन से महात्मा गांधी लोगों के सम्मुख आये।

इसके बाद और भी एक दो बार गांधीजी को गिरफ्तारी और अनशन के अवसर आये। मगर जनता के अन्दर सरकार की कठोर नीति के कारण एक प्रकार का निराशा पूर्ण वातावरण छा गया था।

सन् बयालीस

इतने ही में सन् १९३८ में दूसरा विश्व युद्ध आरंभ हो गया। और सन् १९४२ में कांग्रेस ने बम्बई में 'Quit India' 'भारत छोड़ो' का सिद्धान्त पास कर दिया।

इस प्रस्ताव के पास होते ही एकदम सारे भारतवर्ष में तमाम छोटे से बड़े कांग्रेस नेताओं को सरकार ने पकड़ कर बन्द कर दिया। मार्ग दर्शकों के न रहने से जनता ने भी अत्याधुनिक उपद्रव किये। जगह जगह अराजकता के दृश्य उपस्थित हो गये। सरकार की सेना ने भी इस समय ऐसा भयंकर दमन किया जितना शायद १८५७ में भी न किया होगा।

इसके बाद सन् १९४५ तक युद्ध काल में देश के अन्दर एक मूक शान्ति छाई रही हिन्दू मुसलमानों के मतभेद बढ़ते गये और लोगों का ध्यान युद्ध की ओर लगा रहा।

पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति

द्वितीय महायुद्ध पश्चिमी प्रदेशों की विजय में समाप्त हुआ। इंग्लैण्ड में नये चुनावों में चर्चिल की तथा उनकी पार्टी की हार हुई। मजदूर पार्टी की सरकार बनी। मि. एटली प्रधान मंत्री बने और उन्होंने सबसे पहले उपनिवेशों की आजादी का प्रश्न हाथ में लिया।

यहाँ की साम्प्रदायिक समस्याओं की जाँच करने के लिए उन्होंने भूतपूर्व वाइसराय लार्ड वेवेल को भेजा। लार्ड वेवेल ने हिन्दू मुसलमान दोनों में समझौता कराने का प्रयत्न किया मगर मुसलमान अपनी पाकिस्तान की माँग से टस से मस न हुए। इसी बीच कलकत्ते के मुख्य मंत्री सुहरावर्दी ने डॉयरेक्ट एक्शन के मानने की घोषणा की। इस दिन कलकत्ते में हिन्दू-मुसलमानों का भयंकर दंगा हुआ।

महात्मा गांधी को इन घटनाओं से और सारे देश के विभाजन से बड़ी वेदना हो रही थी। उन्होंने अन्त तक विभाजन के प्रश्न को स्वीकार नहीं किया मगर जब चारों तरफ से निराशा पूर्ण वातावरण हो गया और अन्य नेता लोग उन पर विभाजन कर लेने पर जोर देने लगे तब अत्यन्त दुःखी हृदय से उन्होंने भी इसे स्वीकार किया।

भारतवर्ष के दो टुकड़े हुए, पाकिस्तान का निर्माण हुआ और १५ अगस्त सन् १९४७ के दिन ब्रिटिश सरकार

ने भारतीय कांग्रेस को पूर्ण स्वाधीनता हस्तान्तरित कर दी।

वह एक अत्यन्त शुभ दिन था जिस दिन इस विशाल देश को एक हजार वर्षों की गुलामी के पश्चात् पूर्ण स्वाधीनता के दर्शन हुए।

मगर विभाजन के कारण हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों ही देशों में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए। पाकिस्तान में तो इन्होंने अत्यन्त घृणित रूप धारण कर लिया जिसकी वजह से लाखों हिन्दुओं को वहाँ से निष्क्रमण करना पड़ा। नोआखाली में भी भयंकर हत्याकाण्ड हुए।

इन घटनाओं से दुःखित होकर महात्मा गांधी पैदल यात्रा पर नोआखाली में निकल पड़े। वहाँ से वापस आने के बाद भी उनके चित्त को शान्ति नहीं थी। वे अपने आपको एक अजीब उलझन में अनुभव करते थे और ईश्वर से मार्ग दर्शन की प्रार्थना करते थे। इतने में नाथूराम गोडसे नामक एक व्यक्ति ने ३० जनवरी १९४८ को प्रार्थना सभा से निकलते समय गोली मार कर उनकी हत्या कर दी। सारे देश में शोक की धारायें छा गई। और इतिहास ने उनका नाम भी ईसा और सुकरात की तरह मानव-हित में होने वाले शहीदों के साथ लिख लिया।

आजादी के बाद

आजादी प्राप्त होते ही देश के सामने सबसे महत्व का प्रश्न देशी राजाओं के सम्बन्ध में उठा मगर सरदार पटेल ने इस प्रश्न को इतनी कुशलता से निपटाया कि सब लोग आश्चर्य चकित हो गये। हैदराबाद में कासिम रिजवी ने तथा जूनागढ़ के नवाब ने कुछ गड़बड़ी की तो उन्हें सख्ती के साथ दबा दिया गया। कश्मीर में भी कबाइलियों की मदद से पाकिस्तान ने भयंकर आक्रमण कर दिया उसको भी वीरता से निपट लिया गया, मगर उस झगड़े में कश्मीर का एक हिस्सा चला गया।

सन् १९५१ में भारत का विधान बनकर तैयार हो गया और १९५२ में चुनाव हुए। पहले, दूसरे और तीसरे चुनावों में कांग्रेस की विजय हुई। यद्यपि पहली से दूसरी और दूसरी से तीसरी विजय कमजोर थी। इस प्रकार १६ वर्षों से बराबर इस देश पर कांग्रेस का शासन चल रहा है।

महात्मा गांधी ने स्वाधीनता के बाद कांग्रेस को भंग कर लोक सेवा संघ के रूप में परिवर्तित करने की इच्छा प्रकट की थी मगर दूसरे नेताओं ने इसे नहीं माना और कांग्रेस को बाकायदा चालू रक्खा।

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद, प्रथम प्रधानमंत्री पं॰ जवाहर लाल नेहरू और प्रथम उप-प्रधान मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल हुए।

स्वतंत्र भारत की सरकार ने अन्तरंग नीति में समाजवाद का और विदेश नीति में किसी गुट में शामिल न होकर तटस्थ रूप में रहने का प्रश्न अंगीकार किया है। ये दोनों ही नीतियाँ अभी परीक्षण की कसौटी पर हैं। इसी बीच चीन ने आक्रमण करके एक कठिन समस्या पैदा कर दी है जिससे अनेक लोगों के विश्वास हिल गये हैं। इन सारी नीतियों के आगे क्या परिणाम होंगे इस पर अभी कुछ लिखना जल्दबाजी होगा। भविष्य के इतिहासकार ही इस पर अपना निर्णय करेंगे।

सन् १८८५ से १९३५ तक के कांग्रेस अध्यक्षों की सूची—

संख्या	सन्	अध्यक्ष	स्थान
१	१८८५	श्री उमेश चन्द्र बनर्जी	बम्बई
२	१८८६	" दादा भाई नौरोजी	कलकत्ता
३	१८८७	" बदरुद्दीन तैय्यबजी	मद्रास
४	१८८८	" जार्ज यूल	इलाहाबाद
५	१८८९	" सर विलियम वेडर बर्न	बम्बई
६	१८९०	फिरोज शाह मेहता	कलकत्ता
७	१८९१	" पी॰ आनन्द चालू	नागपुर
८	१८९२	" उमेश चन्द्र बनर्जी	इलाहाबाद

९	१८९३	श्री दादा भाई नौरोजी	लाहौर
१	१८९४	” अल्फ्रड वेब	मद्रास
११	१८९५	सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी	पूना
१२	१८९६	मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी	कलकत्ता
१३	१८९७	श्री सी शंकरन नायर	अमरावती
१४	१८९८	आनन्द मोहन बोस	मद्रास
१५	१८९९	” रमेश चन्द्र दत्त	लखनऊ
१६	१९	” नारायण गणेश चन्दावरकर	लाहौर
१७	१९ १	दनिशा एदलजी वाचा	कलकत्ता
१८	१९ २	” सुरेन्द्र नाथ बनर्जी	अहमदाबाद
१९	१९ ३	” लाल मोहन घोष	मद्रास
२	१९ ४	सर हेनरी कॉटन	बम्बई
२१	१९ ५	श्री गोपाल कृष्ण गोखले	काशी
२२	१९ ६	” दादा भाई नौरोजी	कलकत्ता
२३	१९ ७	” रासबिहारी घोष	सूरत
२४	१९ ८	डा रासबिहारी घोष	मद्रास
२५	१९ ९	पं मदन मोहन मालवीय	लाहौर
२६	१९१	सर विलियम वेडर बर्न	इलाहाबाद
२७	१९११	पं बिशननारायण दुबे	कलकत्ता
२८	१९१२	श्री रंगनाथ नरसिंह मुधोलकर	बाँकीपुर
२९	१९१३	नवाब सैयद मोहम्मद	करांची
३	१९१४	श्री भूपेन्द्र नाथ बसु	मद्रास
३१	१९१५	सर एस पी सिन्हा	बम्बई
३२	१९१६	श्री अम्बिकाचरण मजूमदार	लखनऊ
३३	१९१७	श्रीमती एनी बीसेन्ट	कलकत्ता
३४	१९१८	पं मदन मोहन मालवीय	देहली
३५	१९१९	पं मोतीलाल नेहरू	अमृतसर
३६	१९२	श्री लाला लाजपत राय	कलकत्ता
३७	१९२१	च विजय राघवाचार्य	नागपुर
३८	१९२२	हकीम अजमल खाँ	अहमदाबाद
३९	१९२३	देशबन्धु सी आर दास	गया
४	१९२४	मौलाना अबुल कलाम आजाद	देहली
४१	१९२५	मौलाना मुहम्मद अली	कोकोनाडा
४२	१९२६	महात्मा गाँधी	बेलगाँव
४३	१९२७	श्रीमती सरोजिनी नायडू	कानपुर

४४	१६२८	श्री श्रीनिवास आयंगर	गोहाटी
४५	१६२६	,, मुख्तार अहमद अन्सारी	मद्रास
४६	१६३०	पं० मोतीलाल नेहरू	कलकत्ता
४७	१६३१	पं जवाहर लाल नेहरू	लाहौर
४८	१६३२	सरदार वल्लभ भाई पटेल	करांची
४६	१६३३	सेठ रणछोड़ लाल अमृतलाल	देहली
५	१६३४	श्री जे एम सेन गुप्ता	कलकत्ता
५१	१६३५	डा राजेन्द्र प्रसाद	बम्बई
५२	१६३६	पं जवाहर लाल नेहरू	लखनऊ
५३	१६३७	,, ,, ,,	फैजपुर
५४	१६३८	श्री सुभाषचन्द्र बोस	हरिपुरा
५५	१६३६	,, ,, ,,	त्रिपुरा
५६	१६४०	मौलाना अबुलकलाम् आजाद	रामगढ़
५७	१६४१	आचार्य जे बी कृपलानी	मेरठ
५८	१६४२	डा पट्टाभी सीतारमैया	जयपुर
५६	१६४३	श्री पुरुषोत्तम दास टंडन,	नासिक
६	१६४४	पं जवाहरलाल नेहरू	नयी दिल्ली

इण्डियन एसोसिएशन

बंगाल में सन् १८७६ में बंगाल के तत्कालीन सुप्रसिद्ध नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के द्वारा स्थापित की हुई राष्ट्रीय संस्था।

कांग्रेस की स्थापना के पूर्व ही भारत के शिक्षित व्यक्तियों के दिल में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति विरक्ति और भारत में शासन सुधार की भावनाएँ जाग्रत हो चुकी थीं। यद्यपि इन भावनाओं ने अभी अखिल भारतीय रूप धारण नहीं किया था पर देश में सार्वजनिक जीवन की बुनियाद डालने में इनसे बड़ा योग मिला।

सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी भी उन लोगों में से एक हैं जिन्होंने इस देश में सार्वजनिक जीवन की बुनियाद डाली। इसी प्रेरणा से प्रेरित हो सन् १८७६ में कलकत्ते में उन्होंने इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना की। इस संस्था के पहले मंत्री आनन्द मोहन बसु बने।

जिन प्रान्तीय संगठनों की नींव पर कांग्रेस के अखिल भारतीय संगठन का जन्म हुआ उसमें सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी द्वारा स्थापित 'इण्डियन एसोसिएशन' भी एक थी।

इण्डियन रोड्स कांग्रेस

सड़कों के निर्माण और उनकी व्यवस्था तथा विज्ञान और कला की उन्नति के लिए स्थापित एक संस्था, जिसकी स्थापना दिसम्बर सन् १६३४ में हुई।

भारतवर्ष के समान विशाल देश में सड़कों की समस्या अपने आप में एक विशेष महत्व रखती है क्योंकि इस विशाल देश में हजारों मील की सड़कें बनी हुई हैं और अभी बहुत सी बनने को बाकी हैं। इसी आवश्यकता को समझ कर इस संस्था की सन् १६३४ ई में स्थापना की गयी।

सन् १९५८ में इस कांग्रेस के करीब १६ सौ सदस्य थे जिनमें इंग्लैण्ड आयरलैण्ड पाकिस्तान, लंका, बर्मा कैनेडा आदि कई देशों के निवासी सम्मिलित हैं।

इस कांग्रेस का प्रतिवर्ष एक अधिवेशन होता है। अभी तक के अधिवेशनों में इस कांग्रेस ने करीब ढाई सौ ऐसे निबन्धों पर विचार किया, जो भारतीय सड़कों की उन्नति से सम्बन्ध रखते हैं।

इस कांग्रेस का आफिस कामनगर हाउस शाहजहाँ रोड नई दिल्ली में स्थित है और इसका प्रबन्ध 'इंडियन रोड्स' कांग्रेस के एक सेक्रेटरी के हाथ में है। भारत सरकार के सड़क विकास सम्बन्धी इंजीनियर इसके स्थायी कोषाध्यक्ष हैं। इस कांग्रेस के द्वारा एक मासिक और एक त्रैमासिक प्रकाशन नियमित रूप से चलता है। इसके अतिरिक्त सड़कों से सम्बन्ध रखने वाले बुलेटिन्स भी समय-समय पर प्रकाशित किये जाते हैं।

इण्डोनेशिया

दक्षिणी पूर्वी एशिया में हिन्दचीन के दक्षिण और मलाया के दक्षिण पूर्व में जो बहुत से द्वीप पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए हैं इनमें से एक बड़े समूह को जो हॉलैण्ड के अधिकार में था इण्डोनेशिया कहा जाता है। पहले ये द्वीप ईस्टइण्डीज के नाम से प्रसिद्ध थे। ईस्टइण्डीज के इन द्वीपों में सुमात्रा जावा बाली, सेलिबीज फ्लोरेस, तिमोर, बांका बोर्नियो सेलेबस मलक्का न्यूगायना और पापुआ प्रमुख हैं। इन द्वीपों में से तिमोर का बड़ा भाग पहले पुर्तगाल के अधीन था और उत्तरी बोर्नियो पर ब्रिटेन का प्रभाव था। शेष सब द्वीप हॉलैण्ड के अधिकार में थे जहाँ पर इस समय इण्डोनेशियन रिपब्लिक स्थापित है।

इण्डोनेशिया का क्षेत्रफल ५,७५,८८७ वर्गमील और जनसंख्या आठ करोड़ पचास लाख है। इण्डोनेशिया की राजधानी जकार्ता है। यहाँ के रहनेवालों में विशेष संख्या मुसलमानों की है अल्पसंख्या में बौद्ध, क्रिश्चियन और ब्राह्मण भी रहते हैं।

इण्डोनेशिया के प्रसिद्ध शहरों में जकार्ता सुरबाया बांडुंग, (जहाँ पर एशिया अफ्रीका का सुप्रसिद्ध बांडुंग सम्मेलन हुआ था) सेमेरांग, सुराकार्ता इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

प्राचीन इतिहास

इण्डोनेशिया का प्राचीन इतिहास भारत के इतिहास से बहुत कुछ सम्बद्ध है। जावा का प्राचीन नाम "यवद्वीप" था। ईसा की दूसरी सदी में यहाँ का राजा देव वर्मन था जिसने चीन सम्राट् के दरबार में अपना राजदूत भेजा था। ईसा की चौथी शताब्दी में यहाँ पर "श्री विजय" नामक भारतीय उपनिवेश की स्थापना हो चुकी थी। श्री विजय में कई प्रतापी राजा हुए जिन्होंने सम्पूर्ण इण्डोनेशिया और मलाया को जीतकर अपने आधीन कर लिया था। संस्कृत भाषा में लिखे हुए कई शिलालेख यहाँ पर उपलब्ध हैं। इसी समय बोर्नियो में भी भारतीय उपनिवेशों की स्थापना हो चुकी थी। बोर्नियो में भी ईसा की चौथी शताब्दी के चार शिलालेख मिले हैं जिनमें राजा अश्ववर्मन के पुत्र देववर्मन के द्वारा किये हुए दानों और यज्ञों का वर्णन है। इससे मालूम होता है कि इण्डोनेशिया के सब उपनिवेश उस समय विशुद्ध रूप में भारतीय थे।

इन उपनिवेशों में उस समय प्रधान रूप से पौराणिक हिन्दू धर्म का प्रचार था मगर कश्मीर के राजपुत्र गुण वर्मन ने यहाँ आकर बौद्ध धर्म का भी प्रचार किया। इस राजकुमार की वाणी में इतना प्रभाव था कि उससे प्रभावित हो इण्डोनेशिया के बहुत से द्वीपों ने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। उसकी प्रभावशाली प्रतिभा को देखकर चीन के सम्राट् ने भी उसे अपने दरबार में आमंत्रित किया था।

इसके पश्चात् पन्द्रहवीं सदी में इन द्वीपों में इस्लाम का प्रवेश हुआ। उस समय यहाँ के पौराणिक और बौद्ध धर्मों का बहुत ह्रास हो चुका था। राज लोग निर्बल हो चुके थे। इस्लाम का प्रवेश धूमधाम और नवीन ताकत के साथ हुआ था इसलिए यहाँ के अधिकांश निवासियों ने इस नवीन धर्म को ग्रहण कर लिया। केवल बाली

द्वीप ही ऐसा रह गया जहाँ की जनता ने इस्लाम को ग्रहण नहीं किया।

पोर्तुगीजों का प्रवेश

इण्डोनेशिया के द्वीप अपनी मसालों की पैदावार के लिए बहुत प्रसिद्ध थे और वहाँ के मसालों की यूरोप के बाजार में बड़ी कीमत थी। इससे योरप के व्यापारी वहाँ से इन मसालों को ले जाकर यूरोप के बाजारों में बेचकर मनमाना धन कमाते थे।

मसालों के इसी व्यापार के लोभ से सोलहवीं सदी में सबसे पहले पोर्तुगीज लोगों ने यहाँ प्रवेश करना प्रारम्भ किया।

सन् १५११ में पोर्तुगीज लोगों ने मलक्का और मलक्का के जलडमरू मध्य पर कब्जा कर उसे एक दुर्ग के रूप में परिवर्तित कर दिया और उसे अपने सामुद्रिक व्यापार का प्रधान केन्द्र बनाया।

इसके कुछ वर्षों बाद हालैण्ड वालों ने इण्डोनेशिया में अपने पैर फैलाना शुरू किये। सन् १६४१ में इन लोगों ने पोर्तुगीजों से मलक्का को जीत लिया। इससे हालैण्ड वालों की शक्ति बहुत बढ़ गई। हालैण्ड वालों ने अंग्रेजों की नकल पर इण्डोनेशिया में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की।

१८ वीं सदी के अन्तिम भाग में फ्रांस की क्रांतिकारी सेनाओं ने हालैण्ड को जीत कर वहाँ एक नई क्रांतिकारी सरकार की स्थापना की। इण्डोनेशिया का शासन भी इसी सरकार के हाथ में आया। उसके बाद १८११ से १८१६ तक इन द्वीपों पर ब्रिटेन का प्रभुत्व रहा।

सन् १८१६ में वियेना की इतिहास प्रसिद्ध कांग्रेस में यह द्वीप हालैण्ड को वापस सिपुर्द किये गये। हालैण्ड का शासन मजबूती से कायम हो जाने के पश्चात् वहाँ के शासन ने इंडोनेशिया के लोगों का शोषण करना प्रारंभ किया। इसके लिए उन्होंने 'कल्चर सिस्टम' नामक कानून को प्रचलित किया, जिससे इण्डोनेशियाई किसानों की दशा बहुत खराब हो गई।

कल्चर सिस्टम के अनुसार किसानों को मालगुजारी के रूप में सरकार के लिए अपनी जमीन के एक निश्चित हिस्से में ईख और कॉफी की फसल बोनी पड़ती थी और यह सारी फसल मालगुजारी के रूप में सरकार ले लेती थी। इसमें किसान का जो समय और परिश्रम लगता था उसका कोई मुआवजा उसे नहीं मिलता था।

१६ वीं सदी के अन्त तक यह कल्चर सिस्टम चलती रही, मगर इंडोनेशियाई लोगों के आन्दोलन तथा हालैण्ड के कुछ विचारक लोगों के प्रयत्न से इस कानून का यहाँ के शासन ने अन्त किया।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् सारे संसार के जन-समाज में स्वतंत्रता की जिस दिव्य भावना का उदय हुआ, उससे इंडोनेशिया का जन-समाज भी बचा हुआ नहीं रहा। वहाँ भी स्वाधीनता के आन्दोलन प्रारम्भ हो गये।

इंडोनेशिया में उदय होती हुई स्वतंत्रता की भावनाओं को देखकर सन् १६१६ में हालैण्ड की सरकार ने 'वोल्क्स राड' नामक पार्लियामेंट की स्थापना की, मगर इसके बावजूद भी स्वतंत्रता का आन्दोलन बढ़ता रहा। हालैण्ड की सरकार भी समय-समय पर शासन-सुधार देती रही और सन् १६४१ तक यह स्थिति पैदा हो गई कि इंडोनेशियन सिविल सर्विस में ८४ प्रतिशत संख्या इंडोनेशियनों की हो गई, मगर इससे इंडोनेशिया की स्वतंत्रता की भावना शान्त नहीं हुई और जब जापानी सेनाओं ने इण्डोनेशिया पर आक्रमण करके उसके कुछ हिस्सों पर अधिकार किया तब इण्डोनेशिया ने जापान का साथ दिया। इसके फलस्वरूप जापान के सहयोग से यहाँ पर डॉ० सुकर्णो के नेतृत्व में इण्डोनेशियन रिपब्लिक की स्थापना कर दी गई। अन्त में सन् १६४५ में द्वितीय महायुद्ध के बीच जापान के आत्म-समर्पण करते ही डा० सुकर्णो के नेतृत्व में इंडोनेशियन रिपब्लिक ने देश पर अधिकार कर लिया और हॉलैण्ड के साथ उसका संघर्ष शुरू हो गया।

कुछ दिनों के कठिन समय के पश्चात् डच सरकार ने भी इस रिपब्लिक को मान्यता दे दी और उसका नाम नेदरलैंड इंडोनेशियन यूनियन रखा। ११ दिसम्बर सन् १६४६ को यह घोषित कर दिया गया।

उसके पश्चात् डा० सुकर्णो के नेतृत्व में इंडोनेशिया ने अपना स्वतंत्र शासन चलाना प्रारम्भ किया मगर उस समय इंडोनेशिया में कई शक्तिशाली तत्व ऐसे थे जो इस

नई व्यवस्था को पसन्द नहीं करते थे और इसके खिलाफ विद्रोह करने की तैयारी करते थे। इनमें से दारुल इस्लाम नामक आन्दोलन बहुत जोरदार रूप में उठा था मगर डा० सुकार्णो ने जनता में अपनी लोकप्रियता के कारण बड़ी सफलता के साथ इन घरेलू झगड़ों को शान्त किया और यहाँ पर एक मजबूत सरकार की स्थापना की। एशिया और अफ्रीका के नवोदित स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्रों का संगठन करने के लिए डा० सुकार्णो ने काफी प्रयत्न किया और इण्डोनेशिया में ही उस ऐतिहासिक एशियन अफ्रीकन देशों में 'बाण्डुंग सम्मेलन' का अधिवेशन हुआ।

उसके बाद इण्डोनेशिया में धीरे-धीरे कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव बढ़ने लगा और डा० सुकार्णो भी इसी पार्टी के प्रभाव में आते गये और जब भारत पर चीन ने आक्रमण किया उस समय इण्डोनेशिया का रुख कम्युनिस्ट प्रभावित होने की वजह से भारत की अपेक्षा चीन की ओर ही अधिक झुका रहा।

इण्डोनेशिया का विधान

इण्डोनेशिया रिपब्लिक के विधान का मसविदा संसार के दूसरे प्रजातन्त्रीय विधानों से मिलता जुलता है जिसमें सर्वोच्च सत्ता गवर्नमेंट के हाथ में ही रखी गई है और यह गवर्नमेंट, रिप्रेजेन्टेटिव एसेम्बली और सिनेट के द्वारा निर्मित होती है।

इस रिपब्लिक का प्रेसिडेंट तमाम लड़ाकू सैनिक शक्ति का सर्वोच्च कमाण्डर होता है मगर वह भी पीपुल्स एसेम्बली और सीनेट के सम्मिलित सैशन से अनुमति लिए बिना किसी भी देश से युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता।

इसके मिनिस्टर गवर्नमेंट की सारी पालिसी को कार्य रूप में परिणित करने के लिए पार्लियामेंट के प्रति उत्तर दायी होते हैं।

इस विधान के दूसरे भाग भी इसी प्रकार अन्य प्रजातन्त्रीय विधानों से मिलते जुलते हैं।

इण्डोनेशिया की परराष्ट्र नीति हिन्दुस्तान की परराष्ट्र नीति की तरह किसी भी गुट में सम्मिलित होने की नहीं है। फिर भी उसका झुकाव कम्युनिस्ट गुटों की तरफ है। उसकी परराष्ट्र-नीति का लक्ष्य विश्व शान्ति और युद्ध की विभीषिका से संसार की रक्षा करना है। एशिया और अफ्रीका का सहयोग उसकी परराष्ट्रनीति का प्रधान लक्ष्य है।

इण्डोनेशिया की मुख्य पैदावार में रबर, सिनकोना, शक्कर, चावल मूँगफली सोयाबीन, चाय काफी, तम्बाकू, कोका और कैपूक का तेल प्रमुख है। इसकी खनिज सम्पत्ति में मेंगेनीज, सोना, चाँदी, निकल, कोयला और [illegible] भी काफी अधिकतर पैदा होती है।

इंडोचाइना

दक्षिणी-पूर्वी एशिया के कोने पर बसा हुआ एक देश, जिसे वियेटनाम (Viet Nam) भी कहते हैं। इसका क्षेत्रफल १ लाख ८८ हजार वर्गमील और जन-संख्या २ करोड़ ७ लाख है। इसकी राजधानी हनोई है।

इस समय इसका शासन उत्तरी वियेतनाम और दक्षिणी वियेतनाम के दो भागों में विभक्त है और दो सरकारों द्वारा चलाया जा रहा है। एक सरकार कम्युनिस्ट समर्थक और दूसरी पश्चिमीय शक्तियों की समर्थक है।

इण्डोचाइना राज्य के ५ मुख्य भाग हैं, जिनके नाम, टोनकीन, अनाम, कोचिन चाइना, कम्बोडिया और लाओस है।

इण्डोचाइना का प्राचीन इतिहास चीन और यहाँ के स्थानीय राजाओं के संघर्ष से भरा पड़ा है। यदि चीन का सम्राट बलवान होता था तो अपनी शक्ति के बल से इन राजाओं को अपने अधीन कर लेता था और यदि राजा लोग बलवान हो जाते थे तो वे सम्राट् को धता बताकर स्वतन्त्र हो जाते थे।

इण्डोनेशिया में भारतीय संस्कृति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इसका वर्णन अनाम और अंगकोर के वर्णन के साथ इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में किया गया है।

ईसा की दूसरी शताब्दी के करीब अनाम के दक्षिण भाग में चम्पा नामक भारतीय उपनिवेश राज्य की सत्ता थी। श्रीमार और उसके उत्तराधिकारी चम्पा के राजा भारतीय थे। इन राजाओं में भद्र वर्मन का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

चम्पा के पश्चिम में कम्बोडिया का राज्य था। ईसा की चौथी शताब्दी में कौंडिन्य नामक एक भारतीय ब्राह्मण ने वहाँ भारतीयों का एक राज्य स्थापित किया था। चीनी लोगों ने इसे फूनान के नाम से लिखा है। वहाँ के राजा रुद्र वर्मन और उसकी माता कुल प्रभावती के हाथ खुदवाये हुए शिलालेख यहाँ पर पाये जाते हैं।

सातवीं सदी में कम्बुज देश का राजा ईशान वर्मा था। इसने सन्यासियों के निवास करने के लिए कम्बुज में बहुत से आश्रम बनवाए।

नौवीं सदी में कम्बुज का राजा यशो वर्मा था। उसने अपने नाम से यशोधरपुर नामक नगर बसाया था। बारहवीं सदी के पूर्वार्ध में कम्बुज का राजा सूर्य वर्मा द्वितीय था। उसने एक विशाल विष्णु मन्दिर का निर्माण कराया था।

बौद्ध धर्म के प्रचार से वहाँ के पौराणिक धर्म को बड़ा धक्का लगा और जनता में पौराणिक धर्म की जगह बौद्ध धर्म को मान्यता मिल गई।

यूरोपियनों का प्रवेश

इण्डोचाइना भी दक्षिण पूर्वी एशिया के दूसरे देशों की तरह यूरोपीय जातियों के प्रभाव में आया। सबसे पहले फ्रेंच पादरियों ने इस क्षेत्र में आकर ईसाई धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे वे राजनीति के अन्दर भी अपनी टांग अड़ाने लगे।

इस प्रकार धीरे धीरे बढ़ते-बढ़ते सन् १८६२ में इंडो चाइना में फ्रांस के प्रभुत्व का सूत्रपात हुआ। १८८३ में अनाम और १८९३ में लाओस प्रदेश पर भी फ्रांस ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस प्रकार समस्त इण्डोचाइना पर फ्रांस का अधिकार हो गया।

१९१४-१८ के प्रथम महायुद्ध के बाद संसार में बहने वाली स्वतन्त्रता की लहर इण्डोचाइना में भी पहुँची और वहाँ स्वाधीनता के आन्दोलन प्रारम्भ हुए।

दूसरा महायुद्ध दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों के लिए स्वतंत्रता का शुभ सन्देश लेकर आया था। इण्डोचाइना मलाया इण्डोनेशिया बर्मा आदि जो देश जो एक लम्बे समय से पाश्चात्य साम्राज्यवाद के शिकार हो रहे थे, अब जापान की विजयों के कारण, उन्हें स्वतंत्र होने का अवसर प्राप्त हुआ। इन देशों में कुछ समय के लिए जापान ने अपना सैनिक शासन स्थापित किया। उसके बाद वहाँ ऐसी राष्ट्रीय सरकारें कायम हुईं जो पाश्चात्य-देशों के विरुद्ध जापान के साथ सहयोग करने के लिए तैयार थीं।

जब जापान का एकाएक पतन हो गया और इण्डो-चायना पुनः पाश्चात्य-सेनाओं के अधिकार में आ गया, उस समय इन देशों के राष्ट्रवादी दलों ने पश्चिमी साम्राज्यवाद का मुकाबिला करने के लिए, असाधारण तत्परता प्रदर्शित की। तत्काल इन लोगों ने इण्डो चाइना की राष्ट्रीय स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और वियट्मीन्ह के नाम से अपनी स्वतंत्र सरकार का संगठन कर लिया। इस सरकार का नेता हो-ची-मिन्ह था जो कट्टर राष्ट्रवादी होने के साथ-साथ कम्युनिस्ट भी था।

हो ची मिन्ह के नेतृत्व में 'वियट नाम रिपब्लिक' की स्थापना होते ही २५ अगस्त १९४५ को अनाम के सम्राट् बाओदाई ने सम्राट् पद का परित्याग कर दिया और २ सितम्बर १९४५ को वियट-नाम रिपब्लिक का शासन सम्पूर्ण अनाम पर नियमित रूप से कायम हो गया।

हनोई समझौता

६ मार्च १९४६ को फ्रांस की सरकार ने वियट्नाम की सरकार के साथ 'हनोई समझौते' के नाम से एक समझौता किया, जिसमें फ्रांस सरकार ने यह स्वीकार किया कि वियट्नाम रिपब्लिक की स्थिति एक स्वतंत्र राज्य की है और उसे अपनी पृथक् सरकार, पृथक पार्लियामेंट और पृथक् सेना रखने का अधिकार है। लेकिन वियट्नाम रिपब्लिक 'इण्डो-चाइनीज फेडरेशन' के अन्तर्गत रहेगी और इण्डो चाइनीज फेडरेशन 'फ्रेंच यूनियन' का अंग बन कर रहेगी।

मगर यह समझौता कुछ मतभेदों के कारण अधिक समय तक न चल सका और दिसम्बर १९४६ में वियट नाम रिपब्लिक के साथ फ्रांस की लड़ाई चालू हो गई। खुले मैदान में फ्रांस की सेनाओं के साथ लड़ना वियट नामी सेनाओं के लिए सम्भव नहीं था इसलिये हो-ची मिन्ह ने 'गुरिल्ला युद्ध नीति' का आश्रय लेकर फ्रांस-सेनाओं की स्थिति को बड़ा कठिन बना दिया।

मार्च १९४९ में फ्रांस के राष्ट्रपति श्री ऑरियोल ने एक सन्धि करके इण्डो चाइना का शासन अन्नाम के भू० पू० राजा बाओदायी को सुपुर्द कर दिया और एक लाख से भी अधिक सैनिक बाओदायी की मदद के लिए इण्डो-चाइना भेज दिये। परिणाम यह हुआ कि हो-ची-मिन्ह और बाओदायी की सेनाओं में बाकायदा लड़ाई चालू हो गई। रूस, कम्युनिस्ट चीन आदि कम्युनिस्ट देशों ने हो ची मिन्ह की सरकार को इण्डो चाइना की वैध सरकार के रूप में स्वीकृत किया और अमेरिका फ्रांस, ब्रिटेन आदि देशों ने बाओदायी की सरकार को मान्यता दी।

इस प्रकार देश के उत्तरी वियट नाम और दक्षिणी वियट नाम के नाम से दो विभाग हो गये और दोनों में दो सरकारें कायम हो गईं। उत्तरी वियट नाम कम्युनिस्ट समर्थित सरकार के और दक्षिणी वियट नाम पश्चिम समर्थित सरकार के अन्दर आ गया। इन दोनों सरकारों का संघर्ष अभी तक बड़े तीव्र रूप में चल रहा है और कभी-कभी तो यह संघर्ष इतना तीव्र हो जाता है कि इससे विश्व युद्ध छिड़ने का भय पैदा हो जाता है।

इण्डिया हेरल्ड

अठारहवीं सदी के अन्त में कलकत्ते से निकलने वाला एक अंग्रेजी समाचार पत्र।

इण्डिया हेरल्ड सन् १७९५ की दो अप्रैल को कलकत्ते से निकलना प्रारम्भ हुआ। इसका सम्पादक हम्फ्रीज नामक एक अंग्रेजी पत्रकार था। समाचार पत्रों को प्रारम्भ करने के लिए उस समय सरकार से लायसेन्स लेना पड़ता था। हम्फ्रीज ने भी इजाजत के लिए सरकार को आवेदन पत्र दिया पर जब नहीं मिला तो बिना इजाजत के ही उसने पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया। इस पर सरकार बहुत क्रुद्ध हुई और उसने उस पर शासन और प्रिन्स ऑफ वेल्स के सम्बन्ध में अपमानजनक लेख प्रकाशित करने का आरोप लगाकर जहाज पर चढ़ा कर इंग्लैण्ड भेज दिया। अंग्रेज सम्पादकों को ब्रिटिश सरकार उस समय यही सजा देती थी।

इण्डिया गजट

नवम्बर सन् १७८० से प्रकाशित होने वाला कलकत्ते का एक अंग्रेजी समाचार पत्र जिसे टी बी स्मॉल एण्ड कम्पनी प्रकाशित करती थी और जो सप्ताह में दो या तीन बार निकलता था। बाद में इस पत्र का सञ्चालनभार द्वारका नाथ ठाकुर ने खरीद लिया।

इंग्लिश मैन

लार्ड हेस्टिंग्स के समय में जेम्स बकिंघम के सम्पादन में "जॉनबुल" नामक एक दैनिक प्रकाशित होता था जो हिन्दुस्तानियों के प्रति ब्रिटिश सरकार की उदार नीति की व्यंग पूर्ण भाषा में आलोचना करता था। आगे चलकर इसी पत्र का नाम बदलकर इंग्लिश मैन हो गया और इसके सम्पादक ए. जे. स्टॉकर बने। स्टॉकर के पश्चात् सर रोपर लेथब्रिज इंग्लिश मैन के सम्पादक बने। ये विशुद्ध साम्राज्यवादी भावना के व्यक्ति थे। उस समय ब्रिटिश हितों और बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स का यह पत्र पूर्ण समर्थक था। मगर ज्यों ज्यों देश में राजनैतिक जागृति होने लगी त्यों त्यों इस पत्र की स्थिति बिगड़ने लगी और सन् १९३४ के लगभग कुछ पहले स्टेट्समैन ने इसे खरीद कर अपने में मिला लिया।

इण्डियन मिरर

कलकत्ते से बाबू नरेन्द्र नाथ सेन के सम्पादन में निकलने वाला अंग्रेजी दैनिक-पत्र।

इण्डियन मिरर ब्राह्म समाज और समाज सुधार के विचारों का प्रबल पृष्ठ पोषक था। सन् १८६१ के आस पास इसका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। ब्रह्म समाज के नेता बाबू केशवचन्द्र सेन का पूरा समर्थन इसे प्राप्त था। इसी समय सुरेन्द्र नाथ बनर्जी का बंगाली भी निकलता था जो हिन्दू भावनाओं का समर्थक था। इन दोनों पत्रों के बीच में विचारों का संघर्ष होता रहता था।

इण्डियन डेली न्यूज़

बैरिस्टर ब्राउन नामक अंग्रेज पत्रकार के सम्पादन में कलकत्ते से निकलने वाला समाचार पत्र, जिसे बाद में राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए देशबन्धु दास ने खरीद कर "फारवर्ड" के नाम से निकाला।

इण्डिपेण्डेण्ट

इलाहाबाद से पं. मोतीलाल नेहरू के संरक्षण में निकलने वाला राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र।

इलाहाबाद में उस समय सी. वाई. चिन्तामणी का लीडर नामक पत्र गवर्नमेंट से सहयोग की नरम नीति का समर्थक था, पं. मोतीलाल नेहरू को उसकी नरम नीति पसन्द नहीं थी इसलिए उन्होंने उसके मुकाबले में इण्डिपेण्डेण्ट पत्र निकाला। भारत में सत्याग्रह आन्दोलन के समय में इस पत्र ने बहुत काम किया। इसके पहले सम्पादक बाबू विपिनचन्द्र पाल, दूसरे सैय्यद हुसैन और तीसरे तथा अन्तिम रंगा अय्यर थे।

इताकागी

जापान के जियूतो नाम के प्रथम राजनैतिक दल का संस्थापक, जिसका जन्म सन् १८१७ में और मृत्यु १९१९ में हुई।

इताकागी द्वारा स्थापित 'जियूतो' नामक राजनैतिक संगठन ने जापान में संसदीय शासन के प्रवर्तन में बहुत परिश्रम किया। इताकागी ने अपना सारा जीवन इस दल को सुसंगठित करने में लगा दिया। इन्होंने जनता को प्रजातन्त्र की शिक्षा देने के लिए स्कूलों की स्थापना की। ये स्कूल जनता में बड़े लोकप्रिय हुए।

इत्सिंग

चीन का सुप्रसिद्ध यात्री जिसने सन् ६७१ से ६९५ तक पचीस वर्ष में ३ देशों की यात्रा की।

ह्वेनसांग अथवा युआन चांग की भारत-यात्रा के पश्चात् सन् ६७१ के करीब इत्सिंग ने भारत की यात्रा की। इसकी यात्रा आते और जाते दोनों बार समुद्री मार्गों से हुई। इत्सिंग केवल तेरह वर्ष की अवस्था में ही बौद्ध भिक्षु-संघ में दीक्षा ग्रहण करने प्रविष्ट हो गया था।

इत्सिंग ने 'नालन्दा-विश्व विद्यालय' में दस वर्ष तक रह कर बौद्ध-धर्म का गम्भीर अध्ययन किया। इसके पश्चात् चार वर्ष तक श्री विजय में रहकर उसने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। सुमात्रा, जावा मलाया इत्यादि और भी कुछ देशों की उसने यात्रा की। भारतवर्ष से यह करीब ४ ग्रन्थों को अपने साथ चीन ले गया। इनमें से ५६ ग्रन्थों का उसने स्वयं चीनी भाषा में अनुवाद किया। सन् ६९५ में यह चीन वापस लौटा वहाँ पर वहाँ के सम्राट् और नागरिकों ने उसका भव्य सत्कार किया।

इत्सिंग का यात्रा-विवरण ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण की तरह वैज्ञानिक लेखन शैली और विविधताओं से पूर्ण तो नहीं है, पर उसमें मानवीयतापूर्ण भावुकता का आधिक्य है।

इत्सिंग ने लिखा है कि कोरिया के भी कई भिक्षुओं ने मध्यएशिया तथा समुद्री मार्गों से भारत-यात्रा का प्रयत्न किया था, मगर मार्ग की कठिनाइयों के कारण वे या तो मार्ग में ही या भारत पहुँच कर मर गये और अपने देश को वापस नहीं पहुँच सके।

इण्डियन एक्सप्रेस

भारतवर्ष का एक सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक पत्र जो नई दिल्ली, बम्बई मदुराई विजयवाड़ा और बेलूर से एक साथ प्रकाशित होता है और जिसकी सम्मिलित ग्राहक संख्या भारतवर्ष के सभी दैनिक पत्रों से अधिक है ऐसा पत्र के लेख से मालूम होता है।

मद्रास के श्री रामनाथ गोयनका जो मूलतः राजस्थान के निवासी हैं भारतीय पत्रकार कला में व्यावसायिक दृष्टि से चरम सफलता प्राप्त करने वाले प्रथम व्यक्ति हैं। पत्रकार क्षेत्र में प्रवेश कर इन्होंने अनेक पत्र निकाले और इन पत्रों की तथा सम्पादन कला की दृष्टि से तथा प्रबन्ध की दृष्टि से और तथा विज्ञापन की दृष्टि से ऐसी व्यवस्था की जिससे बहुत शीघ्र इस क्षेत्र में इन पत्रों ने अपना स्थान बना लिया और थोड़े ही समय में श्री गोयनका ने इन पत्रों के द्वारा लाखों रुपये उपार्जन कर लिए। देहली

में मथुरा रोड पर लाखों रुपये की लागत से बनी "एक्सप्रेस बिल्डिंग" देहली की दर्शनीय इमारतों में से एक है।

इण्डियन एक्सप्रेस भी श्री गोयनका द्वारा संचालित एक अंग्रेजी दैनिक है जो इस समय नई दिल्ली, बम्बई, मदुराई, विजयवाड़ा और चित्तूर इन पाँच स्थानों से एक साथ प्रकाशित होता है। इसके एडिटर इन चीफ श्री फ्रेन्क मोरीस (Frank Moraes) नामक व्यक्ति हैं। भारतवर्ष पत्रकारिता के क्षेत्र में 'इण्डियन एक्सप्रेस' अपना प्रधान स्थान रखता है।

इतिहास

मानव समाज में स्थापित राजसंस्था, समाज संस्था, धर्मसंस्था तथा अन्य संस्थाओं के उत्थान, पतन तथा क्रमागत विकास का वैज्ञानिक रूप से विवेचन करने वाला एक महान् शास्त्र।

इतिहास मनुष्य के भूतकाल का मंथन करके उसके प्रकाश में मानव समाज को वर्तमान और भविष्य का निर्माण करने की प्रेरणा देता है। वह बतलाता है कि मनुष्य की सुख सुविधा और कल्याण के लिए निर्मित की गई राजसंस्था, धर्मसंस्था तथा समाज संस्था ने अब तक क्या-क्या रूप धारण किये हैं, उन रूपों से मानव-समाज को अब तक क्या क्या सुख और दुःख उठाना पड़ा है, उनमें अभी तक क्या क्या त्रुटियाँ रही हैं और उन त्रुटियों का निवारण करके उनके वर्तमान और भावी रूप का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है। जिससे मनुष्य जाति को भूत काल में उठाये हुए दुःख आगे न उठाना पड़े।

इतिहास वह त्रिवेणी है जिसमें राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र और धर्मशास्त्र की महानदियाँ अलग अलग दिशाओं से बहकर आती हुई एकाकार हो जाती हैं।

राजसंस्था

इतिहास भूतकाल का शव परीक्षण (Post Martem) करके हमें बतलाता है कि राजसंस्था कबायली तंत्र, सैनिक तंत्र, आततायी तंत्र (Tyranny) निरंकुश राजतंत्र, प्रजापालक राजतंत्र और तानाशाही तंत्रों के बीच में से गुजरती हुई किस प्रकार इस समय प्रजातंत्र (Democracy) के समीप पहुँची है। इन तरह-तरह के तंत्रों में से गुजरते हुए उसने क्या क्या सुख-दुःख उठाये हैं। इन तंत्रों में उसने रामराज्य, अशोक महान्, अलेक्जेंडर सीजर, शार्लमेन, चन्द्रगुप्त द्वितीय, अकबर महान् इत्यादि महान् शासकों के शान्तिपूर्ण युग भी देखे हैं और चंगेज खाँ, हलाकू, तैमूरलंग, महमूद गजनवी इत्यादि आततायियों के भयंकर आक्रमणों से भयंकर त्रास भी पाया है और इन सब सुख दुःखों को भोगते हुए आज उसने प्रजातंत्र के युग में प्रवेश किया है। इतिहास हमें यह भी बतलाता है कि किस प्रकार क्रामवेल के द्वारा स्थापित प्रजातंत्र कॉमनवेल्थ में बदल गया और इंग्लैण्ड को फिर से राजा को स्थापित करने के लिए बाध्य होना पड़ा तथा किस प्रकार द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् कई देशों में नवजात प्रजातंत्र नष्ट होकर सैनिक-तंत्र की स्थापना हुई। इतिहास हमें यह विचार करने का अवसर देता है कि यद्यपि राजसंस्था की बहुत सी कमजोरियों का इस प्रजातंत्र की इस योजना में मानव समाज के बौद्धिक दिमाग ने करने का प्रयत्न किया है फिर भी अनन्तकाल से चलने वाला प्रश्नवाचक चिह्न (?) क्या इसमें से निकल गया है? क्या प्रजातंत्र की अपनी समस्यायें नहीं हैं और यदि उन समस्याओं का हल करने में मनुष्य असफल रहा तो क्या फिर उसे उसी अंधकार युग में प्रवेश करना पड़ेगा?

इतिहास बतलाता है कि नवीन युग में मनुष्य के बौद्धिक विकास से विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई है और उसे प्रकृति के बदलने की अनन्त शक्ति प्राप्त हुई है यह सच है मगर साथ ही वह यह भी बतलाता है कि अहंकारी मानव को जब जब अनियन्त्रित शक्ति मिली है तब तब उसने उसका उपयोग सृजन की अपेक्षा विध्वंस की ओर अधिक किया है। वह पूछता है कि क्या कोई मनुष्य स्वभाव में ऐसा परिवर्तन होने की गारण्टी दे सकता है जिससे यह विश्वास किया जा सके कि ऐसी घटनायें भविष्य में नहीं होंगी। अगर मनुष्य की अहंकार प्रवृत्ति ने और विश्व सत्ता की दुर्दमनीय लालसा ने संघर्ष

की कोई चिनगारी पैदा कर दी तो क्या हालत होगी। वह यह भी प्रश्न करता है कि विज्ञान की इन शक्तियों से बेजानकार मानव का नैतिक धरातल ऊँचा था या आज के इस शक्ति सम्पन्न मानव का नैतिक धरातल ऊँचा है।

धर्मसंस्था

इतिहास बतलाता है कि बहुदेववाद अनेक देववाद, एकेश्वरवाद तथा आर्य, क्रिश्चियन, बौद्ध और इसलाम धर्मों के बीच से निकलकर आनेवाली धर्मसंस्था ने अब तक मानव जाति का क्या उपकार किया है और उसे क्या-क्या दुःख पहुँचाये हैं। वह हमारे सामने मध्ययुग में क्रिश्चियानिटी के समान महान् धर्म के प्रतिनिधियों के द्वारा स्थापित इन्क्वीजीशन अदालत का मर्मभेदी चित्र पेश करता है जिसकी वेदी पर धर्म सुधार के बहाने लाखों आदमियों के निर्दयतापूर्वक प्राण लिये गये। वह महमूद गजनवी और तैमूरलंग का उदाहरण पेश करता है जिन्होंने धर्म प्रचार के नाम पर तथा कुफ्र का नाश करने के नाम पर अपने आक्रमणों से अनेकों बार कई देशों की भयङ्कर लूट की और लाखों आदमियों का नर-संहार किया।

मगर इसके साथ ही इतिहास धर्मसंस्था के चित्र का दूसरा पहलू भी हमारे सामने पेश करता है जिसमें विश्व की महान् प्रतिभाओं ने जंगलों में बैठकर इसी धर्म संस्था की छाँह में जीवन और संसार की महान समस्याओं का समाधान ढूँढा था। वाल्मीकि और व्यास, राम और कृष्ण, महावीर और बुद्ध, कन्फ्यूशस और जरथोस्ट, ईसा और मुहम्मद, कबीर और नानक इत्यादि के सेकड़ों उदाहरण वह गिनाता है।

इतिहास यह भी बतलाता है कि वर्तमान युग क्रमशः धर्मसंस्था का बहिष्कार करता हुआ धर्म निरपेक्ष और धर्म रहित समाज की स्थापना करने का प्रयत्न कर रहा है मगर वह प्रश्न करता है कि 'धर्म रहित' समाज क्या एकदम निरापद है? क्या धर्मसंस्था और उसके नैतिक धरातल के बिना मनुष्य का सामाजिक जीवन सुरक्षित रह सकेगा?

समाज संस्था

इतिहास कहता है कि मनुष्य की समाज संस्था वर्णाश्रम जाति-पाँति, छूआ-छूत, दासप्रथा, कुलीनवाद और पूँजीवाद की घाटियों के बीच में से निकलती हुई चली आ रही है। निम्न वर्ग के लोगों ने इस संस्था की चक्की में पिसकर अछूत और दास प्रथा के रूप में भयंकर अत्याचारों को सहन किया है। इतिहास ऐसे अत्याचारों के दिल दहलाने वाले उदाहरण पेश करता है। साथ ही वह यह भी बतलाता है कि इसी व्यवस्था में संसार की अन्दर ऐसे युग भी आये हैं जिसमें सारी प्रजा ने बड़ी शान्ति के साथ जीवन के सुखों का उपभोग किया है।

इस अव्यवस्था का अन्त करने के लिए आज का मानव उन पुरानी सभी व्यवस्थाओं को नष्ट कर समाजवाद और साम्यवाद की नवीन पद्धतियों से अपने समाज का संगठन करना चाहता है। इतिहास यह पूछ सकता है कि क्या इन नवीन पद्धतियों की कोई समस्याएँ नहीं हैं, मनुष्य के अन्दर प्रकृति-प्रदत्त रहनेवाली बौद्धिक और शारीरिक विषमता पर क्या यह समानता की प्रवृत्ति विजय पा सकेगी?

इत्यादि, जीवन के अन्तर्गत आनेवाली हर समस्या पर भूतकाल के प्रकाश में वह विवेचन करता है। इसलिए मानव जीवन की सरलता और शान्ति के लिए इतिहास शास्त्र का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

मानव समाज में इतिहास शास्त्र का विकास अनेक सोपानों में हुआ है। प्रारम्भ में भिन्न भिन्न अनेक देशों में वहाँ पर होने वाले वीर लोगों की स्मृति में वीर गाथा के रूप में यह तैयार किया जाता था जिसमें कालक्रम का कोई ध्यान नहीं रक्खा जाता था। उसके बाद यह कहानियों के रूप में और उसके साथ ही पुराणों के रूप में तैयार होने लगा।

इन पुराणों में मानव समाज की तत्कालीन स्थिति राजाओं की वंशपरम्परा के सिलसिलेवार नाम उनके पराक्रमों का वर्णन उस समय की समाज नीति और धर्म संस्था का वर्णन और उनके स्मारक इत्यादि अनेक बातें व्यवस्थित रूप में मिलती हैं। मगर चूँकि इन ग्रन्थों में घटनाओं के काल क्रम का कोई ज्ञान नहीं है दूसरे इनकी विवेचनाओं में मूल वस्तु के साथ कल्पनाओं को अत्यधिक रूप से जोड़ दिया गया है। इसलिए आजकल के

इतिहास की परिभाषा में उनकी गणना नहीं की जाती। आधुनिक इतिहास की परिभाषा में कालक्रम का ज्ञान होना उसकी स्थिति का अनिवार्य अङ्ग माना जाता है।

अभी तक व्यवस्थित रूप से संसार में इतिहास लिखने की प्रणाली को जारी करनेवाला यूनान का प्रसिद्ध लेखक "हेरोडोटस" माना जाता है। इसको The father of history (इतिहास का पिता) कहा जाता है। इसका समय ईसा से ४८४ वर्ष पूर्व से लेकर ४२५ वर्ष ई० पूर्व तक है। हेरोडोटस ने दूर दूर के देशों की यात्रा की और उन देशों से ऐतिहासिक सामग्री को संकलन कर उसे इतिहास के रूप में वर्णन किया है यद्यपि उसके वर्णन में भी सुनी सुनाई बहुत सी कल्पनामूलक कहानियों का समावेश है। थ्यूसी-डाइडीज और जेनोफेन भी इस युग के प्रसिद्ध इतिहासकार थे। यूनानी भाषा में इतिहास को हिस्टरी कहते हैं और उसी से अंग्रेजी का हिस्ट्री शब्द बना है।

कुछ लोगों का ऐसा भी अनुमान है कि इतिहास लिखने की प्रथा चीन में इससे भी पहले प्रारम्भ हो गई थी और हान साम्राज्य के समय में या कन्फ्यूशस युग में तो इसका काफी विकास हो गया था। चीनी भाषा में इतिहास को शू-चिंग कहते हैं। प्राचीन काल में इस विषय का सबसे प्रतिभाशाली इतिहासकार सी-मा-चेन हुआ जिसने शीच ही नामक विशद ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा जो ११ अध्यायों में विभक्त चीन का इतिहास है। इस लेखक का समय ईस्वी सन् पूर्व १४५ से ८७ ई० पू० तक है।

भारतवर्ष में वैसे तो इतिहास लिखने की प्रथा प्राचीन समय से है मगर वैज्ञानिक ढंग से क्रम परम्परा के साथ इतिहास लिखने वाला पहला इतिहासकार कल्हण कवि माना जाता है। जिसने राजतरंगिणी नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की जिसमें काश्मीर के इतिहास का विधिवत् उल्लेख किया गया है।

इतिहास लिखने की परम्पराओं में भी कई परिवर्तन होते रहे हैं। पहले कथा कहानी की ही इसमें प्रधानता रहती थी, उसके बाद सन् संवत के साथ राज्यों में होने वाली घटनाओं और परिवर्तनों का उल्लेख होता था। पर जब संसार में पुरातत्व की खुदाइयाँ होकर नई नई चीजें, शिलालेख, ताम्रपत्र, पुरानी शिल्पकला और अन्य कई प्रकार की चीजें प्राप्त होने लगीं तो इस शास्त्र का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया और राज परिवर्तन के साथ साथ समाज संस्था, धर्म संस्था, प्राचीन संस्कृति साहित्य, कला इत्यादि सभी इतिहास के क्षेत्र में आने लगे और आज के युग में तो इस शास्त्र का क्षेत्र बहुत ही व्यापक हो गया है।

संसार में एक देश से दूसरे देश की यात्रा करने वाले यात्रियों के यात्रा वर्णनों से भी इतिहास के विषय में बड़ी सहायता मिलती है।

इतिहास का क्षेत्र इतना व्यापक हो जाने पर भी प्राचीन घटनाओं या अवस्थाओं के बारे में कोई निर्भ्रान्त ज्ञान करने में वह पूर्णत समर्थ नहीं है। उस काल के सम्बन्ध में लगाये हुए बहुत से अनुमान थोड़े ही समय में गलत साबित हो जाते हैं जबकि पुरातत्व की खुदाई कोई नवीन वस्तु लाकर उसके सामने पेश करती है। मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के पश्चात् बहुत से ऐति-हासिक निष्कर्षों में एकदम परिवर्तन हो गया।

इतिहास की मर्यादा यद्यपि देश और काल के ऊपर है और इतिहासकार का धर्म यही है कि वह देशकाल के ऊपर रहकर घटनाओं की समीक्षा करे, मगर अधिकांश इतिहासकार देश और काल के प्रभाव से बच नहीं पाते और जिस देश में व जिस समाज में वे रहते हैं उसके प्रति पक्षपात की गन्ध उनकी विवेचनाओं में आ ही जाती है।

इस प्रकार मानवीय साहित्य में इतिहास शास्त्र मनुष्य की ज्ञानवृद्धि के साथ क्रमशः अपना क्षेत्र विस्तृत करता हुआ मानव जाति के लिए दिशा सूचक यंत्र का काम कर रहा है।

इतो

जापान का सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ प्रिन्स इतो जिसने जापान का प्रथम संविधान तैयार किया और बाद में सन् १८६१ में जापान का प्रधानमंत्री बना। जापान में शोगुन सरकार को खतम कर सम्राट् की सरकार की पुनः स्थापना में इस राजनीतिज्ञ का प्रधान हाथ था।

जिस समय जापान में प्रिन्स इतो का आविर्भाव हुआ, उस समय जापान नई सभ्यता के प्रकाश से बिलकुल वंचित था। वहाँ के निवासियों को विदेश जाने की मनाही थी और जो विदेश जाता था, उसे वापिस लौटने पर प्राण दण्ड दिया जाता था। जापान की युद्ध-कला और सभ्यता इस कूप मण्डूकता की वजह से बहुत पिछड़ गई थी।

नया शासन विधान

प्रिन्स इतो जापान के नवीन शासन विधान का प्रधान निर्माता है। सन् १८८२ में जापान सम्राट् ने पश्चिमीय देशों के शासन विधानों का और वहाँ की युद्ध कला का अध्ययन करने के लिए उसे यूरोप भेजा। वहाँ जाकर उसने सब प्रकार के विधानों का अध्ययन किया। फ्रान्स और अमेरिका के रिपब्लिक विधानों ने उसके चित्त को प्रभावित नहीं किया। इंग्लैण्ड का मर्यादित राजतंत्र भी उसे नहीं जँचा। वह राजतंत्र का अधिकार प्रिय व्यक्ति था। उसने प्रशिया के विधान को बड़ा पसन्द किया जो जापान में सुगमता से लागू किया जा सकता था।

सन् १८८३ में वह जापान लौटकर आया और उसकी अध्यक्षता में सरकार ने सविधान निर्माण का एक अलग विभाग स्थापित कर दिया। वहाँ पर प्रिन्स इतो ने जापान का नया सविधान तैयार किया, जो सन् १८८९ से जापान में लागू कर दिया गया। इस संविधान की रचना में तीन तत्व प्रधान रक्खे गये—(१) सम्राट् (२) लोकसभा (३) राज्यसभा।

इस विधान में लार्ड-सभा और लोक सभा की व्यवस्था में तो प्रजातंत्रीय विधानों से विशेष अन्तर नहीं था पर सम्राट् के अधिकार इसमें अपरिमित रक्खे गये थे उसकी स्थिति अत्यन्त पवित्र अनुल्लंघनीय मानी गई थी। युद्ध की घोषणा संधिविग्रह के सम्पूर्ण अधिकार, मंत्रि मण्डल के निर्वाचन की सर्वोच्च-सत्ता उसे प्राप्त थी और इस विधान में मंत्री लोग पार्लियामेंट के प्रति नहीं प्रत्युत सम्राट् के प्रति उत्तरदायी माने गये थे।

सन् १८९४ में चीन-जापान युद्ध प्रारम्भ हुआ तब जापान का प्रधानमंत्री प्रिन्स इतो था। इसी ने इस बात का प्रयत्न किया कि इस संकट-काल के समय में जापान के सब राजनैतिक दल एक हो जायें और उसने सब दलों का आह्वान किया जापान के सब दलों ने देशभक्ति की प्रेरणा से सब आपसी मतभेदों को भूलकर इतो का दिल से साथ दिया।

पर युद्ध समाप्त होते ही पार्लमेंट में 'इतो' का विरोध बहुत प्रबल हो गया और उसे प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देना पड़ा। सन् १८९७ में उसे फिर प्रधानमंत्री बनाया गया, मगर पार्लमेंट में केन्सेरवाई (संविधानवादी) दल का बहुमत होने से उसे फिर इस्तीफा देना पड़ा। पर उसके बाद दूसरा मंत्रि-मण्डल भी शासन में सफल नहीं हुआ और सन् १९ में इतो ने फिर अपने मंत्रि मण्डल का निर्माण किया। इस बार इतो ने पार्लमेंट के बहुसंख्यक सदस्यों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया, और "सैयुकाई" के नाम से एक नवीन दल की स्थापना की। प्रिन्स इतो के वैयक्तिक प्रभाव के कारण 'केन्सेइकाई दल' के लोग तथा दूसरे भी अनेक सदस्य सैयुकाई दल में शामिल हो गये। मगर इतो यह चाहता था कि मंत्रिमण्डल अपनी स्थिति के लिए पार्लमेन्ट पर निर्भर न रहे। उसने घोषणा की कि संविधान के अनुसार मंत्रियों को नियुक्त करने का अधिकार सम्राट् के हाथों में है और मंत्री लोग तब तक अपने पद पर रह सकते हैं जब तक कि सम्राट् उन्हें वहाँ से न हटा दें।

इतो की इस घोषणा से प्रजातन्त्रवादी पार्टियाँ उससे असन्तुष्ट हो गईं और १९ १ में उसे फिर त्यागपत्र देना पड़ा।

सन् १९ ५ में प्रिन्स इतो कोरिया का रेजीडेण्ट जनरल बनाया गया और सन् १९ ९ में कोरिया के किसी गुप्त संगठन के द्वारा उसकी हत्या कर दी गई।

इजूमो फूदोकी

जापान का सबसे पहला भौगोलिक ग्रन्थ, जिसका संग्रह 'इजूमोनोओमी दियेशिमा' नामक जापानी लेखक ने सन् ७११ में किया।

इथिल फ्लीडा

इंग्लैंड के प्रसिद्ध राजा अल्फ्रेड की पुत्री जो मर्शिया के राजा को ब्याही थी मगर राजा के मरने पर जो वैधव्य अवस्था में राज्य का शासन कर रही थी।

सन् ९०१ में अलफ्रेड महान् की मृत्यु हो गई और उसकी जगह उसका पुत्र एडवर्ड गद्दी पर बैठा। उस समय आधा इंग्लैंड डेन लोगों के अधिकार में था। एडवर्ड ने गद्दी पर बैठते ही अपने राज्य को बढ़ाना प्रारम्भ किया। उसकी विधवा बहिन इथिल फ्लीडा ने भी कि एक शक्तिशाली रानी थी एडवर्ड को इस काम में बड़ी मदद दी। उसकी सहायता से एडवर्ड ने कई स्थान डेन लोगों से जीतकर अपनी शक्ति को बहुत बढ़ा लिया। इथिल फ्लीडा की मृत्यु होने पर मर्शिया का आधा भाग भी एडवर्ड को मिल गया।

इथिलस्टन

इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध नरेश अल्फ्रेड महान् के पुत्र एडवर्ड का लड़का जो सन् ९२५ में गद्दी पर बैठा।

इथलस्टेन ने अपने दादा अलफ्रेड द्वारा प्रारम्भ किये हुए वेसेक्स के विस्तार के कार्य को चालू रक्खा। उसने अपनी बहन (किसी-किसी ग्रन्थ में पुत्री का उल्लेख है) का विवाह नार्थम्ब्रिया के डेन राजा के साथ कर दिया। डेन राजा की मृत्यु हो जाने पर उसने नार्थम्ब्रिया को अपने राज्य में मिला लिया।

एथिलस्टन बड़ा राजनीतिज्ञ था। उसने पहले-पहल यूरोप के अन्य देशों से इंग्लैंड के राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किये तथा यूरोप के राजकुलों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर चारों तरफ अपनी रिश्तेदारी कायम की। मगर स्वयं जीवन भर अविवाहित रहा इसलिए उसको कोई सन्तान नहीं हुई।

इथिलबर्ट

ईसा की छठी शताब्दी में ब्रिटेन के केन्ट प्रदेश का राजा इथिल बर्ट।

छठी शताब्दी के अन्त में अर्थात् सन् ५९७–९८ के करीब जब पोप ग्रेगरी के आदेश से अगस्टाइन नामक ईसाई सन्त अपने ४० साथियों के साथ ब्रिटेन में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए थेनिट टापू में उतरा उस समय केन्ट का राजा इथिल बर्ट था। इथिल बर्ट की रानी वर्षों पहले ही ईसाई-धर्म को अंगीकार कर चुकी थी। इस लिए राजा इथिल बर्ट को जब ईसाई-प्रचारकों के उतरने की खबर मिली तो उसने उनका बड़ा स्वागत किया।

अगस्टाइन ने इथिल बर्ट को ईसाई धर्म का उपदेश दिया। पहले तो उसने अपने पूर्वजों के धर्म को छोड़ने से इन्कार किया मगर कुछ समय उपरान्त उसने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। इस राजा के समय में इंग्लैंड में ईसाई धर्म का काफी प्रचार हुआ।

इदरिसी

अरब देश का प्रसिद्ध भूगोल-शास्त्री अब्दुल्ला इब्न इदरिसी, जिसका जन्म सन् १०९९ में और मृत्यु सन् ११५४ में हुई।

इदरिसी सिसली के राजा रॉजर द्वितीय के दरबार में भूगोल शास्त्री था। इसका लिखा हुआ "अलरोजरी" नामक भूगोल का ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में इदरिसी ने भिन्न-भिन्न देशों का भ्रमण किया था, उनका भौगोलिक विवेचन किया है। इस भूगोल का फ्रेंच अनुवाद पेरिस की ज्याग्रफिकल सोसायटी ने प्रकाशित किया है।

इन्द्रभूति गौतम

भगवान् महावीर की सभा (समवसरण) में उनके घोषित सिद्धान्तों की व्याख्या करने वाले प्रथम गणधर, जो ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में भगवान् महावीर के समकालीन थे।

जैन-परम्परा के अनुसार इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण कुलोत्पन्न वैदिक धर्म के महान् व्याख्याता थे। जिस समय भगवान् महावीर को कैवल्य प्राप्ति हुई और उनकी देशना (उपदेश) होने वाली थी, उस समय इन्द्रभूति गौतम अपने ग्यारह विद्वानों के साथ अपापा नगरी के सोमिल नामक एक सम्पन्न ब्राह्मण के घर पर एक बड़े यज्ञ को सम्पन्न करा रहे थे।

जब भगवान् महावीर की प्रथम 'देशना' सुनने के लिए हजारों आदमी उधर जाने लगे तब इन्द्रभूति गौतम

को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछने पर जब उनको मालूम हुआ तो वे शास्त्रार्थ करने के निमित्त महावीर के समा-मवसर में गये। वहाँ पर जीव और कर्म के सिद्धान्त पर काफी समय तक उनका शास्त्रार्थ हुआ और अन्त में भगवान् महावीर के तर्कों को युक्ति-युक्त समझ कर उन्होंने भगवान महावीर से जैन-धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली और वे उनके प्रथम गणधर हुए। उसके पश्चात् "अग्नि-भूति, वायुभूति, सुधर्मा इत्यादि शेष दस पण्डितों ने भी भगवान महावीर से दीक्षा ग्रहण कर ली और वे ही उनकी सभा के ग्यारह गणधर हुए।

भगवान् महावीर के सामने और उनके पश्चात् भी इन गणधरों ने भगवान् महावीर के सिद्धान्तों की व्याख्या कर जैन सिद्धान्त के बारह अंगों का निर्माण किया। इन सभी अंगों पर विशाल सूत्रों की रचना हुई।

इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के अत्यन्त प्रिय-पात्र थे और महावीर के ऊपर उनका कुछ ममता भाव भी था। इस ममताभाव के कारण उनको कैवल्य की प्राप्ति होने में विलम्ब हो रहा था। वहाँ तक कि उनके दस साथियों को कैवल्य की प्राप्ति हो जाने पर भी उनको नहीं हो पाई।

तब एक बार उन्होंने दुःखी होकर भगवान महावीर से प्रश्न किया—"भगवन्! कौन सा पाप कौन सो कमी अभी तक मेरी कैवल्य-प्राप्ति में बाधक हो रही है!" तब महावीर ने कहा कि "हे गौतम! मेरे ऊपर जो तेरा ममत्व-भाव बना हुआ है वही तेरी कैवल्य प्राप्ति में बाधक हो रहा है और मेरे निर्वाण के पश्चात् ही तुझे कैवल्य-प्राप्ति होगी।

भगवान महावीर के निर्वाण के तुरन्त बाद ही इन्द्र भूति गौतम को कैवल्य प्राप्ति हुई, ऐसा जैन परम्परा का विश्वास है।

इन्द्राणी रहमान

भारतवर्ष की एक सुप्रसिद्ध नृत्यकार, जिनका जन्म सन् १६३१ में हुआ।

इन्द्राणी रहमान भारतवर्ष के शास्त्रीय नृत्यों की सुप्रसिद्ध नृत्यकार हैं। इनकी माता रागिनी देवी अमेरिकन महिला थीं। भारतीय नृत्यों से आकर्षित हो वे यहाँ के नृत्य सीखने भारत में आईं और यहीं पर एक भारतीय से उन्होंने विवाह कर लिया।

माता के नृत्यकला में पारङ्गत होने से इन्द्राणी रहमान को बचपन से ही नृत्य का शौक पैदा हो गया और सिर्फ पाँच बरस की उमर में इन्होंने रंगमंच पर आकर सबसे पहले अपने नृत्य का अभिनय किया तो रसिकजन इस बालिका की कला को देखकर वाह वाह कर उठे।

आगे चलकर इन्द्राणी रहमान ने अपनी कला में और भी अधिकाधिक उन्नति की। सन् १६६१ में वे शिकागो के अन्तर्राष्ट्रीय मेले में अपनी पार्टी के साथ भारतीय नृत्यों का प्रदर्शन करने गयी थीं। इस पार्टी में इनके साथ कुचि पुडि-नृत्य के कलाकार कोरड नरसिंह राव उड़ीसा शैली के कलाकार देवप्रसाद दास बांसुरी वादक श्रीनिवास मूर्ति इत्यादि कई और कलाकार भी थे। इस मेले में इस पार्टी ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का अर्जन किया।

इन्दुलेखा

मलयालम साहित्य का एक प्रसिद्ध उपन्यास जिसके लेखक चन्दू मेनोन नामक मलयालम लेखक हैं।

इन्दुलेखा में लेखक ने अपने समाज तथा नंपूतिरी-समाज की गिरती हुई अवस्था का प्रभावशाली चरित्र चित्रण किया है। नंपूतिरी लोग जमींदार थे। जमींदारी के दूषित पक्षों का चित्र, साथ ही जमींदारों के आश्रित लोगों के अधःपतन का इसमें अच्छा प्रदर्शन किया गया है। लेखक अंग्रेजी का बड़ा पंडित था और उस भाषा के उपन्यासों का अध्ययन करके उसी ढंग पर यहाँ के वातावरण का चित्र, उसने "इन्दुलेखा" में सफलतापूर्वक अंकित किया है। इस नवीन कृति के द्वारा अपने समाज को सुधारने में चन्दूमेनोन ने अच्छी सफलता पाई है। मलयालम-साहित्य के उपन्यास क्षेत्र में इस उपन्यास का उच्च स्थान है।

इन्द्रप्रस्थ

आधुनिक देहली और कुतुबमीनार के बीच में अव-स्थित एक प्राचीन नगर जिसमें आर्य परम्परा के अनुसार कौरवों और पाण्डवों की राजधानी थी।

भारत के प्राचीन साहित्य में इन्द्रप्रस्थ नगर का बड़ा महत्व माना गया है। वर्तमान दिल्ली के क्षेत्र में ही यह नगर बसा था। अब इसका सामान्य ध्वंसावशेष बचा है।

कहा जाता है कि पृथ्वीराज चौहान के समय में यहाँ पर एक किला बना हुआ था। जिसके लिए चन्द बरदाई इस प्रकार लिखता है।—

गई इन्द्रपत्थं सहायं सुकम्मे—
उमै दीन युद्धे करे मग्ग धर्म्मे।

आज भी दिल्ली में हुमायूँ का किला नामक एक प्राचीन दुर्ग दिखाई देता है। उसे कोई-कोई 'इन्द्रपत' कहते हैं।

महाभारत में इन्द्रप्रस्थ का वर्णन करते हुए लिखा है कि द्रौपदी को स्वयम्बर से जीतकर जब पाण्डव अपनी राजधानी हस्तिनापुर में आगये तब धृतराष्ट्र ने विदुर के द्वारा युधिष्ठिर के पास यह प्रस्ताव भेजा कि वह इन्द्रवन या खाण्डव-वन को साफ करके वहीं अपनी राजधानी की स्थापना करें। युधिष्ठिर ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर खाण्डव-वन को जलाकर यह नगर बसाया। असुर जाति के "मय" नामक शिल्पकार ने १४ महीने तक परिश्रम करके इस नगर का निर्माण किया और राज-भवन में संग-मरमर और चूने के द्वारा ऐसे सुन्दर स्थानों का निर्माण किया जहाँ जल में थल का और थल में जल का भ्रम होता था।

ऐसा रूप सम्पन्न राजगृह न तो स्वर्ग में था और न भूलोक पर ही। महाराज युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ का आयोजन इसी सुन्दर विशाल नगर में किया यह नगर दिल्ली से २ मील दक्षिण उस स्थान पर अवस्थित था जहाँ पर इस समय हुमायूँ का पुरान किला बना हुआ है।

इनकम टैक्स

मनुष्य की आमदनी के ऊपर लगाया जाने वाला राज-कर इसे इनकम टैक्स या 'आय-कर' कहा जाता है।

बहुत से इतिहासकारों की राय में इनकम टैक्स का सबसे पहला श्रीगणेश इंग्लैण्ड में लन्दन नगर के अन्तर्गत सन् १६६ में किया गया। उस समय लन्दन में सड़कें वगैरह का खर्च इतना बढ़ गया था कि वहाँ की पार्लमेंट को इनकम टैक्स लागू करना पड़ा। उन दिनों गरीब से गरीब व्यक्ति को भी यह टैक्स भरना पड़ता था। यह टैक्स प्रति पौण्ड आमदनी पर चार पेंस के हिसाब से लिया जाता था। लन्दन का यह पहला इनकम टैक्स कुछ अरसे बाद *उठा लिया गया मगर सन् १७९९ में इंग्लैंड के प्रधान मंत्री* विलियम पिट ने इसे फिर जारी किया। क्योंकि उस समय नैपोलियन के साथ छिड़ी जाने वाली लड़ाइयों में बड़े धन की आवश्यकता पड़ रही थी। यह टैक्स ६ पौण्ड से अधिक मासिक आय वाले व्यक्तियों तक ही सीमित था। तभी से यह टैक्स इंग्लैण्ड में समयानुसार होने वाले परि-वर्तनों में परिवर्तित होता हुआ इनकम-टैक्स के रूप में चला आ रहा है।

भारतवर्ष में प्रथम विश्व-युद्ध के दिनों में इनकम टैक्स लगाया गया। अंग्रेजी राज्य के समय यह टैक्स अंग्रेजी राज्य के बड़े बड़े शहरों में बड़े बड़े लोगों पर ही था। देशी राज्यों की प्रजा भी अधिकतर इस से इससे मुक्त थी, मगर अब तो यह कर शहरों और देहातों सहित सारे भारत में एक ही रूप में लागू हुआ है।

आमदनी की श्रेणी के अनुसार इनकम टैक्स की दरें बदली जाती हैं। इन दरों का विवरण उसके चार्ट से जाना जाता है।

इन्क्रूमा

अफ्रीका के नव स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्र घाना के प्रधान मंत्री डा० क्वामे इन्क्रूमा।

डा० इन्क्रूमा का जन्म सन् १९१ में हुआ। अमेरिका *और इंग्लैंड में जाकर इन्होंने अर्थशास्त्र समाज शास्त्र तथा* कानून की शिक्षा पायी। सन् १९४५ से सन् १९४७ तक वे पश्चिमी अफ्रीकी राष्ट्रीय सचिवालय के प्रधान मंत्री रहे, जिसका उद्देश्य संयुक्त अफ्रीका राज्य की स्थापना करना था। उसके पश्चात् उन्होंने 'कन्वेन्शन पीपुल्स पार्टी'

नामक एक संस्था की स्थापना की। इस पार्टी के द्वारा १९५१ के चुनाव में उन्होंने घाना की पार्लामेंट में ३८ में से ३४ स्थान प्राप्त किये।

अफ्रीकी देशों के बीच सहयोग स्थापित करने के लिए एन्क्रूमा बहुत कार्य किया। मार्च सन् १९५८ में घाना की राजधानी 'आक्रा' में उन्होंने एक परिषद् का आयोजन किया। जिसमें ११ देशों ने सम्मिलित होकर सहारा के दक्षिणवर्ती अफ्रीका के पारस्परिक सहयोग का एक संगठन स्थापित किया। उसके बाद वहीं पर उन्होंने स्वतंत्र अफ्रीकी राष्ट्रों के सम्मेलन का उद्घाटन किया, जिसमें इन देशों की समान समस्याओं पर विचार-विनिमय किया गया।

दिसम्बर १९५७ में डा॰ एन्क्रूमा ने काहिरा विश्व विद्यालय की एक छात्रा फातिमा रेडन रिज़्क से विवाह किया।

घाना के स्वतंत्र होने के बाद प्रधान मंत्री एन्क्रूमा ने वहाँ के कृषि उद्योग और यातायात के विकास पर बहुत ध्यान दिया और एक पंचवर्षीय योजना भी आयोजित की।

इनो-लेइनो

फिनलैंड का एक सुप्रसिद्ध कवि, जिसका जन्म सन् १८७८ में और मृत्यु सन् १९२६ में हुई।

'इनो लेइनो' ने १ वर्ष तक अपनी काव्य रचना की और इस क्षेत्र में अपनी सभी पूर्वकालीन कवियों से बढ़ आगे बढ़ गया। उसकी रचनाओं में 'हेल्गासूत्रा' विशेष प्रसिद्ध है। उसने दूसरी भाषाओं की सुन्दर कृतियों को भी अपनी भाषा में अनुवाद किया।

इनुकाई

सन् १९३२ में जापान का प्रधान मंत्री। सेयुकाई दल का नेता।

सन् १९३२ में जापान में सेयुकाई दल का बहुमत था और उसका नेता इनुकाई वहाँ का प्रधान मंत्री था। इन दिनों जापान में इस बात पर संघर्ष शुरू हो चुका था कि सरकार का संचालन राजनैतिक दलों के हाथ में रहे या सैनिक नेताओं के हाथ में रहे। जर्मनी और इटली की तरह जापान में भी इन दिनों किसी रूप में फैसिस्ट भावनाओं का उदय हो रहा था और वहाँ के महत्वाकांक्षी लोगों में भी साम्राज्य विस्तार की भावनाएँ प्रबल हो रही थीं। इसलिए सब दूर सैनिक शासन स्थापित करने की भावनाएँ जोर पकड़ रही थीं। १९३१ में जापान की क्वांटुंग-सेना ने मंचूरिया पर आधिपत्य स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था। जब यह मामला जापान के मंत्रिमंडल में विचारार्थ पेश किया गया तो प्रधान मंत्री इनुकाई ने कहा कि जापान की आर्थिक दशा ऐसी नहीं है कि मंचूरिया या चीन में किसी बड़े युद्ध का सूत्रपात किया जा सके।

इनुकाई की इस युद्ध विरोधी भावना से वहाँ के राष्ट्रवादी बिगड़ उठे और उन्होंने प्रधान मंत्री इनुकाई और सेयुकाई दल के और कई प्रधान व्यक्तियों की हत्या कर डाली।

इन्नोसेंट तृतीय

ईसाई धर्म में रोमन चर्च का एक अत्यन्त प्रभाव पोप जो बारहवीं सदी के अन्त में हुआ।

उस समय होहेन्स्टाफेन वंश का जर्मनी का राजा छठा हेनरी मर चुका था और उसका छोटा लड़का द्वितीय फ्रेडरिक के नाम से जर्मनी की गद्दी पर आने वाला था। इसी समय पोप की गद्दी पर इन्नोसेंट तृतीय का आविर्भाव हुआ जो प्रायः बीस वर्ष तक पश्चिमीय यूरोप की राजनैतिक व्यवस्था का अधिपति रहा। कुछ समय के लिए इस धर्माधिकारी का राजनैतिक अधिकार शार्लमेन और नैपोलियन के अधिकार से भी बढ़ गया था।

ज्यों हेनरी के मरते ही जर्मनी की व्यवस्था फिर से डावाँडोल हो गई। द्वितीय फ्रेडरिक का चाचा फिलिप पहले तो अपने भतीजे का अभिभावक बनकर रहना चाहता था मगर ऐसा होने के पहले ही वह रोम का सम्राट चुन लिया गया और उसने सब अधिकार अपने हाथ में ले लिये। दूसरी ओर कोलोन के आर्च बिशप ने एक

समाप्त करके गेल्फ वंश के सिर हेनरी के लड़के ओटो ब्राऊनस्विक को सम्राट बना दिया।

इसका परिणाम यह हुआ कि गल्फ और होहेन स्टाफेन वंश का पुराना झगड़ा फिर शुरू हो गया और दोनों 'सम्राटों' ने पोप इन्नोसेन्ट तृतीय से सहायता माँगी। इन्नोसेंट होहेन्स्टाफेन वंश को फिर से सम्राट पद पर प्रतिष्ठित करने के पक्ष में नहीं था और गेल्फ वंश का ओटो-ब्राऊनस्विक पोप के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने को तैयार था। इसलिए उसने फिलिप का सम्राट पद रद्द करके ओटो ब्राऊनस्विक को दे दिया। ओटो ने इस पर कृतज्ञता प्रकाश करते हुए लिखा कि मेरा राजपद धूल में मिल गया होता यदि आपने स्वयं हमें नियुक्त न किया होता।"

दूसरे वर्ष ओटो सम्राट पद पर आरूढ़ होने के लिए रोम गया। लेकिन उसी समय उसकी पोप से शत्रुता हो गई। क्योंकि वह अपने को इटली का भी सम्राट कहने लगा और पोप यह नहीं चाहता था।

ओटो से शत्रुता होने पर उसे गद्दी से उतार कर पोप इन्नोसेंट ने छठे हेनरी के पुत्र फेडरिक द्वितीय को सन् १२१२ ई० में राजा बना दिया। जब फ्रेडरिक राजा बन गया तो उसने इन्नोसेंट के प्रति की हुई सब प्रतिज्ञाओं का पालन किया।

राज्य प्रबन्ध में लगे रहने पर भी पोप इन्नोसेंट दूसरे कार्यों को छोड़कर इंग्लैंड को किसी प्रकार नहीं भूला था। सन् ११ ५ ईसी में कैन्टरबरी चर्च के महन्तों ने इंग्लैंड के राजा की अनुमति लिये बिना अपने एक को अपना आर्क बिशप बना लिया और उसको स्वीकृति के लिए पोप के पास अपना दूत भेजा। उधर इंग्लैंड के राजा जॉन ने अपने कोषाध्यक्ष को आर्क बिशप बनाने के लिए पोप के पास सन्देश भेजा।

इन्नोसेंट ने इन दोनों को निषेध किया और 'स्टीफेन लैंगटन" नामक विद्वान पुरुष को कैन्टरबरी का आर्क बिशप बनाने का परवाना दे दिया।

इस पर क्रुद्ध होकर राजा जॉन ने कैन्टरबरी के समस्त महन्तों को राज्य से निकाल दिया। इसके बदले में पोप इन्नोसेंट ने इन्टरडिक्ट (निषेधाज्ञा) देकर समस्त गिरजों को बन्द कर दिये और राजा जॉन को धमकी दी कि यदि तुम हमारी इच्छानुसार काम नहीं करोगे तो तुम्हें निकाल कर फ्रान्स के राजा फिलिप ऑगस्टस को इंग्लैंड की गद्दी पर बैठा देंगे। राजा जॉन ने जब भी देखा कि इंग्लैंड को छीनने के लिए फ्रांस का राजा सेना एकत्रित कर रहा है तो उसने सन् १२१३ में पोप का आधिपत्य मान लिया। यहाँ तक कि उसने इंग्लैंड का राज्य ही द्वितीय इन्नोसेंट को सौंप दिया और स्वयं उसका प्रतिनिधि बन कर काम करने लगा।

इस प्रकार इन्नोसेन्ट तृतीय उस समय समस्त पश्चिमी यूरोप में सबसे प्रमुख सम्पन्न व्यक्ति था। सम्राट् द्वितीय फ्रेडरिक उसकी रक्षा में था इंग्लैंड का राजा उसका सामन्त था। यूरोपीय राजों के शासन प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने के अधिकार उसने केवल घोषित ही नहीं किये उनका पूरी तरह प्रयोग भी किया।

सन् १२१५ में उसने अपने प्रासाद में एक धार्मिक सभा बुलाई जो लाट्रन कौंसिल की सभा कहलाती है। इसमें हजारों धर्माधिकारी और राज्य सामन्त उपस्थित हुये थे। इसी सभा में सम्राट् फ्रेडरिक की नियुक्ति और ओटो ब्रंसविक के पदच्युत करने के आदेश पर अपनी स्वीकृति प्रदान की थी। सन् १२१६ में इस महान् प्रतापी धर्माधिकारी की मृत्यु हुई।

इन्दौर

मध्यप्रदेश का एक सुप्रसिद्ध औद्योगिक नगर। स्वाधीनता के पहले यह नगर होलकर राजवंश की राजधानी थी। होलकर-वंश के संस्थापक महाराजा मल्हार राव होलकर को पेशवा ने सन् १ ११ ई० में मालवे के सूबा सूबेदार की हैसियत से उपहार में प्रदान कर दिया था।

उस समय यह नगर छोटे गाँव के रूप में था। महाराजा मल्हार राव के पश्चात् इन्दौर की राजगद्दी पर एक महान धार्मिक प्रतिभा के रूप में देवी अहिल्या बाई का आगमन हुआ था। (अहिल्या बाई का पूर्ण परिचय इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में देखिये।)

तुकोजी राव प्रथम

अहिल्या बाई के स्वर्गवास के पश्चात् उनके सेनापति तुकोजी राव प्रथम, इन्दौर की राजगद्दी पर बैठे। तुकोजी राव प्रथम भी बड़े बहादुर और युद्ध कला में दक्ष थे। उन्होंने अपनी सेना में यूरोपीय युद्ध कला का प्रारम्भ किया।

सन् १७६७ में पेशवा ने रुहेलों को दण्ड देने के लिए जो सेना भेजी थी उसमें सिन्धिया के साथ-साथ तुकोजी राव होलकर ने भी बड़ा भाग लिया था। इसी प्रकार उन्होंने कई और भी लड़ाइयाँ लड़ी थीं।

यशवन्त राव होलकर

तुकोजी राव प्रथम के बाद यशवन्त राव इन्दौर की गद्दी पर बैठे। यशवन्त राव होलकर के दिल में अंग्रेजों के प्रति अत्यन्त घृणा थी और वे उन लोगों में से थे, जो अंग्रेजी-राज्य की जड़ को जमने नहीं देना चाहते थे। इनकी बहादुरी से सारे महाराष्ट्र में सिंधिया और भौंसले की अपेक्षा भी इनका अधिक नाम हो गया। दिल्ली के मुगल सम्राट् ने भी इनके पक्ष में आकर इन्हें राज-राजेश्वर आलीजाह बहादुर की पदवी प्रदान की। अंग्रेज लोग भी अब इन्हींको अपना प्रधान प्रतिद्वन्द्वी समझने लगे।

शुरू शुरू में तो अंग्रेजों ने इनसे छेड़छाड़ करना उचित नहीं समझा पर अन्त में कुछ ऐसे प्रश्न उपस्थित हो गये जिनसे इनके साथ लड़ाई करने के लिए उनको विवश होना पड़ा।

सन् १८०४ में अंग्रेजों ने होलकर के खिलाफ लड़ाई छेड़ने का निश्चय किया। इस समय यशवन्त राव जयपुर राज्य में थे। अंग्रेजों ने कूटनीति के द्वारा सिंधिया को यह आश्वासन देकर अपनी ओर मिला लिया कि अगर यशवन्तराव आत्म समर्पण कर देगा तो उसे सिंधिया के आश्रय में कुछ जागीर देकर सारा होलकर-राज्य आपको दे दिया जायगा। इस प्रलोभन में आकर सिंधिया यशवन्त राव को छोड़कर अंग्रेजों की ओर जा मिला।

ईसवी सन् १८०४-५ में यशवन्त राव और अंग्रेजों के बीच कई लड़ाइयाँ हुई। कमाण्डर लूकान की अधीनस्थ अंग्रेजी-सेना को यशवन्त राव ने करारी हार दी। उसके बाद मुकुन्दरा के पास कर्नल मानसून की फौजें, जिनमें जयपुर, कोटा और सिंधिया की फौजें भी शामिल थीं, यशवंत राव के सामने बुरी तरह हारकर बेतहाशा भागीं। मानसून की फौजों का होलकर की फौजों ने पीछा किया और उनको बुरी तरह कर डाला। मानसून के सैकड़ों सैनिक मारे गये और उनका माल असबाब भी छीन लिया गया। इस विजय से यशवंत राव की सैनिक कीर्ति बहुत बढ़ गई और भारतीय राजा-महाराजाओं पर उनका रौब-दबदबा बहुत ज्यादा जम गया।

अब यशवंत राव ने महाराजा रणजीत सिंह, भौंसला, पेशवा सिंधिया आदि कई राजाओं को, मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ खड़े होने के लिये लिखा। शुरू शुरू में तो होलकर के इस अनुरोध को सबने स्वीकार कर लिया, पर इसी समय अंग्रेजों ने अपना राजनैतिक-हथकंडा सिंधिया के ऊपर फेंका। सिंधिया को ग्वालियर और गोहद के किले १ लाख रुपये नकद और होलकर राज्य के कुछ अंश देने का प्रलोभन देकर अंग्रेजों ने उन्हें अपनी ओर मिला लिया।

इसके बाद पारस्परिक फूट से यशवंत राव की शक्ति कमजोर पड़ती गई और सन् १८११ में भानपुरा स्थान पर उनका देहान्त हो गया। वहाँ पर उनकी एक छत्री बनी हुई है।

यशवन्त राव के पश्चात् मल्हार राव द्वितीय हरिराव, खण्डेराव और उनके पश्चात् तुकोजी राव द्वितीय सन् १८४४ में इन्दौर की गद्दी पर आये।

तुकोजी राव द्वितीय

होलकर राजवंश में महाराजा तुकोजी राव द्वितीय एक प्रतिभाशाली और लोकप्रिय नरेश हो गये हैं। इनके समय में इन्दौर राज्य ने सभी दृष्टियों से बहुत तरक्की की थी। शान्ति और सुशासन की वजह से राज्य के व्यापार, खेती और उद्योग-धन्धों में खूब उन्नति हुई जिससे राज्य की आमदनी बढ़ कर २१ लाख से ८५ लाख हो गई और जन संख्या भी बढ़कर दुगुनी हो गई। इन्होंने ही सबसे पहले इन्दौर में 'स्टेट् मिल' के नाम से एक टैक्सटाइल मिल की स्थापना कर इन्दौर के औद्योगिक विकास का श्रीगणेश किया।

महाराजा तुकोजी राव द्वितीय के पश्चात् शिवाजी राव तुकोजी राव तृतीय और यशवन्त राव द्वितीय इन्दौर की गद्दी पर आये।

महाराजा तुकोजी राव तृतीय के समय में बम्बई के सुप्रसिद्ध व्यवसायी 'बावला का हत्या-काण्ड' हुआ। इस सिलसिले में सन् १९२६ में महाराजा सर तुकोजी राव को इन्दौर की गद्दी छोड़नी पड़ी और उनकी जगह उनके पुत्र यशवन्त राव द्वितीय गद्दी पर आये। इन्हीं के समय में भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई और महाराजा को 'प्रीवी पर्स' देकर इन्दौर का शासन मध्य प्रदेश गवर्नमेंट ने अपने हाथ में ले लिया।

सन् १९६१ में महाराजा यशवन्तराव द्वितीय का देहान्त हो गया और उनकी जगह उनकी कन्या ऊषा राजे अधिकारिणी हुईं।

इन्दौर का औद्योगिक विकास

होलकर-राज्य के शासन-काल में इन्दौर नगर की औद्योगिक दृष्टि से बहुत उन्नति हुई। यहाँ के राजाओं का शासन ब्रिटिश भारत के शासन की तरह सुसंगठित और सधा हुआ शासन था। इस शासन में जनता को अपनी उन्नति करने की सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं। इसलिए अपनी शैक्षणिक और औद्योगिक उन्नति में यह राज्य मध्यप्रदेश की सभी रियासतों से आगे रहा।

यहाँ की औद्योगिक उन्नति में प्रसिद्ध व्यवसायी सर सेठ हुकुमचन्द का भी बहुत बड़ा हाथ रहा। उनकी बनाई हुई विशाल इमारतों और धर्म-संस्थाओं से यह शहर आज भी जगमगा रहा है।

स्टेट मिल की स्थापना के बाद सेठ हुकुमचन्द ने बाहर के कई उद्योगपतियों को बुलाकर उन्हें यहाँ पर कपड़ा मिलें स्थापित करने की प्रेरणा दी और स्वयं भी तीन कपड़ा मिलों की स्थापना की। इस प्रकार इन्दौर में उस जमाने में कपड़े की ६ मिलें स्थापित हो गई थीं, जिस जमाने में सारा भारत अपने औद्योगिक विकास की पहली मंजिल पर था।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राजधानी इन्दौर से हट ही गई। फिर भी इस नगर की शोभा और समृद्धि में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया। औद्योगिक और शैक्षणिक दृष्टि से आज भी यह सारे मध्यप्रदेश का प्रमुख केन्द्र है यहाँ पर इंजिनियरिंग कालेज मेडिकल कालेज, होलकर कालेज क्रिश्चियन कालेज, गुजराती कालेज इत्यादि अनेकों कालेज और हायर सेकेण्डरी स्कूल विद्यमान हैं।

इन्द्र विद्यावाचस्पति

हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध पत्रकार महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के पुत्र, आर्य समाज के एक बहादुर कार्यकर्त्ता।

हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में 'इन्द्र' विद्यावाचस्पति अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे। यों तो पत्रकारिता का आरंभ इन्होंने 'दैनिक विजय' नाम का एक पत्र निकाल कर किया था लेकिन उन्हें विशेष ख्याति दैनिक 'अर्जुन' से प्राप्त हुई। अर्जुन राष्ट्रीय विचारधारा का पत्र था और इसलिए ब्रिटिश सरकार का हमेशा कोप भाजन रहता था। एकबार उससे ५ हजार रुपये की जमानत माँगी गई। बहुत कोशिश और झगड़े के पश्चात् अर्जुन को वह ५ हजार रुपये की राशि वापस मिल गई, तभी से अर्जुन के साथ 'वीर' शब्द का तमगा लगाया गया और तभी से अर्जुन 'वीर अर्जुन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दिल्ली के तत्कालीन सम्पादकों में पं० इन्द्र ही एक ऐसे थे जिनकी कलम प्रत्येक विषय पर प्रवाह गति से चलती थी।

उनके लेख और उनके व्यंग्य कालम पाठकों की अन्तस्तल पर गहरी चोट करने वाले होते थे। कांग्रेस के नेता होते हुए भी पं० इन्द्र पत्रकारिता की दृष्टि से उसकी कड़ी से कड़ी आलोचना करने में नहीं चूकते थे।

हिन्दी सम्पादन कला के इतिहास में पं० इन्द्र का स्थान प्रथम श्रेणी के पत्रकारों में था।

इन्दु

काशी से प्रकाशित होने वाला एक सचित्र मासिक पत्र जो सन् १९०८ ई० से काशी से निकलने लगा था।

काशी के सुप्रसिद्ध कवि और लेखक श्री जयशंकर 'प्रसाद' ने 'सरस्वती' मासिक पत्रिका की स्पर्धा में इस पत्र

का प्रारंभ किया था। अपनी सुरुचि पूर्ण शैली, भाषा और लेखों के चयन के कारण उस समय के हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इसने अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया था।

एक साल तक श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त के सम्पादन में यह काशी से प्रकाशित होता रहा। उसके बाद सन् १९१ में यह इन्दौर चला गया। तब इसके सम्पादक श्री सीता राम दिनकर करार हुए। सन् १९१८ तक यह इन्दौर से ही निकलता रहा। इसके प्रकाशक श्री सूरज मल जैन थे।

इनियस

लेटिन भाषा का महान् साहित्यकार जिसका जन्म ई० पू० २३९ में और मृत्यु ईसवी सन् पूर्व १६९ में हुई।

क्विन्स इनियस लेटिन साहित्य का जनक माना जाता है। वह एक सम्भ्रान्त कुल का व्यक्ति था। उसका लिखा हुआ 'एनाल्स' नामक महाकाव्य १८ सर्ग और ६ पर्वों में विभक्त है। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से यह काव्य लिखा गया है। यह काव्य महाकवि होमर की वीर-कृत्य की परम्परा में लिखा गया है। इसमें होमर षट्पदीय छन्दों का व्यवहार किया गया है।

इनियस ने लेटिन भाषा में व्यंग्य और नीति पूरक प्रबन्ध काव्य के लिखने की परिपाटी भी प्रचलित की।

इब्न सीना

बुखारा शहर का बहुत प्रसिद्ध अरबी चिकित्सक जो एशिया और यूरोप दोनों में ही बहुत प्रसिद्ध था। इसका वर्णन पहले भाग में 'अविसेना' के प्रकरण में देखें।

इब्सन हेनरिक (Henrik Ibson)

नार्वे का संसार प्रसिद्ध नाटककार हेनरिक इब्सन जिसका जन्म सन् १८२८ में और मृत्यु सन् १९ ६ में हुई।

जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में शेक्सपीयर और फारसी साहित्य में शेखसादी बेजोड़ और अमर हो गये उसी प्रकार नार्वे के साहित्य में हेनरिक इब्सन ने भी अपनी महान् रचनाओं से अमरता प्राप्त कर ली है। हेनरिक इब्सन संसार के उन कलाकारों में से एक है जिन्होंने देश और काल से ऊपर उठकर विश्व साहित्य में अपना नाम अमर कर दिया।

इब्सन के लिखे हुए "पियर-गिण्ट" नाटक ने यूरोप और अमेरिका के नाटक घरों को अपनी सफलता से चमत्कृत किया है। रंगमंच की सफलता के साथ साहित्य क्षेत्र में भी उसका काफी महत्त्व है। मानव स्वभाव का यथार्थ चरित्र-चित्रण और कवित्वपूर्ण कल्पना की दृष्टि से सारे नार्वेजियन साहित्य में यह अपनी तुलना नहीं रखता।

पियर गिण्ट में अनोखी सफलता प्राप्त करने के बाद उसने यथार्थवादी नाटकों के क्षेत्र में कविता का बहिष्कार करके एक नवीन शैली का सूत्रपात किया। इन नाटकों में इब्सन ने पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई। इसके लिखे हुए "ए डाल्स हाउस" और "गोस्ट्स" नामक नाटकों ने परम्परावादी समाज में बड़ी खलबली मचा दी और सब लोगों ने इसकी निंदा करना प्रारम्भ किया। ए डाल्स हाउस में इब्सन ने नारी स्वतंत्रता और वैज्ञानिक जागृति का समर्थन किया है। अपनी आलोचनाओं से क्षुब्ध होकर इब्सन ने "एनिमीज ऑफ पीपुल्स" की रचना की। इस नाटक में विचार शून्य लेकिन संगठित बहुमत की तीव्र निंदा की गई है।

इस प्रकार सन् १८७७ से १८९९ तक इब्सन ने बारह नाटकों की रचना की। इन नाटकों ने इब्सन को विश्व साहित्य में अमर कर दिया। इब्सन का अन्तिम नाटक "व्हेन वी डेड अवेकेन" सन् १८९९ में प्रकाशित हुआ। यह नाटक भी इब्सन के अनुयायियों में बहुत लोक-प्रिय हुआ।

इब्सन ने अपने नाटकों में समाज सम्बन्धी ऐसी गहन समस्याओं पर विचार किया जो पहले के किसी नाटककार ने नहीं किया था। उसके द्वारा व्यक्ति और समाज, सत्य और भ्रम सत्य और असत्य धारणा की विरोधी भावना पर व्यक्त किये गये विचार ही विश्व साहित्य को उसकी अमोघी देन है।

और कला का मददगार माना जाता है और समूचे विश्व साहित्य की यह एक महत्वपूर्ण कड़ी मानी जाती है।

इब्न-अब्द अल-हाकम

अरबी साहित्य का एक सुप्रसिद्ध इतिहासकार जिसने मिस्र, उत्तर अफ्रीका और स्पेन पर इस्लाम की विजय का इतिहास 'फतूह मिस्र' के नाम से लिखा, जो इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसकी मृत्यु सन् ८७ में हुई।

इब्न-अरबी

इस्लाम के रहस्यवादी सम्प्रदाय का एक प्रसिद्ध सूफी विद्वान्।

इब्न अरबी स्पेन का रहने वाला था। इसका जन्म सन् ११६५ में और मृत्यु १२४ में हुई। यह सुप्रसिद्ध वक्ता और लेखक भी था। इसकी रचनाओं में 'अल फ़ुतूहात' और 'अल मकीहात' नामक ग्रन्थ उत्तम माने जाते हैं।

इब्न-फ़ज़लान

एक मुसलमान यात्री, जिसने सन् ९२२ ई० में 'वोल्गा' नदी के किनारे-किनारे के नगरों की यात्रा की थी। उस समय रूस था एक सुसंगठित राष्ट्र के रूप में निर्मित नहीं हुआ था। रूसी लोगों के पूर्वज उस समय छोटे छोटे 'राज्यों' के रूप में शासन करते थे।

इब्न-फ़ज़लान ने रूसों के बारे में अपने यात्रा विवरण में लिखा है—

'मैंने रूसी को उस समय देखा जब कि वे अपनी व्यावसायिक सामग्री को लेकर वोल्गा (इतिल) नदी के किनारे आये थे। मैंने उनके जैसे सर्वांग पूर्ण आदमी नहीं देखे। वे खजूर के वृक्ष की तरह सीधे और लाल वर्ण के होते हैं। वह न तो कुर्ता पहनते हैं न पायजामा बल्कि उनमें से प्रत्येक एक तरह का चोगा जैसा पहनता है, जिसे एक बगल से डालकर अपनी [illegible] चार खुली रखता था। हरेक आदमी अपनी तलवार छुरे और कटार को नहीं छोड़ता था। इनकी तलवार लम्बी तथा धार दार होती है। पैर से कन्धे तक उनके शरीर पर हरे वृक्षों मूर्तियों तथा दूसरी चीजों के गोदने गुदे हुए रहते हैं।

उनकी प्रत्येक स्त्री के नितम्ब के पास पति की सम्पत्ति के अनुसार लोहे, ताँबे चाँदी या सोने की डिबिया लटकती रहती है। वह अपने कण्ठ में सोने या चाँदी की मालाएँ पहनती हैं। हर एक पुरुष जब १ हजार दिरहम का लाभ कर लेता है तो अपनी स्त्री के लिए एक माला खरीद देता है।

अल्लाह के सृष्टि करने के समय से ही ये लोग गन्दे हैं। पाखाना पेशाब के समय सफाई नहीं करते, बिलकुल जंगली गदहों के जैसे। ये अपने नगर से आकर वोल्गा नदी के किनारे बने हुए लकड़ी के घरों में ठहरते हैं। प्रत्येक के पास एक मोढ़ा होता है, जिसके ऊपर वह बैठता है। हर एक के पास अपनी सुन्दरी दासी होती है।

मरने के बाद ये मृतक की लाश को जलाते हैं। मृतक के साथ उसकी एक कोई सुन्दरी दासी भी जला दी जाती है।

इब्न-फ़ज़लान ने अपने यात्रा-वर्णन में और भी बहुत सी बातों का मार्मिक उल्लेख किया है।

इब्न बतूता

अरब देश का प्रसिद्ध यात्री जो मुहम्मद तुगलक के ज़माने में सन् १३४ के करीब भारत की यात्रा पर आया था।

इब्न बतूता एक विद्वान और जिज्ञासु व्यक्ति था। भ्रमण करने का उसे बहुत शौक था। चौदहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में वह भारत की यात्रा पर आया। उस समय यहाँ तुगलक राजवंश का शासन था और मुहम्मद तुगलक सम्राट् के पद पर आसीन था। सम्राट ने इब्न बतूता को चीन में अपना राजदूत बनाकर भेजा। वह जमीन के रास्ते कई प्रदेशों में घूमता हुआ चीन गया। मगर वहाँ के सम्राट के दरबार में न जा सका। उसके पश्चात् उसने पश्चिमी एशिया उत्तरी अफ्रीका इत्यादि देशों की यात्रा

कर कुल ७५   मील की यात्रा का रेखांकन स्थापित किया और बड़ी सुन्दरता से अपना यात्रा विवरण तैयार करके सम्राट को सुनाया। यह यात्रा विवरण पेरिस के पुस्तकालय में अभी भी सुरक्षित है।

इब्न-मसर्राह

सूफी मत में इशराकी (प्रकाशपूर्ण) शाखा का संस्थापक जिसका जन्म सन् ८८३ में और मृत्यु सन् ९३१ में हुई।

इब्न मसर्राह स्पेन के सुप्रसिद्ध कार्डोवा नगर का रहने वाला था। सूफीमत के अन्तर्गत उसने इशराकी शाखा की स्थापना की। इसकी विवेचना से उस समय के बहुत से विद्वान और प्रतिभाशाली लोग भी प्रभावित हुए। जिनमें एलेक्जेंडर हेल्स, डुन्सस्कोट्स रोजर इत्यादि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं। दाँते की सुप्रसिद्ध रचना 'डिवाइन कॉमेडी' पर भी उसके विचारों का प्रभाव पाया जाता है।

इब्राहिम अल-फजारी

एक सुप्रसिद्ध अरबी लेखक, जिसने गणित और ज्योतिष के एक भारतीय संस्कृत ग्रन्थ का अरबी अनुवाद करके *अल-सिन्द हिन्द* के नाम से प्रस्तुत किया।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से अरबी गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में एक नई विचारधारा का जन्म हुआ। भारतीय अंकों का उपयोग भी पहले-पहल इसी ग्रन्थ के द्वारा हुआ और यहीं से यह अंक माला अल-ख्वारिज्मी के द्वारा यूरोपीय देशों में प्रचारित हुई।

इब्न-खलदून

ईसा की १४ वीं शताब्दी के अन्त में अरबी साहित्य का प्रसिद्ध इतिहासकार और दार्शनिक। जिसने राजनीति शास्त्र और इतिहास पर प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना की।

इब्राहीम लोदी

लोदी खानदान का एक सुलतान सिकन्दर लोदी का बेटा, समय सन् १५१७ से १५२६ तक।

तवारीखे-ए-दाऊदी के अनुसार इब्राहीम लोदी अपने वंश के अन्य लोदियों की भाँति चालबाज न था। वह बहादुर, नेक और प्रजा-पालक शासक था।

लोदी खानदान के सुलतान अपने को पठान या अफगान मानते थे। सुलतान बहलोल लोदी (१४५१-१४८९ ई०) ने लगातार २६ वर्ष तक लड़ाई करके जौनपुर राज्य जीत लिया। दिल्ली रियासत इस समय में पंजाब से लेकर बनारस तक फैल गयी। उसके पुत्र सिकन्दर लोदी ने (१४८९-१५१७ ई०) बिहार को भी जीत लिया। वह बड़ा न्यायी शासक था। उसके समय में देश सुखी और सम्पन्न था। इब्राहीम लोदी इसी सिकन्दर का बेटा था।

इब्राहीम लोदी अपने सरदारों की शक्ति घटाना चाहता था। इसलिये वे उससे बहुत बिगड़ गये और सारे राज्य में हलचल मच गई। मौका पाकर पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ ने मुगल सरदार बाबर के यहाँ हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने का सन्देश भेजा। बाबर जब विजय करता हुआ लाहौर तक पहुँच गया, तब दौलत को अपनी गलती मालूम हुई और बाबर के खिलाफ लड़ने लगा, पर बाबर को रोक न सका।

अन्त में पानीपत की पहली लड़ाई में मुगल सरदार बाबर ने इब्राहिम लोदी को सन् १५२६ ई० में हरा दिया और लोदी वंश को समाप्त कर उसने हिन्दुस्तान में 'मुगल साम्राज्य' की नींव डाली।

चूँकि अफगान सरदार इब्राहीम लोदी से नाराज रहते थे इसलिए उन्होंने उसे युद्ध में कोई मदद न दी और यही इब्राहीम की हार का प्रधान कारण हुआ। यहीं से मुगल साम्राज्य का श्रीगणेश हो गया।

इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय

बीजापुर का राजा, जो सन् १५८० में गद्दी पर बैठा। जिस समय इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय गद्दी पर बैठा, उस समय इसकी उम्र ९ वर्ष की थी। इसकी नाबालिगी

इब्रानी साहित्य

इब्रानी यहूदी जाति की भाषा का नाम है जिसे हिब्रू भी कहते हैं। प्राचीन इब्रानी साहित्य में अक्सर यहूदी धर्म ग्रन्थों और परम्पराओं का समावेश पाया जाता है।

अन्य भाषाओं की तरह इब्रानी साहित्य का भी लिखित रूप बहुत बाद में अस्तित्व में आया। पहले के लोग इस भाषा का साहित्य मौखिक रूप से याद रखते थे और गुरु शिष्य परम्परा के अनुसार इसका प्रचार होता रहता था। इस मौखिक साहित्य के बहुत से उदाहरण यहूदियों के धर्मग्रन्थ बाइबिल-ओल्डटेस्टामेंट में मिलते हैं।

बाईबिल का ओल्ड टेस्टामेंट ही यहूदियों का प्रामाणिक धर्म ग्रन्थ है। प्रसिद्ध यहूदी धर्मोपाध्याय एज़रा तथा उसके साथियों ने ईसा से पूर्व पाँचवीं शताब्दी में ओल्ड टेस्टामेंट के एक भाग को "पेण्टाट्यूक" के नाम से संग्रह किया। इस पेण्टाट्यूक में यहूदी धर्म के अन्य धर्माचार्यों के उपदेश भी संग्रहीत हैं। पेण्टाट्यूक को यहूदी लोग अपना पवित्र शास्त्र और प्राचीन संहिता के रूप में मानते हैं।

इसी पेण्टाट्यूक की व्याख्या और उसकी टीका के रूप में इब्रानी के अनेक विचारकों ने अपने जो विचार प्रदर्शित किये वे "मिदराश" के नाम से यहूदी साहित्य में प्रसिद्ध हुए। इन मिदराशों के निर्माण में रब्बी इस्माइल, रब्बी शीमान, रब्बी अकीबा इत्यादि यहूदी साधुओं और विद्वानों ने बहुत बड़ा योग दिया। इन मिदराशों में इब्रानी मूसा के उपदेशों की व्यावहारिक तथा उपदेशात्मक व्याख्याएँ हैं।

ईसाई धर्म के प्रारम्भ के पश्चात् जिन यहूदियों ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया उन्हें "रब्बी" कहा जाता था। इन रब्बी लोगों ने भी एक विस्तृत साहित्य की रचना की, जिसमें पेण्टाट्यूक की व्याख्या और टीका के रूप में इन विचारकों ने अपने विचार प्रकट किये। इनके विचारों के संग्रह को "मिशना" कहते हैं। इसे ईसा की दूसरी शताब्दी में यहूदा हनसी ने संग्रहीत किया। इसी मिशना की व्याख्या को तालमुद कहते हैं यह तालमुद भी ओल्ड टेस्टामेंट के पश्चात् यहूदियों का पवित्र ग्रन्थ है। तालमुद में बाइबिल और उसके पैगम्बरों से सम्बन्धित इब्रानी प्रसंगों का उल्लेख है। तालमुद धर्म ग्रन्थ में भी अन्य धर्म ग्रन्थों की तरह देशकाल के अनुसार अन्तर आ गया है। जेरुसलेम के विद्वानों ने ईसा की तीसरी चौथी शताब्दी में जिस तालमुद की रचना की उससे बेबिलोनिया के विद्वानों द्वारा चौथी पाँचवीं सदी में रचे हुए तालमुद में बड़ा अन्तर है। जिस तरह कि बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में महायान और हीनयानों के बीच है।

मध्य काल

मध्यकाल में अन्य देशों की तरह यहूदी देश पर भी इस्लामी सभ्यता का प्रभाव पड़ा और इन लोगों के सम्पर्क से इब्रानी साहित्य में विकास की एक नयी लहर आई।

इस लहर का प्रथम प्रवर्तक सादिया-बेन जोसेफ के (Sadia Ben Joseph) नाम से इब्रानी साहित्य में प्रकट हुआ। इसका दूसरा नाम सादिया गेओन भी था। यह ईश्वर प्रदत्त अद्भुत प्रतिभा का धनी था। उसने इब्रानी भाषा का कोष और व्याकरण तैयार करके इस भाषा में एक नई जान फूँक दी। इसकी रचनाओं में "सिद्दूर" "अमूनोथ वे डेओथ" नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। सिद्दूर में प्रार्थनाओं का संग्रह है और एमुनोथ वे-डेओथ" ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों पर दार्शनिक दृष्टिकोण उपस्थित करने वाला यहूदी धर्म में पहला ग्रन्थ था। मूलतः यह अरबी भाषा में लिखा गया था। इस प्रकार इस महान् विचारक ने यहूदी साहित्य में दार्शनिक विचार शृंखला को पैदा किया।

इस्लामी शासन और अरबी विचार धारा से प्रभावित होने के कारण इस काल के यहूदी भी अपनी रचनाएँ अरबी में करने लग गये थे। इनमें से यूदा हलेवी का "कुज़री" नामक ग्रन्थ अपनी प्रसिद्ध हुआ।

स्पेन के अन्तर्गत भी मूर शासन के अन्तर्गत इब्रानी साहित्य को पनपने-फूलने का काफी अवसर मिला। इस काल में इब्रानी भाषा के महाकवि सोलोमन का नाम सब से अधिक चमकता है। इसने अपनी कविताओं में करुणा और वेदना की एक बहुत ही मधुर धारा को प्रवाहित

किया। सोलोमन का जन्म सन् १०२० में और मृत्यु १०५१ में हुई।

दूसरा महान् कवि जूडा हालेवी हुआ। यह इब्रानी भाषा और शैली का जादूगर माना जाता है। उसने धर्म कर्म, विवाह, शादी, प्रेम अर्थात् जीवन की प्रत्येक समस्याओं पर कविता लिखी। उसकी भाषा में ओज और माधुर्य भरा रहता था।

इस युग की एक महान् विभूति अब्राहम-इब्न-एजरा के नाम से इब्रानी साहित्य में प्रकट हुई। इसका जन्म सन् १०९२ में और मृत्यु सन् ११६५ में हुई। इब्न एजरा इब्रानी भाषा का महान पण्डित था। ज्योतिष, गणित, विज्ञान दर्शन इत्यादि सभी गम्भीर विषयों में उसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा अपना प्रभाव जमाये हुए थी। बाइबिल और पेण्टाटयूक पर किया हुआ उसका भाष्य बड़ा लोकप्रिय हुआ। दर्शन, विज्ञान, इत्यादि अनेक विषयों पर उसने पुस्तकें लिखीं।

मैमोनीडेस इस युग का एक महान् प्रतिभाशाली विद्वान था। उसने अरस्तू की रचनाओं के अरबी अनुवाद का अध्ययन करने के पश्चात् धर्मशास्त्र का वैज्ञानिक विश्लेषण किया। उसकी विचार प्रणाली अत्यन्त तर्क संगत होती थी। 'मिश्नेटोरा" नामक ग्रन्थ के द्वारा उसने तालमुद को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। इसके ग्रन्थ उस समय के समाज में अत्यन्त लोकप्रिय हुए।

मध्ययुग के अन्दर इटली में भी इब्रानी साहित्य का काफी विकास हुआ। इनमें इमानुएल बेन सोलोमन का नाम विशेष प्रसिद्ध है। उमर खैयाम की तरह इस कवि ने भी नारी और मदिरा पर अपनी कविताएँ लिखीं। इसकी कविताओं का संग्रह "माहबरोथ इमानुएल" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त इस युग में और भी कई कवि हुए। उसके पश्चात् चौदहवीं शताब्दी से सतरहवीं सदी तक इब्रानी साहित्य का भविष्य ईसाइयों के भयङ्कर अत्याचारों और मारकाट के कारण अन्धकार में रहा।

नवीन-युग

इब्रानी साहित्य के वर्तमान नवीन युग का प्रवर्तक लुजाटो है। लुजाटो की मुख्य रचनाओं में भाव और माधुर्य भरा हुआ है। इसका जन्म सन् १७०७ में और मृत्यु सन् १७४७ में हुई। इसकी रचनाओं में इसके तीन नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके नाम "मग्दाले शिमशोन" "मिगडालश्रोज" और "ला-येशरिम तेहिल्लाह" है।

इन्हीं दिनों अर्थात् अठारहवीं सदी के मध्य में इब्रानी साहित्य के लेखकों में एक प्रगतिशील आन्दोलन चला जिसका नाम 'हस्काला" था। इस आन्दोलन का नेतृत्व मेण्डेलसोन नामक प्रसिद्ध व्यक्ति ने किया। मेण्डेलसोन का जन्म सन् १७२९ में और मृत्यु सन् १७८६ में हुई। यह एक उदार दृष्टिकोण का लेखक था। हस्काला से प्रकाशित होने वाले "मिआसिफ" नामक पत्र का यह सम्पादक था।

इब्रानी साहित्य में उपन्यासों का आरम्भ अब्राहममापू नामक लेखक ने किया। इसका जन्म सन् १८०८ में और मृत्यु १८६७ में हुई। इसकी रचनाओं में "अहावाथ-सायन' "अश्माथ सोमरोन" इत्यादि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार अब्राहम ए. कावनेर ने इब्रानी साहित्य में समालोचना की नींव डाली।

एलिएजेरबेन यहूदा ने इब्रानी भाषा का विश्वकोष सन् १९२१ में दस जिल्दों में प्रकाशित कर इब्रानी साहित्य को खूब आगे बढ़ाया। इसी प्रकार जेरूसलेम के इब्रानी विश्वविद्यालय की ओर से भी इब्रानी के एक बड़े विश्व कोष का सम्पादन सन् १९५ से प्रारम्भ हुआ है।

सन् १८२६ में हा योम" के नाम से पहला यहूदी दैनिक पत्र "कान्थीर" के सम्पादन में निकला। कान्थीर का सहायक प्रसिद्ध पत्रकार टरिकनिशमेन था। इसने इब्रानी साहित्य को यूरोपीय साँचे में ढालने का प्रयत्न किया।

इन्हीं दिनों मारडके कोहन नामक एक प्रसिद्ध कहानीकार इब्रानी साहित्य में हुआ। इसकी रचनाओं का जनता ने बड़े प्रेम से स्वागत किया। गद्य और पद्य दोनों में उसकी कलम का जादू दृष्टिगोचर होता था।

इस नवीन युग में इब्रानी साहित्य में भिन्न भिन्न धाराओं का सृजन हुआ। भिन्न भिन्न प्रतिभा शाली लेखकों कवियों विचारकों और दार्शनिकों ने इस साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया। इसी के फलस्वरूप आज का इब्रानी साहित्य प्रतिभा, विद्वता

और कला का मददगार माना जाता है और इसको मिश्र साहित्य की यह एक महत्वपूर्ण कड़ी मानी जाती है।

इब्न-अब्द-अल-हाकम

अरबी साहित्य का एक सुप्रसिद्ध इतिहासकार जिसने मिस्र, उत्तर अफ्रीका और स्पेन पर इस्लाम की विजय का इतिहास 'फतूह-मिस्र' के नाम से लिखा जो इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसकी मृत्यु सन् ८७१ में हुई।

इब्न-अरबी

इस्लाम के रहस्यवादी सम्प्रदाय का एक प्रसिद्ध सूफी विद्वान्।

इब्न अरबी स्पेन का रहने वाला था। इसका जन्म सन् ११६५ में और मृत्यु १२४० में हुई। यह सुप्रसिद्ध वक्ता और लेखक भी था। इसकी रचनाओं में 'अल फतूहात' और 'अल मकीयात' नामक ग्रन्थ उत्तम माने जाते हैं।

इब्न-फजलान

एक मुसलमान यात्री, जिसने सन् ९२२ ई० में 'वोल्गा' नदी के किनारे-किनारे के नगरों की यात्रा की थी। उस समय रूस का एक सुसंगठित राष्ट्र के रूप में निर्माण नहीं हुआ था। रूसी लोगों के पूर्वज उस समय छोटे छोटे 'राज्यों' के रूप में शासन करते थे।

इब्न-फजलान ने रूसी के बारे में अपने यात्रा-विवरण में लिखा है—

मैंने रूसों को उस समय देखा जब कि वे अपनी व्यावसायिक सामग्री को लेकर वोल्गा (इतिल) नदी के किनारे आये थे। मैंने उनके जैसे सर्वांग पूर्ण आदमी कहीं नहीं देखे। वे खजूर के वृक्ष की तरह सीधे और लाल वर्ण के होते हैं। वह न तो कुर्ता पहनते हैं न पाजामा बल्कि उनमें से पुरुष एक तरह का चोगा जैसा कपड़ा पहनता है, जिसे एक बगल से डालकर अपनी दूसरी बाँह खुली रखता था। हरेक आदमी अपनी तलवार छुरे और कटार को नहीं छोड़ता था। इनकी तलवार लम्बी तथा धार दार होती है। पैर से कन्धे तक उनके शरीर पर हरे वृक्षों, मूर्तियों तथा दूसरी चीजों के गोदने गुदे हुए रहते हैं।

उनकी प्रत्येक स्त्री के स्तनों के पास पति की सम्पत्ति के अनुसार लोहे, ताँबे चाँदी या सोने की डिबिया लटकती रहती है। वह अपने कण्ठ में सोने या चाँदी की मालाएँ पहनती है। हर एक पुरुष जब १० हजार दिरहम का सौदा कर लेता है तो अपनी स्त्री के लिए एक माला खरीद देता है।

व्यवहार के लिये रूसी के समान वे ही ये लोग गन्दे हैं। पाखाना पेशाब के समय सफाई नहीं करते बिल्कुल जंगली गदहों के जैसे। वे अपने नगर से आकर वोल्गा नदी के किनारे बने हुए लकड़ी के घरों में ठहरते हैं। प्रत्येक के पास एक मोढ़ा होता है, जिसके ऊपर वह बैठता है। हर एक के पास अपनी सुन्दरी दासी होती है।

मरने के बाद ये मृतक की लाश को जलाते हैं। मृतक के साथ उसकी एक कोई सुन्दरी दासी भी जला दी जाती है।

इब्न-फजलान ने अपने यात्रा-वर्णन में और भी बहुत सी बातों का मार्मिक उल्लेख किया है।

इब्न बतूता

अरब देश का प्रसिद्ध यात्री जो मुहम्मद तुगलक के जमाने में सन् १३४ के करीब भारत की यात्रा पर आया था।

इब्न बतूता एक विद्वान और जिज्ञासु व्यक्ति था। भ्रमण करने का उसे बहुत शौक था। चौदहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में वह भारत की यात्रा पर आया। उस समय यहाँ तुगलक वंश का शासन था और मुहम्मद तुगलक सम्राट् के पद पर आसीन था। सम्राट ने इब्न बतूता को चीन में अपना राजदूत बनाकर भेजा। वह जमीन के रास्ते कई प्रदेशों में घूमता हुआ चीन गया। मगर वहाँ के सम्राट के दरबार में न जा सका। उसके पश्चात् उसने पश्चिमी एशिया उत्तरी अफ्रीका इत्यादि देशों की यात्रा

कर कुल ७५,० मील की यात्रा का रेकार्ड स्थापित किया और बड़ी सुन्दरता से अपना यात्रा विवरण तैयार करके सम्राट को सुनाया। यह यात्रा विवरण पेरिस के पुस्तकालय में अभी भी सुरक्षित है।

इब्न–मसर्राह

सूफी मत में इसराकी (प्रकाशपूर्ण) शाखा का संस्थापक जिसका जन्म सन् ८८७ में और मृत्यु सन् ९३१ में हुई।

इब्न-मसर्राह स्पेन के सुप्रसिद्ध कार्डोवा नगर का रहने वाला था। सूफीमत के अन्तर्गत उसने इसराकी शाखा की स्थापना की। इसकी विशेषता से उस समय के बहुत से विद्वान और प्रतिभाशाली लोग भी प्रभावित हुए। जिनमें एलेक्जेंडर हेल्स, डुंसस्कोट्स व रोजर इत्यादि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं। दाँते की सुप्रसिद्ध रचना 'डिवाइन कॉमेडी' पर भी उसके विचारों का प्रभाव पाया जाता है।

इब्राहिम अल-फजारी

एक सुप्रसिद्ध अरबी लेखक, जिसने गणित और ज्योतिष के एक भारतीय संस्कृत ग्रन्थ का अरबी अनुवाद करके अस-सिन्द हिन्द के नाम से प्रस्तुत किया।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से अरबी गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में एक नई विचारधारा का जन्म हुआ। भारतीय अंकों का उल्लेख भी पहले-पहल इसी ग्रन्थ के द्वारा हुआ और यहीं से यह अंक माला अल ख्वारिज्मी के द्वारा यूरोपीय देशों में प्रचारित हुई।

इब्न–खलदून

ईसा की १४ वीं शताब्दी के अन्त में अरबी साहित्य का प्रसिद्ध इतिहासकार और दार्शनिक। जिसने राजनीति-शास्त्र और इतिहास पर प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना की।

इब्राहीम लोदी

लोदी खानदान का एक सुलतान सिकन्दर लोदी का बेटा, समय सन् १५१७ से १५२६ तक।

तारीख-इ-दाऊदी के अनुसार इब्राहीम लोदी अपने वंश के अन्य लोदियों की भाँति चालबाज न था। वह बहादुर, नेक और प्रजा-पालक शासक था।

लोदी खानदान के सुलतान अपने को पठान या अफगान मानते थे। सुलतान बहलोल लोदी (१४५१–१४८९ ई०) ने लगातार २६ वर्ष तक लड़ाई करके जौनपुर राज्य जीत लिया। दिल्ली रियासत इस समय में पंजाब से लेकर बनारस तक फैल गयी। उसके पुत्र सिकन्दर लोदी ने (१४८९–१५१७ ई०) बिहार को भी जीत लिया। वह बड़ा न्यायी शासक था। उसके समय में देश सुखी और सम्पन्न था। इब्राहीम लोदी इसी सिकन्दर का बेटा था।

इब्राहीम लोदी अपने सरदारों की शक्ति घटाना चाहता था। इसलिये वे उससे बहुत बिगड़ गये और सारे राज्य में हलचल मच गई। मौका पाकर पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ ने मुगल सरदार बाबर के यहाँ हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने का सन्देश भेजा। बाबर जब विजय करता हुआ लाहौर तक पहुँच गया, तब दौलत को अपनी गलती मालूम हुई और बाबर के खिलाफ लड़ने लगा, पर बाबर को रोक न सका।

अन्त में पानीपत की पहली लड़ाई में मुगल सरदार बाबर ने इब्राहिम लोदी को सन् १५२६ ई० में हरा दिया और लोदी वंश को समाप्त कर उसने हिन्दुस्तान में 'मुगल साम्राज्य' की नींव डाली।

चूँकि अफगान सरदार इब्राहीम लोदी से नाराज रहते थे इसलिए उन्होंने उसे युद्ध में कोई मदद न दी और यही इब्राहीम की हार का प्रधान कारण हुआ। यहीं से मुगल साम्राज्य का श्रीगणेश हो गया।

इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय

बीजापुर का राजा, जो सन् १५८० में गद्दी पर बैठा।

जिस समय इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय गद्दी पर बैठा, उस समय उसकी उम्र ९ वर्ष की थी। उसकी नाबालिगी

में चाँदबीबी सुल्ताना ने रक्षक की भाँति इसके राज्य का कार्य चलाया। सन् १६२६ में इब्राहिम आदिलशाह की मृत्यु हुई। इसकी स्मृति में 'इब्राहिम का रौज़ा' नामक एक बड़ी सुन्दर इमारत बीजापुर में बनी हुई है जिसकी दीवार पर कुरान की आयतें अरबी भाषा में खुदी हुई हैं।

इब्राहीम कुतुब शाह

गोलकुण्डा के राजा कुली कुतुबशाह का पुत्र।

कुली कुतुबशाह के भाई जमशेद कुतुबशाह की मृत्यु पर उसके पुत्र सुभान कुली को राजा बनाया गया। उस समय सुभान की उम्र १२ वर्ष की थी, इसलिए उसे अयोग्य समझ कर सब लोगों ने इब्राहिम कुतुबशाह को गोलकुंडा का राजा बनाया। सन् १५५ ई में इसको गोलकुंडा का राजपद मिला। इसने दूसरे मुसलमान राजाओं से मिल कर विजयनगरम् के महाराजा रामराज पर आक्रमण कर उसको मार डाला और उसके राज्य को आपस में बाँट लिया।

१५८१ में इसकी मृत्यु हो गई।

इब्राहिम निजाम शाह

अहमद नगर का राजा। बुरहान निजाम का पुत्र जो १५९५ ई के अप्रैल मास में गद्दी पर बैठा मगर चार मास ही राज्य करने के पश्चात् इब्राहिम आदिलशाह के साथ की लड़ाई में यह मारा गया।

इब्राहिम शाह शरकी

उत्तर प्रदेश में जौनपुर का एक नवाब जो सन् १४ १ में अपने भाई मुबारिक शाह के मरने के बाद गद्दी पर बैठा। अपढ़ का पुत्र होने पर भी इसके समय में साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। इसके समय में जौनपुर सारे भारत में विद्या का एक आकर्षक केन्द्र बन गया था।

सन् १४४ ई में इसकी मृत्यु हो गई।

इमानुएल बेन-सोलोमन

इटली में यहूदी साहित्य का प्रसिद्ध कवि और लेखक। समय १२६१–१३३१

इमानुएल की कविताएँ विनोद और व्यंग्य से परिपूर्ण और धार्मिक विषयों से समन्वित हैं। सुरा और सुन्दरी पर भी उसने अपने युग के अनुसार चटपटी कविताएँ की हैं। उसकी रचनाओं का संग्रह 'माहबरोथ इमानुएल' के नाम से किया गया है।

बाइबिल पर भी उसने एक टीका लिखी थी।

इमानुएल-गीबेल

जर्मनी के म्युनिख नगर का एक प्रसिद्ध गीतिकार, जो १९ वीं सदी के मध्य में हुआ।

सन् १८७८ में जर्मनी के अन्दर 'गीति के क्षेत्र में एक नवीन विचारधारा का प्रचार हुआ और 'कला कला के लिए' यह नारा यहाँ के गीतिकारों में बुलन्द हुआ। इमानुएल गीबेल उस दल का नेता था। किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए साहित्य की रचना करने का वह विरोधी था। ग्रीक साहित्य के 'पेरीक्लीज-युग' को वह आदर्श मानता था। बवेरिया की राजधानी में राजा मैक्समीलियन द्वितीय के दरबार में इमानुएल की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

इमर्सन

(Ralph Waldo Emerson)

अमेरिका का महान् लेखक, विचारक और समाज सुधारक था जो एमर्सन जिसका जन्म सन् १८ ३ में और मृत्यु १८८२ में हुई।

एमर्सन संसार के उन विचारकों में से एक है जिसने अपने गम्भीर चिन्तन से सारे संसार के विचारकों को प्रभावित किया। वह स्वयं भी हेनरी डेविड थोरो नामक विचारक की विचारधारा से प्रभावित था।

एमर्सन की रचनाओं में "नेचर" "दी अमेरिकन स्कॉलर" "दि डिविनिटी स्कूल एड्रेस" इत्यादि रचनाएँ

बहुत प्रसिद्ध हैं। "नेचर" नामक ग्रन्थ में इस लेखक ने थोथी ईसाईमत और अमरीकी भौतिकवाद की कड़ी आलोचना की है। इस महान् लेखक ने मानव समाज के उस उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत किया है जब उसकी आन्तरिक विशिष्टता इस संसार को स्वर्ग बना देगी।

रचनाओं के अतिरिक्त समय-समय पर भिन्न-भिन्न संस्थाओं में दिये हुए उसके व्याख्यान भी अमेरिकन साहित्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। सन् १८३७ में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में इसने इंग्लैण्ड की साहित्यिक दासता के विरुद्ध अमरीकी साहित्य के स्वतंत्र अस्तित्व की घोषणा की। १८३८ में इसने रूढ़िवादी ईसाई धर्म और उसमें प्रतिपादित ईसा के ईश्वरत्व की कड़ी आलोचना की। इस भाषण में इमर्सन ने अपने अध्यात्म दर्शन का सार भी बतलाया।

इमर्सन एक प्रकृतिवादी तत्वचिंतक था तथा वैयक्तिक आध्यात्मिक स्वतन्त्रता में विश्वास रखता था। इस दिशा में उसने पैसिव रेजिस्टेन्स के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। महात्मा गांधी की विचारधारा भी इमर्सन से बहुत प्रभावित थी और उन्होंने पैसिव रेजिस्टेन्स के सिद्धान्त का ही अपने सत्याग्रह शब्द में प्रयोग और प्रचार किया।

इमर्सन भारतवर्ष की आध्यात्मिक विचारधारा से बहुत प्रभावित था। गीता, उपनिषद् और भारतीय दर्शनशास्त्र का उसने गम्भीर अध्ययन किया था। उसकी "ब्रह्म" नामक सन् १८५७ में प्रकाशित कविता में तथा अन्य रचनाओं में भारतीय विचारधारा की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

इमर्सन की सारी विचारधारा और उसके आध्यात्मिक चिंतन का केन्द्रबिन्दु उसी के द्वारा निर्मित "ओवर सोल" शब्द है, जो एक विश्वव्यापी तत्त्व है और यह सारा संसार उसी "एक" का अंशमात्र है।

इमर्सन की अन्य कृतियों में "आइस रिप्रेजेन्टेटिव मेन" "दी मेगाटाइम्स" "कॉनकॉर्ड" "सोसायटी एन्ड सौलीट्यूड" रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

१२

इञ्जील

ईसाई धर्म के परम पवित्र ग्रन्थ बाइबिल के एक भाग को इञ्जील कहते हैं।

(विशेष वर्णन ईसा के प्रकरण में देखिये।)

इम्परेटर

सम्राट् की पदवी का पुराना नाम जिसे शुरू में ऑगस्टस सीजर ने ग्रहण किया। इसी शब्द से अंग्रेजी के 'एम्परर' शब्द की उत्पत्ति हुई।

इब्राहीम द्वितीय तमगाच खान

मध्यएशिया के अन्तर्भेद में करखानी राजवंश का एक नेता जिसका समय सन् १०५२ से १०६८ तक है।

ईरान में सुप्रसिद्ध सामानी राजवंश का अन्त हो जाने पर मध्यएशिया में करखानी-वंश का जोर बढ़ा। इब्राहीम तमगाचखान इसी वंश का शासक था। यह बड़ी धार्मिक वृत्ति का और फकीरी जीवन व्यतीत करने वाला खान था। अपने खर्च के लिए यह राजकीय खजाने से पैसा नहीं लेता था और न मुसलमान साधुओं की राय लिए बिना कोई टैक्स लगाता था। एक बार अबू-शुजा नामक एक फकीर ने उसे कह दिया कि "तुम सुलतान होने लायक नहीं हो" इस पर उसने अपने महल का दरवाजा बन्द कर राज्य सिंहासन छोड़ना चाहा। लोगों ने बहुत समझा-बुझा कर उसे रोका।

सलजुकी लोगों की अपेक्षा करखानी अधिक सभ्य और सुसंस्कृत थे। इब्राहीम तमगाच खान ने सबसे पहले देश में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। उस समय वहाँ चोरियाँ बहुत होती थीं। खान ने सब चोरों को एक बार घरों में से ढूंढ-ढूंढ कर पकड़वा मँगाया और चोरों को फाँसी दे दी। तब से उसके राज्य में चोरियाँ बहुत कम हो गयीं।

इब्राहीम मुल्ला और मौलवियों को भी उनकी प्रजा विरोधी कार्रवाइयों के लिए बड़ा दण्ड देता था। समरकन्द के एक मशहूर मुसलमान इमाम अबुल कासिम को इसने

इसीलिए कत्ल करवा दिया। इतने पर भी जनता मुसलमानों के साथ न रह कर लाम के साथ रही। क्योंकि वह प्रजा-पालन का बड़ा ध्यान रखता था।

इमानुएल द्वितीय

पहले इटली के सार्डीनिया प्रान्त और पीडमॉण्ट का राजा और बाद में समस्त इटली राज्य का राजा विक्टर इमानुएल।

राजा इमानुएल का आविर्भाव इटली के अन्दर ऐसे समय में हुआ जबकि इटली एक महान् क्रान्ति के बीच में से गुजर रहा था। सन् १८४८ की क्रान्ति असफल हो चुकी थी, हजारों देशभक्त कैद में पड़े सड़ रहे थे और सैकड़ों तलवार के घाट उतार दिये गये थे।

इटली का रिपब्लिकन दल जिसका नेता जोसेफ मेजिनी था। वह सब राजाओं और राजगद्दियों का अन्त करके सारे इटली में रिपब्लिकन शासन की स्थापना करना चाहता था। दूसरा दल पोप के नेतृत्व में इटली की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित करके संगठित करना चाहता था।

मगर इटली का भविष्य इन दोनों दलों के हाथ में नहीं था। वह एक तीसरे दल के हाथ में था जो सार्डीनिया के राजा विक्टर इमानुएल द्वितीय के नेतृत्व में सम्पूर्ण इटली राष्ट्र को संगठित करना चाहता था। सार्डीनिया का यह नवयुवक राजा बहुत प्रतिभाशाली, उन्नत विचारों का तथा साहसी था।

इमानुएल को समर्थन देने वाले इस दल का नेता कावूर था जो पीडमौण्ट का रहने वाला था। वह राजा रहित रिपब्लिक दल की स्थिति पर विश्वास नहीं करता था। वह इंग्लैण्ड की शासन-व्यवस्था का समर्थक था। उसके मत से राजा होना आवश्यक था मगर उसकी शक्तियों पर पार्लमेंट और व्यवस्थापक सभा का नियंत्रण होना चाहिए।

सन् १८५२ में कावूर राजा इमानुएल का प्रधान मंत्री बना। उसने उस समय के नेता मेजिनी और गैरीबाल्डी से बात करके पीडमौण्ट के राजा के हाथ अपने देश का उद्धार करने को राजी कर लिया और फिर फ्रांस के राजा नैपोलियन तृतीय को मिलाकर उससे सैनिक सहायता प्राप्त करने का वचन ले लिया।

परिणामस्वरूप सन् १८५९ में आस्ट्रिया का पीडमौण्ट के साथ युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध प्रारंभ होते ही नैपोलियन तृतीय की सेनाएँ भी पीडमौण्ट पर पहुँच गईं। उस समय सारे इटली के नौजवानों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति के भावों का प्रवाह तीव्र था। यूरोप के अन्य देशों की सहानुभूति पीडमौण्ट के साथ थी।

लड़ाई केवल दो महीने चली। मेजण्टा और साल्फेरिनो की लड़ाइयों में आस्ट्रियन सेनाएँ बड़ी बुरी तरह पराजित हुई।

इमानुएल द्वितीय ने बड़ी धूमधाम के साथ लोम्बार्डी की राजधानी मिलन में प्रवेश किया। टसकनी, परमा और मोडेना के हाप्सबुर्ग वंशी राजाओं को राज्यच्युत किया गया। पोप राज्य के उत्तर प्रदेशीय लोगों ने पोप के अधीन रहने से इन्कार किया और वे पीडमौण्ट राज्य में सम्मिलित होने की माँग करने लगे।

इस प्रकार इटली की शक्ति को तेजी से बढ़ती देख नैपोलियन तृतीय डर गया और वह इस युद्ध से अलग होकर आस्ट्रिया से सन्धि करने को तैयार हो गया। इस घटना के फलस्वरूप युद्ध का नक्शा पलट गया और पीडमौण्ट को भी आस्ट्रिया के साथ ज्यूरिख की सन्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस सन्धि में यद्यपि लोम्बार्डी का प्रदेश परमा मोडेना तथा टस्कनी इमानुएल को मिल गया पर वेनेशिया नीस और सेवाय के प्रदेश उसे नहीं मिल सके।

पर उसके बाद गैरीबाल्डी ने अपने राष्ट्रीय स्वयं-सेवकों की सहायता से नेपल्स सिसली इत्यादि इटली के दक्षिणी हिस्सों पर भी कब्जा कर लिया। इस प्रकार रोम और वेनेशिया इन दो स्थानों को छोड़ कर सारा इटली एकता के सूत्र में बँध गया और १७ मार्च १८६१ को विक्टर इमानुएल द्वितीय इटली का राजा घोषित किया गया। इसी वर्ष कावूर का देहान्त हो गया। सन् १८६६ में वेनेशिया भी इमानुएल के अधिकार में आ गया और सन् १८७० में जब फ्रांस और प्रशिया का युद्ध शुरू हुआ

तब एक इटालियन सेना ने रोम पर आक्रमण कर दिया। पोप भाग कर एक महल में छिप गया और रोम भी इटली के अधिकार में आ गया। सन् १८७१ में इटली राष्ट्र की राजधानी रोम में स्थापित हुई। पार्लमेंट का उद्घाटन करते हुए विक्टर इमानुएल ने कहा कि "हमारी राष्ट्रीय एकता स्थापित हो गई है अब हमारा काम राष्ट्र को महान् तथा समृद्ध बनाना है।"

इम्फाल

भारतवर्ष की उत्तर पूर्वी सीमा पर बसा हुआ एक नगर जो मनीपुर-राज्य की राजधानी है।

रेलवे स्टेशन डीमापुर (मनीपुर रोड) से १३४ मील के लम्बे पहाड़ी रास्ते को तय करने के पश्चात् इम्फाल में पहुँचा जाता है। पहले यह रियासत एक राजा के अधीन थी पर अब भारत सरकार के नार्थ ईस्ट फ्रण्टियर के प्रशासन में आ गई है।

भारत की सीमा पर दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में स्थित होने के कारण सामरिक दृष्टि से इस क्षेत्र का बड़ा महत्व है। द्वितीय महायुद्ध के समय नेताजी सुभाष बोस की 'आजाद हिन्द-सेना' ने इसी मार्ग से होकर भारतवर्ष में प्रवेश किया था। १८ मार्च सन् १९४४ को आजाद हिन्द फौज ने भारत की सीमा में प्रवेश कर कोहिमा और मीरांई पर अधिकार करके इम्फाल पर घेरा डाल दिया था। यद्यपि बाद में अंग्रेजों की भारी संगठन शक्ति के कारण आजाद हिन्द सेना को पराजित होना पड़ा पर उस समय से इम्फाल का महत्व सैनिक दृष्टिकोण से बड़ा प्रसिद्ध हो गया।

इम्फाल के आस-पास ही प्रसिद्ध उपद्रवकारी नागाओं का वह क्षेत्र है जहाँ पर भारत गवर्नमेंट ने 'नागा लैण्ड' की स्थापना की है। फिर भी नागाओं के उपद्रव अभी तक जारी है।

इस क्षेत्र में बनने वाला मणीपुरी कपड़ा कलापूर्ण कारीगरी के कारण भारत में सब दूर और विदेशों में भी कई स्थानों पर निर्यात होता है। यह नगर भारत के अन्य भागों तथा बर्मा के साथ पक्की सड़क और वायु-मार्ग से जुड़ा हुआ है।

इयासु

जापान में तोकुगावा शोगुन शाही की सत्ता को स्थापित करने वाला पराक्रमी नेता इयासु जो सन् १६ १ में विद्यमान था।

इन दिनों "शोगुन" (प्रधानमंत्री) का पद जापान में बड़ा महत्वपूर्ण हो गया था और सम्राट् की आड़ में यही लोग वास्तविक शासन करते थे। शोगुन का पद प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न सामन्त-कुलों में बड़े संघर्ष चलते रहते थे। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तोकुगावा वंश के पराक्रमी व्यक्ति "इयासु" ने दूसरे सब प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त कर तोकुगावा वंश को शोगुन के गौरवमय पद पर प्रतिष्ठित किया। यह तोकुगावा शोगुन शाही सन् १६०३ से १८६७ तक अर्थात् ढाई सौ वर्ष से अधिक समय तक जापान में चलती रही।

इराकी

ईरानी साहित्य में सूफी दृष्टिकोण से कविता करने वाला प्रसिद्ध कवि, जो ईसा की ११ वीं शताब्दी के मध्य में हुआ।

इराकी के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लमआत' में रहस्यवादी प्रेम का वर्णन है। इराकी अपने रहस्यवादी प्रणय में '[illegible]' और मीराबाई की तरह काफी शृंगारिक हो गया है। सूफियों में इसके 'गुलशने राज' नामक ग्रन्थ का बड़ा मान है।

इराकी के लमआत ग्रन्थ का भाष्य फारसी के सुप्रसिद्ध कवि जामी ने 'अशी-अतुल लमआत' के नाम से गद्य में किया है।

इरयीमन तम्पी

मलयालम साहित्य के प्रसिद्ध गीतकार, जिनका जन्म सन् १७८२ में और मृत्यु सन् १८५६ में हुई।

इरयीमन तम्पी प्रसिद्ध गीतकार और संगीत-शास्त्र के गम्भीर परिज्ञाता थे। यह मलयालम भाषा में कथकली साहित्य के प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने कैकोट्टी बहुत गीत

रचकर साहित्य की बड़ी सेवा की। उनकी बनाई हुई कवी की एक छोटी केरल प्रान्त का बच्चा-बच्चा जानता है। उसे गाकर लोग आनन्द सागर में डुबकियाँ लगाते हैं। इसी एक रचना से वह कवि शिरोमणि बन गये। उनके और भी कई गीत लोकप्रिय हैं जो शृंगार-रस प्रधान हैं। सरल, अर्थपूर्ण सप्रवाह और सुकोमल गीतों की रचना में वे मलयालम साहित्य में बेजोड़ हैं। उनकी रचनाओं से मलयाली साहित्य में उमंग, चैतन्य और स्फूर्ति पैदा हो गई। उनकी रचनाओं में 'कीचक वधम्' 'उत्तर स्वयम्वरम्' 'दक्षयागम्' इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इसमें उत्तर स्वयंवरम् के गीत अत्यन्त उत्कृष्ट हैं।

इराटोस्थनीज

यूनान का रहने वाला एक महान् ज्योतिष-शास्त्री और वैज्ञानिक जिसका समय ईसवी सन् पूर्व २७६ से १९४ तक है।

इराटोस्थनीज आधुनिक लीबिया के साइरन नामक नगर के रहने वाले थे। इनका जन्म ईसवी सन् पूर्व २७६ में हुआ था। वे अपने समय के प्रमुख वैज्ञानिक, कवि और साहित्यकार थे। इनके लिखे हुए ग्रन्थों में इस समय केवल "कैटस्टरिमी" नामक रचना उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले नक्षत्रों इत्यादि की विस्तृत तालिका और उनका परिचय दिया गया है। इसी ग्रन्थ के कारण आधुनिक युग में उन्हें एक ज्योतिषशास्त्री और गणितज्ञ के रूप में स्वीकार किया जाता है।

इराटोस्थनीज की सबसे महत्त्वपूर्ण खोज पृथ्वी की—जिसे उस समय गोल माना जाने लगा था—परिधि की गणना करना है।

मिस्र के दक्षिणी नगर साइरन में निवास करते हुए इराटोस्थनीज ने एक नवीन तथ्य की खोज की। उन्होंने २१ जून को जब कि सूर्य भूमध्य रेखा पर रहता है देखा कि साइरन के एक कुएँ में सूर्य की किरणें कुएँ की सतह की परछाईं किये बिना सीधे कुएँ की तली तक पहुँच रही हैं। इस तथ्य से उन्होंने यह परिणाम निकाला कि यह कुँआ कर्क-राशि के भ्रमण वृत्त में है जहाँ सूर्य अपनी उत्तरीय अयन और वसन्त अयन प्रगति बन्द कर दक्षिणी यात्रा प्रारम्भ करता है।

सिकन्दरिया और साइरन दोनों ही नगर एक ही देशान्तर रेखा की उत्तरी और दक्षिणी पंक्ति पर अवस्थित हैं। २१ जून को सबसे बड़े दिन पर जब कि साइरन के कुँए में स्तम्भ की परछाईं नहीं पड़ती थी तब उसी समय सिकन्दरिया के कुँए में भी वहाँ से पाँच सौ मील उत्तर में परछाईं पड़ती थी।

इराटोस्थनीज ने इस परछाईं को नाप कर हिसाब लगाया कि साइरन और सिकन्दरिया की दूरी ७ अंशों का प्रतिनिधित्व करती है। इस पर उन्होंने २ नगरों की दूरी ५ मील का ५ से गुणा कर पृथ्वी की पूरी परिधि २५ मील है—इस तथ्य की घोषणा की।

आधुनिक खोजों में पृथ्वी की परिधि २४८ २ मील साबित हुई है। ऐसी स्थिति में इराटोस्थनीज की यह गणना असली तथ्य के कितनी नजदीक पहुँच गई थी, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

इराटोस्थनीज ने ऐतिहासिक घटनाओं की वैज्ञानिक गणना का प्रयत्न भी किया था। उन्होंने ट्राय की विजय के वर्ष से ऐतिहासिक घटनाओं के पूर्वापर क्रम का निर्धारण किया था।

इराटोस्थनीज सिकन्दरिया के तत्कालीन विशाल पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। अपने समय में यह पुस्तकालय सारे संसार में ज्ञान का एक महान् केन्द्र माना जाता था।

आँखों की रोशनी क्रमशः कम होती देख अन्धे हो जाने के भय से इस महान् वैज्ञानिक ने अन्न-जल छोड़ कर अपने प्राणों का त्याग किया था।

इरविंग वाशिंगटन

अमेरिका का एक सुप्रसिद्ध लेखक वाशिंगटन इरविंग जिसका समय सन् १७८३ से १८५९ तक है।

वाशिंगटन इरविंग अमेरिका के ऐसे लेखकों में से एक था जिनको इंगलैंड में बहुत अधिक प्रशंसा हुई। इसकी कृतियों में रोमांस के साथ १ हास्य और विनोद का काफी

समावेश रहता था। इसकी कृतियों में "ग्रेस बिवाउन्स" "दी भ्रवाइस्ता" "श्रोलिवर गोल्ड स्मिथ" श्रौर "वार्सिंगटन" (जीवनी) नामक पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं।

इरेसिसट्रेटस (Erasistratus)

शरीर-क्रिया-विज्ञान (Physiology) का प्रथम श्राचार्य जिसका जन्म यूनान में हुआ।

शरीर-क्रिया-विज्ञान का शास्त्रीय ढंग पर विवेचन करने वाला प्रथम व्यक्ति इरेसिसट्रेटस माना जाता है। पाश्चात्य जगत में इसे 'फादर श्रॉफ फिजियालोजी' कहा जाता है।

इरास्मस

पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप के ह्यूमेनिस्ट श्रान्दोलन का प्रमुख नेता।

यूरोप में मार्टिन लूथर के प्रोटेस्टेंट श्रान्दोलन के पूर्व उसकी श्राधारशिला के रूप में कुछ ऐसे संगठन बन गये थे जो धर्माध्यक्षों पादरियों श्रौर महन्तों की बुराइयों की श्रालोचना करते थे। इनमें सबसे प्रधान संगठन ह्यूमेनिस्टों का था।

'इरास्मस ह्यूमेनिस्टों का प्रमुख नेता था। वाल्टेयर के श्रतिरिक्त किसी भी यूरोपीय विद्वान ने श्रपने जीवन-काल में इतना श्रधिक यश उपार्जन नहीं किया जितना इरास्मस को प्राप्त हुआ। यद्यपि उसका जन्म हॉलैंड में हुआ था तथापि वह डच नहीं कहा जाता था। वह दुनिया भर का निवासी था। इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली, स्पेन सभी उसे श्रपना मानते थे।

सन् १४९९ से १५६१ तक वह इंगलैण्ड में रहा श्रौर इस श्रर्से में उसने वहाँ के सवमान्य विद्वानों से काफी घनिष्ठता प्राप्त कर ली। "यूटोपिया" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के लेखक सर टॉमस मूर श्रौर सेण्टपाल के पत्रों के व्याख्याता जॉन कालेट से उसकी काफी घनिष्ठता थी। इंगलैंड में रह कर उसने बाइबिल के न्यू टेस्टामेंट का शुद्ध संस्करण श्रपनी व्याख्या के साथ प्रकाशित किया। न्यू टेस्टामेंट की प्रस्तावना में उसने लिखा है कि—

'समस्त ईसाई स्त्री-पुरुषों को बाइबिल तथा सेण्ट पाल के पत्रों को पढ़ना चाहिए। किसान अपने खेत में, कारीगर अपनी दुकान में श्रौर यात्री श्रपने मार्ग में श्रपना समय बाइबिल पढ़ने में बितावें।"

इरास्मस का कथन था कि धर्मसंस्था श्राडम्बर हो गई है श्रौर धर्मशास्त्रियों के वकीलवाद में पड़कर ईसा मसीह के सरल सिद्धान्त लुप्त हो गये हैं। श्रपनी प्रेज ऑफ फॉली (Praise of folly) नामक पुस्तक में उसने महन्तों श्रौर धर्मशास्त्रियों तथा कर्मकाण्डियों की कठोर श्रालोचना की है।

शुरू शुरू में श्रपने उद्देश्य में इस सुधारवादी विचारक को काफी सफलता मिली। मगर आगे जाकर कुछ लोग उसके खिलाफ हो गये श्रौर उसका श्रन्तिम जीवन बड़े कष्ट में बीता।

इरा रेमसेन

सेकरीन नामक मीठे द्रव्य का श्राविष्कार करने वाला सुप्रसिद्ध रसायन शास्त्री इरा रेमसेन।

सन् १८७९ में प्रसिद्ध श्रमेरिकन रसायनज्ञ श्रो इरा रेमसेन श्रौर उनके शिष्य फाहबर्ग ने सेकरीन नामक एक ऐसी मीठी वस्तु का श्राकस्मिक ढङ्ग से श्राविष्कार कर डाला जो शक्कर से ५५ गुना श्रधिक मीठा होता है।

उस समय ये दोनों रसायन शास्त्री श्रार्थो-टोल्यूइन सल्फोनिक श्रम्ल से श्रार्थो सल्फो बेंजोइक श्रम्ल बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। एक दिन प्रयोग करने के पश्चात् जब वे दोनों चाय पी रहे थे तो उन्हें पीने में वह चाय बहुत श्रधिक मीठी श्रौर श्रजीब स्वाद की लगी। उनकी अंगुलियाँ भी उन्हें चाटने पर बहुत मीठी लगीं, जिससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी जाँच करने पर मालूम हुआ कि वह मिठास ' श्रार्थो—सल्फो बेंजोइक" की वजह से ही हुआ था। इसके फलस्वरूप उसी समय 'सेकरिन' के श्राविष्कार की नींव पड़ी।

इरियन

दक्षिण पूर्वी एशिया में हॉलैण्ड का एक उपनिवेश जो इण्डोनेशिया से सम्बद्ध है। इसका क्षेत्रफल १ ९१ वर्ग मील और जन संख्या भी ज्ञात है। इसका दूसरा नाम पश्चिमी न्यूगिनी भी है।

डच-सरकार ने इंडोनेशिया को स्वतंत्र करने के बाद भी इरियन को अपने ही कब्जे में रखा। तब इंडोनेशिया की स्वतन्त्र सरकार ने इण्डोनेशिया के अन्य भागों की तरह पश्चिमी इरियन पर भी अपना दावा पेश किया। मगर डच-सरकार ने यह कह कर उस दावे से इनकार किया कि पश्चिमी इरियन इण्डोनेशिया से अलग एक स्वतंत्र इकाई है। यहाँ के निवासी 'पापुआ' जाति के लोग इण्डोनेशियन लोगों से भिन्न हैं और वे स्वयं स्वतन्त्रता की आकांक्षा रखते हैं।

इस प्रकार डच-सरकार और इंडोनेशियन सरकार के बीच एक जोरदार तनातनी बढ़ती गई और भारत में 'गोवा मुक्ति अभियान' के २४ घण्टे बाद इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकार्नो ने 'पश्चिमी इरियन मुक्ति अभियान' का आदेश दे दिया। सोवियत रूस और चेकोस्लोवाकिया ने इण्डोनेशिया को भारी मात्रा में शस्त्र भी पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया।

तब राष्ट्र संघ के महामन्त्री की अपील और अमेरिका के प्रभाव से दोनों पक्ष वार्ता के लिए तैयार हुए। सन् १९६२ में समझौता हो गया। जिसके अनुसार पश्चिमी इरियन का प्रशासन १ अक्टूबर १९६२ से १ मई १९६३ तक राष्ट्र संघ के निर्देशन में रहा और १ मई सन् १९६३ ई० को वह इंडोनेशियन सरकार को इस शर्त पर सौंप दिया गया कि सन् १९६९ में आत्म निर्णय के लिए वहाँ पर जनमत-संग्रह किया जाय और उसके परिणाम के अनुसार ही वहाँ की भावी व्यवस्था की जाय।

इन्दुलाल याज्ञिक

गुजरात के एक प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्ता सम्पादक और साहित्यकार।

इन्दुलाल याज्ञिक पहले गांधीजी के "नवजीवन और सत्य" नामक मासिक पत्र को पीछे जाकर साप्ताहिक हो गया था का सम्पादन करते थे। इन्होंने इस पत्र के द्वारा गुजराती गद्य में एक नवीन सरल शैली का प्रारम्भ किया। इस शैली ने अर्वाचीन गुजराती गद्य के विकास में बड़ा महत्त्वपूर्ण योग दिया।

इनकी रचना "कुमारना की रखो" में इन्होंने भारतीय नारीत्व के कुछ सामाजिक चित्रों का चित्रण किया है। इन चित्रों में आधुनिक ढंग की शिक्षा पाई हुई कुमारिकाओं और महिलाओं का पौराणिक परम्परा का आधार लिये बिना ऐसा चित्रण किया है जो हमारे सामाजिक ढाँचे में आसानी के साथ फिट हो गया है और आधुनिक शिक्षा उनके मार्ग में बिलकुल बाधक नहीं हुई है।

इन्दुलाल याज्ञिक हमेशा कांग्रेस और महात्मा जी के अनुयायी रहे, मगर आजादी के बाद अब गुजरात प्रान्त से अलग करते समय उनका कांग्रेस से मतभेद हो गया और उन्होंने कांग्रेस से अलग होकर उसके विरुद्ध अहमदाबाद में एक प्रभावशाली आन्दोलन का संचालन किया था।

इलाचन्द्र जोशी

हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जिनका जन्म सन् १९ २ में अल्मोड़ा में हुआ।

पं इलाचन्द्रजोशी हिन्दी-साहित्य के मँजे हुए उपन्यास कारोंमें से एक हैं। इनके उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण गम्भीर अध्ययन और भाषा की प्रौढ़ता स्पष्ट रूप से झलकती है। इनकी रचनाओं में घृणामयी, सन्यासी, चार उपन्यास इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

इलाहाबाद

भारत की पवित्र और प्राचीन महानगरियों में से एक नगरी प्रयाग का मुसलमानी काल में बदला हुआ नाम इलाहाबाद।

प्रयाग का महत्त्व और इतिहास बहुत पुराना है और उसका वर्णन हम 'प्रयाग" नाम के अन्तर्गत आगे के मार्गों में करेंगे। इस स्थान पर हम इस नगरी का यहीं से वर्णन करेंगे जहाँ से इसका इलाहाबाद नाम प्रारम्भ हुआ।

इलाहाबाद का नामकरण सम्राट् अकबर के द्वारा किया हुआ है। उनको इस स्थान से अधिक दिलचस्पी थी और उन्होंने सन् १५८१ में गंगा यमुना और सरस्वती के पवित्र संगम-तट पर एक बढ़िया किला बनवाया और उस किले के साथ-साथ इस क्षेत्र का नाम भी प्रयाग के बदले इलाहाबाद रक्खा गया। अंग्रेजी सरकार ने भी अपने शासन में इसे इलाहाबाद के नाम से स्वीकार किया। तब से यह क्षेत्र इलाहाबाद के ही नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रमुख पत्रक के मतानुसार प्राचीन काल में इस शहर का नाम "प्रयाग" था। बादशाह अकबर ने इसका नाम इलाहाबाद रक्खा और १५८१ में यहाँ पर पत्थर का एक किला बनवाया।

सम्राट् अकबर ने अपने प्रसिद्ध दरबारी राजा मानसिंह (जयपुर) को जब वे इलाहाबाद में आये थे, प्रयाग का यह भाग बख्शीश में दिया था, जहाँ आजकल कटरा की घनी बस्ती तथा म्योर कालेज आबाद है।

सन् १६६५ में फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर इलाहाबाद आया था उसने इस शहर तथा किले के भीतर की अनेक सुन्दर इमारतों का उल्लेख किया है।

लगभग अठारहवीं सदी के प्रारम्भ तक यह शहर मुगल गवर्नरी के आधीन रहा। उसके बाद सम्राट् फर्रुख सियर ने छबीलाराम नामक ब्राह्मण को यहाँ का गवर्नर नियुक्त किया।

छबीला राम के भतीजे गिरिधर ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए साम्राज्य से विद्रोह कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप यह स्थान गिरिधर के हाथ से निकल कर सैय्यद हुसेन की गवर्नरी में आया। इसके पश्चात् दो चार मुगल गवर्नर और हुए और बाद में यह सूबा अवध के नवाब वजीर के अधिकार में चला गया।

सन् १७६५ में इलाहाबाद में एक संधि हुई। इस संधि के अनुसार इलाहाबाद और कड़ा नवाब वजीर से लेकर अंग्रेजों ने बादशाह शाह आलम को दे दिये। मगर जब शाह आलम अंग्रेजों की बात न मानकर महादजी सिंधिया के निमंत्रण पर देहली चला गया तो अंग्रेजों ने उसकी छब्बीस लाख की पेंशन भी बन्द कर दी और इलाहाबाद तथा कड़ा के परगने पचास लाख रुपये में नवाब शुजा उद्दौला के हाथ बेच दिये। लेकिन सन् १८०१ में नवाब सआदत अलीखाँ ने लखनऊ की संधि के अनुसार अंग्रेजों को इलाहाबाद का किला फिर से दे दिया।

लार्ड वेलेस्ली के समय में इलाहाबाद और उसके आस पास के जिले स्थायी रूप से अंग्रेजों के हाथ में आ गये क्योंकि नवाब लोग अंग्रेजों का रुपया अदा नहीं कर सके थे।

अंग्रेजों के अधिकार में आने के बाद लार्ड लेक ने इलाहाबाद में सन् १८०१-४ में अपनी शक्ति संगठित करके उससे उत्तर भारत के कई शहरों पर आक्रमण कर उन्हें अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। उधर लेफ्टिनेंट कर्नल पॉवेल ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर उसके अधिकांश भाग पर ब्रिटिश अधिकार स्थापित कर लिया। सन् १८१६ में लखनऊ की संधि के अनुसार इटिकया का परगना भी इलाहाबाद में मिल गया और सन् १८२५ में इलाहाबाद की सीमा स्थायी रूप से निर्धारित कर दी गयी।

सन् १८५७ में सिपाही-क्रान्ति के समय इलाहाबाद क्रान्ति का एक मुख्य केन्द्र स्थान था। १८५७ की ६ जून को खजाने को लूट लेने के पश्चात् बहुत से अंग्रेजों को मार कर विद्रोहियों के सरदार मौलवी लियाकत अली ने दिल्ली पति को अपना राजा घोषित करके खुसरूबाग में अपना दरबार लगाया और स्वयं यहाँ का गवर्नर बना। ५ दिन के बाद मद्रास से एक बड़ी सेना लेकर कर्नल नील ने निर्दयता पूर्वक बदला चुकाते हुए वापस शासन प्राप्त किया और वर्तमान चौकाघाटी के निकट नीम के वृक्ष पर सैकड़ों विद्रोहियों को फाँसी पर लटका दिया। लियाकत अली फरार हो गये, मगर सन् १८७२ में फिर पकड़े गये और उन्हें आजीवन देश निकाले की सजा दी गई।

सन् १८५८ में वाइसराय लार्ड कैनिंग ने इलाहाबाद आकर उत्तर पश्चिमी सूबों की सीमा का निर्धारण कर

दिया और सरकार के प्रधान कार्यालय को आगरा से हटा कर इलाहाबाद में स्थापित कर दिया। उन्होंने एक बड़ा दरबार करके उसमें महारानी विक्टोरिया का 'घोषणा-पत्र' पढ़ा, वह स्थान मिण्टोपार्क के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन् १८८८ में इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। भारत के राजनैतिक और साहित्यिक क्षेत्र में इलाहाबाद का योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पं० मदन मोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू, सर सुन्दर लाल, बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डन, पं० जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, डा० कैलाश नाथ काटजू इत्यादि देश के अनेक महान् व्यक्तियों ने यहीं शिक्षा पाकर सारे देश के राजनैतिक क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण भाग अदा किया।

साहित्य के क्षेत्र में भी पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० श्रीधर पाठक, महाकवि निराला, महादेवी वर्मा, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी इत्यादि अनेक महारथियों ने भगवती सरस्वती के मन्दिर में यहीं से अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित किए हैं।

इस प्रकार प्राचीन काल से प्रयाग की यह नगरी इलाहाबाद का नाम धारण कर के भी अपने महत्व को अक्षुण्ण रखते हुए है।

इलियड

महाकवि होमर रचित ग्रीक भाषा का महान् काव्य जिसकी कथा इस प्रकार है।

"स्पार्टा नगर के राजा अगमेमनोन के भाई की पत्नी उस युग की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी "हेलेन" को 'ट्राय नगर का राजकुमार' पारिस छल से अपहरण करके समुद्र पार के अपने देश में ले गया। इससे राजा अगमेमनोन बड़ा क्रुद्ध और दुःखी हो गया। उसने हेलन को वापस लाने और दुश्मन से बदला लेने के लिए ग्यारह वर्ष तक अपनी सैनिक शक्ति का संगठन किया और उसके पश्चात् उसने अपनी बड़ी सेना के द्वारा ट्राय पर आक्रमण कर दिया। संसार का सर्वश्रेष्ठ वीर मार्मिडियनों का युवराज एचिलस भी राजा के साथ था। उसके डर से ट्राय की सेना नगर के किले से बाहर आकर एचियनों का मुकाबिला न कर सकी, लेकिन एचियन लोग भी अत्यन्त कोशिश करने पर भी किले में प्रवेश न कर सके। घेरा कई वर्षों तक पड़ा रहा मगर बाद के नौवें वर्ष में राजा से एचिलस का झगड़ा हो जाने से एचिलस युद्ध से अलग हो गया। यह मालूम होते ही ट्राय के योद्धा लोग निर्भय होकर किले से बाहर निकल आये और वीर शिरोमणि हेक्टर की सहायता से उन्होंने एचियन लोगों को भगा कर वापस जहाजों पर चढ़ा दिया।

यह देखकर एचिलस को बहुत दया आयी और उसने अपने मित्र पेट्रोक्लस को अपनी सेना के साथ ट्रोजनों को खदेड़ने के लिये भेजा। पेट्रोक्लस ने ट्रोजनों को भगा तो दिया मगर लड़ाई में मारा गया। अपने मित्र की मृत्यु से क्रुद्ध होकर एचिलस ने तुरन्त राजा से समझौता करके ट्रोजन लोगों पर भयंकर आक्रमण किया और उनके सर्वोपरि वीर हेक्टर को मार डाला।

हेक्टर के पिता प्रियम ने एचिलस को बहुत ही बहुमूल्य भेंट देकर हेक्टर की लाश को प्राप्त किया और उसका दाह संस्कार किया। उसके बाद एचिलस ने फिर ट्रोजनों पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में देव-योजना के अनुसार अलेक्जेण्डर्स ने एचिलस को मार डाला। एचिलस के मरते ही उसकी सेना की कमर टूट गई और उसे जीत की कोई आशा नहीं रही। इस पर परम राजनीतिज्ञ ओडिसियस ने एक योजना बनाई। उसने एक बहुत ही सुन्दर विशालकाय लकड़ी का घोड़ा बनाकर नगर के द्वार पर रख कर दिया और सारी सेना को वापिस हटने का आदेश दे दिया। ट्रोजन लोगों ने बगैर समझ तक कोई दखल न देकर किले का दरवाजा खोल उस घोड़े को अन्दर ले लिया और दरवाजा बन्द कर दिया। घोड़े के अन्दर आते ही उसके पेट में छिपे हुये ओडिसियस वगैरह इत्यादि वीरों ने निकल कर किले का दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही एचियन सेना किले में घुस गई और उसने एक एक ट्रोजन को बीन बीन कर मार डाला और दस वर्ष के पश्चात् पुनः हेलेन को प्राप्त किया।

होमर का आविर्भाव ईसा से पूर्व ६वीं सदी में माना जाता है। इनकी भाषा में इओनिक और 'आयोनिक'

नायिकों का मिश्रण है जो वीर-काव्य के लिये बड़ी सशक्त है। उसके चरित्र चित्रण बड़े सजीव, प्रशस्त और रोमांच कारी हैं। इसका विवेचन करते हुए विश्व साहित्य की रूप रेखा नामक ग्रन्थ में डा० भगवतशरण उपाध्याय लिखते हैं—

"इलियड" के पात्रों का होमर ने बड़ा तेजस्वी और पुष्ट रूप अंकित किया है। उसके बयान में रेखाएँ नहीं, तस्वीर की उभरी आकृतियाँ हैं—स्पष्ट, और सबल, कर्मठ। परन्तु उसके चरित्रों में अन्तर है। ग्रीक पक्ष के अनेक चरित्र लोकोत्तर हैं। किसी की माता देवी है—किसी का पिता, देवता। परन्तु 'हैक्टर' का बयान प्रस्तुत मानवीय है। 'एकीलीज' देवोपम है। हैक्टर सर्वथा मनुष्य। हैक्टर मानव होकर भी देवोत्तर एकीलीज से कहीं अधिक हमारी सहानुभूति का पात्र हो उठता है और वह अपनी मृत्यु के कारण नहीं, बल्कि अपनी लोकचेतना, स्वदेशप्रेम तथा पराक्रम के कारण। एकीलिज स्वयं कम पराक्रमी नहीं है, परन्तु वह अर्धदैव है और देवता का पराक्रम अमर्यादित होने से महत्व नहीं रखता। खतरे में साहस के साथ जान को झोंक देना मनुष्य की ही अकृत्रिम विशेषता है और हैक्टर उसी का प्रतीक है। होमर के देवता भी प्राचीन ऋषियों की तरह मानवीय आचरण करते हैं। मानवीय आवेशों से भरे हुए हैं। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि के शिकार हैं। इलियड एक प्रस्तुत कृति है। वीर काव्य जगत् की यह पहली रचना है पू० ८ वीं ९ वीं सदी में रची गई।"

"होमर के काव्यों की सफलता इसी से प्रकट है कि उसकी कविता के गायकों की एक जाति ही बन गई जिसे होमरीडी कहते थे। इन लोगों का काम इलियन-सागर के द्वीपों और ग्रीस की यूरोपियन भूमि पर उन्हें गाते फिरना था। इस प्रकार इन काव्यों का प्रचार पहले मुख-मुख कर ही हुआ। बाद में छठी सदी ईस्वी सन् पूर्व या उसके भी बाद वे पहली बार लिखे गये।"

अभी कुछ समय पूर्व तक होमर का इलियड काव्य और ट्राय नगर का घेरा काल्पनिक कथानक माने जाते थे, मगर जर्मनी के 'हाइनरिश श्लीमान' नामक व्यक्ति ने सन् १८७० में इलियन सभ्यता के केन्द्र की खुदाई करवा कर ट्राय नगर के खंडहरों का पता लगा लिया और अब ट्राय नगर का घेरा एक काल्पनिक नहीं, प्रत्युत् ऐतिहासिक तथ्य माना जाता है और इस युद्ध का समय साधारणतया ११८४ ई० सन् पूर्व माना जाता है।

इलियट (Eliot)

बीसवीं सदी का एक महान् अंग्रेज कवि जिसका जन्म सन् १८८८ में हुआ और जिसका पूरा नाम "थामस स्टेरन इलियट (Thomas Stearn Eliot) था। सन् १९४८ में इसको 'नोबल प्राइज' नामक प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

इलियट ने अंग्रेजी साहित्य में गद्य, पद्य और नाटकी भाषा तीनों रूपों में अपनी रचनाएँ पेश की हैं। सन् १९१७ में उसकी कविताओं का संग्रह 'प्रूफ्रॉक' के नाम से प्रकाशित हुआ। इन कविताओं में इंगलैंड की तत्कालीन समाज-व्यवस्था पर हास्य और व्यंग के रूप में काफी छींटे-कशी की गई है। इसकी अन्य कृतियों में "दी वेस्ट लैण्ड" और "मर्डर इन दी कैथेड्रल" विशेष प्रसिद्ध हैं। "दी वेस्ट लैण्ड" में उसने प्रथम महायुद्ध के बाद के इंगलैंड के जीवन को प्रतिबिम्बित किया है—और बतलाया है कि आज की सभ्यता का न तो कोई भविष्य है और न उसमें किसी आदर्श निष्ठा या विश्वास का समावेश है। उसकी विचार-धारा में स्वच्छन्दता, निरंकुशता और उत्तेजना की भावनाएँ अधिक होने से समाज में वह प्रिय नहीं हो सकी।

इलियट जार्ज

अंग्रेजी साहित्य की एक प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका, जिसका जन्म सन् १८१९ में और मृत्यु १८८० में हुई।

इस लेखिका का असली नाम मेरी एन-इवेन्स (Mari an Evans) था। मगर वह जार्ज इलियट के पुरुष नाम से कविता करती थी। उन्नीसवीं सदी के भारी-उपन्यासकारों में वह सबसे अधिक सफल लेखिका थी।

इलियट जार्ज की रचनाओं में "ऐडम बीड" "दी मिल आन दी फ्लॉस" "साइलस मारनर" "रोमोला" मिडिलमार्च' इत्यादि रचनाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें से

'ऐडम बीड' "दी मिल ऑन दी फ्लोस" और "साइलस मारनर" ये तीन रचनाएँ ग्राम्य-जीवन का सुन्दर चित्रण करने में काफी सफल हुई हैं। "मिडिल मार्च" इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। इस उपन्यास में समाज के वास्तविक जीवन का प्रतिबिम्ब दर्पण की तरह स्पष्ट हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज उपन्यासकारों में जार्ज इलियट का नाम एक गौरवपूर्ण स्थान रखता है।

इलबर्ट बिल

भारतवर्ष में लार्ड रिपन के समय में तत्कालीन लॉ मेम्बर इलबर्ट के द्वारा सन् १८८३ में उपस्थित किया गया एक बिल।

इस बिल के उपस्थित होने के पहले भारतीय मजिस्ट्रेट को यह अधिकार नहीं था कि वे किसी अंग्रेज या अमेरिकन अपराधी के विरुद्ध मुकदमा चला सकें। इलबर्ट बिल में भारतीय मजिस्ट्रेटों पर लगे हुए इस प्रतिबन्ध को हटा देने का विधान था।

जब भारतवर्ष में रहने वाले अंग्रेजों को यह बात मालूम हुई तो वे बड़े क्रोधित हुए और कुछ लोगों ने तो गवर्नमेंट हाउस के सन्तरियों को मिलाकर वायसराय को जहाज पर बैठा कर इंग्लैण्ड भेज देने का एक षड्यन्त्र रच डाला। इस षड्यन्त्र में कलकत्ते के कई लोगों का हाथ था। जिन्होंने यह संकल्प कर लिया था कि यदि सरकार ने इस बिल को आगे बढ़ाया तो वे इस षड्यन्त्र को सफल बनाकर छोड़ेंगे। परिणाम यह हुआ कि असली बिल उसी तरह करीब करीब छोड़ा दिया गया। उसकी जगह केवल यह सिद्धान्त भर मान लिया गया कि सिर्फ जिला मजिस्ट्रेट और जज को ही ऐसा अधिकार रहेगा।

इलवाँ अख-सफा

ईसा की १० वीं शताब्दी में बसरा और बगदाद में स्थापित विश्व कोष वालों की एक सभा।

विश्व-कोष की रचना के लिए यह सभा स्थानीय विद्वानों के द्वारा स्थापित की गयी थी। इसी की प्रेरणा से इन स्थानों पर विश्व कोष, शब्द-कोष और जीवन-चरित्रों का कार्य करीब ५ सदियों तक होता रहा।

इलफ्रिक

डेन आक्रमण के समय में इंगलैण्ड का एक धर्मगुरु जिसने सबसे पहले लैटिन इंगलिश का शब्द-कोष तैयार किया। इसने सबसे पहले बाइबिल के उपदेशों को अपनी कर्ण-मधुर शैली में अंग्रेजी भाषा में वहाँ की जनता तक पहुँचाया।

इवां तुर्गनेव

१९ वीं सदी में रूसी-साहित्य का संसार-प्रसिद्ध महान् साहित्यकार, जिसका जन्म सन् १८१८ में और मृत्यु सन् १८८३ में हुई।

चरित्र चित्रण और उपन्यास लेखन में समूचे विश्व साहित्य में जिन इनी-गिनी प्रतिभाओं ने महान् ख्याति प्राप्त की है उनमें तुर्गनेव भी अपना एक प्रमुख स्थान रखता है।

तुर्गनेव ने रूसी गद्य साहित्य के क्षेत्र में वही महान कार्य किया है जो पद्य के क्षेत्र में "पुश्किन" ने किया था। उसकी शैली में पुश्किन के समान ही सरलता और स्वच्छता के दर्शन होते हैं। उसका चरित्र चित्रण विशुद्ध यथार्थ वाद पर अवलंबित है जिसमें स्थान स्थान पर कलाकार की सुरुचि और उसके गम्भीर अध्ययन की झाँकी देखने को मिलती है। उसकी रचनाओं में देहातों के सजीव चित्र और किसान जीवन के यथार्थ चित्रण की बहुलता है। 'एक शिकारी के पत्र' नामक उपन्यास में इसने जमींदारों के शिकंजे में फँसे हुए किसानों के जीवन का बड़ा ही करुण चित्र खींचा है। 'अमीरों का घोंसला' और 'रुदिन' नामक उपन्यासों में इसने सन् १८४० और १८५० के बीच के रूस के सामाजिक जीवन का चरित्र चित्रण किया है। तुर्गनेव किसानों की मुक्ति चाहता था और कर्त्तदासता के उच्छेद को आदर्शगामी बनाने में उसकी लेखनी ने काम किया था।

अग्रमेव प्रगतिवादी दस्तिकोव का एक महान कथाकार था।

इवाँ गुन्दूलिक (Ivan Gundlic)

युगोस्लाव साहित्य का एक सुप्रसिद्ध कवि इवाँ गुन्दूलिक, जिसका जन्म सन् १५८८ और मृत्यु सन् १६३८ में हुई।

इवाँ गुन्दूलिक क्लासिकल शैली का कवि था। इसकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'ओसमान' नामक महाकाव्य है, जो बीस सर्गों में समाप्त हुआ है। ओसमान युगोस्लाविक साहित्य की सुन्दरतम कृतियों में है। इस महाकाव्य में तुर्कों के अत्याचार का सजीव भाषा में वर्णन किया गया है। काव्य में पोलैंड के युवराज ओसमान के विरुद्ध उस ऐतिहासिक संघर्ष का वर्णन है जिसका अन्त १६११ के चोकिम के युद्ध में हुआ।

इवान ऐंड्रेविच क्रीलोव

रूस में पुश्किन युग का राष्ट्रीय कवि 'इवानऐंड्रेविच क्रीलोव' जिसका जन्म सन् १७६८ में और मृत्यु सन् १८४४ में हुई।

सन् १८०५ से उसने नैतिक कहानियाँ लिखना शुरू की और जीवन भर लिखता रहा। विशेष करके उसने 'लाफोन्तेन और ईसप' की कहानियों से प्रेरणा प्राप्त की। मगर उनको अपने रूप में ऐसा रंग दिया कि मूल को पहचाना नहीं जा सकता।

क्रीलोव की रचनाओं का सबसे बड़ा गुण उसकी सुगम सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा है जिसको कम पढ़ा लिखा व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है। इसीलिए उसकी सरलता भी अधिक व्यापक है। उसकी शैली मंजी हुई है और जीवन को यथार्थवाद की कसौटी पर वह कसकर देखता है। इसलिए वह कवि रूसी जनता में बड़ा लोकप्रिय हुआ।

इवान प्रथम

रूस में मास्को की रियासत का महाराजकुमार जिसका राज्यकाल सन् ११२५ से ११४१ तक था।

तेरहवीं शताब्दी में मास्को एक छोटी सी रियासत थी जिसमें मास्को नगर के साथ दो छोटे कस्बे शामिल थे।

इवान प्रथम सन् ११२५ में मास्को की इस रियासत का महाराजकुमार बना। उसका खजाना रुपये पैसों से भरपूर था, इसलिए वह इवान कलीता (पैसों का थैला) के नाम से प्रसिद्ध था। वह बड़ा चतुर और कुशल शासक था। मास्को की शक्ति बढ़ाने के लिए वह हमेशा प्रयत्नशील रहता था। उसने प्रयत्न करके धर्मगुरु पीटर की गद्दी को ब्लादीमिर नगर से लाकर मास्को में स्थापित करवा दी। तब से मास्को रूस के सबसे बड़े धर्मधाम की राजधानी बन गया, जिससे मास्को की शक्ति और वैभव बढ़ने में बड़ी मदद मिली।

उस समय मंगोल का खान बड़ा प्रतापी था और इवान कलीता उसका पूर्ण कृपापात्र था। इवान ने खान के द्वारा त्वेर के महाराजकुमार को मरवा कर स्वयं महाराजकुमार की पदवी प्राप्त की। इसके पश्चात् मरते समय तक वह मास्को रियासत का विस्तार करने में लगा रहा जिसके परिणाम स्वरूप उसकी मृत्यु के समय मास्को रियासत का काफी विस्तार हो गया था और वह साम्राज्य का रूप प्राप्त करने लगी थी।

इवान तृतीय

उत्तर पूर्वी रूस का एक सफल शासक जिसका राज्यकाल सन् १४७२ से १५०५ ई० तक है।

इवान प्रथम के द्वारा स्थापित की हुई मास्को की राज्य-शक्ति इवान-तृतीय के समय में स्पष्ट रूप से एक साम्राज्य के रूप में दिखाई देने लगी। इवान तृतीय ने सारे उत्तर पूर्वी रूस का एक सुसंगठित राज्य बना लिया। नवोगोरद की पड़ोसी रियासत अभी तक अपने को स्वतंत्र समझती थी। इसलिए इवान तृतीय ने एक बड़ी सेना लेकर उस पर आक्रमण किया और उसे पराजित कर नगर को स्वतंत्र छोड़ शेष सारी रियासत को अपने राज्य में मिला

लिया। मेर्व को भी अपने राज्य में मिलाकर उसने अपनी सीमा यूराल प्रदेश तक बढ़ा ली।

इसके बाद इवान तृतीय ने उस समय के प्रसिद्ध और शक्तिशाली संगठन सुनहले कबीले की तरफ दृष्टि डाली। पहले मास्को राज्य सुनहले कबीले को टैक्स देता था मगर कबीले की कमजोरी देखकर इवान ने उसे टैक्स देना बन्द कर दिया। तब सुनहले कबीले के खान अहमद ने इवान पर आक्रमण किया। लेकिन इस आक्रमण में खान इवान को बिना पराजित किये ही वह वापस लौट गया और इसके साथ ही २ वर्षों से रूसियों पर शासन करने वाले मंगोलों का शासन हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

इस समय पूर्वी योरोप में तुर्कों का राज्य बड़ा समृद्ध और शक्तिशाली हो रहा था। इवान ने पहले दूसरे छोटे छोटे राज्यों को जीतने के लिए तुर्कों से समझौता कर लिया। वह पहला यूरोपीय राजा था जिसने सन् १४९२ में तुर्कों के अस्तित्व को स्वीकार किया। इसके साथ ही उसने बाल्टिक तट पर उधर से होने वाले खतरे से रक्षा करने के लिए इवान-गोरद नामक एक मजबूत किला बनवाया। बाल्टिक की ओर बढ़ने का रूस का यह पहला कदम था। पूरब में कज़ाक के लाख को भी इवान ने अपने अधिकार में ले लिया।

इस प्रकार धीरे धीरे इवान तृतीय ने मास्को को एक अन्तर्देशीय शक्ति के रूप में बदल दिया। एक ओर उसने शासन, सेना और खजाने का केन्द्रीकरण किया। दूसरी ओर सैनिक हथियार और युद्धकला के विकास में भी बहुत वृद्धि की। इवान ने पश्चिमी यूरोप से कारीगरों को बुलवा कर तोपें ढलवाकर विशाल रूसी तोपखाने का निर्माण करवाया। उसके द्वारा स्थापित रूसी तोपखाना ही तब से दुनिया का सबसे शक्तिशाली तोपखाना बन गया जिसे लेनिन काल में भी रूस ने अक्षुण्ण रक्खा। हिटलर की सेनाओं को भगाने में इस तोपखाने का काफी भाग रहा।

राजनैतिक शक्ति के साथ साथ मास्को व्यापारिक स्थिति में भी बहुत आगे बढ़ गया। इसी समय इवान तृतीय ने ग्रीक-राजकुमारी सोफिया पालेओलोगस से विवाह किया और इस विवाह के बाद वह अपने को ग्रीक-सम्राटों का सीधा उत्तराधिकारी मानने लगा।

इसके बाद उसने अपनी राजधानी को शाही ढंग से सजाना प्रारम्भ किया। उसके पहले मास्को के सब घर और राजमहल भी लकड़ी के होते थे। अब उसने पत्थर के मकान बनवाने के लिए लोगों को उत्साहित किया। उसने विदेशी शिल्प शास्त्रियों को बुलाकर कई नवीन इमारतों का निर्माण करवाया।

इवान ग्रोजनी चतुर्थ

(रूस का पहला ज़ार)

मास्को का 'महाप्रभु' जिसने रूस के इतिहास में सबसे पहले 'ज़ार' की उपाधि ग्रहण की। इसका समय सन् १५१८ से १५८४ तक है।

इवान चतुर्थ के शासन के समय उत्तर पूर्वी रूस एक साम्राज्य के रूप में संगठित हो चुका था। इसलिए इवान चतुर्थ को अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए आसपास के कबीलों से निपटना था। उस समय मध्य वोल्गा के ऊपर कज़ान नामक एक महत्वपूर्ण नगर था, जो एक खान के अधीन था।

सन् १५५१ की बसन्तऋतु में इवान ने वोल्गा के पहाड़ी किनारे पर 'स्वीयाज्स्क' नामक नगर बसाया जो कि कज़ान के बिल्कुल सामने पड़ता था। इसके बाद रूसियों ने १।। लाख सेना और शक्तिशाली तोपखाने के साथ कज़ान नगर को घेर लिया और सन् १५५२ में नगर पर अधिकार कर लिया।

कज़ान की विजय के बाद बाशकिरों के कबीलों ने भी 'ज़ार' की अधीनता स्वीकार कर ली। सन् १५५६ ई० में अस्त्राखान का मशहूर नगर रूसी सेनाओं ने जीत लिया जिससे सारी वोल्गा नदी रूस के अधिकार में आ गई। कैस्पियन के तट पर बसा हुआ अस्त्राखान नगर अब मध्य-एशिया और ईरान के साथ होने वाले व्यापार का प्रधान केन्द्र बन गया।

कैस्पियन तट को लेने के बाद अब इवान की दृष्टि बाल्टिक समुद्र पर पड़ी। वहाँ पर अधिकार हो जाने से रूस का पश्चिमी यूरोप के देशों से सीधा सम्बन्ध हो जाता था। सन् १५५८ में बाल्टिक तट पर 'लिवोनिया' के

विरुद्ध रूस ने युद्ध छेड़ दिया। कितने ही महीनों की लड़ाई के बाद लिथोनियाँ का महत्वपूर्ण बन्दरगाह 'रीगा' और 'यूरीयेफ' नगर रूसियों के हाथ में चला गया और सन् १५६१ में सारा लिथोनियाँ रूस के अधिकार में आ गया।

इस प्रकार जार इवान को बाहरी शत्रुओं के मुकाबले में लगातार सफलताएँ मिलती गईं, मगर उसके घरेलू शत्रु अभी तक सर उठाते जा रहे थे। ये शत्रु बायर-जाति के लोग थे। इस जाति के लोगों ने इवान की माता येलेना को जहर देकर मार दिया था और इवान से भी ये बराबर शत्रुता रखते चले आ रहे थे। इवान इस तरह के घरेलू झगड़ों को पसन्द नहीं करता था। इसलिए सन् १५६५ में एक दिन वह अपने विश्वासपात्र शरीर-रक्षकों के साथ 'मास्को' को छोड़ कर एक दूसरे गाँव में चला गया। इस गाँव का नाम 'अलेक्सेंड्रोवा स्लाबोदोवा' था। वहाँ से उसने मुख्य धर्माधिकारी को एक पत्र लिखा, जिसमें बायरों के विश्वासघात की घटनाओं को बतलाते हुए, उसने सिंहासन छोड़ने की घोषणा की। इस घोषणा से मास्को में खलबली मच गई और वहाँ के कई नागरिक, पादरी और कितने ही बायरों ने जार के पास जाकर उससे मास्को वापस चलने की प्रार्थना की।

इवान उस प्रार्थना को स्वीकार कर पुनः मास्को लौट आया। वहाँ पर विश्वासघाती बायरों को दण्ड देकर उसने 'जेम्स्की सबोर' नामक राष्ट्रीय सभा की बैठक बुलाई और उस बैठक में उसने अपने साम्राज्य को दो भागों में विभक्त किया। (१) जेम्स चिना जिसका शासन बायरों की ड्यूमा (विधान-सभा) जार के अधीन रह कर करती थी। (२) ओप्रिचनीना जो सीधे जार के अधीन थी। ओप्रिचनीना वाले भाग में राज्य के सबसे अच्छे तथा केन्द्रीय प्रदेश थे, जिनका सैनिक और आर्थिक महत्व सबसे ज्यादा था। ओप्रिचनीना का काम बायर सामन्तों की शक्ति को कमजोर करना और छोटे-छोटे भूमिपति सरदारों का एक नया वर्ग तैयार करना था। इसकी राजधानी अलेक्सान्ड्रोवा स्लाबोदोवा में थी, वहाँ पर जार अपने को अधिक सुरक्षित समझता था।

साइबेरिया पर अधिकार

जार इवान के शासन की सबसे महत्वपूर्ण घटना रूस का साइबेरिया के ऊपर अधिकार करना है। साइबेरिया की बहुमूल्य 'समूरी' खालें, उस समय सोना, जवाहिर के दामों पर बिकती थीं और अपना विशेष आकर्षण रखती थीं। इसलिए बहुत से साहसी रूसी शिकारी 'यूराल' की ओर जा बसे थे। इन्हीं में 'नवोगोरद' से आया हुआ, 'स्ट्रोगोनफ' नामक एक व्यापारिक परिवार भी था। इस परिवार के एक व्यक्ति 'लूकस' ने मास्को के महाराजकुमार वासली द्वितीय को कजान के 'खान' की कैद से छुड़ाने में पैसे की सहायता दी थी। इसके बदले में इस परिवार को कुछ नमक की खानों की इजारेदारी और कमानदी के पास वाले प्रदेश में 'चूसोवया' के तट पर एक किला बनाने का अधिकार मिला था।

इसी परिवार के 'माक्सिम स्ट्रोगोनफ' ने कज्जाक सरदार 'येरमक' को साइबेरिया के खान के विरुद्ध लड़ने के लिए नौकर रख लिया। इसी येरमक ने सन् १५७८ में साइबेरिया के खान के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ किया और सन् १५८२ ई० तक उसने साइबेरिया पर, जिसको पहले सिबिर कहते थे, अधिकार कर लिया।

सिबिर-नगर साइबेरिया की कीमती समूर खालों के व्यापार का एक बड़ा केन्द्र था। इस पर अधिकार हो जाने से जार इवान की बड़ी कीर्ति हुई।

लेकिन जार इवान का अन्तिम समय विजय की जगह पराजय में बदल गया। सन् १५७९ से १५८२ तक उसे पोलैंड और स्वीडन से लड़ना पड़ा और इसमें उसको जगह जगह हार खानी पड़ी, जिसमें बाल्टिक तट का लिथोनियाँ उसके हाथ से निकल गया और स्वीडन के साथ भी उसे समझौता करना पड़ा।

जार इवान रूस के दूरदर्शी, कुशल शासकों में से एक था। जिसने रूस के विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। वह एक निरंकुश शासक था और निरंकुशता को राजा का स्वाभाविक अधिकार समझता था। उसका कहना था कि राजशक्ति भगवान की ओर से मिली हुई वस्तु है। जार की आज्ञा का उल्लंघन करना महापाप है। जार की

सभी प्रजा उसकी सेवक है। उसको अपनी प्रजा को क्षमा करने तथा मारने का अधिकार है। ज़ार की शक्ति को सीमित करना घोर अपराध है; क्योंकि इसके कारण देश की प्रतिष्ठा खतरे में पड़ जाती है।

ज़ार इवान ने रूस की आर्थिक और सैनिक शक्ति को बहुत मज़बूत बनाया। उसने रूस में एक धर्म, एक माप तौल और एक मुद्रामान स्थापित कर रूस की एकता को सुदृढ़ किया।

इन सब बातों के बावजूद ज़ार इवान चतुर्थ बड़ा क्रूर और निर्दयी था। इसीलिए रूस के इतिहास में उसके नाम के साथ 'ग्रोज़्नी (क्रूर) शब्द लगा दिया गया है। जिस समय उस पर सनक सवार होती थी, उस समय वह आपे से बाहर हो जाता था। एकबार क्रोधातुर होकर उसने अपने लड़के राजकुमार इवान को डंडे से इतना पीटा कि वह मर गया।

फिर भी इवान चतुर्थ का शासन रूस के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। देश को शक्तिशाली और एकताबद्ध करने में उसकी सेवाओं को आज भी बड़े आदर के साथ याद किया जाता है।

इवान पावलोव

रूस का एक सुप्रसिद्ध शरीर शास्त्री और मनोवैज्ञानिक जिसे सन् १९ ४ में औषधि सम्बन्धी 'नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

इवान पावलोव का जन्म सन् १८४९ में और मृत्यु सन् १९३६ में हुई। इस वैज्ञानिक का विश्वास था कि जीवन में हमारी जो भी आदतें पड़ जाती हैं वे सब परिस्थिति-जन्य प्रतिक्रियाओं (कण्डीशण्ड रिफ्लेक्सेस) का परिणाम होती हैं। यहाँ तक कि चिन्तन प्रक्रिया के साथ भी यही बात है। सर्वप्रथम उन्होंने ही इस बात की खोज की और "परिस्थिति जन्य प्रतिक्रिया" की परिभाषा की।

इवान पावलोव के विचार शरीर क्रिया शास्त्र पर आधारित है इसलिए बहुत से मनोवैज्ञानिक मानवस्वभाव को समझने के लिए 'सिगमंड फ्रायड' की अपेक्षा पावलोव के विचारों को अधिक तर्कपूर्ण मानते हैं। लेकिन कई वैज्ञानिक यह मानते हैं कि रूसी और आस्ट्रिया के विद्वानों में सैद्धान्तिक मतभेद नहीं है।

मनुष्य अथवा पशु विशेष प्रकार की घोषणाओं से किस तरह का व्यवहार करते हैं, इसी अध्ययन पर "परिस्थिति जन्य प्रतिक्रिया" की धारणा बनाई गई है। पावलोव ने यह प्रमाणित किया कि घोड़े को चलाते समय चाबुक मारने से उसके अन्दर जो क्रिया होती है गाड़ी चाबुक फटकारने से भी वही क्रिया हो जाती है। घोड़ा जब चाबुक फटकारने की आवाज़ सुनता है तो उसे ध्यान होता है जैसे वास्तव में उसको चाबुक लगा हो और वह अपनी चाल बढ़ा देता है। यह एक "परिस्थिति जन्य प्रभाव" है।

पावलोव ने अनेक प्रयोग करके इस बात की खोज की कि भोजन को दिखाने या उसकी गन्ध मात्र से ही कुत्ते के मुँह से लार बहने लगती है। उन्होंने देखा कि भोजन के स्थान पर कोई दूसरी उत्तेजना देने से भी कुत्ते के मुँह से लार निकलने लगती है। पावलोव जब भी कुत्ते को भोजन देते तो एक बिजली की घण्टी बजा देते और जब अनेक बार ऐसा किया गया तो फिर भोजन न देने पर भी केवल घण्टी बजाने से ही कुत्ते के मुँह से लार निकलने लगी। इन्हीं सब प्रयोगों के आधार पर ही उन्होंने "कण्डीशण्ड रिफ्लेक्सेस" के सिद्धान्त का आविष्कार किया।

इसके अतिरिक्त पावलोव ने पाचन शक्ति, दिमाग की क्रियाशीलता और रक्त संचालन के सम्बन्ध में अनेक खोजें कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की, जिसके फलस्वरूप सन् १९ ४ में उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय नोबेल पारितोषिक प्राप्त हुआ।

इवारा सैकाकू

जापान का सत्रहवीं सदी का एक उपन्यासकार जिसने अपने उपन्यासों में जीवन-आनन्द का चित्रण अत्यन्त प्रभावी रीति मात्र में किया। इस कारण उसकी कई रचनाएँ जापानी सेन्सर की भी शिकार हुईं। यद्यपि उसके यथार्थ

बाद में इधर फिर रुचि दिखाई जाने लगी है। इसकी प्रसिद्ध कृतियों में (१) कोशोकू इचिदाई ओतोको (एक कामुक का जीवन) (२) कोशोकू इचिदाई ओन्ना (३) कोशोकू गोनिन ओन्ना इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

ईंशा

उर्दू के महाकवि सैयद इंशा उल्लाह ख़ाँ "इंशा" को पहले दिल्ली के बादशाह शाह-आलम के दरबार में और उसके पश्चात् लखनऊ में नवाब सआदत अली ख़ाँ के मुसाहिब होकर रहे।

महाकवि इंशा के पिता का नाम माशा अल्लाह ख़ाँ "मसदर" था। दिल्ली के मुग़ल दरबार में ये हकीमी का काम करते थे। दिल्ली की बरबादी के दिन आने पर ये मुर्शिदाबाद चले गये, वहीं पर "इंशा" का जन्म हुआ।

इंशा में ईश्वर प्रदत्त कवित्वशक्ति का स्वाभाविक बीज विद्यमान था। इसलिए कविता के क्षेत्र में इन्होंने बिना किसी उस्ताद की सहायता के स्वयं अपना विकास किया। अवध के नवाब सआदत अली ख़ाँ इनकी खुश मिज़ाजी और हँसी चुटकलों से बड़े खुश रहते थे और हमेशा इन्हें अपने साथ रखते थे। मगर अपने नवाबी स्वभाव के कारण एक बार नवाब साहब इनसे ख़फ़ा हो गये और इनका पद, वेतन सब छीनकर इन्हें दरबार से बाहर कर दिया। तभी से इनके दुर्भाग्य का प्रारम्भ हुआ और इसी दुर्भाग्य पूर्ण अवस्था में सन् १८१७ ई० में इनका देहान्त हो गया।

"इंशा" की कृतियों में "कुल्लियात" "दरियाए लताफ़त" और "रानी केतकी की कहानी" विशेष प्रसिद्ध है। कुल्लियात में उर्दू का दीवान उर्दू और फारसी के क़सीदे, मसनवी शिकारनामा, मुख़म्मस, मसद्दस इत्यादि पर हास्य पूर्ण व्यंग इत्यादि चीज़ों का एक अजीबो ग़रीब संग्रह है।

दरियाए लताफ़त उर्दू-भाषा का व्याकरण है जिसका पूर्वार्द्ध इंशा का बनाया हुआ है।

इसमें तत्कालीन भाषाओं के जो नमूने दिये गये हैं, वे भाषा विज्ञान के लिए बड़े महत्त्व के हैं।

रानी केतकी की कहानी 'ठेठ हिन्दी' में लिखा हुआ एक काव्य ग्रन्थ है जो सरल भाषा में लिखा गया है।

"इंशा" की कविताओं में हास्यरस तथा व्यङ्ग की मात्रा बहुत अधिक होती थी। उनकी बात-चीत और कविता को सुनकर श्रोता हँसते हँसते लोट-पोट हो जाते थे। व्याकरण के समान रूखे विषय के ग्रन्थ दरियाए-लताफ़त में भी उन्होंने विनोदप्रियता को नहीं छोड़ा है। वे एक प्रतिभा सम्पन्न शायर, भाषाशास्त्री और अरबी फारसी के अच्छे विद्वान थे। इसी से बहुत से विद्वान इन्हें उर्दू-साहित्य का 'अमीर खुसरो' भी कहते हैं। इंशा की कविता के नमूने—

लिपट कर कृष्णजी से राधिका हँसकर लगी कहने
मिला है चाँद से ये लो अन्धेरे माख का जोड़ा।

× × ×

मै की सुराही ऐसी सा कर्फ़ में लगाकर
जिसके धुँए से साक़ी, हावे दिमाग़ ठण्डा।

× × ×

फर्फ़ चश्मक जन है साक़ी, क्या है आया हुआ
जामे मै दे तू फिकर, जाता मचलता है हुआ।

हरी-लासिंग समझौता

सन् १९१७ में अमेरिका और जापान के बीच सम्पन्न हुआ एक समझौता।

सन् १९१७ में प्रथम महायुद्ध के समय रूस में बोलशेविक क्रान्ति हो जाने से रूस युद्ध से अलग हो गया। इससे जर्मनी ने पूर्वी मोरचे की सारी सेनाएँ पश्चिमी मोर्चे पर झोंक दी। दूसरी ओर समुद्र में भी उसकी पनडुब्बियाँ ब्रिटेन के जहाज़ों को धड़ा धड़ डुबो रही थीं। चारों ओर से ब्रिटेन संकट में घिर गया था।

ऐसी स्थिति में ब्रिटेन और फ्रांस जापान के जहाजी बेड़े की मदद लेना चाहते थे। अतः उन्होंने जापान से एक गुप्त संधि करके जापान के जहाजी बेड़े की सहायता इस शर्त पर ली कि युद्ध की समाप्ति पर जब संधि-परिषद् होगी उसमें वे शान्टुंग प्रान्त पर जापान के विशेषाधिकारों का समर्थन करेंगे।

इसी समय अमेरिका भी युद्ध में शामिल हो गया और उसने भी जापान से एक संधि की, जो लांसिंग इशी समझौते के नाम से प्रसिद्ध है। इस संधि में अमेरिका ने भी चीन में जापान के विशेषाधिकारों का समर्थन किया। लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया कि ये अधिकार क्या रूप धारण करेंगे और किस हद तक अमेरिका उनका समर्थन करेगा।

इस समझौते पर जापान की ओर से भी ईशी ने और अमेरिका की ओर से भी लांसिंग ने हस्ताक्षर किये। इस समझौते के कारण चीन में जापान द्वारा साम्राज्य विस्तार करने के मार्ग में अमेरिका की जो बाधा थी, वह भी दूर हो गई।

इस्मत इनोनु

मुस्तफा कमालपाशा के समय में उसका सबसे बड़ा सहायक और कमालपाशा की मृत्यु के पश्चात् टर्की का राष्ट्रपति इस्मत इनोनु। जिसका जन्म सन् १८८४ में हुआ था।

सन् १९३८ से १९५० तक इस्मत इनोनु टर्की का राष्ट्रपति रहा और उसने वे सब तानाशाही अधिकार अपने पास सुरक्षित रखे जिनका उपभोग सर्वशक्ति सम्पन्न कमाल पाशा करता था। कमालपाशा ही की तरह इस्मत इनोनु का प्रभाव भी सारे राष्ट्र पर छा गया। सन् १९५० तक वे टर्की का राष्ट्रपति और रिपब्लिकन दल के नेता के रूप में दोनों काम करता रहा।

सन् १९५० में टर्की का शासन रिपब्लिकन पार्टी के हाथ से निकलकर डेमोक्रेटिक पार्टी के हाथ में आ गया जो सन् १९६० तक इसी पार्टी के हाथ में रहा। मगर यह पार्टी दिन दिन जनता में अप्रिय होती गई और बढ़ते हुए असन्तोष के फलस्वरूप एक बड़ी जन क्रांति वहाँ हुई जिसमें वहाँ के मंत्रियों और डेमोक्रेटिक पार्टी के मुख्य नेताओं को पकड़ लिया गया और फौजी अदालत में मुकदमा चलाकर बहुतों को फाँसी पर लटका दिया गया।

इसके बाद नवीन व्यवस्था में चुनाव हुए और उसके नेता ७८ वर्षीय इस्मत इनोनु बनाये गये। सन् १९६१ में टर्की का नया संविधान स्वीकृत किया गया और इस्मत इनोनु प्रधान मंत्री बनाये गये। जुलाई १९६२ में इस्मत इनोनु ने सैनिक केन्द्रों का दौरा किया और निर्देश दिया कि सैनिक अधिकारी राजनीति से तटस्थ रहें। इनोनु ने टर्की के उद्योगपतियों, व्यापारियों और श्रम-संगठनों से बातचीत कर टर्की के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना का निर्माण करवाकर उसका कार्यान्वय प्रारम्भ कर दिया है।

इस्माइल सामानी

(८९२—९०७)

ईरान में सामानी राजवंश का एक प्रसिद्ध शासक।

अहमद सामानी प्रथम का पुत्र इस्माइल सामानी हुआ। इसको इसके बड़े भाई नस्र ने बुखारा का शासक बना कर भेजा। उस समय राजनैतिक अशान्ति और लूट-मार के कारण बुखारा की हालत बहुत अस्त व्यस्त हो रही थी। इस्माइल ने बड़ी तत्परता और बहादुरी से इस सारी अव्यवस्था पर विजय पाई, शत्रुओं और लुटेरों का उसने बड़ी बेरहमी से दमन किया और बुखारा में सुव्यवस्थित शासन स्थापित किया। इसके बड़े भाई नस्र ने कुछ लोगों के बहकावे में आकर इस पर हमला भी किया मगर फिर बीच बचाव होकर दोनों भाई शान्ति से रहने लगे।

उसके बाद इस्माइल बुखारा का अमीर बना और अपने बड़े भाई नस्र के मरने पर वह समरकंद और तमाम देश का भी स्वामी बन गया। उसके बाद सफ्फारी वंश के अन्तिम के शासक अम्र को हराकर, गिरफ्तार कर उसने खलीफा के पास भेज दिया। इससे खुश होकर खलीफा ने इस्माइल सामानी को खुरासान, तुर्किस्तान, समरकंद, सिंध हिन्द और जुरजान का वली (गवर्नर) बना दिया। इस्माइल सामानी का शासन अपनी प्रजा के लिए बड़ा शान्ति पूर्ण और न्यायपूरित था। उसके शासन के अन्तिम चार वर्षों में बुखारा नगर बहुत वैभवशाली हो गया था। यद्यपि बुखारा इससे पहले ही एक मुस्लिम-केन्द्र का रूप ले चुका था मगर बुखारा को "बुखारा शरीफ" बना कर उसे इस्लाम संस्कृति और ज्ञान विज्ञान का महान् केन्द्र बनाना इस्माइल सामानी का ही काम था। बुखारा ने पूरब का बगदाद बन कर अनेक शताब्दियों तक केवल मध्यएशिया का ही नहीं सारे पूर्वी इस्लामिक जगत् के एक तीर्थस्थान,

का रूप लिया। बड़े से बड़े धर्मशास्त्री, कवि और दार्शनिक यहाँ पैदा हुए। यहाँ के इतिहासकारों ने भूतकालिक और वर्तमानकालिक इतिहास पर सुन्दर ग्रन्थ लिखे। बुखारा उस समय एक ऐसे राज्य की राजधानी था जिसमें मेर्व, नशापोर, तेहरान, ग्रामुल, हिरात, बलख और मुलतान जैसे महान् नगर थे। इस्माइल सामानी की मृत्यु सन् ९ ७ में हुई।

इन्दिरा गान्धी

भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहिरलाल नेहरू की पुत्री। संसद सदस्य स्वर्गीय श्री फीरोज गान्धी की पत्नी, जिनका जन्म सन् १९१७ में हुआ था।

आधुनिक युग की भारतीय नारियों में इन्दिरा गान्धी का नाम एक प्रकाशमान नक्षत्र की भाँति चमक रहा है।

श्रीमती इन्दिरा गान्धी की माता श्रीमती कमला नेहरू का देहान्त उनकी छोटी उमर में ही हो गया। इसलिए इनका विशेष विकास अपने पिता पं० जवाहरलाल नेहरू की छाया में ही हुआ। इसलिए पं० नेहरू के बहुत से गुणों की छाया इनके जीवन में परिलक्षित हो रही है।

पं० जवाहरलाल नेहरू के साथ श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने कई बार विश्व के भिन्न-भिन्न देशों की यात्रा की, जिसके परिणामस्वरूप आज की दुनिया के सभी जाने पहचाने महान् व्यक्तियों से श्रीमती इन्दिरा का व्यक्तिगत सम्पर्क रहा है। विश्व के विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों से उन्होंने नजदीक से बातें की और संसार के अन्तर्राष्ट्रीय तथा राजनैतिक पहलुओं को एक सार्वजनिक दृष्टिकोण से आँका। इन्होंने अपने ४५ साल के जीवन के लम्बे अनुभव में विश्व राजनीति की गतिविधियों का काफी ज्ञान प्राप्त किया। दुनियाँ की वर्तमान समस्याओं से भारत की आन्तरिक परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन करने में उन्होंने अच्छी सफलता प्राप्त की।

सन् १९५९ में वे इंडियन नेशनल कांग्रेस की अध्यक्षा चुनी गईं। कांग्रेस की अध्यक्षा के रूप में इन्दिरा गान्धी चौथी महिला अध्यक्ष थी और अपनी पूर्व महिला अध्यक्षाओं में, तीनों से उम्र में बहुत छोटी थीं।

कांग्रेस की अध्यक्षा बनने के साथ ही श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने कांग्रेस के सामने आर्थिक सर्वसत्ता का कार्यक्रम रखा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सक्रिय कदम उठाने की घोषणा की। (१) राष्ट्र की पैदावार बढ़ाई जायगी (२) पैदावार का ठीक ढंग से बँटवारा किया जायगा और हर व्यक्ति को अपने पूरे विकास का अवसर दिया जायगा।

श्रीमती इन्दिरा गान्धी के पहले श्रीमती एनी बीसेंट (सन् १९१७) श्रीमती सरोजिनी नायडू (सन् १९२०) और श्रीमती नीलीसेन गुप्ता (सन् १९१४) कांग्रेस की अध्यक्षा चुनी गई थीं।

कांग्रेस के सिवाय भारतीय महिलाओं की उन्नति के लिए और भी कई संगठनों में श्रीमती इन्दिरा गान्धी बड़ी दिलचस्पी से भाग लेती हैं।

इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स, इंडिया

भारतवर्ष में इंजिनियरिंग विज्ञान का विकास करने के लिए स्थापित एक प्रामाणिक संस्था, जिसकी स्थापना ११ सितम्बर सन् १९२ को मद्रास में हुई।

सन् १९२१ की २३ फरवरी को इस संस्था का उद्घाटन भारतवर्ष के तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने कलकत्ते में किया।

इस संस्था का मुख्य उद्देश्य इंजिनियरिंग विज्ञान के सामान्य विकास को क्रियान्वित करना और इस संस्था से सम्बन्धित व्यक्तियों और सदस्यों को इंजिनियरिंग सम्बन्धी विषयों पर विचारों के आदान प्रदान करने की सुविधा देना रखा गया।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस संस्था ने एक त्रैमासिक जनल और बुलेटिन निकालना प्रारम्भ किया और सन् १९२८ से इस संस्था ने अपने ऐसोसियेट मेम्बरशिप के लिए परीक्षायें लेना भी प्रारम्भ किया। इन परीक्षाओं का स्तर सरकार ने इंजिनियरिंग कालेजों की बी ई की डिग्री के बराबर माना।

सन् १९३१ में तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन ने कलकत्ते के गोखले रोड पर इसके निजी भवन का उद्घाटन

किया। सन् १९४५ में कलकत्ते में इस संस्था ने अपनी 'रजत जयन्ती' मनाई।

इस संस्था की शाखाओं का विस्तार करीब-करीब समस्त भारतवर्ष के प्रमुख नगरों में हो चुका है। मैसूर हैदराबाद लन्दन, पंजाब, बम्बई, बिहार, मध्यप्रदेश ट्रावनकोर इत्यादि अनेक स्थानों पर इसके केन्द्र स्थापित हो चुके हैं।

भारतवर्ष के इंजिनियरिंग विज्ञान के विकास में इस संस्था का सहयोग बहुत महत्व पूर्ण रहा है।

इस्पात लोहा

लोहा और उससे तैयार किया हुआ इस्पात एक मूल धातु है जिसको भिन्न भिन्न रूप में तैयार करके चाकू से लेकर तोप तक और सूई से लेकर जहाज तक कोई भी वस्तु बनाई जा सकती है।

इस वस्तु का प्रयोग बहुत प्राचीन समय से संसार में चला आ रहा है, मगर आधुनिक मशीन युग में तो इस उद्योग का बहुत भारी विस्तार हुआ है। इस्पात का उद्योग एक ऐसा उद्योग है जिसके बिना शस्त्रों और मशीनों के इस युग में मनुष्य का एक क्षण भी काम नहीं चल सकता। इसीलिए इस उद्योग की गणना बुनियादी उद्योगों में की जाती है।

भारतवर्ष में लोहे का उद्योग

भारतवर्ष में लोहे का उद्योग बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। ईस्वी सन् से १२ वर्ष पहले से बंगाल बिहार और उड़ीसा के प्रदेशों में इस उद्योग का भारी विकास हो गया था। उस समय के मन्दिरों में जो प्राचीन शिल्पकारियाँ मिलती हैं, उनको देखने से मालूम होता है कि उस समय के लोग लोहे के औजारों तलवार, बरछी, धनुषबाण परशु ढाल इत्यादि चीजों से परिचित थे और ये चीजें यहाँ पर प्रचुर प्रमाण में बनती थीं।

उड़ीसा प्रदेश के भुवनेश्वर और कनारक के मन्दिरों में, जिनका निर्माण ६वीं सदी के अन्त में हुआ माना जाता है लोहे के ऐसे विशाल स्तम्भ मिलते हैं जो आज भी अपने अतीत गौरव की स्मृति दिला रहे हैं। कनारक के मन्दिर के प्रवेश द्वार के पास ही ११॥ इंच मोटा और २१ फीट ऊँचा एक लोहे का स्तंभ पड़ा हुआ है जो सूचित करता है कि उस समय भी भारतवर्ष के लोग लोहे के गुण धर्म, उसको गलाने और ढालने की क्रिया से पूरी तरह वाकिफ थे और यह देश लोहे के उद्योग में सराहनीय उन्नति कर चुका था। इसी समय की बनी हुई बच्चावाली नामक विशालकाय तोप नवाब मुर्शिदाबाद के इमाम बाड़े में रखी हुई है।

इसी प्रकार लोहे के बड़े बड़े स्तंभ और स्तूपकाय तोप और जगह भी देखने को मिलती हैं।

मुसलमानी शासन के आरंभ के साथ ही साथ लोहे के उद्योग धन्धों में भी कई प्रकार फेर हुए। मुसलमानों के साथ जो कारीगर इस प्रान्त में आये उन्होंने अपने ढंग से शस्त्रों का निर्माण करना प्रारंभ किया। पटना, मुंगेर, ढाका, मुर्शिदाबाद, बर्दवान इत्यादि स्थानों में बनने वाले सभी हथियारों पर फारस और अरब कारीगरी की पूरी छाप बैठ गई। मुसलमान शासक हथियारों के बड़े प्रेमी हुआ करते थे। इसलिए वे हथियारों का निर्माण स्वयं व्यक्तिगत देख रेख में करवाते थे। सम्राट् अकबर, एक सफल शासक होते हुए भी हथियारों का चतुर कारीगर था। यही कारण था कि यूरोप तक के कारीगर सम्राट् अकबर का शस्त्रागार देखने के लिए उत्सुक रहते थे। १५ वीं और १६ वीं शताब्दी के बीच में इस प्रान्त के लोहे के उद्योग में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। जहाँ पहले लोहे की बन्दूकें बनती थीं, वहाँ अब भारी से भारी तोपें भी ढाली जाने लगीं। मुर्शिदाबाद की 'जहान कोशा' नामक तोप सन् १६३७ में वहाँ के जनार्दन नामक कारीगर ने बनाई थी। इसकी लम्बाई १७ फीट और वजन २१२ मन है।

वर्तमान काल

भारतवर्ष में आधुनिक ढंग से लोहे के उद्योग का प्रारंभ 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के समय में सन् १७७४ से प्रारंभ होता है। सन् १८३१ ई० में बीरभूम जिले के अन्दर और सन् १८७५ ई० में आसनसोल के समीप 'बंगाल आयर्न ऐंड स्टील कम्पनी' की स्थापना हुई।

बड़े कारखानों को चलाने के लिए कच्चे माल की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। आधुनिक उद्योग का प्रसार करने के लिए जब खदानों की खोज की गई तो बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त और मयूरभंज के क्षेत्रों में विशाल खदानें उपलब्ध हुईं।

इसके बाद लोहे के उद्योग में बम्बई के सेठ जमशेद जी नसरवान जी टाटा ने अपना क्रान्तिकारी कदम उठाया और बी. एन. रेलवे के आधुनिक टाटानगर स्टेशन के पास साकची नामक ग्राम में २७ अगस्त सन् १९ ७ को 'टाटा आयर्न ऐंड स्टील कम्पनी' की स्थापना की।

यह कारखाना बहुत ही विशाल पाये के ऊपर स्थापित किया गया। इस कारखाने में आधुनिक विज्ञान की नई से नई मशीनें लगाई गईं। इस कारखाने में सब प्रकार का रेलवे और इमारतों के प्रयोग में आनेवाला लोहे का सामान तैयार होता है और करीब ११ लाख टन इस्पात का उत्पादन यह वर्ष भर में करता है।

सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात का उद्योग

स्वाधीनता प्राप्त होने के पश्चात् भारत की सरकार ने लोहे के उद्योग की उपयोगिता देखकर सार्वजनिक क्षेत्र में इसके तीन नवीन कारखाने रूस, जर्मनी और इंग्लैण्ड के सहयोग से 'भिलाई' 'रूरकेला' और 'दुर्गापुर' के अन्दर स्थापित किये हैं। इनमें से भिलाई प्रोजेक्ट ने अपना पूरा उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है और शेष दोनों कारखाने भी बहुत शीघ्र अपना पूरा उत्पादन शुरू करने लग जायेंगे। इन तीनों कारखानों की उत्पादन क्षमता दस-दस लाख टन प्रति वर्ष की रक्खी गई है।

अमेरिका में इस्पात-उद्योग

सन् १८६५ ई. में गृह युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिकन राष्ट्र ने आधारभूत बुनियादी उद्योग इस्पात की उन्नति में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। अमेरिका के इस्पात उद्योग के विकास में वहाँ के प्रसिद्ध उद्योगपति एण्ड्र कार्नेगी का सबसे बड़ा हाथ रहा। सन् १८७५ ई. में उसने मनाम होला नदी के तीर पर, जो इस्पात की फैक्टरी स्थापित की वह सारे देश में सबसे बड़ी थी। कई दृष्टियों से कार्नेगी की कहानी, यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका के बड़े उद्योग का इतिहास है। सन् १८७५ से सन् १९ १ तक लोहे के व्यवसाय पर कार्नेगी की प्रमुखता रही, मगर सन् १९ १ में लोहे के सब कारखानों को मिलाकर एक नया संगठन बनाया गया, जिसका नाम 'यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कार्पोरेशन' रखा गया। लोहे के उद्योग की सारी बागडोर इसी कार्पोरेशन के हाथ में आ गई। तब से वहाँ इस उद्योग की बराबर उन्नति हो रही है और आज अमेरिका संसार में सबसे अधिक इस्पात उत्पन्न करनेवाला देश बन गया है। इस देश के इस्पात का वार्षिक उत्पादन करीब साढ़े ग्यारह करोड़ टन है।

फौलाद उद्योग में 'ओपिकन हर्थ' नामक एक नवीन प्रणाली का आविष्कार हो जाने से अमेरिका के फौलाद उद्योग को अपना विकास करने में बहुत मदद मिली। इस नई प्रणाली के द्वारा उत्कृष्ट श्रेणी का फौलाद बनाने में उस समय केवल १५ डॉलर प्रति टन व्यय पड़ने लगा जब कि पुरानी पद्धति के द्वारा इस्पात बनाने में प्रति टन १ डॉलर खर्च बैठता था।

रूस में इस्पात-उद्योग

प्राचीन काल में दूसरे देशों की तरह रूस के आस-पास बसने वाली जातियाँ भी तीर, तलवार, छुरे इत्यादि लड़ने भिड़ने के आवश्यक शस्त्र बना लिया करती थीं, मगर संगठित रूप से लोहे के एक विशाल तोपखाने का निर्माण रूस के शासक इवान तृतीय ने किया। उसने पश्चिमी यूरोप से कारीगरों को बुलाकर एक विशाल तोपखाने का निर्माण करवाया। उसके द्वारा निर्मित रूसी तोपखाना उस समय और उसके बाद भी संसार का सबसे बड़ा तोपखाना माना जाता था।

उसके बाद जब यूरोप में मशीन-युग का विकास हुआ तो रूस के अन्दर भी औद्योगिक विकास की लहर पहुँची। सन् १९ से १९१ के बीच में इस्पात उद्योग के कारखाने खुलने लगे।

बोलशेविक क्रान्ति होने के पश्चात् रूस में इस्पात के उद्योग का बड़ी तेज़ी से विकास हुआ और आज तो शायद इस्पात उद्योग करने वाले देशों में उसका दूसरा नम्बर है। इस समय रूस में इस्पात का वार्षिक उत्पादन साढ़े चार करोड़ टन के लगभग है।

इसी प्रकार चीन, जापान, इंग्लैण्ड, यूरोप इत्यादि देशों

में भी मशीन उद्योग के पश्चात् इस्पात उद्योग की अभूतपूर्व क्रान्ति हुई और आज यह उद्योग सारे औद्योगिक क्षेत्र में प्रथम श्रेणी का उद्योग माना जाता है।

इस्फहान

ईरान देश की प्राचीन राजधानी और प्राचीन इरानी सभ्यता का प्रधान केन्द्र जो समुद्र तट से ५,१०० फीट की ऊँचाई पर बसा हुआ है।

इस्फहान शहर ईरान में प्राचीन सभ्यता का एक केन्द्र था। प्राचीन युग में इस शहर की कीर्ति बहुत दूर दूर तक फैली हुई थी। इसके ऐतिहासिक दर्शनीय स्थानों में 'हस्त-बहिस्त' (८ स्वर्ग) और 'चेहल सितून' प्रसिद्ध हैं। इन स्थानों में प्राचीन ईरानी संस्कृति और वास्तु कला का परिचय मिलता है। प्राचीन काल में इस्फहान की शराब सारी दुनिया में प्रसिद्ध थी।

इस्माइल सर मिर्जा

भारत के सुप्रसिद्ध राज्य-व्यवस्थापक जो पहले मैसूर स्टेट के और बाद में जयपुर स्टेट के दीवान रहे।

सर मिर्जा इस्माइल का जन्म सन् १८८३ ई० में हुआ। सर मिर्जा इस्माइल भारतवर्ष के उन व्यक्तियों में थे जिन्होंने अपनी शासकीय कुशलता में भारत के देशी राज्यों में अच्छी कीर्ति उपार्जित की। सर अकबर हैदरी (हैदराबाद) सर प्रभाशंकर पट्टनी (भावनगर) सर मिर्जा इस्माइल (मैसूर), सर सिरेमल बापना (इन्दौर) इत्यादि व्यक्तियों का नाम भारतीय रियासतों के इतिहास में बड़े गौरव से स्मरण किया जाता है।

सर मिर्जा इस्माइल सन् १९ ८ में मैसूर स्टेट के दीवान नियुक्त हुए। उनके दीवान होने के बाद मैसूर स्टेट ने तीव्र गति से सर्वतोमुखी उन्नति की। शिक्षा के क्षेत्र में मैसूर स्टेट उस समय हिन्दुस्तान की देशी रियासतों में सबसे आगे बढ़ी हुई स्टेट थी। वहाँ का विश्व-विद्यालय बहुत सुप्रसिद्ध था।

इसी प्रकार वहाँ राजनीति क्षेत्र में धारा सभा और प्रतिनिधि सभा के अधिकार भी व्यापक और विस्तृत किये गये। मतलब यह कि सर मिर्जा इस्माइल की दीवानगी में मैसूर राज्य की सर्वांगीण उन्नति हुई और वहाँ पर सर मिर्जा इस्माइल को अच्छी प्रसिद्धि मिली।

शासन में एक कुशल अनुभवी होने के साथ-साथ सर मिर्जा इस्माइल ऊँचे दर्जे के शिक्षा-शास्त्री भी थे। कितने ही दिनों तक वे बम्बई विश्वविद्यालय के वाइस चाँसलर भी रहे और उनके दीक्षान्त भाषण तो प्रायः भारत की सभी युनिवर्सिटियों में होते रहते थे।

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में भी अपनी राजनैतिक योग्यता के कारण सर मिर्जा इस्माइल ने अच्छा स्थान प्राप्त किया था। लन्दन में होने वाली दोनों 'राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंसों' में वे यहाँ से प्रतिनिधि बनकर गये थे।

इसके बाद सर मिर्जा इस्माइल जयपुर राज्य के दीवान बने। जयपुर रियासत उस समय एक पिछड़ी हुई रियासत थी। उसको आगे लाने में उन्होंने काफी प्रयत्न किया।

सन् १९५९ ई० में उनका देहान्त हुआ।

इस्लाम-संस्कृति

ईसा की छठी सदी के अन्त में और सातवीं सदी के प्रारम्भ में मध्य एशिया में अरब देश के अन्तर्गत, हजरत मुहम्मद पैगम्बर के द्वारा स्थापित एक विराट् और विशाल संस्कृति।

इस्लाम संस्कृति का उदय समस्त मानवीय इतिहास में एक युगान्तरकारी घटना है। यह एक बादल की तरह अरब की भूमि से उठी—शान्त वर्षा के बादल की तरह नहीं प्रत्युत कड़कते चमकते और आँधी तूफान के साथ बरसते हुये बादल की तरह और देखते देखते सारे मध्य एशिया में फैल गई। ईरान, अफगानिस्तान, मिस्र, मेसोपोटामिया इत्यादि देशों को अपने झंडे के नीचे लेती हुई, यह स्पेन तक जा पहुँची। भारतवर्ष के समान विशाल देश में भी उसका प्रभाव माना गया।

इस संस्कृति के मूल प्रवर्तक हजरत मुहम्मद पैगम्बर थे। इनका जन्म सन् ५७० में मक्का के एक कुरैश वंश में हुआ था। इस्लाम की परम्परा के अनुसार ४ वर्ष की

उम्र में इन्हें 'सुदामी इल्हाम' (ईश्वरीय प्रेरणा) हुआ और उसीके अनुसार ईसवी सन् ६२२ की १६ जुलाई को उन्होंने इस्लाम की घोषणा की और स्वयं उसके पैगम्बर बने। यह दिन इस्लाम इतिहास में बहुत पवित्र माना जाता है और उसी दिन से मुसलमानों के हिजरी सन् का प्रारम्भ होता।

उस समय आस-पास के प्रदेशों में सब दूर मूर्तिपूजा और बहुदेववाद की धार्मिक प्रथाएँ प्रचलित थीं। हजरत पैगम्बर ने मूर्तिपूजा का कट्टर विरोध किया और इस्लाम में उसे 'कुफ्र' के नाम से सम्बोधित किया। कुफ्र का अनुकरण करने वालों को 'काफिर' की संज्ञा दी गई।

इस नवीन सभ्यता की रचना में पैगम्बर ने कुछ मूल भूत सिद्धान्त रखे थे, जो विशुद्ध रचनात्मक (पॉजेटिव) नीति के आधार पर आधारित थे। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर उन्होंने इस्लाम का दरवाजा गरीब अमीर, देशी विदेशी, छूत अछूत, दास-अदास, स्त्री पुरुष सबके लिये समान रूप से खोल दिया। इस्लाम के झंडे के नीचे आने के बाद प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्ण जाति या देश का क्यों न हो भाई चारे के क्षेत्र में आ जाता था और उस जगह आते ही भेद भाव के सब पुराने बन्धनों को तोड़कर इस्लाम की एकता के सूत्र में वह बँध जाता था। ऊँचे से ऊँचा नवाब भी इस्लाम के एक छोटे मजदूर के साथ एक थाली में खाने से इनकार नहीं कर सकता था।

उस समय अरब के निवासी छोटे बड़े घुमन्तू कबीलों के रूप में रहकर 'खानाबदोश' जीवन व्यतीत करते थे और आपस में लड़ते रहते थे। सैनिक शक्ति और साहस उनमें अनन्त था लेकिन संगठित रूप से रहने की आदत उनमें बिल्कुल न थी।

इस्लाम के भाई चारे का सन्देश पाते ही वे लोग धड़ाधड़ इस्लाम के झंडे के नीचे आने लगे और 'कलमा' पढ़कर अपने को सच्चा मुसलमान अनुभव करने लगे। फूट और कलहों के स्थान पर उनमें एकता की भावनाओं का उद्गम होने लगा।

हजरत पैगम्बर ने उनकी छिपी हुई शक्तियों को समझा और उन कबीलों को सैनिक-शिक्षा देकर इस्लाम की एक मजबूत सेना तैयार करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार इस्लाम, संस्कृति, धार्मिक, राजनैतिक और सैनिक—इन तीनों तत्वों की सम्मिश्रण हो गयी।

सैनिक शिक्षा, संगठन और इस्लाम का अनुशासन मिलते ही इनमें से बहुत से उत्साही सैनिकों का उत्साह चमक उठा और वे अपनी-अपनी सेनाओं को लेकर 'कुफ्र' का नाश करने के लिये 'जिहाद्' या धर्म-युद्ध के लिए निकल पड़े और देखते देखते केवल पौन शताब्दी में सिन्धु-तट से स्पेन तक और सिरदरिया से नील नदी तक एक विशाल 'इस्लामी साम्राज्य' की स्थापना हो गई। जहाँ जहाँ पर ये विजेता गये, उन्होंने वहाँ के सिर्फ राजनैतिक संगठन को ही नष्ट नहीं किया, बल्कि वहाँ के धर्म और संस्कृति के प्रतीकों को भी नष्ट-भ्रष्ट करके धर्म स्थानों और मूर्तियों को भी समाप्त कर दिया और इस्लाम की स्थापना कर दी।

इस्लाम का विस्तार

हजरत मुहम्मद के समय में तथा उनके पश्चात् खलीफाओं के समय में इस्लाम का बहुत विस्तार हुआ। खलीफा 'अबूबकर' के समय में सेनापति 'खालिद' ने सारे सीरिया और मेसोपोटामिया राज्य को खिलाफत में मिला लिया। खलीफा 'उमर' के प्रधान सेनापति 'अमरू बिन लेस' ने सारे मिस्र राज्य को 'अरब-साम्राज्य' के अधीन कर दिया। 'सैयद बिन अबी वक्कास' ने सन् ६३५ में कादेसिया के युद्ध में सन् ६३७ में जलूला के रणक्षेत्र में और सन् ६४२ में नेहावन्द के रणक्षेत्र में ईरानी सेनाओं को परास्त कर ईरान पर इस्लाम की सत्ता स्थापित की। खलीफा उस्मान के समय में सन् ६४९ ई० में 'साइप्रस' द्वीप पर भी इस्लाम का झंडा फहराया गया।

उमैया खिलाफत के समय में 'खिलाफत' की राजधानी दमिश्क में चली गई। यहाँ से इन्होंने समुद्र पार करके स्पेन के ऊपर इस्लामी सत्ता कायम की। सन् ६८८ में 'जिब्राल्टर' जल प्रणाली तक सारे उत्तरी अफ्रीका पर इस्लामी राज्य स्थापित हो गया।

खलीफा प्रथम वालिद के समय में सन् ७०५ से सन् ७१४ तक अरब साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ। खलीफा वलीद के समय में खुरासान के गवर्नर 'कुतेबा' ने मध्यएशिया में अरब शासन और इस्लाम की मजबूत नींव डालने में

बड़ा काम किया। इसने बार बार अपने आस-पास के देशों में दिग्विजय करके हजारों लोगों को मारा देवस्थानों को बरबाद किया मूर्तियों को तोड़ा और बड़ी-बड़ी लूटें कीं। उसके लिए लिखा गया है कि कुतैब जैसे इस्लाम के प्रचारक शायद कहीं और हुए हों। 'बुखारा' के चारों अभियानों में वह वहाँ के नागरिकों को उनका धर्म छुड़ाकर जबरदस्ती मुसलमान बनने के लिए उन्हें बाध्य करता रहा। सन् ७१२ ई० में 'समरकन्द' के अग्नि मन्दिर को गिराकर उसके स्थान पर कुतैब ने एक 'जुमा मस्जिद' बनवाई। बुखारा के भी कई धर्म-स्थानों को गिराकर वहाँ पर उसने कई मस्जिदें बनवाईं जो अब भी इन शहरों की पुरानी मस्जिदों में हैं।

सन् ७११ ईसवी की २८ जुलाई को अफ्रीका के अरब सेनापति 'तारीक बिन जियाद' ने समुद्र को पार कर स्पेन राज्य में प्रवेश किया। जिस जगह उसने समुद्र को पार किया था उस स्थान का नाम उसी के नाम पर 'जैबल तारीक' पड़ा जो आगे चलकर 'जिब्राल्टर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन् ७१४ में इस्लाम के सेनापतियों ने एशिया और यूरप में एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक अपनी विजय-पताका फहराई। पश्चिम में 'अटलांटिक महासागर' उत्तर में पेरीनीस पर्वतमाला दक्षिण में सहारा मरुभूमि तक बिल्कुल उत्तर अफ्रीका इजिप्ट और अबीसीनिया राज्य और पूर्व में एशिया महाद्वीप के सम्पूर्ण 'सिनाई' प्रायद्वीप सिक्यांग, सीरिया एशिया माइनर, मेसोपोटामिया ईरान, काबुल और सिन्धुनदी के पश्चिम किनारे प्रदेश इस्लामी धर्म में दीक्षित होकर मुसलमानी साम्राज्य के अंग बन चुके थे।

इसके पश्चात् मुसलमान विजेताओं का ध्यान हिन्दुस्थान की तरफ गया। सबसे पहले मुहम्मद-बिन कासिम ने और उसके बाद मुहम्मद गजनवी ने कई बार आक्रमण करके हिन्दुस्थान में बड़ी-बड़ी लूटें कीं। सन् १०८ में उसने भारत पर आक्रमण कर राजा जयपाल को पराजित किया।

इसने सन् १०१८ में उसने मथुरा की सुप्रसिद्ध लूट की। मथुरा के अलौकिक वैभव और मुहम्मद को मिली हुई अपार सम्पत्ति का इतिहासकार 'उतबी' ने इस प्रकार वर्णन किया है—

"मथुरा में मूर्तियों के एक हजार मन्दिर थे जो किलों की तरह बने थे। शहर के बीचो-बीच एक सबसे ऊँचा मन्दिर था। यदि ऐसी कोई इमारत बनाने का विचार करे तो उसे १ हजार दीनारों (सोने के सिक्कों) की एक लाख थैलियाँ खर्च करनी पड़ेंगी और कुशल कारीगरों की सहायता से भी ऐसी इमारत दो सौ वर्षों में भी तैयार नहीं हो सकेगी। मूर्तियों के जो ढेर मिले उनमें शुद्ध सोने की पाँच हाथ ऊँची पाँच मूर्तियाँ थीं। इनमें से एक मूर्ति पर एक रत्न जड़ा था जिसका मूल्य ५ हजार दीनार से कम नहीं था। एक मूर्ति पर चार सौ "मिसकाल" वजन का एक नीलम जड़ा था। चाँदी की मूर्तियाँ तो इतनी थीं कि उनको तौलने वाले थक गये।"

सोमनाथ की लूट तो इस लूट से भी बड़ी थी। मुहम्मद गजनी के बाद मुहम्मद गौरी ने इस देश में इस्लामी-साम्राज्य का सूत्रपात कर दिया।

इस प्रकार इस्लामी-सभ्यता का प्रचार बहुत थोड़े समय में विश्व के एक बड़े भाग पर हो गया, मगर इतिहास से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि इस संस्कृति का विश्व-व्यापी प्रचार तलवार की छाँह में हुआ प्रेम और मुहब्बत की छाँह में नहीं।

धर्म-संस्था

इस्लाम की बुनियाद सबसे पहले चन्द सिद्धान्त के ऊपर स्थापित हुई। मुसलमान और इस्लाम ये दोनों शब्द अरबी भाषा के "सलम" धातु से बने हैं। इसका अर्थ विपत्ति रहित मुक्ति सुख को देना है। मुसलिम और इमान शब्द से मुसलमान शब्द बना जो ईमान और पवित्रता का सूचक है। अरब में पहले अनेक देववाद और मूर्तिपूजा का बहुत प्रचार था। इस्लाम ने अपने धर्म का मूल आधार 'एकेश्वरवाद' को बनाया। एक अल्लाह और उसके पैगम्बर के सिवाय किसी भी अन्य देवी-देवता को मानना या मूर्तिपूजा करना—इन चीजों को उसने 'कुफ्र' करार दिया।

इस्लाम-संस्कृति की प्रमुख विशेषता उसका कट्टर

एकेश्वरवाद है। यह समस्त मुसलमानों के लिये 'कलमा' में इस प्रकार बतलाया गया है—

"अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा देवता नहीं है और मुहम्मद उसके पैगम्बर हैं।"

'कुफ्र' के विरुद्ध 'जिहाद' करना प्रत्येक मुसलमान का धर्म माना गया है। कुछ लोगों का यह मत है कि स्वयं मुहम्मद साहब और कुरान स्वयं धार्मिक स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे और वे बलात् किसी व्यक्ति पर अपने धर्म को थोपने के खिलाफ थे। जैसा कि मौलाना अबुल कलाम आजाद अपने 'तर्जुमानुल कुरान' में लिखते हैं कि—

"गैर-मुस्लिम जातियों के लिए क्या बर्ताव रखा जाय, इसके लिए पैगम्बर के विचार बड़े साफ थे। उनके मतानुसार तुम्हारे लिए तुम्हारा विश्वास (दीन) और मेरे लिए मेरी आस्था। कुरान स्वतः धार्मिक स्वतंत्रता में विश्वास करती है। आगे की सदियों में मुसलमान विजेताओं ने विधर्मियों पर जो अत्याचार किये, उनके लिए पैगम्बर और कुरान कदापि उत्तरदायी नहीं हैं।

सम्भव है, मौलाना आजाद का कथन ठीक हो और पैगम्बर तथा कुरान उन घटनाओं के लिए उत्तरदायी न हों। पर आगे का इतिहास स्पष्ट रूप से बतला रहा है कि आगे की सदियों में मुसलमान विजेताओं ने संसार में जो तहलका मचाया था—वह 'कुफ्र' के विरुद्ध 'जिहाद' और इस्लाम के प्रचार के नारे के साथ ही मचाया था और ऐसे विजेताओं की अरबी इतिहासकारों ने 'गाजी' कह कर प्रशंसा ही की है।

ऐसी स्थिति में धार्मिक स्वाधीनता के सिद्धान्त के साथ इस्लाम की हिंगियत के ऐतिहासिक तथ्यों की तुक मिलाना बहुत कठिन होता है।

समाज-संस्था

हजरत पैगम्बर की समाज संगठन के सम्बन्ध की सूझ, बड़ी अद्भुत थी। इस्लाम-संस्कृति में मनुष्य और मनुष्य के बीच में विभेद डालने वाली सामाजिक दीवारों को तोड़ने का पूरा प्रयत्न किया गया है। मनुष्य चाहे जिस देश का हो चाहे जिस जाति का हो चाहे जिस वर्ग का हो गरीब हो या अमीर—इस्लाम के झण्डे के नीचे आते ही मुसलमान हो जाता है और वह संसार के किसी भी मुसलमान के साथ, नवाबों और जागीरदारों की एक पाँत में बैठ कर भोजन कर सकता है। इसी प्रकार के कुछ और भी नियम इस संस्कृति में ऐसे रक्खे गये हैं जिनके कारण इस्लामी समाज में भिन्नता की प्रकृति की जगह एकीकरण की प्रकृति का ज्यादा विकास हुआ और उनमें भ्रातृभाव की भावनाओं का ज्यादा प्रचार हुआ।

इस्लाम के झण्डे के नीचे आते ही हरएक इन्सान को कुछ आवश्यक नैतिक नियमों का पालन करना पड़ता है। इन नैतिक नियमों के संग्रह को इस्लाम की भाषा में 'शरह' कहते हैं। हर एक मुसलमान के लिए शरह के इन नियमों का पालन करना अनिवार्य माना जाता था। शराब नहीं पीना, सूद नहीं लेना, पाक और साफ रहना, दिन में पाँच बार खुदा की इबादत करना, रमजान के महीने में रोजा रखना, अल्लाह और पैगम्बर के सिवाय किसी अन्य देवता को नहीं मानना आदि सैकड़ों धाराएँ इस्लामी शरह में हैं जिनका पूर्ण रूप से पालन करने पर मुसलमान का धर्म और ईमान कायम रहता है।

विवाह के सम्बन्ध में 'इस्लामी शरह गोत्र भेद को नहीं मानती। वह दूध-भेद को मानती है। यदि लड़के और लड़की ने एक ही माँ का या धाय का दूध पिया हो तो उनके बीच में शादी नहीं हो सकती। दूध का भेद होने पर मामा या काका की लड़की से शादी हो सकती है।

इस्लामी शरह पुरुष के लिये एक से अधिक पत्नी रखने का विरोध नहीं करती। मगर इतना जरूर कहती है कि तुम अपनी सुविधा के अनुसार दो, तीन या चार स्त्रियों से विवाह कर सकते हो किन्तु, यदि तुम्हें यह मालूम हो कि तुम उन सबके साथ समान व्यवहार नहीं कर सकोगे तो फिर एक ही विवाह से सन्तुष्ट रहो।

स्त्रियों के सम्बन्ध में इस्लाम की नीति अपेक्षाकृत अधिक उदार रही है। हजरत मुहम्मद ने लड़कियों को जीवित गाड़ देने और मूता-प्रथा का बड़ा विरोध किया है।

इस्लाम में बालिग लड़की को इच्छानुसार अपना पति चुनने का अधिकार दिया गया है। हजरत आयशा लिखती हैं कि एक बार एक युवा स्त्री ने पैगम्बर से शिकायत की कि मेरे पिता ने मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा विवाह मेरे चचेरे भाई से कर दिया है।"

यह सुनकर पैगम्बर ने उसके पिता को बुलाकर उसके सामने उस लड़की से कहा कि "यदि तू चाहे तो अब भी तेरा बन्धन टूट सकता है।" उस लड़की ने उत्तर दिया 'अय खुदा के पैगम्बर! अब तो जो कुछ हो गया वही रहने दिया जाय मगर मैं सब स्त्रियों को यह बतला देना चाहती हूँ कि एक बालिग लड़की के विवाह में पिता को जबरदस्ती करने का कोई अधिकार नहीं है। (कुरान दराब्हार—२२)

राज संस्था

इस्लाम संस्कृति के अन्दर प्रारंभ में धर्म नेता और राजनेता दोनों शक्तियों को एक रूप देकर 'खलीफा' का नाम दिया गया। खलीफा इस्लाम के धर्म गुरु भी होते थे और राज्य के अधिकारी भी होते थे।

इस्लाम का विस्तृत साम्राज्य बहुत समय तक इन्हीं खलीफाओं के हाथ में रहा। इन खलीफाओं में हारूँ अल रशीद, अल मामून इत्यादि कई खलीफा ऐसे हुए जिनके समय में ज्ञान, विज्ञान और कला की बहुत उन्नति हुई। अरबी साहित्य का अधिकतर ज्ञान भंडार इन अरबी खलीफाओं के समय में ही निर्मित हुआ।

मगर धर्म-संस्था के साथ राज संस्था के जुड़ जाने से राज संस्था की जो बुराइयाँ हैं वे इस्लाम के इतिहास में भी प्रकट हुईं। सत्ता और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हर एक प्रभावशाली व्यक्ति खलीफा के पद पर आने का प्रयत्न करने लगा। जिससे आपस में संघर्ष होने लगे। इसी संघर्ष में उमैया वंश के खलीफा 'म्आविया' के पुत्र 'यजीद' ने 'करबला' के मैदान में सुप्रसिद्ध धर्म-नेता इमाम हुसैन को उनके साथियों के साथ भूख और प्यास से तड़पा तड़पा कर मारा। इस्लाम के इतिहास की यह महा भयंकर दुर्घटना १३ सौ वर्ष बीत जाने पर भी अभी तक हर एक मुसलमान के हृदय में ताजी बनी हुई है और इस दुर्घटना की स्मृति में वर्ष में एक दिन सारे संसार के मुसलमान आँसू बहाते हैं।

जब खलीफा के पद से उमैया वंश को समाप्त करके अब्बासी-वंश तख्त पर आया तब उसने उमैया वंश से इस घटना का बदला ब्याज समेत चुकाया। अब्बासी वंश के खलीफा ने उमैया वंश के एक-एक व्यक्ति को पकड़ कर कत्ल करवा दिया। यहाँ तक कि जो लोग मर चुके थे उनकी लाशों को कब्र में से निकलवा-निकलवा कर उनकी दुर्गति करवाई। मानवीय प्रतिहिंसा के ऐसे भयंकर नमूने संसार के इतिहास में क्वचित ही देखने को मिलते हैं।

इसी प्रकार राजसत्ता के लोभ में और भी बहुत सी आपसी लड़ाइयाँ, हत्यायें और खून खराबियाँ हुईं जिनका उल्लेख इस्लाम के इतिहास में देखने को मिलता है।

राज संस्था और धर्म संस्था के एकीकरण के परिणामों को देख कर कालान्तर में राजा और धर्म गुरु अलग अलग भी होने लगे। मुसलमान विजेताओं ने विजय प्राप्त करके कई देशों में अपने राज्य स्थापित किये और स्वयं वहाँ के राजा बने। फिर भी हर जगह की राज संस्था पर धर्म संस्था का अंकुश बराबर बना रहा। ये राजा लोग भी धर्म नेता मौलवियों के 'फतवों' से बँधे रहते थे और शासन कार्य में सलाह देने और न्यायालयों में न्याय करने के लिए धर्म गुरु मौलवियों को रखते थे।

इस्लाम की राजसंस्था के इतिहास में खलीफा हारूँ अल रशीद, खलीफा अल-मामून, खलीफा उमर, ईरान का सासानी राजवंश तथा भारत में सम्राट् अकबर, सम्राट् जहाँगीर और सम्राट् शाहजहाँ के राज्यकाल प्रशंसा-सूचक माने जाते हैं।

साहित्य और कला

इस्लाम संस्कृति के इतिहास में साहित्य और कला की उन्नति उसका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। जहाँ जहाँ भी मुसलमान विजेताओं ने अपने शासन स्थापित किये, शान्ति स्थापित होने के बाद साहित्य और कला की उन्नति पर उन्होंने पूरा पूरा ध्यान दिया।

अरबी और फारसी का विशाल साहित्य भण्डार इस्लाम के साहित्य-प्रेम का भाव भी जीवित जाग्रत रूप से पेश कर रहा है। वैसे इस्लाम के पहले भी इन देशों में साहित्य का उत्पादन प्रारम्भ हो चुका था फिर भी उसका वास्तविक विकास इस्लाम की छाया में हुआ यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

गणित, ज्योतिष इतिहास पुराण राजनीति, चिकित्सा इत्यादि सभी विषयों में मुसलमान साहित्यकारों ने अपनी मेधा का उपयोग किया। यहाँ वहाँ से उन्हें ज्ञान के सूत्र

प्राप्त हुए, वहीं से उन्हें प्राप्त कर उनका अरबी भाषा में अनुवाद कराया। यहाँ तक कि उस समय से एक हजार वर्ष पहले लिखे हुए ग्रीक भाषा के 'अफलातून और 'अरस्तू' के ग्रन्थों को, जो कि उस समय लुप्त हो चुके थे, अरब लोगों ने ही खोज करवा कर उनका अरबी भाषा में अनुवाद करवाया। इन्हीं अरबी अनुवादों के द्वारा प्रकाश की वे किरणें यूरोप में पहुँची, जिन्हें देखकर वहाँ के लोग चकित हो गये।

भारतीय चिकित्सा, ज्योतिष और गणित के ग्रन्थों का भी इन खलीफाओं ने अरबी भाषा में अनुवाद करवाया। भारतीय अंकों की प्रणाली और गणित ज्योतिष की पुस्तकों का अनुवाद 'इब्राहीम अल फजारी ने अरबी भाषा के अन्दर 'अल-सिन्द-हिन्द' के नाम से प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ ने अरब-ज्योतिष के अध्ययन में क्रांति उत्पन्न कर दी। इसी में पहले-पहल भारतीय अंकों का उल्लेख हुआ और इन अंकों की संज्ञा 'हिन्दसा के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसी आधार से उठकर यह अंक-माला 'अल-ख्वारिज्मी के ग्रन्थों द्वारा यूरोप के देशों में प्रचलित हुई। 'अल-सिन्द हिन्द का प्रकाशन, संसार के सारे देशों के पूर्वकालिक इतिहास में युग-प्रवर्तक माना जाता है।

इसी प्रकार चरक और सुश्रुत तथा पञ्च तन्त्र के अनुवाद भी अरबी भाषा में हुए।

खलीफा अल मामून ने सन् ८३१ में बैत-अल हिकमा नामक ऐकेडेमी की बगदाद में स्थापना कर अरब-जगत् में पहली शोध-संस्था और अध्ययन पीठ का प्रारम्भ किया। इस प्रसिद्ध शोध-संस्था ने अपने विशाल पुस्तकालय और वेध-शाला के कारण भी सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इस संस्था के पहले इतने विशाल पाये पर निर्मित ऐसी किसी संस्था का उल्लेख प्राचीन जगत् में नहीं पाया जाता। ज्योतिष के सम्बन्ध में जितना कार्य पहले हो चुका था उसकी इस संस्था में छान बीन की गई, और भी इस दिशा में कई असाधारण कार्य यहाँ पर हुये। इसी प्रकार की एक संस्था ईसा से तीन सौ वर्ष पहले सिकन्दरिया में स्थापित हुई थी मगर वह इससे छोटी थी।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि साहित्य कला और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में इस्लाम संस्कृति ने जो योग दिया वह अत्यन्त महत्वपूर्ण था जिसकी वजह से उस क्षेत्र में जामी, गजाली, रूमी, फिरदौसी, हाफिज और शेखसादी के समान कई कवि साहित्यकार और विद्वान ऐसे पैदा हुए जिन्होंने संसार में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की।

इस प्रकार कई शताब्दियों तक संसार में भारी हलचल मचाकर, विपुल ऐश्वर्य और सत्ता का उपभोग करने के पश्चात् संसार में प्रचलित उत्थान और पतन के नियमानुसार इस सभ्यता का पतन काल भी आया। खिलाफतों के द्वारा संसार भर में स्थापित बड़े बड़े साम्राज्य ध्वंस होकर छोटे छोटे राज्यों के रूप में बदल गये, और कहीं-कहीं तो छोटे छोटे राज्य भी न रहे। फिर भी धर्म संस्था के रूप में इस विराट सभ्यता ने जिस वस्तु का निर्माण किया था वह आज भी कायम है। आज भी इस्लाम धर्म संस्था के पचास करोड़ से अधिक अनुयायी संसार में फैले हुए हैं जो इस्लाम के नाम पर सब कुछ करने को तैयार हैं। आज भी उनको "इस्लाम" का नाम जितना आकर्षित करता है उतनी कोई दूसरी वस्तु नहीं करती।

इस्माइलिया सम्प्रदाय

इस्लाम मजहब के अन्तर्गत शिया सम्प्रदाय की एक शाखा। जिसके प्रधान धर्मगुरु हिज हाइनेस आगा खाँ हजरत मुहम्मद पैगम्बर की पुत्री फातिमा और दामाद खलीफा अली के सीधे वंशधर हैं। वर्तमान आगा खाँ इस सम्प्रदाय के ४९ वें इमाम हैं।

हिज हाईनेस आगा खाँ को इस्माइलिया मुसलमानों के इमाम का पद प्राप्त है और शियासम्प्रदाय और विशेष कर इस्माइलिया समाज उन्हें उसी नजर से देखता जिस नजर से कोई हिन्दू अपने अवतार को देखता है।

वर्तमान आगा खाँ के दादा सुलतान मुहम्मदशाह आगा खलील थे और उनके दादा ईरान में एक सूबे के शासक थे। ईरान के शाह से उनकी कुछ अनबन हो जाने से वे भारतवर्ष में आगये। ब्रिटिश सरकार ने उनका बड़ा

मान किया उन्हें अनेक उपाधियों और सम्मानों से अलंकृत किया, साथ ही उनकी पेंशन भी बाँध दी।

प्रथम आगा खाँ की सन् १८८१ में और द्वितीय आगा खाँ की सन् १८८५ में मृत्यु हो गई। इनके पश्चात् सिर सुल्तान मुहम्मद आगा खाँ तृतीय इमाम की गद्दी पर आये।

आगा खाँ तृतीय अत्यन्त मेधावी, विचक्षण बुद्धि और रईस मिजाज के व्यक्ति थे। वर्तमान शताब्दी के दूसरे और तीसरे दशक में इस्लामी राजनीति में इन्होंने पूरा भाग लिया और समस्त संसार के मुसलमानों का नाम इस्लामिक संघ बनाने के प्रयत्न में पूरा सहयोग दिया।

कमाल पाशा के नेतृत्व में जब तुर्की राष्ट्र का पुनरुत्थान हुआ और कमाल पाशा तुर्की की खिलाफत को समाप्त करने पर उतारू होने लगे, उस समय भारत के भूतपूर्व वरिष्ठ अमीरअली और सर आगा खाँ तृतीय ने लन्दन से कमाल पाशा को एक पत्र लिखा था। जिसमें खिलाफत के साथ किये हुए दुर्व्यवहार का विरोध किया था। संयोग से यह पत्र कमाल पाशा के पास पहुँचने के पहले ही अखबारों में प्रकाशित हो गया। जिसका कमाल पाशा ने तुरन्त फायदा उठाया और उसने प्रकट किया कि तुर्की लोगों में फूट डालने की यह अंग्रेजी चाल है। इस्तम्बूल के जिन पत्रों ने इस पत्र को छापा था उन्हें देशद्रोही कह कर कमालपाशा कठोर दण्ड दिये और खिलाफत को समाप्त करने का बिल नेशनल असेम्बली में पास करवा कर एक ऐसी संस्था को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया जिसने इस्लाम के इतिहास में बड़े बड़े प्रभावशाली पार्ट अदा किये थे।

सिर सुल्तान आगा खाँ तृतीय ने लन्दन में होने वाले गोल मेज सम्मेलन में भी प्रतिनिधित्व किया था। जेनेवा के अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में भी इन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया था।

सर आगा खाँ तृतीय विपुल सम्पत्ति के स्वामी और घुड़दौड़ के बड़े शौकीन थे। उनके पास कितनी सम्पत्ति है इसका अनुमान कोई नहीं लगा सकता। कहा जाता है कि उनके इस्माइली अनुयायी अपनी आय का दो प्रतिशत और खोजा अनुयायी दस प्रतिशत उनको भेंट करते हैं। इस भेंट का अनुमान लगाने के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि विश्व में आगा खाँ के अनुयायियों की संख्या चार से पाँच करोड़ तक है और इनमें से अधिकांश धनी और व्यापारी वर्ग के लोग हैं।

सर आगा खाँ तृतीय को उनके अनुयायियों ने उनकी स्वर्णजयन्ती के अवसर पर सोने से और हीरक जयन्ती के अवसर पर हीरों से तोला था। हीरक जयन्ती के अवसर पर उनका वजन तीन मन था।

आगा खाँ का रत्नभण्डार संसार में उच्च कोटि का रत्नभण्डार माना जाता है और ऐसा कहा जाता है कि उसमें ८० करोड़ रुपये मूल्य के जेवरात हैं। संसार के विभिन्न भागों में सर आगा खाँ के निवास महल बने हुए हैं जिनके बारे में एक पत्रकार का अनुमान है कि उनमें लगभग कई हजार नौकर जीविका पा रहे हैं।

अपनी इस सम्पत्ति के एक अंश का उपयोग आगा खाँ अपने अनुयायियों की उन्नति के लिए करते रहते हैं और यह एक ऐसी प्रथा है जो हमेशा चलती रहेगी।

सर आगा खाँ तृतीय की मृत्यु के उपरान्त उनके पौत्र इस्माइलिया के ४९ वें इमाम करीम आगा खाँ चतुर्थ मार्च सन् १९५८ में आगा खाँ चतुर्थ के नाम से गद्दी पर आये।

इसिदोर

लैटिन भाषा में विश्व कोष का प्रसिद्ध रचयिता जिसका जन्म सन् ५७० में और मृत्यु सन् ६३६ में हुई।

इसिदोर एक ईसाई साधु था उसने 'एतिमालोजी' नामक एक वृहद् विश्व कोष की रचना की जो कई सदियों तक लैटिन भाषा में ज्ञान कोष का काम करता रहा।

इसियस

प्राचीन यूनान में वक्तृत्वकी कानून का विद्वान। सुप्रसिद्ध वक्ता डेमास्थनीज का गुरु। समय ई. स. पूर्व ४२ से ई. पू. ३५ तक।

वक्तृत्वकी और कानूनी बहस को भाषण के रूप में लिखना यह इसियस का व्यवसाय था। कानून की बारीक

से कठिन गुत्थियों को अपने भाषण में स्पष्ट से स्पष्ट रूप में रखना यह उसकी बुद्धि का चमत्कार था। अपनी व्याख्याओं में वह भावनाओं को उभाड़ने के बजाय अलंकृत शब्दों का प्रयोग अधिक करता था।

उसने ऐसे करीब ६० भाषण लिखे। जिनमें से दस अभी उपलब्ध हैं। इन भाषणों में उसका बौद्धिक प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है।

इसोक्रेटीज

प्राचीन यूनान का महान् वक्ता और गद्य लेखक जिसका जन्म ईसवी सन् पूर्व ४३६ में और मृत्यु ई० सन् पूर्व ३३८ में हुई।

प्राचीन यूनान में ईसा से छठी सदी पूर्व से गद्य लेखन का प्रारम्भ होता है। गद्य लेखन की पद्धति पहले आयोनिया में प्रारम्भ हुई और वहाँ से यह एथेन्स में पहुँची। गद्य लेखन के साथ ही वक्तृत्व कला का भी बहुत विकास हुआ। सुकरात, प्लेटो इसोक्रेटीज डेमास्थनीज इत्यादि महान् पुरुष अपने गद्य लेखन और वक्तृता के द्वारा ही साहित्य में अमर हुए। एथेन्स को "ओरेटरी" ग्रीक साहित्य और वक्तृत्व कला के साहित्य में अमर हो गई।

इसोक्रेटीज का नाम एथेन्स के शिक्षकों और भाषण लेखकों में बहुत प्रसिद्ध है। इसोक्रेटीज की सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा अत्यन्त संतुलित और प्रगतिशील थी। समाज का सर्वांगीण विकास उसके विचारों का आदर्श था। इसोक्रेटीज की रचनाओं में "एविर होमिल", "पानोथिनिकस एवागोरस "निकिथाल" इत्यादि ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। उनकी रचनाओं के प्रधान विषय शिक्षा विज्ञान राजनीति और ग्रीक संस्कृति से सम्बन्ध रखते हैं।

इच्छाराम देसाई

उन्नीसवीं सदी के अन्त में गुजराती साहित्य के एक लेखक और 'गुजराती' नामक सुप्रसिद्ध पत्र के संपादक।

इच्छाराम देसाई गुजराती भाषा के उन साहित्यकारों में हैं। जिन्होंने गुजराती भाषा के अभ्युत्थान में बड़ा योग दिया। गुजराती के सुप्रसिद्ध और प्राचीन पत्र "गुजराती" के वे संपादक थे। इनके संपादन में "गुजराती" पत्र ने बड़ी उन्नति की।

इच्छाराम देसाई के लिखे हुए कई उपन्यासों ने गुजराती भाषा के उपन्यास भण्डार को समृद्ध किया। सन् १८८८ में इनका "गंगा एक गुर्जर वार्ता" नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में हिन्दू कौटुम्बिक जीवन में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों और उनकी दुर्दशा का चित्रण करके, उसके विरुद्ध आवाज उठायी गई है। उन्होंने तत्कालीन भाट और चारणों के पास से कथाओं का संग्रह करके "भाट चारणनी वार्ता" के नाम से प्रकाशित किया।

इमाम

इस्लाम के धर्मगुरु और स्तुति-पाठ करने वाले विशिष्ट पुरुषों को इमाम कहा जाता है। मुसलमानों का शिया सम्प्रदाय पैगम्बर के दामाद अली और उनके वंशधरों को इमाम के पूज्य नाम से सम्बोधित करता है। इस सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार कुल मिलाकर बारह इमाम हुए हैं जिनके नाम (१) अली (२) हसन (३) हुसैन (४) जैन उल आबिदीन (५) मुहम्मद बाकिर (६) जाफर सादिक (७) मूसा काजिम (८) मुहम्मद तकी (९) अलीनकी (१०) हुसैन अस्करी (११) मेहदी (१२) अली मूसारजा हैं।

इमाम मेहदी के विषय में लोगों का खयाल है कि वे जन्म ले लेने पर भी कहीं छिपे हुए हैं। सम्राट् अकबर के समय शेख अलाई ने और हाल ही कुछ समय पूर्व मध्य एशिया में एक व्यक्ति ने मेहदी होने का दावा किया था।

सुन्नी सम्प्रदाय का मत शिया सम्प्रदाय से भिन्न है। उसके मतानुसार (१) हनीफ (२) मलिक (३) शफी और (४) हम्बल ये चार इमाम हुए हैं।

ईक्वेडर

दक्षिण पश्चिम अमेरिका का एक देश, जिसके उत्तर में कोलम्बिया पूर्व तथा दक्षिण में पेरू तथा पश्चिम में प्रशान्त महासागर स्थित है। इसका क्षेत्रफल १ लाख ५ हजार ७८८ वर्गमील और जनसंख्या ५ लाख ७७ हजार है इसकी राजधानी क्विटो में है। इसके निवासियों की भाषा स्पेनिश और धर्म रोमन कैथोलिक है। इसकी पार्लामेंट को 'कांग्रेसो' कहते हैं, जिसमें अपर हाउस और लोअर चेम्बर दोनों मिले हुए रहते हैं। अपर हाउस को यहाँ 'सिनेडो' और लोअर चेम्बर को 'कैमेरा डीपुटेडस' कहते हैं।

इक्वेडर का यह प्रदेश प्राचीन काल में इनका इम्पिायर की बस्ती था। इस प्रदेश के राजा "इनका" देवी अंश सम्पन्न माने जाते थे। १६वीं सदी में स्पेन के निवासी 'पिजारो' ने इनका के राज्य को खत्म कर दिया और उसे स्पेन के साम्राज्य में मिला लिया। इक्वेडर के पूर्व में 'पेरू' उस समय सभ्यता का एक बड़ा केन्द्र था। पेरू सभ्यता के बहुत से अवशेष मैक्सिको के संग्रहालय में अभी भी देखे जा सकते हैं, जिनमें एक सुन्दर कलापूर्ण सभ्यता की परम्परा के दर्शन होते हैं।

इस समय दक्षिणी अमेरिका का यह प्रान्त अपने 'पेट्रोलियम' की उत्पत्ति के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के पेट्रोलियम का वार्षिक उत्पादन २६ लाख ६० हजार बैरल है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर लोहा ताँबा सोना चाँदी, गन्धक इत्यादि भी पैदा होते हैं। यहाँ से निर्यात होने वाली चीजों में अपनी रबर की चीजें, कोको चावल इत्यादि प्रधान हैं।

यहाँ की सरकार सन् १९४५ के विधान के अनुसार सिनेडो और लोअर चेम्बर के सहयोग से चलती है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति ४ वर्षों के लिए निर्वाचित किये जाते हैं।

ईक्विटीज

प्राचीन रोमन प्रजातंत्र में प्रभावशाली एक राजनैतिक दल।

'ईक्विटीज' प्राचीन रोमन-प्रजातंत्र में सेना के घुड़सवार दल को कहते थे। शक्तिशाली अंग होने की वजह से सारे प्रजातंत्र में इस सेना का बोलबाला रहता था और राजवंशीय तथा श्रीमन्त लोगों के नवयुवक बड़े उत्साह से इस सेना में भरती होते थे। इस वर्ग में पैट्रीशियन लोग विशेष रूप से होते थे।

प्रजातंत्र का अन्त होने और रोमन-साम्राज्य का विस्तार होने पर इस दल के लोग घुड़सवार-सैन्य को छोड़ कर रोम के सम्भ्रान्त और समृद्ध नागरिक बन गये। धीरे धीरे इनका दल रोमन-सभ्यता में बहुत प्रभावशाली हो गया। जो लोग ४ लाख रोमन मुद्राओं के स्वामी होते थे, वे इस दल में सम्मिलित हो सकते थे। एक समय में समूचे साम्राज्य की राजशक्ति और अर्थशक्ति की बागडोर इक्विटीज दल के हाथ में आ गई थी। प्रान्तों के गवर्नर सीनेटर और इन्हीं के इशारों पर बनाये जाते थे। सम्राटों के उत्थान-पतन में भी इनका गहरा हाथ रहता था।

ईगर

प्राचीन रूस के 'कीवेक' प्रान्त का 'महाराजा' जिसका समय सन् ९११ से ९४५ तक है।

ईगर रूसी जारों के पूर्व पुरुषों में हुआ इसने अपनी सेना को मजबूत कर कितने ही राजाओं पर आक्रमण करके उन्हें अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया। सन् ९४१ में ईगर ने 'बिजन्टीन' के विरुद्ध एक भारी समुद्रीक आक्रमण किया। उसने कॉन्स्टैन्टिनोपुल की कई बस्तियों को ध्वस्त किया लेकिन बाद में 'यूनान' के जहाजी बेड़े ने उसको बुरी तरह से पराजित किया।

ईगर तथा कीवेक के दूसरे राजवंश पुरुषों के धन की सम्पत्ति और पुरुष स्त्रियों को पकड़कर उन्हें दास बनाना अपने वैध शासन का एक अंग मानते थे। इन लोगों ने अभी ईसाई धर्म अंगीकार नहीं किया था। ईगर के शासन

काल में ही प्रसिद्ध मुसलमान यात्री इब्न-फ़ज़लान ने वोल्गा नदी के किनारों के नगरों की यात्रा की थी। उसने उस समय के रूसियों के जीवन पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है।

ईगर का व्यवहार कर वसूल करने के सम्बन्ध में अपनी प्रजा के साथ बहुत कठोर होता था और इस कठोर व्यवहार के कारण कई बार देहाती प्रजा उसके खिलाफ विद्रोह कर बैठती थी।

ऐसे ही एक विद्रोह में ११ अगस्त सन् ९४५ के दिन ईगर अपने सभी साथियों सहित मार डाला गया।

ईराक

दक्षिण पश्चिमी एशिया का एक स्वतन्त्र राज्य। जिसमें मेसोपोटेमिया का उपजाऊ प्रदेश और उत्तर पूर्व का पर्वतीय भाग जिसे कुर्दिस्तान कहते हैं तथा दक्षिण पश्चिम के कुछ मरुस्थली हिस्से शामिल हैं।

सुमेरियन बेबिलोनियन और असीरियन, संसार की इन तीन महान् प्राचीन सभ्यताओं की उत्पत्ति ईराक की ऐतिहासिक भूमि में हुई है। इंजील में वर्णित संसार के आदिम पुरुष आदम और हौवा के निवास का स्थान ईडन का बाग इसी प्रदेश में स्थित था।

ईसा से करीब चार हजार वर्ष पूर्व ईराक में सुमेरियन संस्कृति का विकास हुआ था। इतिहास के आरम्भ काल में ईराक की सबसे प्राचीन संस्कृति यही थी। सुमेरियन संस्कृति का प्रधान केन्द्र 'उर' नामक नगर था। कहा जाता है कि सुमेरियन संस्कृति की बहुत सी बातें मोहनजोदड़ो की प्राचीन संस्कृति से मिलती-जुलती हैं।

ईसा से २१०७ वर्ष पूर्व सुमेरियन राज्य के तीसरे राजवंश के अन्त के साथ ही सुमेरियन संस्कृति का भी अन्त हो गया, और बाबुल के राजवंशों ने यहाँ पर अपना साम्राज्य स्थापित कर बैबिलोनियन संस्कृति को जन्म दिया। बैबिलोनियन राजवंश में सम्राट हम्मुराबी नामक एक प्रसिद्ध शासक हुआ। इसके शासन-काल में इस देश के शासन विधान की काफी उन्नति हुई। सम्राट हम्मुराबी ने उस प्राचीन काल में अपने राज्य का विधान बनाकर एक सम्म पुस्तक लिखा जो आज संसार का सबसे प्राचीन विधान माना जाता है।

हम्मुराबी के विधान से मालूम होता है कि उस समय समाज में धनी, मध्यम और दास तीन वर्ग थे। इन तीनों वर्गों के नागरिक अधिकार अलग अलग थे और इनके दण्ड विधान भी अलग अलग थे। स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की अधीनता में थी। पर पुरुष के अधीन होते हुए भी वे स्वतंत्र रूप से अपनी सम्पत्ति रख सकती थीं, जायदाद खरीद और बेच सकती थीं, न्यायालय में बहस कर सकती थीं तथा आवश्यकता पड़ने पर विवाह विच्छेद भी कर सकती थीं। पिता की सम्पत्ति पर पुत्र और पुत्री दोनों का अधिकार रहता था। स्त्रियाँ पढ़ लिखकर लिपिक (Scribe) का पेशा अख्तियार कर सकती थीं। मन्दिर की पुजारिनें और देव दासियाँ बन सकती थीं। बड़े और धनी लोग एक से अधिक विवाह भी कर सकते थे। विवाह में उस समय दहेज की प्रथा भी प्रचलित थी। विवाह में इकरारनामे का लिखित प्रयोग होता था।

हम्मुराबी के विधान में व्यभिचारिणी स्त्री को प्राण दण्ड की सजा देने की व्यवस्था है। अपने कर्ज के बदले में अपनी स्त्री और बच्चों को एक निश्चित समय के लिए महाजन के यहाँ गिरवी रख देने की अमानवीय प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। फिर भी बेबिलोनियन संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत काफी अच्छी थी।

ईसा से १ वर्ष पूर्व तक इस क्षेत्र में बेबिलोनियन संस्कृति का बोलबाला रहा। इस संस्कृति की समाप्ति के पश्चात् इस प्रदेश पर असीरियन या असुर लोगों का आधिपत्य हुआ। असीरियन संस्कृति बैबिलोनियन संस्कृति की अपेक्षा निम्न कोटि की थी। इस शासन में स्त्रियों और दासों की स्थिति बहुत हीन अवस्था में पहुँच गई। स्त्रियों को चहार दीवारी के अन्दर पर्दे में रहना पड़ता था। उन्हें कहीं आने-जाने की स्वाधीनता नहीं थी। पति खुले आम अनेक रखैलियाँ रख सकता था। असीरियन समाज में सेक्स सम्बन्धी कठोर बन्धन नहीं थे। वेश्यावृत्ति समाज में अनिवार्य मानी जाती थी। सरकार की ओर से वेश्यावृत्ति अपनाने वाली स्त्रियों को परवाने दिये जाते थे।

करीब चार शताब्दियों तक इस प्रदेश पर असुर सम्राटों का शासन रहा। इसके बाद कुछ समय तक इस प्रदेश पर बेबिलियन राजवंश की सत्ता रही। इन लोगों ने एक बार फिर इस प्रदेश को राजनीति और संस्कृति का केन्द्र बना दिया। इन लोगों के समय में निर्मित किया हुआ यहाँ का आकाशी उद्यान संसार के सात आश्चर्यों में एक गिना जाता है।

कुछ ही समय पश्चात् अर्थात् ईसा से करीब ६ वर्ष पूर्व ईरान में शक्तिशाली "अकामनी" सत्ता का उदय हुआ और इस सत्ता के प्रतापी सम्राटों ने अनेक देश और प्रदेशों के साथ साथ ईराक को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसके पश्चात् सिकन्दर महान ने आक्रमण करके अकामनी साम्राज्य का ध्वंस कर डाला तब ईराक भी ग्रीक लोगों की सत्ता में चला गया। उसके बाद ज्यों-ज्यों ईरान में राज सत्तायें बदलती गईं त्यों त्यों ईराक में भी बदलती रहीं और यह प्रदेश ईरानी साम्राज्य का एक भाग बना रहा।

सातवीं सदी में इस्लाम की प्रभावशाली लहर ईराक और ईरान में भी पहुँची। यहाँ की अधिकांश जनता ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया और यहाँ की सत्ता भी खलीफाओं के हाथ में चली गई। खलीफाओं के शासन में इस प्रदेश की बहुत उन्नति हुई। बगदाद तो उस समय —खलीफा हारूंरशीद के समय में—सारे संसार में कला और संस्कृति का एक महान् केन्द्र माना जाने लगा। कूफा और बसरा के नवीन नगर भी अत्यन्त उन्नतिशील हो गये इस्लामी खलीफा स्वयं अली ने कूफा को अपनी राजधानी बनाया।

मगर तेरहवीं शताब्दी के मध्य भाग में हलाकू के प्रचण्ड आक्रमण ने खलीफा के शासन को समाप्त कर दिया और सभ्यता के महान् केन्द्र बगदाद को तहस नहस कर डाला।

उसके बाद ईराक का इतिहास फिर अन्धकार में पड़ गया। मंगोलों तातारियों, इरानियों इत्यादि के पैरों तले बराबर कुचली जाती रही। सन् १८११ में यह प्रदेश टर्की के साम्राज्य में स्थायी रूप से मिला लिया गया जो बराबर प्रथम महायुद्ध के पहले तक बना रहा।

प्रथम महायुद्ध में टर्की की हार हो जाने पर यह क्षेत्र अंग्रेजों के प्रभावक्षेत्र में आ गया और उन्होंने मोसुल, बगदाद एवं बसरा इन तीन प्रान्तों को मिलाकर सन् १६११ की वर्साई संधि के अनुसार ईराकी को स्वतंत्र देश का रूप दे दिया। अमीर फैसल को यहाँ का शासक बना दिया। सन् १६११ में अंग्रेजी के प्रभाव से यह देश मुक्त हो गया और राष्ट्रसंघ का सदस्य बना लिया गया।

जुलाई १६५८ में अब्दुल कासिम नामक एक सेनापति के नेतृत्व में ईराक में एक बड़ी क्रान्ति हुई। जिसमें ईराक के शाह फैसल को जान से मार दिया गया और देश का शासन अब्दुल कासिम ने हाथों में ले लिया। हाथ में शासन आते ही अब्दुलकासिम ने सीधे संधि या बगदाद पैक्ट से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया और उसका रुख कुछ कम्यूनिस्ट देशों की तरफ हो गया।

मगर अब्दुल कासिम का यह रवैया यहाँ की जनता को और मिश्र के शासक जनरल नासिर को पसन्द नहीं था। इसके फलस्वरूप सन् १६६२ के अन्त में यहाँ एक और क्रान्ति हुई। जिसमें अब्दुल कासिम मार दिया गया और इराक का शासन उसके एक साथी के हाथ में आ गया।

इस प्रकार अनेक प्रकार के घटना चक्रों में से गुजरता हुआ इस देश का इतिहास तरह-तरह के रंग बदल रहा है।

ईराक अपनी खनिज सम्पत्ति के लिए बहुत प्रसिद्ध है यहाँ पर मोसल और बगदाद में बड़े-बड़े तैल कूप हैं जिनसे बहुत बड़ी मात्रा में तैल प्राप्त होता है यह ईराक की ऐसी राष्ट्रीय सम्पत्ति है जिसका उसे गर्व है।

ईरान

मध्य एशिया का एक प्राचीन और सुप्रसिद्ध देश जो सारी दुनिया के प्राचीन संस्कृति सम्पन्न देशों में अपना खास स्थान रखता है। भूमध्य सागर से लेकर भारत की सीमा तक आये हुए तीन स्वतंत्र राज्यों में ईरान अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

भौगोलिक स्थिति

ईरान की भौगोलिक स्थिति में प्रकृति के द्वारा प्रदत्त अनेक विभिन्नताओं का सम्मिश्रण है। एक ओर पहाड़ी

और बीरान प्रदेशों का भयङ्कर दृश्य है। दूसरी तरफ मैदानों में छाये हुए विशाल खेतों की हरियाली और मधुरिमा इस देश की रमणीकता को बढ़ा रही है। रौरवी और जन मानव विहीन विस्तृत रेगिस्तान गर्मी की दुपहरियों में तप्त लोहे की भाँति तपा करता है। ईरान के उत्तर में करीब १८०० फीट ऊँचा अलबुर्ज पर्वत स्थित है जो हमेशा बर्फ से ढका रहता है।

लेकिन ईरान के कवियों ने गुलाब के बगीचों के रूप में जिस भूमि को अपने काव्यों में अमर बनाया है वह ईरान के दक्षिण भाग में स्थित प्रकृति की महान् क्रीड़ाभूमि है। ईरान के इस स्वप्न-राज्य में छोटे-छोटे सुन्दर गाँव बसे हुए हैं, हरियाली घास से छाये हुए बड़े बड़े विशाल मैदान हैं बुलबुल के अविराम गीतों से गूँजती हुई बड़ी-बड़ी अँगूर की झाड़ियाँ हैं। गुलाब के फूलों के विशाल वनों की सुगन्ध से वहाँ की भूमि हमेशा सुगन्धित रहती है।

प्राकृतिक विचित्रता की इस गोद में ईरान के अन्तर्गत जिस संस्कृति का सृजन हुआ, वह भी साहित्य, काव्य और कला-रुचि के क्षेत्र में इतनी ही विचित्र और इतनी ही समृद्ध है। पारसी भाषा की मानमीनी स्वच्छन्द गति और माधुर्यमयी शैली ने वहाँ के महान् कवियों की प्रतिभा के साथ मिलकर मानव-साहित्य को एक प्रकार का अपूर्व दान दिया है। इस भाषा के द्वारा ईरान की पुरानी ऐश्वर्य सम्पन्न एक विशाल संस्कृति ने अपना रूप प्रकट किया। भारतवर्ष से लेकर सुदूरवर्ती स्पेन के किनारे तक के सब देशों के आचार-विचार, ज्ञान विज्ञान, स्थापत्य और शिल्प तथा ललित कलाओं पर, ईरान की असाधारण प्रतिभा ने अपनी गहरी छाप लगाई। आधुनिक जगत् में सेरेसैनिक कला (Saracenic School of Art) नाम की जो स्थापत्य कला प्रसिद्ध है वह ईरान की शिल्प-प्रतिभा की सृष्टि है और इसका विस्तार ईरान से मिस्र और स्पेन तक हुआ था।

ईरान की लड़ाकू और प्रतिभाशाली प्रजा मुसलमानी धर्म के उदय से पूर्व 'जरथोस्ती' धर्म का पालन करती थी। ईसा से करीब छः सौ वर्ष पूर्व जरथोस्त ने इस धर्म की स्थापना की थी और उसके उपदेशों और सिद्धान्तों का संग्रह "अवेस्ता" नामक धर्मग्रन्थ में किया गया और यही जेन्द अवेस्ता ईरान का पूज्य धर्मग्रन्थ था।

मगर ईसा की सातवीं सदी में जब इस्लाम का जबर्दस्त प्रभाव सारे संसार में तेजी के साथ फैलने लगा तब ईरान भी इस तूफान से अपनी रक्षा नहीं कर सका और वहाँ की सारी जनता और राजकीय क्षेत्र ने इस्लाम को अङ्गीकार कर लिया। जो लोग बच गये उन्हें देश छोड़कर भारतवर्ष में आना पड़ा जो अभी तक पारसी नाम से प्रसिद्ध हैं और जरथोस्ती-धर्म के अनुयायी हैं।

पुरातन काल में ईरान पूर्व और पश्चिम के बीच चलने वाले व्यापार का केन्द्र था और उस समय सारे संसार के व्यापारिक क्षेत्र में ईरान का खास स्थान था। भारतवर्ष की मलमल की तरह ईरान के गलीचे, इस्फहान की शराब और रेशम सारे संसार के व्यापारिक बाजारों में ऊँची प्रतिष्ठा प्राप्त किये हुए थे।

मगर ये सब बातें भूतकाल की हो गई हैं। वर्तमान समय के ईरान की स्थिति बहुत साधारण है। समय के भीषण प्रहारों ने वहाँ के वैभव और संस्कृति को चूर-चूर कर दिया है। समय के कितने प्रबल आघात समय समय पर इस देश को सहन करने पड़े, इसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

प्राचीन इतिहास

ईरान का प्राचीन इतिहास ईसा से पूर्व छठी शताब्दी से आरम्भ होता है। इसके पूर्व इस देश पर मद (Medea) जाति का राज्य था। अखामनी साम्राज्य के संस्थापक साइरस (Cyrus the Great) महान ने ईसा से ५५९ वर्ष पूर्व इस मद जाति के साम्राज्य को जीतकर अखामनी साम्राज्य की स्थापना की। 'अखामनी' नाम अखामन नामक एक कबीले के सरदार के नाम पर रक्खा गया था। सम्राट साइरस ने मद जाति के विशाल साम्राज्य और असीरिया बेबिलोनिया इत्यादि राज्यों को जीतकर भारतवर्ष की सीमा से लेकर भूमध्य सागर तक अपने राज्य का विस्तार किया।

इसी साइरस महान — जिसने इतने बड़े ईरानी साम्राज्य

की स्थापना की—की समाधिपर जो अभिलेख खुदा हुआ था उसका अनुवाद इस प्रकार है—

"ऐ राहगीर ! चाहे तुम किसी देश और जाति के हो यह जान लो कि मैं पारसी साम्राज्य का संस्थापक साइरस हूँ । मेरे शरीर के ऊपर जो जमीन का कोष सा टुकड़ा है मुझे उसी के नीचे पड़ा रहने दो ।"

साइरस महान् के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी काम्बेसिस (Cambyses) हुआ । काम्बेसिस के समय में सारे साम्राज्य में बड़े बड़े विद्रोह प्रारम्भ हो गये जिनसे परेशान हो कर उसने आत्महत्या करली ।

दारा महान्

काम्बेसिस के बाद दारा महान् (Darius the Great) अखामनी—साम्राज्य का महान् प्रतापी सम्राट् हुआ । इसने ई॰ सन् पूर्व ५२१ से ४८५ तक राज्य किया । इसने अपने राज्य का बहुत विस्तार किया । ई॰ सन् पूर्व ५१२ में इसके राज्य की सीमायें उत्तर में काकासागर, कावेशस, कास्पियन और चीन की सीमा तक फैला हुआ शक-जाति का प्रदेश पूर्व में पञ्जाब-सिन्धु पश्चिम में भूमध्य सागर और मिस्र की पश्चिमी सीमा तक, तथा दक्षिण में अरब और सहारा के रेगिस्तान तक थी । एशिया और अफ्रीका में अपने साम्राज्य का विस्तार कर इसने यूरोप में यूनान पर आक्रमण किया मगर इस कार्य में उसे मनचाही सफलता नहीं मिली । सम्राट् दारा के परिश्रम और महत्वाकांक्षा की शिला लेख इस समय उपलब्ध हैं । इन शिला लेखों की भाषा संस्कृत से मिलती हुई है । इन शिला लेखों में दारा के लिए "आर्यपुत्र आर्य" और "क्षत्रियाणां क्षत्रिय" शब्दों का प्रयोग किया गया है इससे मालूम होता है कि वे लोग आर्य जाति के ही वंशज थे ।

सम्राट् दारा विश्व का पहला शासक था जिसने राजा की मूर्ति के साथ अपने सिक्के चलाए । उस के बाद ग्रीक राजाओं और भारतीय नरेशों ने भी इस प्रकार के सिक्के चलाये । इस सम्राट् की शासन-व्यवस्था इतनी उत्तम थी कि कई बातों में सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियों ने उसका अनुसरण किया । सम्राट् दारा के बनाये हुए राज-पथ उसकी राजधानी पार्सिपोलस से मकदूनियाँ मिस्र, भारत और मध्य एशिया तक फैले हुए थे । उनमें हर पन्द्रह मील पर धर्मशालायें बनी हुई थीं जिनमें मुसाफिरों के ठहरने की व्यवस्था थी ।

सम्राट् दारा के बाद सम्राट् जरक्सीज़ (Xerxes) हुआ । यह ईसा सन् पूर्व ४८५ में गद्दी पर बैठा और ई॰ स॰ पूर्व ४६६ तक अर्थात् १९ वर्ष इसने राज्य किया । इसने १२ जहाज और तेरह लाख सेना के साथ यूनान पर आक्रमण किया । उस समय तक इतनी बड़ी सेना संसार के किसी भी युद्ध में शामिल नहीं हुई थी । इसी लड़ाई में थर्मापोली की घाटी संसार के इतिहास में प्रसिद्ध हो गई जिसमें लियोनिडास नामक ग्रीक सैनिक के नेतृत्व में थोड़े से ग्रीक सैनिकों ने अपने प्राणों के मूल्य पर उस घाटी में आने से उस विशाल सेना को रोक लिया । मगर ईरानी सेना इस कठिनाई को देखकर दूसरे रास्ते से एथेन्स में घुस गई और उस पर अपना अधिकार कर लिया । मगर आगे चलकर सलामिस होस के जलयुद्ध में एक दिन में यूनानी जहाजों ने ईरान के २ जहाजों को डुबो दिया । इससे निराश होकर ईरानी सेना वापस लौट आई । सम्राट् जरक्सीज ई॰ स॰ पूर्व ४६६ में अपने एक शरीर रक्षक के हाथ मारा गया ।

जरक्सीज के पश्चात् अखामनी साम्राज्य में आठ बादशाह और हुए जिनके नाम अर्तक्षत्र प्रथम (ई॰ पू॰ ४६६ से ४२५) जरक्सीज द्वितीय (ई॰ पू॰ ४२५-४२४) दारा द्वितीय (ई॰ पू॰ ४२४-४०५) अर्तक्षत्र द्वितीय (ई॰ पू॰ ४०५ से ३५८) अर्तक्षत्र तृतीय (ई॰ पू॰ ३५८-३३६) दारा तृतीय (ई॰ पू॰ ३३६-३३१) है ।

अन्तिम सम्राट् दारा तृतीय पर मकदूनिया के महान् सिकन्दर का भारी आक्रमण हुआ जिसने अखामनी साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया । (पूरा वर्णन प्रथम भाग में अलेक्जेन्डर महान् के विवरण में देखें)

ग्रीक बाख्तरी साम्राज्य

'अलेक्जेन्डर महान्' की विजय और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके सेनापतियों में कई वर्षों तक बड़ी लड़ाइयाँ हुईं । अन्त में ई॰ स॰ से ३१२ वर्ष पूर्व ईरान का राज्य 'सेल्यूकस' के हाथ में आया । सेल्यूकस ने यूफ्रेटीज नदी के तीर पर सेल्यूकिया नगर बसा कर वहाँ अपनी

राजधानी स्थापित की। इस शासन में सारे ईरान में अत्यन्त अव्यवस्था और अराजकता फैल गई। इस अव्यवस्था के परिणामस्वरूप ईरान में एक नवीन शक्ति का उदय हुआ जिसे पार्थियन राजवंश कहते हैं।

पार्थियन राजवंश

पार्थियन वंश के इतिहास प्रसिद्ध वीर मिथ्रिडेट्स ने ग्रीक बाख्त्री राजा डिमेट्रियस तृतीय को हराकर ईरानी साम्राज्य पर कब्जा कर लिया। यह पार्थियन-सत्ता ईरान पर लगभग ४ वर्षों तक चली। इस वंश का अन्तिम राजा आर्टबेनस है सन् २११ में गद्दी पर बैठा। इसने रोम के सम्राट् के साथ २ बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं और रोमन लोगों को पराजित किया। मगर इसी के शासन काल में ईरानी लोगों ने पार्थियन-सत्ता के विरुद्ध एक भारी विद्रोह किया। इस विद्रोह में पार्थियन-साम्राज्य का अन्त हो गया और ईरानी साम्राज्य की सत्ता सासानी वंश के हाथ में आ गई।

सासानी साम्राज्य

सासानी साम्राज्य की स्थापना आर्कमीनियन वंश के अर्देशिर नामक एक बहादुर व्यक्ति ने की और वही इस वंश का प्रथम शासक बनाया गया। इसने ई० सन् २२७ से २४० तक शासन किया। इसके शासन काल में ईरान ने फिरसे जरथोस्ती धर्म और संस्कृति को ग्रहण किया। जरथोस्ती धर्म के व्याख्याता लगभग चालीस हजार मागी (Magi) पुरोहित राजधानी पासिपोलस में एकत्र हो कर इस नवीन अभ्युत्थान को प्रेरणा देने लगे। इन्हीं मागियों में से चुने हुए सात मागियों की एक प्रतिनिधि सभा बनाई गई जिसका नेता आर्दाविराफ (Arda Viraf) था। इसी 'आर्दाविराफ' ने सम्राट् अर्देशिर की आज्ञा से जरथोस्ती धर्म के बिखरे हुए वचनों को एकत्रकर सुप्रसिद्ध जेन्द अवेस्ता ग्रन्थ का संकलन किया।

सासानी साम्राज्य के बादशाह शापुर प्रथम ने रोम के सम्राट् वेलेरियन को लड़ाई में अपनी फौज सहित आत्म समर्पण करने के लिए बाध्य किया था। रोमन सम्राट् जूलियन को भी हराकर सासानी-वंश ने बहुत ख्याति प्राप्त कर ली थी।

सासानी राजवंश के कुल २८ सम्राटों ने सन् २१७ से सन् ६५१ तक राज्य किया इनमें सम्राट् नौशेरवाँ सबसे अधिक प्रसिद्ध बहादुर और लोकप्रिय हुआ। इसका समय सन् ५३१ से ५७९ तक था।

सासानी शासन-काल में ईरान की समृद्धि पूरे उत्कर्ष पर पहुँच गयी थी। शिक्षा, शिल्प, व्यापार, साहित्यकला इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में ईरान ने बड़ी उन्नति की थी।

मगर चार शताब्दी तक शासन करने के पश्चात् इस साम्राज्य की अवनति के दिन आये और इस्लामी विजेताओं के प्रचण्ड प्रहारों से यह साम्राज्य पूर्ण-विध्वस्त हो गया और थोड़े ही समय में समूचा ईरान इस्लामी झण्डे के नीचे आ गया। जिन लोगों ने इस्लाम को ग्रहण नहीं किया, उन्हें भाग कर भारतवर्ष में आना पड़ा।

उस समय सासानी साम्राज्य का अंतिम बादशाह यज्दगर्द तृतीय राज्य कर रहा था। इसी काल में अर्थात् सन् ६३५ के लगभग अरब सेनापति इब्न-वाक्कास ने ईरानी सेना को केडेसिया के रणक्षेत्र में एक करारी पराजय दी और उसके बाद सन् ६३७ में साठ हजार की एक बड़ी सेना के साथ फिर ईरान पर चढ़ आया। इस हमले को ईरानी सेना बरदाश्त नहीं कर सकी और 'यज्दगर्द' को राजधानी छोड़ कर भागना पड़ा। दस वर्ष तक यह प्रतापी सम्राट् इस्लाम की प्रचण्ड टक्कर में पड़कर इधर उधर भागता रहा और अन्त में अपने एक नौकर के हाथों मारा गया।

इसके पश्चात् तीन चार शताब्दी तक ईरान अरबी खलीफाओं के अधिकार में रहा। आठवीं सदी के मध्य भाग में खलीफा की राजधानी डेमिस्कस से हटाकर बगदाद में लाई गयी। बगदाद में ही सुप्रसिद्ध खलीफा हारूँ अल रशीद हुआ जिसके दरबार के वैभव और विलास की कहानियाँ संसार में प्रसिद्ध हैं। इस काल में ईरानी साहित्य और कला की बहुत उन्नति हुई। इसके बाद क्रमशः खलीफाओं के शासन में शिथिलता आने लगी व नाम के बादशाह रह गये और ईरान में सामानी-वंश की सत्ता प्रकट हो उठी। सामानी राजवंश में इस्माइल, हमकिन, नूह आदि शासक प्रसिद्ध हुए। ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में गजनी के सुलतान महमूद की सत्ता ईरान में प्रबल हो गयी। मगर ग्यारहवीं

सदी के मध्य भाग में अर्थात् सन् १ ३६ में सल्जुकी तुर्क तुगरलबेग गजनी नेता मसऊद को पराजित कर युद्धक्षेत्र में ही सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। तुगरलबेग की मृत्यु के पश्चात् अल्पअरसलान ने इस साम्राज्य का विस्तार किया। इसने निजामुलमुल्क नामक प्रसिद्ध व्यक्ति को अपना वजीर बनाया। निजामुलमुल्क बड़ा राजनीतिज्ञ, विद्वान और न्यायप्रिय व्यक्ति था।

सामानी और सेलजुक-युग अर्थात् ईस्वी सन् की दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी—ईरानी साहित्य के विकास की स्वर्ण-शताब्दियाँ कही जा सकती हैं। सूफी सम्प्रदाय के कवियों की प्रेम रस से भरी हुई मधुर कवितायें इस युग की खास देन हैं। ख्यागी फिरदौसी, जलालुद्दीन रूमी, गजाली इत्यादि महान् कवियों की अपूर्व अमर साहित्य की प्रेमरस से सराबोर बनी हुई पक्तियाँ उमर खैय्याम की मादक रुबाइयाँ इसी युग की देन हैं जो समस्त मानवीय साहित्य की सनातन सम्पत्ति हैं।

चंगेज खाँ का आक्रमण

सेलजुक शासन के अन्तिम समय में बारहवीं सदी के अन्तिम भाग में सहसा पूर्व प्रदेश से तूफानी बादल की तरह एक बवण्डर उठा और उसने ईरान को घेर लिया। प्रचण्ड विजेता चंगेज खाँ और उसके बाद हलाकू आदि नामक मंगोल जाति के प्रबल आक्रमण ईरान पर हुए। इन आक्रमणों ने ईरान और बगदाद की सुन्दर भूमि को रौंद कर श्मशान सा बना दिया। बगदाद का विशाल पुस्तकालय जला कर भस्म कर दिया गया। इसके बाद सन् १३८७ में प्रसिद्ध विजेता 'तैमूरलंग' ने एक तूफान की तरह पैदा होकर ईरान पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार करीब डेढ़ सौ वर्षों तक ईरान का इतिहास आक्रमक लोगों के भयंकर तूफानों के बीच गुजरता रहा।

सोफी-वंश

आर्देबिल के प्रसिद्ध शिया पुरोहित शेख सैयद के वंशधर इस्माइल नामक सरदार ने सन् १४९८ से सन् १५ तक सारे ईरान पर कब्जा कर सोफी-वंश का शासन कायम किया। इस वंश में यद्यपि सम्राट् शाह अब्बास का नाम ईरान के इतिहास में बड़ा गौरवपूर्ण समझा जाता है। शाह अब्बास सन् १५८६ में गद्दी पर बैठा। इसके ४२ वर्ष के शासन में ईरान सभ्यता और वैभव के ऊँचे शिखर पर पहुँच गया। शाह अब्बास की गणना इतिहास काल भी ईरान के सर्वश्रेष्ठ बादशाह की तरह करता है। उसकी राजधानी 'इस्फहान' उस समय की दुनिया में एक गौरवपूर्ण नगरी मानी जाती थी। यूरोप के भिन्न भिन्न देशों के राजदूत इस बादशाह के दरबार में आकर तरह-तरह की भेंटों से इसका सम्मान करते थे।

शाह अब्बास की मृत्यु के पश्चात् सोफी-वंश का शासन यद्यपि सौ वर्ष और चला पर बाद में उसके मुख्य किले का कोई व्यक्ति इसमें पैदा नहीं हुआ। सोफी वंश के अन्तिम शासक हुसैन शाह को एक अफगान सरदार मुहम्मद ने हराकर फिर ईरान में अव्यवस्था पैदा कर दी। मगर कुछ ही वर्षों में महान् विजेता 'नादिर शाह' ने शक्ति-सम्पन्न होकर सन् १७३ में अफगानी को ईरान से निकाल दिया। उसके बाद इस 'आततायी' ने हिन्दुस्तान के मुगल सम्राट् को भी हराया और वहाँ से करोड़ों रुपयों की दौलत लूट कर ले गया। मगर अन्त में सन् १७४७ में इस अभिमानी सरदार को कत्ल कर दिया गया और उसका बनाया हुआ विशाल साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया।

नादिर शाह की मृत्यु के पश्चात् करीब ५ वर्षों तक ईरान में छोटे बड़े परिवर्तनों के साथ अव्यवस्था और अराजकता की स्थिति रही। इसके बाद सन् १७९८ में आगा मुहम्मद नामक काचार-वंश ने एक खोजा ने फिर से वहाँ व्यवस्था कायम की। खुरासान को जीत कर उसने तिफलिस और दागिस्तान भी अपने अधिकार में ले लिये। मगर तीन ही वर्ष के पश्चात् उसकी हत्या कर दी गई और उसके स्थान पर 'फतेह अली शाह' ईरान की गद्दी पर आया।

फतेहअली शाह

फतेहअलीशाह के जमाने में ही ईरान विदेशी शक्तियों की राजनैतिक प्रतियोगिता का अखाड़ा बन गया। इसकी भौगोलिक स्थिति के कारण विदेशी लोगों की निगाह में दिन दिन इसका महत्व बढ़ने लगा।

सबसे पहले फ्रान्स के 'नैपोलियन' की दृष्टि इस देश पर पड़ी। भारतवर्ष पर हमला करने के लिए वह ईरान और अफगानिस्तान दोनों का उपयोग करना चाहता था।

उस समय भारत का गवर्नर जनरल लार्ड वेलेसली था। वह भी बड़े ध्यान से ईरान में फ्रान्स और रूस की गतिविधि को देख रहा था। उसने सन् १८ में कैप्टन 'मालकम' को ईरान भेजा। इसके प्रयत्न से ईरान और भारतवर्ष में एक संधि हुई, जिसके अनुसार ईरान में फ्रान्स पदार्पण पर पाबन्दी लगाई गई और ईरान ने अंग्रेजों के साथ मित्रता के सम्बन्ध स्थापित कर लिये। पर सन् १८०४ में यह संधि रद्द करके ईरान ने रूस और फ्रान्स से मित्रता कर ली। सन् १८१४ में फिर रूस और फ्रान्स के साथ की हुई सब संधियों को रद्द कर ईरान ने अंग्रेजों से नई संधि कर ली।

इधर रशिया अपनी फौजी ताकत के बल पर धीरे धीरे ईरान के भागों पर कब्जा करता चला जा रहा था। अन्त में उससे हारते हारते सन् १८२८ में ईरान ने रूस के साथ तुर्कमेन चाइनीज के नाम से एक संधि की इस संधि में अत्यन्त अपमान पूर्ण शर्तें मंजूर कर उसे जार्जिया, एरिवान नाकचिवान इत्यादि प्रदेश रूस को देना पड़े और तीस लाख पौण्ड नुकसानी भरने की शर्त भी उस माननी पड़ी।

इसके पश्चात् ईरान में रशिया का पंजा बड़ी मजबूती से जम गया और ईरान की आन्तरिक और बाह्य राजनीति में वह मनमानी चलाने लगा। रशिया और इंग्लैंड उसकी रक्षा के भिखारी बनकर वहाँ रहने लगे।

मुहम्मद शाह

ईरान के फतेहअली शाह की मृत्यु सन् १८३४ में हो गयी और उसकी जगह मुहम्मद शाह ईरान की गद्दी पर बैठा। इसने चारों तरफ फैली हुई अराजकता को दबा कर 'हिरात' नगर पर घेरा डाला मगर हिरात का अमीर किला उससे नहीं जीता जा सका और उसे निराशापूर्ण स्थिति में वापस लौट आना पड़ा। सन् १८४८ में उसकी मृत्यु हो गयी।

नासिरुद्दीन शाह

मुहम्मद शाह के बाद उसका पुत्र नासिरुद्दीन १६ वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठा। इसी के जमाने में इतिहास प्रसिद्ध बाबी विद्रोह ने सरका मचा दिया।

बाबी विद्रोह

ईरान में उस समय बाबी-सम्प्रदाय अन्त उत्पन्न हुआ था। बाबी सम्प्रदाय सैयद अलीमुहम्मद के द्वारा स्थापित किया हुआ, एक नवीन सम्प्रदाय था। सैय्यद अलीमुहम्मद ने घोषणा की थी कि पैगम्बर मुहम्मद का युग समाप्त हो गया है और अब मैं सर्व नवयुग के धर्म का प्रवर्तक हूँ।' तत्कालीन शासन ने उसे कैद करके गोली से उड़ा दिया। सैय्यद अलीमुहम्मद मारा गया, मगर बाबी सम्प्रदाय का अन्त नहीं हुआ। अलीमुहम्मद के पश्चात् "इजाह" नामक व्यक्ति बाबियों का धर्मगुरु बना।

इन्हीं बाबी लोगों ने नासिरुद्दीन शाह के शासन में एक भारी विद्रोह का सूत्रपात किया, जिससे सारे ईरान में अशान्ति फैल गई। इन लोगों ने वहाँ के बड़े दीवान तकीखाँ का खून कर डाला और शाह नासिरुद्दीन की हत्या का भी प्रयत्न किया, मगर उसमें सफलता नहीं मिली। उसके बाद बाबी आन्दोलन को अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक दबा दिया गया और बहुत से बाबी नेताओं की हत्या कर दी गई। बाबी सम्प्रदाय के द्वारा किये हुए आत्म-त्याग और वीरता-पूर्ण कार्यों से ईरानी जनता की सहानुभूति इन लोगों की तरफ हो गई और शाह जनता में अप्रिय हो गया।

नासिरुद्दीन शाह के राज्य काल के चौथे हिस्से में ईरानी सेना ने 'हिरात' पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया और उसे ईरान में मिला लिया। इससे अंग्रेजों को बहुत बुरा लगा और उन्होंने ईरान की खाड़ी के 'बुशायर' बन्दरगाह पर अपनी सेना उतार कर मोहामेरा और अहवाज—इन दो स्थानों पर कब्जा कर लिया। सन् १८५७ में अंग्रेजों की ईरान से एक संधि हुई जिसके अनुसार ईरान ने अफगानिस्तान को एक स्वतंत्र देश स्वीकार कर लिया और वहाँ से अपनी सेनायें वापस बुला लीं।

नासिरुद्दीन के समय में मध्य एशिया में रूस की घुसपैठ बड़ी तेजी से होने लगी। सन् १८६५ में उसने ताशकन्द और समरकन्द पर कब्जा करके वहाँ पर 'तुर्किस्तान' नामक नया प्रान्त बनाया। उसके बाद उसने १८६८ में प्रसिद्ध शहर समरकन्द और १८७३ में खीवा को जीत लिया। इस प्रकार मध्य एशिया के बड़े महत्वपूर्ण स्थान एक के बाद एक रशिया के अधिकार में आ गये।

काकेशस जीतने के बाद केवल पच्चीस वर्षों में मध्य एशिया को रौंदता हुआ, रशिया अफगानिस्तान की सीमा पर आ पहुँचा।

अंग्रेज लोग भी इस समय चुप नहीं थे। इन्होंने भी नासिरुद्दीन के शासन-काल में अपने लिए कई सुविधायें प्राप्त कर ली थीं। अंग्रेजों को ईरान में एक बैंक (Imperial Bank of Persia) खोलकर नोट छापने की तथा 'कारुन' नदी में व्यापारिक जहाज चलाने की इजाजत शाह ने दे दी।

इस प्रकार एक तरफ रूस और दूसरी तरफ अंग्रेज—इस प्रकार इन दो पाटों के बीच ईरान की स्वतन्त्रता बुरी तरह पिसने लगी।

सन् १८९६ में शाह नासिरुद्दीन एक अज्ञात व्यक्ति की गोली से मारा गया।

मुजफ्फर शाह

नासिरुद्दीन के पश्चात् मुजफ्फरशाह ईरान का शाह बना। इसके समय में ईरान में जुल्म और अराजकता का दौर दौरा बहुत प्रबल हो गया और जनता के असन्तोष ने उग्र रूप धारण कर लिया। सन् १९०७ में मुजफ्फर शाह का देहान्त हुआ और उसकी जगह मुहम्मद अली शाह की गद्दी पर बैठा।

सैय्यद जमालुद्दीन

ईरान में छाये हुए इस असन्तोष की ज्वाला में से जो चिनगारियाँ पैदा हुईं उसमें एक बड़ी चिनगारी के रूप में सैय्यद जमालुद्दीन प्रकट हुआ। सैय्यद जमालुद्दीन का जन्म सन् १८३८ में हमदान में हुआ था। इसका मस्तिष्क प्रारम्भ से क्रान्तिकारी भावनाओं का उद्गम स्थान था। इसकी प्रतिभा को देखकर शाह नासिरुद्दीन ने इसे अपने प्रधान-अमात्य के पद पर लिया था। मगर इसने उस स्थान पर रह कर भी जनता में मजहबी भावनाओं को फैलाना शुरू किया जिसके परिणामस्वरूप इन्हें भारत और मिस्र से निर्वासित किया हुआ यह क्रांतिकारी ईरान से भी निर्वासित कर दिया गया।

वहाँ से इंग्लैंड में जाकर इसने "कानून" के नाम से एक क्रान्तिकारी पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। इस पत्र के द्वारा छिपे छिपे क्रांति की लहरें उठीं और ईरान में पहुँचने लगीं।

माल्कम खाँ

ईरान की तत्कालीन जागृति में सैय्यद जमालुद्दीन के बाद दूसरा स्थान माल्कम खाँ का आता है। ईरान के क्रांतिकारी इतिहास में माल्कम खाँ का नाम अपना विशेष स्थान रखता है। माल्कम खाँ पहले एक जादूगर के रूप में प्रसिद्ध था। ईरान में इसने "फरामूशखाना" (House of forgetfulness) नामक ठग-मंत्र की एक गुप्त संस्था स्थापित की। इस संस्था के द्वारा यह जनता में क्रांति की भावनाएँ पैदा करने लगा। यह देखकर ईरान के शाह ने इसे लंदन में ईरान का राजदूत नियुक्त करके भेज दिया।

वहाँ पर कानून नामक पत्र के सम्पादन और प्रकाशन में यह जमालुद्दीन का सहयोगी बन गया।

इन्हीं दिनों मुजफ्फर शाह ने अपने दामाद आइन-उ-दौला को अपना प्रधान मंत्री बनाया। आइन-उ-दौला अत्यन्त स्वार्थी नीच और अत्याचारी व्यक्ति था, इसने और भी भयंकर रूप से ईरानी जनता का शोषण और उस पर अत्याचार करना प्रारम्भ किया।

एक तरफ ईरानी जनता शाह के अत्याचारों से शोषित और क्षुब्ध हो रही थी, दूसरी तरफ रूस और इंग्लैंड वहाँ की कमजोरी का लाभ उठा कर इस हरे भरे देश को अपने शिकंजे में फाँसने का प्रयत्न कर रहे थे। ३१ अगस्त १९०७ के दिन 'सेंट पीटर्स बर्ग' में इंग्लैंड और रूस के बीच ऐंग्लो-रशियन सन्धि के एक पैक्ट पर हस्ताक्षर हुए। इस सन्धि के अनुसार इस्फहान और यज्द से अफगान सीमा तक का सारा उत्तरी ईरान रूस का प्रभाव क्षेत्र बन गया और बन्दर अब्बास और करमान से अफगानिस्तान तक सारा दक्षिणी ईरान इंग्लैंड के प्रभाव क्षेत्र में माना गया। रूस ने अफगानिस्तान और तिब्बत पर अंग्रेजी प्रभाव को स्वीकार कर लिया और उसके बदले में अंग्रेजों ने ईरान के बहुत बड़े भाग पर रूस के प्रभाव को स्वीकार कर लिया।

इस सन्धि से भी ईरान में बड़ी उत्तेजना फैली और इन सब बातों का परिणाम १९०९ की ईरानी क्रांति के रूप में प्रकट हुआ।

१९०९ की क्रान्ति

इस प्रसिद्ध क्रांति में क्रांतिकारियों का नेतृत्व सिपाहदार ए-आजम अली खाँ और इफ्राइम नामक आर्मेनियन सरदार कर रहे थे। सन् १९०९ के मई मास में अपनी सेनाओं के साथ तेहरान पर हमला करने की इस्फहान के साहसी नेता सरदार असाद ने घोषणा की। दूसरी तरफ से उत्तर दिशा के क्रांतिकारी काजविन-तेहरान मार्ग पर तेहरान से ४ मील दूरी पर आकर रुक गये। तीसरी ओर पश्चिम दिशा से बख्तियारी लोग भी अन्य क्रांतिकारियों से मिलने, तेहरान से २५ मील पश्चिम दिशा में आकर रुक गये।

सरकारी कज्जाक सेना का नेतृत्व पोरियनीकोफ नामक सेनापति कर रहा था। एक रात्रि को अचानक मालूम हुआ कि सरदार सिपाहदार कज्जाक सेना के बीच में से होकर चुपचाप तेहरान की तरफ बढ़ गया है। तेहरान में दोनों पक्षों के बीच में भयंकर लड़ाई हुई मगर अन्त में मैदान क्रांतिकारियों के हाथ में रहा। ईरान के शाह मुहम्मद अली और उनकी महारानी ने रशियन राजदूत के भवन में अपने प्राण बचाने के लिए आश्रय लिया। बाद में बीस हजार पौंड की वृत्ति देकर उसे ईरान से बाहर कर दिया गया।

इसके पश्चात् नई व्यवस्था में सरदार सिपाहदार ईरान का युद्धमंत्री सरदार असाद गृहमंत्री और इफ्राइम पोलिस का अधिकारी बना। इसके पश्चात् उसी रात को एक विशेष बैठक में शाह मुहम्मद अली को पदच्युत करके उसके स्थान पर उसके पुत्र सुलतान अहमद को ईरान का शाह बनाया गया।

इसके तुरन्त बाद ईरान में मजलिस पार्लमेंट के सदस्यों का जनतंत्र-पद्धति के आधार पर चुनाव हुआ और शाह सुलतान अहमद के संरक्षण में मर्यादित राजतंत्र की स्थापना हुई और विधान का निर्माण हुआ।

मर्यादित राजतंत्र की स्थापना के बाद जनता में जागरण की एक लहर बस्र आई नये-नये पत्र तथा पत्रिकाएँ निकलने लगीं। इन पत्र पत्रिकाओं में इरानो नौ, मजलिस शार्क, सावीम इत्यादि पत्रों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

फिर भी ईरान को मूलभूत समस्याओं का अन्त अभी तक नहीं हुआ। पाँच-छः वर्ष की इस भारी उथल पुथल और शाह लोगों की नीच मनोवृत्ति में ईरान का खजाना खाली हो चुका था। उधर रूस और अंग्रेजों के दाँत इस नव-विकसित पौधे में दिन दिन अधिक गहराई से गड़ रहे थे।

मजलिस की स्थापना होते ही रूस ने ईरान के साथ की हुई पुरानी संधियों को रद्द कर दिया और चारों ओर सारे देश में तरह-तरह के षड्यंत्र कर विद्रोह पैदा करना प्रारम्भ कर दिया।

इधर अंग्रेजों ने भी ईरानी मजलिस को अंतिम नोटिस दिया कि दक्षिणी ईरान में फैली हुई अराजकता को दबाने के लिए अंग्रेजी फौज को सजा दी जाय और उसका सारा खर्च ईरान की सरकार उठावे।

इन्हीं सारी गड़बड़ियों के बीच प्रथम यूरोपीय महायुद्ध से पहले ईरान की हालत अत्यन्त दुःखद और नाजुक हो गई। अंग्रेजों और रशियनों का शिकंजा वहाँ दिन-प्रतिदिन अधिक कसता गया।

प्रथम महायुद्ध के समय ईरान एक तरफ से जर्मन और तुर्की सेनाओं के द्वारा और दूसरी तरफ से रूसी और अंग्रेजी सेनाओं से कुचला जाता रहा।

इसके कुछ समय पश्चात् सन् १९१७ में रूस में महान् बोल्शेविक क्रान्ति हुई। 'जार' के तख्त को उलटकर बोल्शेविक सरकार की स्थापना हुई और उसने तुरन्त ईरान से अपनी सेनाएँ हटा लीं।

रूस की सेनाएँ हटते ही ईरान में अंग्रेजों का निर्द्वन्द्व वर्चस्व कायम हो गया।

सन् १९१९ में अंग्रेजों ने एक एंग्लो-पार्शियन-एग्रीमेंट ईरान पर लादा। इस इकरारनामे से ईरान की स्वतंत्र सत्ता सिर्फ नाम मात्र की रह गई और सारे राजनैतिक अधिकार अंग्रेजों के हाथ में चले गये।

इन सारी घटनाओं से ईरान की जनता क्षुब्ध हो रही थी। असन्तोष की ज्वाला अत्यन्त तेजी से भभक रही थी, मगर किसी योग्य नेता के अभाव में वे सारी शक्तियाँ व्यर्थ जा रही थीं। इसी समय इस ज्वाला की चिनगारी रूप रजा खाँ नामक एक महान् पराक्रमी व्यक्ति प्रकट होता है।

रज़ा ख़ाँ

एक अत्यन्त गरीब घर में छोटे से ग्राम में पैदा होकर रज़ा ख़ाँ ने ईरान के आधुनिक इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया। रज़ा ख़ाँ का जन्म सन् १८७७ में उत्तरी ईरान के पहाड़ी प्रदेश के एक छोटे से ग्राम में हुआ था। गरीबी के कारण केवल पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वह कज़ाक-सेना में एक मामूली सैनिक की तरह भरती हो गया। इसी समय से ईरान के अन्तर्गत जो लगातार उथल पुथल हो रही थी उसे वह बड़े ध्यान से देख रहा था। सन् १९१९ में जब ऐंग्लो-पर्शियन पैक्ट को ईरान के मन्त्रिमण्डल ने स्वीकार कर लिया तब सारे ईरान में प्रचण्ड असन्तोष की ज्वाला धधक उठी। दूरदर्शी रज़ा ख़ाँ ने इस अवसर का उपयोग करने का निश्चय किया। इसी समय तेहरान में डॉ॰ ज़ियाउद्दीन अपनी 'राद' पत्रिका के द्वारा उग्र प्रचार कर रहा था।

सन् १९२१ की फरवरी में रज़ा ख़ाँ की कज़ाक-सेना तेहरान के दरवाज़े पर पहुँच गई और अचानक आक्रमण करके वहाँ के शाह के अमले को गिरफ्तार कर लिया और "सरदार ए-सिपाह" की पदवी के साथ रज़ाख़ाँ ने सारी सत्ता अपने हाथ में ले ली और 'राद'-पत्रिका के सम्पादक डॉ॰ ज़ियाउद्दीन को प्रधान मंत्री बना दिया और ऐंग्लो पर्शियन पैक्ट को रद्द कर दिया।

सत्ता हाथ में लेने के बाद रज़ाशाह ने सारे देश में फैली हुई बगावतों और डकैती का दमन किया, राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की।

ईरानी जनता रज़ाख़ाँ के कारनामों पर मुग्ध हो गई। जिसके परिणामस्वरूप सन् १९२५ के अक्टूबर मास में राष्ट्रीय मजलिस ने ईरान के शाह सुलतान अहमद को पद च्युत कर रज़ाख़ाँ को 'ईरान के शाह' के आसन पर बिठा दिया। ईरान के इतिहास में यह अभूतपूर्व घटना थी।

शाह के आसन पर आसीन हो रज़ा ख़ाँ ने ईरान की शान्ति और सुरक्षा के लिए दो लाख आधुनिक शस्त्र-शस्त्रों से सज्जित सेना का संगठन किया। उसने अपनी हवाई शक्ति बढ़ाने के लिए देश के कई नवयुवकों को ट्रेनिंग के लिए फ्रान्स भेजा और हवाई शक्ति बढ़ाने का पूर्ण प्रयत्न किया। सन् १९२७ में उसने अनिवार्य सैनिक-शिक्षा का कानून बनाया जिसके अनुसार २१ से ४० वर्ष तक के प्रत्येक व्यक्ति के लिए २ साल तक सेना में भरती होकर फौजी तालीम लेना अनिवार्य कर दिया गया। इसी प्रकार सामाजिक सुधारों में भी उसने अनेक कार्य किये नारी जाति को शिक्षा और विकास का पूर्ण अवसर दिया गया।

रज़ाशाह पहलवी

रज़ा ख़ाँ के पश्चात् उसका पुत्र रज़ाशाह पहलवी ईरान की गद्दी पर आया। ईरान के दक्षिणपश्चिमी प्रान्त में तेल का विशाल भण्डार है जिस पर यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपना पंजा जकड़ रखा था। ईरानी जनता इन विदेशियों के पंजे से इस तैल भण्डार को मुक्त करना चाहती है। इसी सिलसिले में कुछ समय पूर्व ईरान के प्रधान मंत्री मुसादिक की हत्या हुई।

सन् १९५८ में ईरान के शाह रज़ाशाह पहलवी ने अपनी दूसरी बेगम सुन्दरी सुरैया को इसलिए तलाक दे दिया कि राजवंश के लिए उसने कोई पुत्र प्रदान नहीं किया। इसके पहले वह अपनी पहली बेगम मिस्र की राजकुमारी को भी इसी अपराध पर तलाक दे चुका था।

दिसम्बर १९५९ में उसने फराहदीबा नामक एक इक्कीस वर्षीय सुन्दरी से अपना तीसरा विवाह किया।

ईरानी (फ़ारसी) साहित्य

राजनैतिक वैभव की तरह ईरान के साहित्यिक वैभव ने भी अपना एक महान् इतिहास का निर्माण किया है। ईरान के विद्वानों और कलाकारों ने फारसी भाषा में अपने महान् साहित्य का निर्माण किया है। फारसी के पहले पहलवी और अवेस्ती भाषा में भी साहित्य का निर्माण हुआ है पर वह अधिकतर धर्म-ग्रन्थों तक ही परिमित था। अवेस्ती भाषा वैदिक संस्कृत से बहुत मिलती हुई थी।

फारसी भाषा अरबी लिपि में लिखी जाती है और इसके साहित्य का विशेष विकास ईरान में इस्लाम धर्म के प्रवेश के पश्चात् ही हुआ।

रूदागी

फारसी भाषा में कविता करने वाले महान् कवियों में समय की दृष्टि से पहला नाम "रूदागी" का आता है इसका

समय ईसवीसन् ९ के आसपास माना जाता है। रूदागी क्लासिकल वर्ग का कवि था। वह तत्कालीन सामानी नरेश नस्र-इब्न-अहमद के दरबार का दरबारी था। इसने तीन ऐतिहासिक काव्य लिखे।

जिस समय रूदागी का आविर्भाव हुआ, उस समय ईरान में राजकीय स्थिरता और शान्ति स्थापित थी और लोगों की रुचि जीवन के आनन्द और मौजमजे की तरफ दल रही थी। प्रकृति के सौन्दर्य, नारी, मदिरा और संगीत की तरफ उनकी भावनायें दौड़ने लगी थीं और इस्लाम के धार्मिक अनुशासन से दबाये जाने पर भी ये भावनायें उभड़ रही थीं। कवि रूदागी भी इस बहती हुई हवा से अपने को बचा नहीं सका और उसकी कवितायें धार्मिक अनुशासन की दीवारों को तोड़ कर अनन्त की ओर बह चलीं।

रूदागी के साथ ही कवि दकीकी का नाम लिया जाता है उसने अपनी कविताओं में संसार की चार नियामतों का विवेचन किया है उसमें ये चार नियामतें रस भरे लाल ओंठ सारंगी का नाद जरथोस्त के वचन और मदिरा को बताई है। फिरदौसी का सुप्रसिद्ध महाकाव्य "शाहनामा" का लिखना दकीकी ने ही प्रारम्भ किया था। मगर एक हजार शेर लिख चुकने पर एक दिन उसके किसी गुलाम ने उसे मार डाला।

फिरदौसी

दकीकी के बाद "फिरदौसी" की अमर लेखनी ने फारसी साहित्य को अमर कर दिया।

ग्यारहवीं सदी में प्रसिद्ध मुसलमान विजेता महमूद गजनवी के दरबार में कवियों लेखकों और विद्वानों का जमघट सा लगा हुआ था। फिरदौसी भी इन्हीं विद्वानों में से था उसने ३५ वर्ष परिश्रम करके अपने महाकाव्य "शाहनामा" को पूरा किया। ऐसा कहा जाता है कि जब वह अत्यन्त उत्साह के साथ भारी पुरस्कार की आशा से उस ग्रन्थ को भेंट करने महमूद गजनवी के दरबार में ले गया तो न मालूम क्यों महमूद गजनवी ने उस समय उसमें दिलचस्पी नहीं दरसाई और न कुछ इनाम ही दिया। इस अपमान का फिरदौसी पर इतना भयंकर प्रभाव पड़ा कि उसकी मृत्यु हो गयी। पीछे से जाकर महमूद गजनवी को भी अफसोस हुआ और उसने अशर्फियों की कुछ थैलियाँ अपने साथियों के साथ फिरदौसी के पास भेजी मगर जिस समय वे थैलियाँ लेकर पहुँचे उस समय इस महान् कवि का शव कब्र में दफनाया जा रहा था। इस प्रकार इस महान् कवि का ऐसा करुण अन्त हुआ।

फिरदौसी के शाहनामे में प्राचीन युग के ईरानी पराक्रम का सजीव भाषा में वर्णन किया गया है इसमें पचास राजाओं की कीर्ति गाथा अत्यन्त भावपूर्ण, वीरोचित और प्रभावपूर्ण भाषा में वर्णित की गयी है। काव्य की धारा पहाड़ी निर्झर के समान कलकल नाद करती हुई बहती है। इन वीरों की गाथाओं में "सोहराब और रुस्तम" की शोक कथाओं में प्रदर्शित वीरतापूर्ण लड़ाई का भी उल्लेख है। प्राचीन काल के ईरानी पराक्रम का वर्णन होने से यह महाकाव्य ईरान की एक राष्ट्रीय रचना मानी जाती है। फिरदौसी की दूसरी कृति "युसुफ और जुलेखा" थी जिसमें इन दोनों के रोमांस का वर्णन है।

सूफीवादी विचारधारा

इसी समय फारसी साहित्य में 'सूफी' विचारधारा का उदय हुआ और उसने फारसी साहित्य को एक नया मोड़ दे दिया। ईरान के लोग इस्लाम की धार्मिक कट्टरता को पूरी तरह हजम नहीं कर पाये थे और उनके कल्पनाप्रिय मस्तिष्क इस कट्टरता से निकल कर जीवन का यथार्थ आनन्द उठाने की ओर झुकते जा रहे थे। इन्हीं भावनाओं ने सूफीवाद की प्रवृत्तियों को जन्म दिया।

सूफीवाद का दर्शन भारत के वेदान्त दर्शन से बहुत कुछ मिलता जुलता है। सूफीवाद के कवियों ने 'रुबाई' छन्द का बहुत अधिक प्रयोग किया।

सूफीवादी सम्प्रदाय में इब्न-सयाबी का नाम बहुत प्रसिद्ध है वह सत्तर भाषाओं का विद्वान था। तुर्की फारसी, अरबी इबरानी, यूनानी इत्यादि अनेक भाषाओं से उसे प्रेम पड़ा था। सयाबी की रहन-सहन सूफी फकीरों की तरह थी। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू के ग्रन्थों का इब्न-सयाबी ने अरबी में ऐसा सुन्दर अनुवाद किया है कि यूरोप के विद्वानों ने उसे "दूसरा अरस्तू" माना है।

थे। हाफ़िज़ की कविताओं का संग्रह "साक़ीनामा" के नाम से प्रसिद्ध है।

जामी

हाफ़िज़ के बाद फारसी-साहित्य को अमर करने वाले साहित्यकारों में "जामी" का नाम आता है, जिसका पूरा नाम "नुरुद्दीन अब्दुल रहमान जामी" है। इसका जन्म सन् १४१४ में खुरासान के 'जामी' नामक गाँव में हुआ। ईरान के सबसे प्रसिद्ध कवियों के सप्तर्षि-मंडल में जामी भी एक नक्षत्र की तरह जगमगाता है। गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। लिरिक कविता में उसने तीन 'दीवान' लिखे हैं। उसका "हफ्त औरंग" काव्य फारसी-साहित्य में कल्पना-शक्ति और नीतिमत्ता का एक मौलिक और सुन्दर चित्र उपस्थित करता है। 'नफहा तुल-उन्स' उसके द्वारा लिखा हुआ सूफी सन्तों के चरित्र का एक कोष है। शाही की गुलिस्ता के जोड़ पर उसने बहारिस्तान नामक एक सुन्दर फारसी-काव्य की रचना की जो उसकी रचनाओं में सबसे लोकप्रिय हुई।

अली-शेर-नवाई

जामी के साथ ही महाकवि नवाई का नाम भी आता है। यद्यपि नवाई वस्तुतः तुर्की भाषा का महाकवि था। फारसी में उसकी रचनाएँ कम हैं, फिर भी उसने फारसी के कवि जामी और निज़ामी से बहुत प्रेरणा प्राप्त की थी। निज़ामी के ही अनुकरण पर उसने लैला-मजनूं और शीरीं-फरहाद की प्रेम कहानियों को तुर्की भाषा में लिखा है। तुर्की भाषा में तो वह प्रथम श्रेणी का कवि है। फारसी भाषा में उसने 'फानी" के उपनाम से कविताएँ की हैं।

कवि होने के साथ नवाई बहुत बड़ा अमीदार भी था। विद्वानों और कलाकारों के संरक्षण के लिए उसका दरबार हमेशा खुला रहता था। एशिया का प्रसिद्ध चित्रकार कमालुद्दीन बहेज़ाद ने नवाई के ही संरक्षण में अपनी चित्रकला का विकास किया था। जिसको लोग 'नक्काशे मज़म बेनज़ीर" और 'सूरते हासाव मुसव्विर" के नाम से पुकारते थे।

जामी के पश्चात् फारसी साहित्य में कवि तो अनेक हुए, मगर ऐसे कवि बहुत कम हुए, जो विश्व-साहित्य के क्षेत्र में अंकन किये जा सकें। इन कवियों में "हातिमी" "आसफी", "हिलाली", 'शानी", "सुहाली", "फ़य्याज़" इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से तेहरान के "शानी" को ईरान के शाह अब्बास महान् ने उसके बराबर सोना तौल कर उसकी कृतियों पर पुरस्कार के रूप में दिया था।

इन्हीं दिनों कानून के क्षेत्र में बहाउद्दीन शिया नामक लेखक ने 'जाम-ए-अब्बासी' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की और अब्बास द्वितीय के दीवान ताहिर वहीद ने तारीख़-ए-शाह अब्बासे शानी नामक ग्रंथ लिखकर इतिहास के क्षेत्र में अच्छा नाम कमाया।

भारतवर्ष में फारसी-साहित्य

भारतवर्ष में भी इस्लामी-सल्तनत के साथ फारसी-साहित्य का काफी सृजन हुआ।

अमीर खुसरो

भारतवर्ष के फारसी-साहित्यकारों में सबसे पहला प्रसिद्ध नाम 'अमीर खुसरो' का लिया जाता है। इसका जन्म सन् १२५५ में एटा ज़िले के पटियाली ग्राम में हुआ था। यह निज़ामुद्दीन औलिया का शिष्य था। अमीर खुसरो सर्वतोमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। वह कवि, भाषाशास्त्री, गायक और विद्वान सब कुछ था। कवि की हैसियत से वह फारसी भाषा के श्रेष्ठतम कवियों—शेखसादी और हाफ़िज़-की कोटि का था। उसकी रचनाओं में पाँच दीवान, पाँच मसनवियाँ, पाँच ऐतिहासिक कविताएँ और तीन गद्य कृतियाँ हैं।

सम्राट् अकबर के समय में भी फारसी साहित्य में कई विशिष्ट रचनाएँ हुईं। सम्राट् ने हितोपदेश, पंचतंत्र नारील-ए-कश्मीर, महाभारत, रामायण इत्यादि ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया। उसके दरबार में अबुल फज़ल बदायूनी फ़ैज़ी शेख मुबारक इत्यादि अनेक प्रसिद्ध विद्वान थे, जिन्होंने फारसी साहित्य में महान् रचनाएँ कीं।

आधुनिक नवीन युग की छाया में फारसी साहित्य ने भी एक नवीन दिशा को ग्रहण कर लिया है। उस पर भी पश्चिमी सभ्यता की छाप नज़र आने लगी है।

आधुनिक फारसी-कवियों में अदीबाद, आमिर, मीरजा अशरफ, भारतवर्ष के बा महम्मद इकबाल इत्यादि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

ईरानी चित्रकला

साहित्य की ही तरह चित्रकला के क्षेत्र में भी ईरान ने अपनी कलम के जौहर दिखलाये हैं। ईरान के बने हुए प्राचीन और नवीने अपनी मनोहर चित्रकारी के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध हैं।

प्राचीनकाल में ईरानी चित्रकला का सम्बन्ध 'मनीकी" धर्म से था, पर इस धर्म के संस्थापक "मनि" जो एक प्रसिद्ध चित्रकार भी थे ईस्वी सन् २६ में मार डाले गये और उनके बनाये हुए चित्र भी जला दिये गये।

ईरानी चित्रकला का वास्तविक विकास इस्लाम के ईरान में प्रविष्ट होने के पश्चात् अब्बासी खलीफाओं के युग से प्रारम्भ होता है। भिन्न भिन्न विषयों पर लिखे हुए ज्योतिष चिकित्सा और ऐतिहासिक ग्रन्थों को सचित्र बनाने के प्रयत्न में इस चित्रकला का विकास हुआ। इस प्रकार की पुस्तकें अधिकतर बारहवीं सदी में चित्रित की गईं।

चौदहवीं सदी के मंगोल-युग में फारसी-साहित्य के साथ साथ ईरानी चित्रकला का भी बहुत विकास हुआ।

इसके पश्चात् पन्द्रहवीं सदी में तैमूर के पुत्र शाहरुख की मृत्यु के पश्चात् हिरात के सुलतान हुसैन इब्न बैकरे के समय में उनके दीवान अली शेर-नवाई के संरक्षण में ईरानी चित्रकला ने बड़ी उन्नति की। इसी समय में अली शेर-नवाई के संरक्षण में एशिया के सुप्रसिद्ध चित्रकार कमालुद्दीन बेहजाद ने अपनी महान् चित्रकला से ईरानी-कला को सम्पन्न किया। उसे लोग "मयाकवे कलम बेमजीर" और "सूरते हकाव मुसव्विर" की पदवियों से सम्बोधित करते थे। इन दिनों में हिरात की शैली सारे ईरान में मशहूर हो गई थी और अली शेर नवाई के संरक्षण में अनेक चित्रकार इकट्ठे हो गये थे।

इसके पश्चात् सफावी-युग में ईरान की चित्रकला ने नवीन रूप ग्रहण किया। इस युग के चित्रकारों में मीर सय्यद अली मीरक और मुसव्विर मुहम्मद के नाम उल्लेखनीय हैं।

ईरान के इतिहास की प्रसिद्ध घटनाएँ

घटना	सन्
साइरस महान के द्वारा ईरान साम्राज्य की स्थापना	ई० सन् पूर्व ५५९
दारा प्रथम महान का सम्राट होना	ई० सन् पूर्व ५२१
सम्राट् जरक्सीज़ द्वारा थर्मापोली की प्रसिद्ध लड़ाई	ई० सन् पूर्व ४८०
अलेक्जेंडर महान् द्वारा ईरान पर आक्रमण	ई० सन् पूर्व ३३०
राजा मिथ्रिडेटस के द्वारा पार्थियन साम्राज्य की स्थापना	ई० सन् पूर्व १७४
अर्देशर के द्वारा सासानी-राजवंश की स्थापना	सन् २२७ ई०
आर्दाविराफ (Ardaviraf) के द्वारा जेन्द अवेस्ता का संकलन	सन् २२२ ई०
सासानी सम्राट् नौशेरवाँ का राजगद्दी पर आना	सन् ५३१ ई०
सासानी सम्राट् यज्दगिर्द की पराजय	सन् ६४२ ई०
खलीफा हारूँ-अलरशीद का बगदाद की गद्दी पर आना	सन् ७८६ ई०
सेल्जुक सम्राट् तुगरलबेग का रए क्षेत्र में सिंहासन पर बैठना	सन् १०३६ ई०
महाकवि रूदागी का आविर्भाव	सन् ९१४ ई०
महाकवि फिरदौसी के द्वारा शाहनामा का निर्माण	११वीं सदी का मध्य
महाकवि उमर-खय्याम का आविर्भाव	११वीं सदी का उत्तरार्द्ध
प्रसिद्ध साहित्यकार जलालुद्दीन रूमी का आविर्भाव	सन् १२०७ ई०
महात्मा अल-गजाली का आविर्भाव	१२वीं सदी का पूर्वार्द्ध

घटना	सन्
चंगेज खाँ का आक्रमण	सन् १२२९ ई०
मंगोल सरदार हुलाकू का गद्दी पर बैठना	सन् १२५६ ई०
अब्बासी-खिलाफत का अन्त	सन् १२५८ ई०
महाकवि शेखसादी द्वारा गुलिस्ताँ का निर्माण	१३वीं सदी का मध्य
फारसी के महाकवि हाफिज का आविर्भाव	१४वीं सदी का मध्य
महाकवि जामी का आविर्भाव	सन् १४१४ ई०
सोफी-वंश के अब्बास महान का ईरान की गद्दी पर आना	सन् १५८६ ई०
नादिर शाह का आविर्भाव	सन् १७३६ ई
बाबी-आन्दोलन का विकास	सन् १८५० ई०
तुर्कमेन चाइनीज सन्धि	सन् १८२८ ई०
सन् १९०९ की प्रसिद्ध क्रांति	सन् १९०९ ई०
एंग्लो पर्शियन एग्रीमेंट	सन् १९१९ ई
रजा खाँ का उदय और सन् १९२५ की प्रसिद्ध क्रांति	सन् १९२५ ई०

ईलियास होव

सिलाई की मशीन के आविष्कर्ता इलियास होव जिनका जन्म सन् १८१९ में मेसाचूसेट्स में और मृत्यु सन् १८६७ में हुई।

आज से करीब एक सदी पूर्व कपड़ों की सिलाई हाथ से की जाती थी जिसमें समय और परिश्रम बहुत लगता था। ईलियास होव ने सिलाई की मशीन का आविष्कार कर सीनेवाले लोगों के लिए बहुत सुविधा कर दी।

ईलियास होव का जन्म एक असमन्त निधन-परिवार में हुआ था और वे बचपन से लंगड़े थे। निर्धनता के अनेक कष्ट उठाने के बाद वे हावर्ड कालेज की प्रयोगशालाओं के उपकरण बनाने वाले आरी डेविस के साथ बोस्टन चले गये। डेविस के साथ काम करते हुए उन्होंने अपनी यांत्रिक प्रतिमा और सूझबूझ का परिचय दिया।

एक दिन होव ने अपने मालिक को यह कहते हुए सुना कि "आज संसार को ऐसी मशीन की जरूरत है जो सिलाई कर सके।' होव को यह बात लग गई और उन्होंने सिलाई की मशीन का आविष्कार करने के लिए नौकरी छोड़ दी।

महीनों के परीक्षण के बाद उन्हें मालूम हुआ कि यंत्र की सुई की आँख हाथ की सुई की तरह पिछले सिरे पर न रखते हुए उसके अग्र-बिन्दु पर रखना ठीक होगा और एक चक्र द्वारा उसमें धागा जोड़ना ठीक रहेगा।

मशीन के निर्माण में कामयाब हो जाने पर उन्होंने उसको 'पेटेण्ट' करवाया। इस आविष्कार की महिमा का मूल्यांकन उस समय के उद्योगपति नहीं समझ सके। होव ने एक ड्रेस बनाने वाले की पाँच तेज कारीगरों से अपनी मशीन का मुकाबिला करने की चुनौती दी और उसमें उनकी मशीन ने आसानी से विजय प्राप्त कर ली।

इसके बाद होव इंग्लैंड गये और वहाँ २२५ पौंड में अपनी मशीन के इंग्लैंड में बिकने के अधिकार बेच दिये। अमेरिका लौटने पर उन्होंने देखा कि उनकी मशीन की धड़ाधड़ नकल की जा रही है। इस पर उन्होंने मुकदमेबाजी शुरू की और सन् १८५४ में पेटेण्ट के स्वामित्व के कारण उनकी विजय हुई। मृत्यु से पूर्व ईलियास होव की मशीन की 'रायल्टी' से प्रति सप्ताह हजारों डॉलर की आमदनी होने लगी।

ईलियानुस-टैक्टिकुस

यूनानी युद्धकला का एक विद्वान जो ईस्वी सन् की दूसरी सदी में हुआ।

इलियानुस रोम का रहने वाला था। उसने युद्ध-विद्या के सिद्धान्त पर "टैक्टिका थियोरिया" नामक एक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा जो रोम के सम्राट हाड्रियन को समर्पित किया गया है। इसमें युद्ध कला के उन सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है जो सिकन्दर महान् और उसके उत्तराधिकारियों ने व्यवहार में लिये थे। इस ग्रंथ का अनुवाद अरबी में भी हुआ और अरबी युद्धकला पर भी इसका असर पड़ा।

ईवाल्ड जोहान्स

(Johannes Ewald)

डेनमार्क का एक प्रसिद्ध कवि जिसका जन्म सन् १७४१ में और मृत्यु सन् १७ १ में हुई।

ईवाल्ड जोहान्स का जन्म कोपेनहेगन में हुआ था। सन् १७६६ में ईवाल्ड ने फ्रेडरिक पंचम की मृत्यु पर एक अत्यन्त मर्मभेदी मर्सिया लिखा जो बहुत लोकप्रिय हुआ। "बाल्डर की मृत्यु" नामक रचना ने उसकी ख्याति को सारे यूरोप में प्रसारित कर दिया। उसकी अन्य रचनाओं में "आदम ओमयवा" "फिशरमेन" इत्यादि रचनायें मशहूर हैं। फिशरमेन के द्वारा उसने डेनमार्क का राष्ट्रीय गीत प्रस्तुत किया।

असफल प्रणय और निर्धनता के कारण वह अक्सर चुपचाप इधर उधर फिरता रहता था। अन्त में क्षयरोग से उसकी मृत्यु हुई।

ईशोपनिषद्

ईशोपनिषद् भारतवर्ष में प्रचलित महान् उपनिषद् ग्रन्थों में सर्वप्रथम मानी जाती है। यह शुक्ल यजुर्वेद की मन्त्र संहिता का चालीसवाँ अध्याय है। इस उपनिषद् में केवल १८ मंत्र हैं जिन्हें वेदान्त का निचोड़ माना जाता है। इसलिए छोटी होने पर भी यह उपनिषद् सभी उपनिषदों में श्रेष्ठ मानी जाती है।

(विशेष वर्णन ' उपनिषद्" शब्द के अन्तर्गत देखें)

ईशदेव

जयपुर राज्य के इतिहास में आमेर राज्य के संस्थापक मूल पुरुष।

ईशदेव देवानीक के पुत्र और आमेर-राजवंश के मूल संस्थापक थे। इनका समय ईसा की दसवीं सदी में माना जाता है। ये कछवाहा वंश के क्षत्रिय थे। इनके संबंध में भिन्न-भिन्न इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है।

ईश्वरी सिंह

जयपुर के राजा सवाई जयसिंह (द्वितीय) के ज्येष्ठ पुत्र, जिनका समय सन् १७०१ के करीब है।

सवाई जयसिंह द्वितीय के पश्चात् उनके बड़े पुत्र ईश्वरी सिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे। पाँच वर्ष तक ईश्वरी सिंह ने शान्ति पूर्वक राज्य किया। पर उसके बाद एक झगड़ा खड़ा हो गया। स्वर्गीय महाराज सवाई जयसिंह ने मेवाड़ की राजकुमारी से इस शर्त पर विवाह किया था कि उसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वो वह आमेर की गद्दी का अधिकारी होगा।

मेवाड़ की राजकुमारी के गर्भ से माधवसिंह नामक एक पुत्र का जन्म हुआ था। अतएव वह जयपुर की राज गद्दी पर अपना हक जतलाने लगा। मेवाड़ के राणा ने उसका पक्ष लेकर ईश्वरी सिंह को लिख भेजा कि—"आप राजगद्दी माधव सिंह को दे दें।'

इस पर ईश्वरीसिंह ने मराठा सेनापति अप्पाजी की सहायता से राणा के साथ युद्ध घोषणा कर दी। मेवाड़ के राणा की मदद पर कोटा और बूँदी के राजा भी आ गये। राजमहल नामक स्थान पर भयंकर लड़ाई हुई और मराठा सेना की सहायता से ईश्वरीसिंह ने मेवाड़ के राणा को करारी पराजय दी।

इसके बाद ईश्वरी सिंह ने कोटा और बूँदी के राज्यों पर भी मराठा-सेना की सहायता से चढ़ाई कर पराजित कर दिया।

तब मेवाड़ के राणा जगत सिंह ने मल्हारराव होल्कर की सहायता लेकर ईश्वरी सिंह के खिलाफ युद्ध की घोषणा की। होल्कर के सामने विजय प्राप्त करना असम्भव जान कर ईश्वरी सिंह ने विषपान करके अपने प्राण दे दिये और जयपुर की गद्दी पर माधव सिंह बैठ गया।

ईश्वरकृष्ण

सांख्य कारिका के रचयिता सुप्रसिद्ध दर्शनशास्त्री ईश्वरकृष्ण जिनका समय ईसा की तीसरी शताब्दी के मध्य में माना जाता है।

कुछ लोगों के मतानुसार इनका समय ईसा की ५वीं शताब्दी में था।

सांख्य-कारिका सांख्य दर्शन के ऊपर विवेचनात्मक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःखों के निराकरण के उपायों की खोज की गई है। इनके इस ग्रन्थ का अनुवाद चीनी भाषा में भी सन् ५५७ से सन् ५६९ ईस्वी के मध्य में किया गया।

सांख्य-कारिका की टीका विज्ञान-भिक्षु ने सांख्य भाष्य के नाम से और नारायण नामक लेखक ने सांख्य-चन्द्रिका के नाम से की है।

ईश्वरचन्द्र गुप्त

बँगला-साहित्य में १९वीं सदी के कवि और पत्रकार, जिनका जन्म सन् १८१२ में और मृत्यु १८५९ में हुई।

ईश्वर गुप्त बँगला साहित्य में पुरानी और नयी चेतनाओं के सन्धिस्थल थे। इनके काव्य की प्रवृत्तियाँ प्राचीन शैली की पोषक थीं। अतः इन्हें बँगला की प्राचीन परम्परा का अन्तिम कवि कहा जा सकता है। इन्हीं के समय में और इन्हीं के उद्योग से बँगला में पत्रकार-कला का प्रारम्भ हुआ।

सम्पादन-कला के क्षेत्र में इनका महत्त्व कवि की अपेक्षा अधिक है। बंकिमचन्द्र जैसी नई प्रतिभाओं को प्रोत्साहन देकर बँगला-साहित्य में नवीन युग लाने का प्रारम्भिक ज़ोरदार प्रयत्न इन्होंने ही किया।

ईश्वर गुप्त को एक प्रकार से बँगला-भाषा का भारतेन्दु कह सकते हैं। इन्होंने प्राचीन कवियों की जीवनियाँ लिखकर बँगला भाषा में जीवनी-साहित्य का भी शुभारम्भ किया।

सन् १८३१ में ईश्वरचन्द्र गुप्त का बंगाली पत्र 'संवाद प्रभाकर' प्रकाशित हुआ। ईश्वरचन्द्र गुप्त प्रारम्भिक युग के एक सरल तथा प्रतिभाशाली सम्पादक थे। वस्तुतः इन्हीं को बँगला-पत्रकारिता का आदि पुरुष मानना चाहिये। ईश्वरचन्द्र के 'प्रभाकर' पत्र ने आधुनिक युग के अनेक युग-निर्माताओं का निर्माण किया। रंगलाल बन्द्योपाध्याय अक्षय कुमार दत्त दीनबन्धु मित्र और महान् उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने भी इससे प्रकाश ग्रहण किया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

बंगाल के सुप्रसिद्ध समाज सुधारक, शिक्षा-प्रचारक और उदारचेता महान् व्यक्ति ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, जिनका जन्म सन् १८२ में और मृत्यु सन् १८९१ में हुई।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बंगाल के उन नामांकित पुरुषों में हैं, जिन्होंने अपनी सेवाओं और उदारताओं से बंगाल के इतिहास में अमर कीर्ति प्राप्त की।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म मेदिनीपुर ज़िले के वीरसिंह नामक गाँव में एक अत्यन्त निर्धन परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम ठाकुर दास बन्द्योपाध्याय था। ९ वर्ष की अवस्था में पैसा न होने से ईश्वरचन्द्र ने अपने पिता के साथ पैदल ही कलकत्ते की यात्रा की और वहाँ जाकर संस्कृत कालेज में पढ़ाई प्रारम्भ की। तीव्रबुद्धि और गम्भीर गवेषणा के प्रभाव से इन्होंने कुछ ही वर्षों में संस्कृत साहित्य का पारदर्शी ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसी संस्कृत कालेज से इन्हें 'विद्यासागर' की उपाधि प्राप्त हुई।

सन् १८४१ ई० के दिसम्बर मास में इन्होंने 'फोर्ट विलियम कालेज' में मुख्य पंडित के स्थान पर काम करना प्रारंभ किया। फोर्ट विलियम कालेज में रहते समय कैप्टन मार्शल ने इनको अंग्रेज़ी पढ़ने को कहा, तब से इन्होंने अंग्रेज़ी पढ़ना भी प्रारम्भ कर दिया। उस समय सिविलियनों को पढ़ाने के लिए हिन्दी भाषा की भी आवश्यकता पड़ती थी। इसलिये विद्यासागर ने हिन्दी भाषा का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया।

शिक्षा प्रचार और समाज-सुधार के क्षेत्र में विद्यासागर की प्रारम्भ से ही रुचि थी। सन् १८५३ ई० में अपनी जन्मभूमि वीरसिंह ग्राम में निर्धन छात्र छात्राओं के लिए विद्यासागर ने एक निःशुल्क विद्यालय की स्थापना की, जिसमें रात्रि में विद्यार्थियों को शिक्षा देने की व्यवस्था की गई थी।

समाज सुधार के क्षेत्र में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने हिन्दू-विधवाओं की भयंकर दुरवस्था देखकर 'विधवा विवाह

का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने शास्त्रीय प्रमाणों से मकाट्य दलीलें देकर विधवा विवाह को शास्त्र सम्मत सिद्ध करने का प्रबल प्रयत्न किया।

वह वह युग था जब विधवा विवाह का नाम सुनते ही लोग कानों पर हाथ रख कर 'शान्ति पापम्' कर उठते थे। ऐसे युग में ऐसी प्रथा के समर्थन के विरुद्ध समाज में भय कर प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक था। उसी प्रबल विरोध का विद्यासागर को सामना करना पड़ा मगर इसकी चिन्ता न करते हुए इस महान् व्यक्ति ने विधवा विवाह के सम्बन्ध में अपनी जोरदार आवाज उठाई और प्रयत्न करके कई विधवाओं के विवाह भी करवा दिये। स्वयं अपने पुत्र का विवाह भी उन्होंने एक विधवा के साथ कराया।

बहु विवाह की प्रथा भी उस समय बंगाली-समाज में बहुत फैली हुई थी। इस कुप्रथा को रोकने का भी विद्यासागर ने भावपक्ष से प्रयत्न किया। बहु विवाह के विरोध में उन्होंने दो ग्रन्थों का निर्माण भी किया और सरकार से इस विषय का कानून बनाने की भी चेष्टा की।

सन् १८५८ में विद्यासागर ने अपने निज के प्रयास बल से निजी व्यय से 'मेट्रोपोलिटन' नामक अंग्रेजी कालेज की स्थापना की। उस समय तक लोगों का यह विश्वास था कि बंगाली लोग अंग्रेजी कालेज चलाने की क्षमता नहीं रखते, मगर इस कालेज के द्वारा उन्होंने इस अपवाद को झूठा सिद्ध कर दिखलाया और इस कालेज को सफलता पूर्वक चलाया।

संस्कृत-कालेज में अभी तक केवल ब्राह्मण और वैद्य दोनों ही विद्याध्ययन के लिए भर्ती हो सकते थे। किन्तु विद्यासागर ने प्रयत्न करके इस कालेज को समस्त हिन्दुओं के लिए खुलवा दिया।

समाज सुधार और शिक्षा विकास के क्षेत्र में तो विद्यासागर की कीर्ति अमर है ही, मगर दीन-दुखियों के दुःख से दुखी होकर और विधवाओं के आर्तनाद से व्यथित होकर जो कुछ भी द्रव्य उनके पास आता उनकी सेवा में अर्पण कर देते थे। उनकी परोपकारिता और दानशीलता को बंगाल के सब लोग जानते हैं। दरिद्र विधवाओं और विद्यार्थियों को प्रतिमास गुप्त रूप से वे एक बड़ी रकम भेजा करते थे।

सन् १८६६ के भयंकर दुर्भिक्ष के समय इन्होंने अपने गाँव वीरसिंह में हजारों आदमियों को अन्न और वस्त्र की सहायताएँ पहुँचाई थीं। इन्हीं कारणों से बंगाल की जनता में वे 'दयासागर' के नाम से प्रसिद्ध थे।

बंगाली साहित्य के क्षेत्र में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके समय तक बंगाली गद्य बहुत कठिन शैली में लिखा जाता था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बंगाली भाषा को परिमार्जित कर उसे अत्यन्त सरल और सुगम बनाया। उन्होंने कुल ५२ पुस्तकों की रचना की। जिनमें १७ संस्कृत में ५ अंग्रेजी में और ३ बंगला में थीं। उनकी बंगला और संस्कृत की पुस्तकों में 'वैताल पंच विंशति' 'शकुन्तला' 'सीतार वनवास' 'बंगालेर इतिहास' 'आख्यान मञ्जरी' 'भ्रान्ति-विलास' और 'व्याकरण-कौमुदी' उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार दरिद्रनारायण की सेवा में अपने समस्त जीवन को अर्पित कर इस महापुरुष ने बंगाल के इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया।

सन् १८९१ के जुलाई मास में इस महान् पुरुष का देहावसान हुआ।

ईश्वरदास

अवधी-भाषा का कवि जो सिकन्दर लोदी के समय में सन् १५५ के करीब में हुआ।

ईश्वरदास ने दोहे और चौपाइयों में "सत्यवती-कथा" नाम से एक काल्पनिक कथा-काव्य के रूप में लिखी है।

पुस्तक में प्रत्येक पाँच पाँच चौपाइयों पर एक दोहा है। इस प्रकार ५८ दोहों में यह पुस्तक समाप्त हुई है।

ईश्वरदास ने पुस्तक के आरम्भ में रचना काल का इस प्रकार उल्लेख किया है—

भादों मास पाख उजियारा
तिथि पाँचौ औ मंगलवारा।
नखत अश्विनी मेष के चंदा
पंच कथा सो सदा अनन्दा॥
जोगिनी पुर दिल्ली बड़ थाना
साह सिकन्दर बड़ सुलताना।

पंठ पैठ कर सुरसुती, सिया गनपति दीन्ह।
ता दिन कथा आरंभ यह तुलसीदास कवि कीन्ह॥'

ईस्ट-इण्डिया कम्पनी

भारतवर्ष के अन्दर व्यापार करने के लिए लन्दन में में स्थापित 'ईस्ट इंडिया कम्पनी'। जो ३१ दिसम्बर सन् १६ के दिन इंग्लैंड की सुप्रसिद्ध महारानी एलिज़ाबेथ के फरमान से 'दि गवर्नर ऐंड मर्चेंट्स ऑफ लन्दन, ट्रेडिंग टू दी ईस्ट इंडीज़' के नाम से स्थापित हुई।

भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कम्पनी का इतिहास, विशाल अंग्रेज़ी साम्राज्य की पूर्व परम्परा के रूप में प्रारम्भ हुआ और अन्त में साम्राज्य के रूप में परिवर्तित हो गया।

१५ वीं और १६ वीं शताब्दी में समुद्र-यात्राओं के द्वारा संसार के विभिन्न देशों का पता लगा और पता लगाने वाली जातियों ने इन देशों को अपने अधिकार में लेना प्रारम्भ किया।

सन् १४६८ में 'वास्को डिगामा ने यूरोप से केप आफ गुडहोप' के रास्ते से भारत का समुद्री-मार्ग खोज निकाला। तभी से इस विशाल देश में अपना-अपना व्यापार स्थापित करने के लिए पुर्तगाल हालैंड इंग्लैंड और फ्रांस ये चारों देश उतावले होने लगे और इनकी आपसी प्रतिस्पर्धा शुरू हुई।

भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कम्पनी का वास्तविक इतिहास उस समय से प्रारम्भ होता है जिस समय 'सर टामसरो ने भारत आकर सम्राट जहांगीर के दरबार से सन् १६११ की ६ फरवरी को कम्पनी के लिए भारत में व्यापार करने की सनद ली और सूरत आगरा अहमदाबाद तथा भड़ौंच में अपने केन्द्र स्थापित किये। अधिकतर केन्द्र समुद्र के किनारे पर थे जिनकी सुरक्षा के लिए मजबूत किलेबन्दी की गई। सन १६११ में मूसलीपट्टम में सन् १६११ में बालासोर में, सन् १६१६ में मद्रास में सन् १६५१ में हुगली में, सन् १६६६ में बम्बई में तथा सन् १६६८ में कलकत्ते में अंग्रेज़ी व्यापारी केन्द्रों की स्थापना हुई। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के केन्द्र कम्पनी के राजनैतिक और शक्ति-केन्द्र भी थे।

ईस्ट इंडिया कम्पनी में जिन लोगों के शेयर थे, उनमें से अधिकतर लोग सामुद्रिक लूट-पाट करने वाले (सोसाइटी ऑफ एडवेंचरर्स) थे। जो धन कमाने के उपायों में सच-झूठ, ईमानदारी-बेईमानी अथवा न्याय-अन्याय का ख्याल नहीं रखते थे। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने शुरू में ही इस बात का फैसला कर लिया था कि हम किसी जिम्मेदारी की जगह किसी शरीफ आदमी को नियुक्त नहीं करेंगे।

इस तरह के लोगों से संगठित हुई कम्पनी कभी शान्ति के साथ कोई काम करेगी, ऐसा सम्भव नहीं था। फलस्वरूप इन लोगों ने सूरत और बंगाल में जगह-जगह झगड़े करना प्रारम्भ किये। बंगाल का नवाब शाइस्ता खाँ तो इन्हें नीच, झगड़ालू और धूर्ताचोरों की कम्पनी कहा करता था।

थोड़े ही दिनों में कम्पनी के अत्याचार इतने बढ़ गये कि उनकी शिकायत औरंगज़ेब के कानों तक पहुँची। औरंगज़ेब ने फौरन हुक्म जारी कर दिया कि इन लोगों की कोठियाँ जब्त कर ली जायें और इन्हें मारकर हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। इस आदेश से सूरत, विशाखापट्टम आदि कई स्थानों की अंग्रेज़ी कोठियाँ जब्त कर ली गईं और वहाँ से अंग्रेज़ों को निकाल बाहर कर दिया गया। बम्बई को भी घेर लिया गया, किन्तु अंग्रेज़ बड़े चालाक थे। वे फौरन औरंगज़ेब के कदमों पर गिर पड़े और दांत पकड़ कर अपनी पिछली खताओं के लिए माफी मांगी। भविष्य के लिए नेकचलनी का वादा किया और मुगल सम्राट् से जाँ-बख्शी की प्रार्थना की। औरंगज़ेब ने उदारता में आकर उन्हें माफ कर दिया और सूरत आदि की कोठियाँ उन्हें वापस दे दीं।

सन् १६६६ में औरंगज़ेब ने उन्हें कई नई कोठियाँ कायम करने और सुरक्षा के लिए किलेबन्दी करने की इजाज़त दे दी।

इसी समय में औरंगज़ेब के पौत्र अज़ीमुश्शान ने बंगाल के सूबेदार की हैसियत से हुगली के नदी ऊपर 'सूतानाटी' 'कलकत्ता और गोविन्दपुर नाम के तीन गाँव जागीर के कम्पनी को दे दिये। जिसके फलस्वरूप 'फोर्ट विलियम' किले की बुनियाद डाली गई। जिस समय यह किला बनाया जा रहा था, उस समय सम्राट् औरंग

जेब को सलाह दी गई कि इस फिजूलखर्ची को रोका जाये। इसके जवाब में औरंगजेब ने कहा—

"मैं इन चीजों में क्यों दखल दूँ। सम्भव है आस पास के देशी लोग तो इन 'फिरंगियों' से नफरत करते हों। ये गरीब लोग इतनी दूर से आये हैं और अपनी रोजी के लिए इतनी मिहनत करते हैं मैं उन्हें क्यों रोकूं।"

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल-साम्राज्य का धाप तेजी के साथ कमजोर होने लगा और इस कमजोरी का लाभ उठा कर अंग्रेजों ने अपने व्यापार का खूब विस्तार किया।

मगर इसी समय भारतवर्ष में एक दूसरी विदेशी शक्ति का भी उत्थान हो रहा था। इस शक्ति ने बहुत समय तक इस देश में अंग्रेजी शक्ति के साथ प्रतिस्पर्धा की। यह शक्ति फ्रेंच लोगों की थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मुकाबले में एक फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी सन् १६६४ ई० में कायम हुई और इस कंपनी ने सन् १६६८ में सूरत १६६९ में मछली पट्टम और सन् १६७४ में पाण्डुचेरी में अपनी कोठियां बनाईं। उस समय पाण्डुचेरी में फ्रेंच कम्पनी का प्रतिनिधि 'डूमास' नामक व्यक्ति था। इसने कर्नाटक के नवाब दोस्त अली खाँ को मराठों के विरुद्ध सहायता देकर उसकी इजाजत से पाण्डुचेरी में किलेबन्दी कर ली और किले में ११ सौ यूरोपियन और ५ हजार हिन्दुस्तानियों की सेना जमा करली।

सन् १७४१ में डूमास की जगह 'डूप्ले' फ्रांसीसी कम्पनी का प्रतिनिधि होकर पाण्डिचेरी आया।

डूप्ले एक अत्यन्त चतुर सेनापति था। यह पहला यूरोपियन था जिसके मन में भारत के अन्दर यूरोपियन साम्राज्य कायम करने की आकांक्षा हुई। उसने देखा कि भारत के विभिन्न राजा लोग भारत में ईर्ष्या और द्वेष रख कर आपस में लड़ते रहते हैं। इसलिए इनमें से कभी एक और कभी दूसरे का पक्ष लेकर विजय पा लेना कठिन नहीं है। उसे अपनी प्रतिस्पर्धी अंग्रेजों से नफरत थी और उसने अंग्रेजों से संघर्ष करने का निश्चय किया। यूरोप के अन्दर भी उस समय फ्रांस और इंग्लैण्ड के अन्दर युद्ध चल रहा था इसलिए डूप्ले को अवसर भी मिल गया। कर्नाटक में करीब दो साल से मद्रास भी अपनी अंग्रेजों के अधिकार में थी। डूप्ले ने कर्नाटक के नवाब से यह वादा करके कि अंग्रेजों को मद्रास से निकाल कर यह नगर आपके हवाले कर दूँगा लेफ्टिनेंट 'लाबरडोन' के नेतृत्व में कुछ जल सेना मद्रास-विजय के लिए भेजी। लाबरडोन ने मद्रास जीत लिया। लेकिन ४ हजार पौंड नकद लेकर फिर अंग्रेजों के हवाले कर दिया। जब नवाब कर्नाटक को यह मालूम हुआ तो उसने डूप्ले के ऊपर हमला कर दिया।

४ नवम्बर सन् १७४६ को डूप्ले की सेना और नवाब कर्नाटक की सेनाओं में संग्राम हुआ। इस लड़ाई में तोप-खाने के बल से डूप्ले ने नवाब के ऊपर विजय प्राप्त कर ली। यह पहली लड़ाई थी जिसमें किसी विदेशी शक्ति ने किसी भारतीय शक्ति के विरुद्ध विजय प्राप्त की।

अब नवाब कर्नाटक और अंग्रेज दोनों डूप्ले के खिलाफ एक हो गये। सन् १७४८ ई० में अंग्रेजों ने पाण्डिचेरी पर हमला किया मगर इस बार भी डूप्ले की सेना ने अंग्रेजों को हरा दिया इसी समय डूप्ले के दुर्भाग्य से यूरोप के अन्दर इंग्लैण्ड और फ्रांस में सन्धि हो गई। इसमें एक शर्त यह तय हुई कि मद्रास फिर से अंग्रेजों को दे दिया जाय। इससे डूप्ले को बड़ी निराशा हुई मगर फिर भी उसका हौसला नहीं टूटा और उसने अंग्रेज कम्पनी के साथ अपनी प्रतिस्पर्धा बराबर जारी रखी।

उस समय क्लाइव अंग्रेजी-सेना का एक युवा सेनापति था मगर उसकी राजनैतिक प्रतिभाएँ दृष्टिगोचर होने लग गई थी।

सन् १७४८ से १७५४ तक 'निजाम' की गद्दी के लिए उसके दूसरे लड़के नासिरजंग और पोते मुजफ्फर जंग में झगड़ा शुरू हुआ। दूसरी तरफ कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन को गद्दी से उतार कर 'चन्दासाहब' कर्नाटक का नवाब बनना चाहता था। तीसरी ओर तंजौर के राजा 'शाहूजी' को गद्दी से उतार कर उसका एक दूसरा रिश्तेदार प्रताप सिंह तंजौर का राज लेना चाहता था। इन तीनों जगहों की आपसी फूट का लाभ अंग्रेज, फ्रांसीसी और मराठे तीनों ही उठाने की कोशिश कर रहे थे।

चन्दा साहब ने तंजौर के राजा शाहूजी को गद्दी से उतार कर उस पर अपना कब्जा कर लिया। तब मराठों ने

तंजोर पर चढ़ाई करके चन्दा साहब को कैद कर लिया और प्रताप सिंह को वहाँ की गद्दी पर बैठा दिया। अंग्रेजों ने साहूजी को फिर से गद्दी पर बैठाने के लिए मदद करना स्वीकार किया मगर जब लड़ाई के मोर्चे पर पहुँच कर अंग्रेजों ने देखा कि प्रताप सिंह का पक्ष अधिक मजबूत है तो ऐन मौके पर साहूजी को छोड़कर वे प्रताप सिंह की ओर जा मिले। प्रताप सिंह तंजोर का राजा बन गया और साहूजी को सदा के लिए पेंशन कर दी गई। उधर डूप्ले ने ३ अगस्त सन् १७४९ को 'आम्बूर' की लड़ाई में अनवरुद्दीन को समाप्त कर चन्दा साहब को कर्नाटक का नवाब बना दिया। यह डूप्ले की दूसरी राजनैतिक विजय थी।

अब डूप्ले ने अंग्रेजों के पक्षपाती प्रताप सिंह को तंजोर की गद्दी से हटाने के लिए दक्खिन के सूबेदार को ही बदल देना चाहा। उसने नासिर जंग के खिलाफ मुजफ्फर जंग से मिलकर चन्दा साहब की मदद से तंजोर पर चढ़ाई करवा दी। मगर उसे इस लड़ाई में सफलता नहीं मिली और मुजफ्फरजंग कैद कर लिया गया। तब डूप्ले ने अपने गुप्त अनुचरों के द्वारा सूबेदार नासिर जंग की हत्या करवा दिया और एक बार फिर से मुजफ्फर जंग को दक्खिन का सूबेदार और चन्दा साहब को कर्नाटक का नवाब बना दिया, किन्तु त्रिचनापल्ली का मजबूत किला अभी तक मुहम्मदअली के हाथों था जो अंग्रेजों का पक्षपाती था। त्रिचनापल्ली पर ही यह जबरदस्त संग्राम हुआ, जिसमें दक्षिण के ये तीनों राजवंश और अंग्रेज तथा फ्रेंच सबकी किस्मत का फैसला हो गया।

त्रिचनापल्ली ही वह चट्टान मानी जाती है, जिससे टकराकर डूप्ले की आकांक्षाएँ चूर चूर हो गईं। इस लड़ाई में चन्दा साहब और डूप्ले की सेनाएँ एक ओर थीं और दूसरी ओर मुहम्मद अली के साथ अंग्रेजों की सेनाएँ थीं। एक फ्रांसीसी सेना यूरोप से डूप्ले की सहायता के लिए भेजी गई, किन्तु वह मार्ग में ही कहीं डूबकर खतम हो गई। इस लड़ाई में डूप्ले की भारी हार हुई और इसके साथ ही फ्रांस की सरकार ने डूप्ले को वापस बुला लिया। यहाँ पर इस देश भक्त राजनीतिज्ञ का चरम अन्त हुआ। साथ ही फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों से प्रतिरोध करना छोड़ दिया।

सन् १७६९ ई० में फ्रांसीसी कम्पनी तोड़ दी गई और इस प्रकार अंग्रेजों के विरुद्ध फ्रेंच प्रतिस्पर्धा का करीब-करीब अन्त हो गया।

प्लासी का युद्ध और लार्ड क्लाइव

उधर कलकत्ते के क्षेत्र में भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजनैतिक दाव पेंच चालू थे, जिनका परिणाम शीघ्र ही 'प्लासी के युद्ध' के रूप में प्रकट हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण घटना प्लासी का युद्ध है। जिसने इस कम्पनी के इतिहास को एक नया मोड़ दे दिया और व्यापार के लिए आई हुई अंग्रेज जाति ने साम्राज्य स्थापना के क्षेत्र में कदम रक्खा।

९ अप्रैल सन् १७५६ को बंगाल के लोकप्रिय और प्रसिद्ध नवाब अली वर्दी खाँ की मृत्यु हुई। मरते समय उसने गद्दी के उत्तराधिकारी अपने नाती सिराजुद्दौला को बुलाकर कहा कि —

'मुल्क के अन्दर यूरोपियन कौमों की ताकत पर नजर रखना। यदि खुदा थोड़ी सी मेरी उमर बढ़ा देता तो मैं तुम्हें इस डर से भी आजाद कर देता। मगर अब तो बेटा! यह काम तुम्हीं को करना होगा। इन लोगों की कूटनीति से तुम्हें हमेशा सावधान रहना होगा। इन तीनों यूरोपियन कौमों से एक साथ निपटने की कोशिश मत करना। इस समय अंग्रेजों की ताकत बढ़ रही है… 'पहले उन्हीं को जेर करना। इन्हें जेर कर लोगे तो बाकी की दो कौमें तुम्हें अधिक कष्ट न देंगी। अंग्रेजों को किले बनाने या फौज रखने की इजाजत मत देना। यदि तुमने यह गलती की तो मुल्क तुम्हारे हाथ से निकल जायेगा।"

सिराजुद्दौला ने अपने नाना की इस नसीहत पर पूरा ध्यान रक्खा मगर उद्दत स्वभाव और उच्छृंखल जवानी के वश में होकर उसने अपने घर में ही अनेकों दुश्मन पैदा कर लिए। शासन पर आते ही उसने अंग्रेजों और फ्रांसीसियों को किलेबन्दी करने और फौज रखने की मनाई कर दी। लेकिन अंग्रेज उसकी अन्तरंग कमजोरी को समझ गये थे इसलिए उन्होंने उसके आदेश पर कोई ध्यान नहीं दिया।

तब सिराजुद्दौला ने क्रोध में आकर १७५६ के जून महीने में अंगरेजों पर चढ़ाई कर दी। रविवार २० जून के दिन विजयी सिराजुद्दौला ने कलकत्ते की अंगरेजी कोठी में प्रवेश किया और सारे अंगरेजों को कैद कर लिया और बाद में सब अंगरेजों को कलकत्ते से बाहर निकाल दिया।

इस घटना का वर्णन करते हुए हालवेल ने कम्पनी के डायरेक्टरों के नाम अपने ३ नवम्बर १७५६ के पत्र में लिखा था।

"इतनी घातक और शोक-जनक आपत्ति शायद आदम के समय से लेकर आजतक किसी भी कौम या उपनिवेश के इतिहास में नहीं आई होगी।"

इसी समय अंगरेज इतिहासकारों के मतानुसार सिराज-उद्दौला ने १४६ अंगरेज कैदियों को पकड़ कर २० जून की रात को एक 'काल कोठरी' में ठूंस दिया। जिसके परिणाम स्वरूप जून की उस भीषण गर्मी में एक ही रात में १२३ आदमी तड़प-तड़प कर मर गये और सिर्फ २३ व्यक्ति अर्द्ध मृतक अवस्था में जीवित निकले। भारतीय इतिहासकार काल-कोठरी की इस घटना की सत्यता में सन्देह करते हैं।

कलकत्ते से हटकर अंगरेजों ने बंगाल की खाड़ी के ऊपर फल्टा नामक स्थान पर मुकाम किया और करीब छः महीने वहीं पर पड़े रहे। इस बीच अपने गुप्तचरों को भेजकर, झूठे-सच्चे प्रलोभन देकर उन्होंने भेद नीति से सिराज-उद्दौला के विश्वास पात्र लोगों को फोड़ना शुरू किया जिनमें सिराजुद्दौला का विश्वास पात्र प्रधान सेनापति मीरजाफर प्रमुख था।

कलकत्ते से अंगरेजों को निकाले जाने की खबर जब मद्रास पहुँची तो वहाँ से ८०० अंगरेज और १५०० हिन्दु-स्तानी सैनिकों का दस्ता रवाना किया गया। जिसमें जल सेना का अधिकार एडमिरल वाट्सन को और स्थल सेना का क्लाइव को दिया गया।

मगर अंगरेजों की असली शक्ति सैनिक शक्ति पर नहीं भेद-नीति पर अवलम्बित थी। नवाब के घर में ही उसके विरुद्ध सैकड़ों विरोधी खड़े हो गये थे, इन्हीं के बल पर बिना किसी खास लड़ाई के अंगरेजों ने कलकत्ते पर वापस अधिकार कर लिया। सिराजुद्दौला को भी इस विश्वासघात का पता लग गया था। चारों तरफ दुश्मनों को देखकर उसकी अक्ल काम नहीं कर रही थी। ऐसी स्थिति में मजबूर होकर उसे अंगरेजों से "अलीनगर की संधि" अपमानपूर्ण शर्तों के साथ करनी पड़ी।

पर अंगरेजों को तो खून का चसका लग गया था। उन्होंने उस संधि की परवा न कर अपना षड्यंत्र चालू रक्खा और जून १७५७ तक क्लाइव, वाट्सन, वाट्स और मीरजा-फर के बीच सारा षड्यंत्र तय हो चुका था। इसी दिन आधी रात को एक जनानी पालकी में बैठकर वाट्सन चुपचाप मीरजाफर के महल में पहुँचा और चुपचाप एक गुप्त संधि पत्र पर मीरजाफर के हस्ताक्षर करवाये, जिसमें ११ शर्तें थीं। इन शर्तों का सार इस प्रकार था—

जितने अधिकार सिराजुद्दौला ने अंगरेजों को दे रक्खे हैं मीरजाफर के सूबेदार बनने पर वे सब कायम रक्खे जाँय। मीरजाफर और अंगरेज दोनों में से जब किसी को तीसरे शत्रु से लड़ाई करना पड़े तो वे एक दूसरे की मदद करें। फ्रान्सीसियों की तमाम कोठियाँ अंगरेजों के हवाले कर दी जाँय और फ्रान्सीसियों को बंगाल से निकाल दिया जाय। कलकत्ते की तबाही के हरजाने और लड़ाई के खर्च के लिए मीरजाफर कम्पनी को एक करोड़ रुपया दे। इसके अलावा कलकत्ते के अंगरेज बाशिंदों को ५ लाख हिन्दू बाशिंदों को बीस लाख और अन्य बाशिंदों को ७ लाख रुपया अलग से नुकसानी के दे। मसनद पर बैठने के तीस दिन के अन्दर नवाब इन शर्तों को पूरा करे।

इस प्रकार मीरजाफर ने इस संधि पर दस्तखत करके अपने हाथ कलम करवा लिये और भारतवर्ष में अंगरेजी साम्राज्य की स्थापना का रास्ता खुला कर दिया। एक विश्वासघाती अपने थोड़े से नीच स्वार्थ के लिए किस प्रकार सारे देश की स्वतंत्रता को बेच देता है—इसका यह एक ज्वलन्त दुःखकर उदाहरण था।

इसी के फलस्वरूप २३ जून १७५७ को मुर्शिदाबाद से बीस मील दूर प्लासी के मैदान में नवाब और अंगरेजों की दोनों सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रधान सेनापति मीरजाफर के अलावा सिराजुद्दौला की सेना में तीन सेनापति

और थे। (१) यारलुत्फ़ खाँ, (२) राजा दुर्लभराम और (३) मीरमदन। ४५ सेना मीरजाफर, यारलुत्फ़ खाँ और राजा दुर्लभराम के अधीन थी और १२ हजार सेना मीरमदन के अधिकार में थी।

लड़ाई प्रारम्भ होते ही सिराजुद्दौला को मीरजाफर के विश्वासघात का पता चल गया। उसने मीरजाफर को बुला कर अपनी जान बचाने के लिए उसके पैरों पर अपनी पगड़ी रख दी। पर कोई नतीजा नहीं निकला और मीरजाफर, राजा दुर्लभराम और यारलुत्फ़ खाँ—तीनों सेनापति अपनी ४५ सेना के साथ अंग्रेजों के साथ जाकर मिल गये। थोड़ी देर बाद सिराजुद्दौला का वफादार सेनापति मीरमदन भी मारा गया। जितनी देर वह जिन्दा रहा, उसने अपनी १२ सेना के साथ तीनों विश्वासघाती सेनाओं का मुकाबिला किया। मगर उसके मरते ही पासा पलट गया और सिराजुद्दौला को हाथी पर सवार होकर मुर्शिदाबाद की तरफ भागना पड़ा। आगे चलकर राजमहल नामक स्थान पर सिराजुद्दौला पकड़ा गया और २ जुलाई सन् १७५७ की रात को मीरजाफर के पुत्र 'मीरन' के आदेश से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े किये गये और उन टुकड़ों को हाथीपर लाद कर सारे मुर्शिदाबाद में घुमाया गया और अन्त में सिराजुद्दौला की माता अमीना बेगम के सामने उनको फेंक दिया गया। यह एक अत्यन्त करुणाजनक दृश्य था।

मीरजाफर

सिराजुद्दौला के बाद मीरजाफर बंगाल का नवाब हुआ। दरबारी लोग मीरजाफर को 'कर्नल क्लाइव का गदहा' कहा करते थे। उस समय मुर्शिदाबाद का शहर बड़ा वैभव सम्पन्न था। क्लाइव ने उसका वर्णन करते हुए एक जगह लिखा है—

'मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लंबा चौड़ा आबाद और धनवान है जितना कि लन्दन शहर। फर्क इतना ही है कि लन्दन के धनाढ्य से धनाढ्य पुरुष के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है उससे बेइन्तहा ज्यादा सम्पत्ति मुर्शिदाबाद में अनेकों के पास है।

मीरजाफर को गद्दी नशीन करने के बाद क्लाइव ने मुर्शिदाबाद की लूट शुरू की। अंग्रेज इतिहास लेखक ओर्मे लिखता है—

"१ जुलाई सन् १७५७ ई० तक अंग्रेज कमेटी के पास केवल चाँदी के सिक्कों की संख्या ७२ लाख ७१ हजार ६६६ तक पहुँच गई थी। यह खजाना ७ सन्दूकों में भर कर सौ किश्तियों पर लादा गया। सैनिकों की निगरानी में ये किश्तियाँ नदिया गई और वहाँ से अंग्रेजी जहाजों में लाद कर विजय का झंडा फहराते हुए आगे बढ़ी। इसके पहले कभी भी अंग्रेज कौम को इतना अधिक नगद धन किसी लड़ाई में नहीं मिला था।" बटवारे के समय छोटे से छोटे अंग्रेज को कम से कम ४५ हजार रुपये मिले।

गद्दी पर बैठते ही मीरजाफर ने क्लाइव की सलाह से हिन्दू नरेशों को हटाकर उनकी जगह मुसलमानों को नियुक्त करना प्रारम्भ किया। एक ओर तो क्लाइव मीरजाफर को हिन्दू-राजाओं के खिलाफ भड़काता था, दूसरी ओर लड़ाई के मौके पर मध्यस्थ बनकर फैसला भी करा देता था। इस प्रकार मीरजाफर दिन पर दिन अप्रिय होता गया और क्लाइव का वर्चस्व बढ़ता गया।

जिन हिन्दू-राजाओं पर मीरजाफर ने आक्रमण करना चाहा, उनमें बिहार का राजा रामनारायण, उड़ीसा का राजा रामराम सिंह, पूर्णियाँ का राजा जुगल सिंह और सिराजुद्दौला के खिलाफ षड्यंत्र में मीरजाफर का प्रमुख साथी राजा दुर्लभराम भी सम्मिलित था।

इसी समय क्लाइव को समस्त भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना की कल्पना आई और ७ जनवरी सन् १७५९ को इंग्लैंड के प्रधान मंत्री विलियम पिट को उसने एक पत्र इस प्रकार लिखा—

"अंग्रेजी फौज की कामयाबी के जरिये एक महान् क्रान्ति इस देश में की जा चुकी है। उस क्रान्ति के बाद एक सन्धि की गई है जिससे कम्पनी को बड़े जबर्दस्त फायदे हुए हैं। मुझे मालूम है कि इन सब बातों की तरफ अंग्रेज जाति का ध्यान आकर्षित हो चुका है। किन्तु मौका मिलने पर अभी बहुत कुछ किया जा सकता है दो साल का मिहनत और तजुर्बे से मैंने इस देश की हुकूमत के नियम

में और यहाँ के लोगों के स्वभाव के विषय में जो परिपक्व ज्ञान प्राप्त किया है, उससे मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि इस तरह का मौका शायद ही आने पाता है, क्योंकि मौजूदा नवाब " 'मूर्ख है और उसका मीयमान उसका इतना जालिम और निकम्मा है और अंग्रेजों का इतना खुला दुश्मन है कि इस नवाब के बाद उसे मसनद पर बैठने देना खतरनाक होगा। केवल २ हजार अंग्रेजों की छोटी सी सेना हमें दोनों की ओर से बेखटके कर देगी और इनमें से कोई यदि हमारे साथ मुकाबला करने की हिम्मत करेगा तो इस सेना के द्वारा दुश्मन को भगाकर हम अपने हाथों में ले सकेंगे।"

"हिन्दुस्तान के लोगों को अपने राजाओं के प्रति किसी तरह का प्रेम नहीं है। इसलिये इस काम के करने में हमें ज्यादा कठिनाई नहीं होगी।"

"पर इतना जरूर है कि बिना ब्रिटिश जाति की सहायता के अकेली कंपनी इतने बड़े राज्य की व्यवस्था नहीं रख सकती। विचारणीय बात यह है कि यह तमाम खर्चा बिना अपनी मातृभूमि पर खर्चे का बोझ डाले पूरा किया जा सकता है। जब कि अमरीका में अपना राज्य कायम करने के लिए इंग्लैण्ड को भारी खर्च उठाना पड़ा था। अंग्रेजों की एक छोटी सी सेना इस काम के लिए काफी होगी, क्योंकि हम चाहे जब, चाहे जितने काले सिपाही यहाँ जमा कर सकते हैं।'

सन् १७६० में नवाब अपदस्थ होकर [illegible] भेजा गया।

गद्दी पर बैठते ही मीरजाफर के चारों ओर कठिनाइयाँ खड़ी हो गईं। उसका खजाना खाली हो गया। उसकी आमदनी भी बहुत कम हो गई। हिन्दू राजाओं के खिलाफ साजिश करने से हिन्दू-प्रजा भी उसके विरुद्ध हो गये। अंग्रेजों का विरोध करने के कारण उसके पुत्र की भी हत्या कर दी गई। उसकी ऐसी दशा देखकर नवाब की कौंसिल ने उसे गद्दी से उतार दिया और उसके दामाद 'मीर कासिम' को नवाब बना दिया। इसके बदले में कम्पनी ने मीर कासिम से बर्दवान, मिदनापुर और चटगाँव के जिले तथा दो लाख पौंड नकद लिए।

मीर कासिम

मीरजाफर और मीरकासिम में बड़ा अन्तर था। मीरजाफर एक अयोग्य, निर्बल, दगाबाज और भीरु था। इसके विपरीत मीरकासिम योग्य, दूरदर्शी और शासक की हैसियत से बड़ा प्रवीण था। उसकी कुशलता की प्रायः सभी इतिहास लेखकों ने प्रशंसा की है। इतिहास लेखक कर्नल मालेसन ने लिखा है कि "मीरकासिम अत्यन्त योग्य और असाधारण कुशल मनुष्य था। वह अपने इरादों पर चोटे की तरह दृढ़ रहता था। हर बात को ठीक ठीक समझ कर उसका तुरन्त फैसला करता था। उसके विचार उदार थे उसका दिमाग साफ था और उसका चरित्र मजबूत था।"

मीरकासिम ने मसनद पर बैठते ही बंगाल की हालत को सुधारने की जी तोड़ कोशिश की और उसमें उसे काफी सफलता भी मिली। सन् १७६२ तक उसने फौज की तमाम पिछली तनख्वाहें अदा कर दिया और अंग्रेज कम्पनी की भी एक एक पाई अदा कर दी। आगे के शासन का उसने ऐसा प्रबन्ध किया जिससे शासन की आमदनी खर्च से अधिक बढ़ गई।

यह बात जरूर है कि उसे अंग्रेजों पर शुरू से ही विश्वास नहीं था और उसकी अन्तरंग अभिलाषा देश से इन लोगों के पैर उखाड़ देने की थी। फिर भी उनको दिये हुए सारे वचनों का उसने पूरा पूरा पालन किया।

रात दिन अंग्रेजों की निगाह से बचने के लिए वह अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से उठाकर मुंगेर ले आया। मुंगेर की उसने बड़ी मजबूत किलेबन्दी की। वहाँ पर तोपें ढालने का एक नया कारखाना कायम किया जिसमें बढ़िया किस्म की तोपें ढाली जाती थीं। करीब चालीस हजार फौज भी उसने वहाँ जमा कर ली।

उसकी इस तैयारी को देखकर अंगरेज चौकन्ना हो गये और उन्होंने फिर से उसे गद्दी से उतार कर मीरजाफर को गद्दी पर लाने की साजिश प्रारम्भ कर दी।

उस समय एक जगह से दूसरी जगह आने जानेवाले माल पर सरकारी चुंगी लगा करती थी। देहली के सम्राट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की दस्तखत पर विदेशों से आने वाले और जाने वाले माल पर चुंगी माफ कर रखी थी।

मगर अंग्रेज व्यापारियों ने इस आदेश का दुरुपयोग कर देश में एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को ले जाने वाले माल पर भी चुंगी देना बन्द कर दिया। जिस माल पर देशी व्यापारियों को चुंगी देनी पड़ती थी उस माल को वे बिना चुंगी दिये ही ले जाते थे। इससे देशी व्यापारियों का व्यापार एक दम ठप हो गया था और सरकारी चुंगी की आमदनी भी बन्द हो गई थी।

इस पर मीर कासिम ने कई बार कम्पनी को सूचना दी कि वह अंग्रेज व्यापारियों की इस धींगा-धींगी को बन्द करे, मगर उसकी चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं हुआ। तब उसने लाचार होकर सब लोगों के लिए चुंगी चुंगी कर दी और चुंगी के सब नाकों को उठा लिये।

इस घटना से देशी व्यापारियों का व्यापार चमक उठा और अंग्रेज व्यापारियों का व्यापार ठप हो गया। इससे कम्पनी के अधिकारी बहुत नाराज हुए और उन्होंने मीर कासिम को गद्दी से उतारने का प्रयत्न तेजी से प्रारम्भ किया। १४ अप्रैल सन् १७६३ को उन्होंने अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी और पटने में कम्पनी के एजेण्ट एलिस को लिख दिया कि तुम आज्ञा पाते ही पटना पर कब्जा करने के लिए तैयार रहो। कम्पनी की काफी सेना पहले ही पटना पहुँच चुकी थी। और बहुत सी हथियारों से भरी हुई किश्तियाँ कलकत्ते से पटने की ओर आ रही थीं मगर मीरकासिम ने फौरन उन किश्तियों को रोक लिया।

२४ जून की रात को 'एलिस' ने अचानक पटने पर हमला करके शहर पर कब्जा कर लिया। तब मीर कासिम ने भी गुस्से में आकर अपनी सेना भेजी और फिर से नगर को विजय कर लिया और एलिस तथा उसके दो सौ साथियों को कैदकर १ कुबाई की रात को मुंगेर भेज दिया। इस लड़ाई में कम्पनी के १ अंगरेज और २५ भारतीय सैनिक मारे गये।

२८ जून को मीर कासिम ने गवनर वन्सीटार्ट और और उसकी कौन्सिल को यह पत्र लिखा—

"× × × रात का डाकू की तरह मि० एलिस ने पटने के किले पर हमला किया वहाँ के बाजार और नगर को लूटा ··· चूँकि आप लोगों ने बदनामी और जुल्म के साथ शहर को रौंद डाला है और कई लाख का माल लूट लिया है। इसलिए अब इन्साफ यह है कि कम्पनी गरीबों का यह का नुकसान भर दे। आप ईसाई लोग भी बड़े विचित्र दोस्त निकले। आपने सन्धि की। उस पर ईसा मसीह के नाम पर कसम खाई, इस शर्त पर कि आपकी सेना सदा मेरा साथ देगी। आपने अपनी सेना के खर्च के लिए मुझसे इलाका लिया और उस सेना का उपयोग आप मेरे ही नाश के लिए कर रहे हैं इसके अलावा कई साल से अंग्रेज गुमास्तों ने मेरी निजामत के अन्दर जो-जो जुल्म और ज्यादतियाँ की हैं—जो बड़ी बड़ी रकमें लोगों से जबरदस्ती वसूल की हैं मुनासिब और इन्साफ यह है कि कम्पनी इस समय उन सबका हरजाना दे। आपको सिर्फ इतनी ही तकलीफ करने की जरूरत है कि जिस तरह से पत्र मान और दूसरे इलाके आपने मुझसे लिए थे उसी तरह मुझ पर इनायत करके वे मुझे वापस कर दें।"

जिस दिन यह पत्र कलकत्ता पहुँचा उसी दिन कम्पनी ने मीर कासिम के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर मीरजाफर को फिर से बंगाल का नवाब घोषित कर दिया। मीर कासिम के पास सेना की शक्ति अंग्रेजों की शक्ति से बहुत अधिक थी। मगर हमेशा की भाँति इस बार भी अंग्रेजों की भेद नीति ने समय पर काम दिया। मीर कासिम ने अपनी सेना में बहुत से ईसाई अफसरों को सेना के बड़े-बड़े ओहदों पर नियुक्त कर रक्खा था। अंग्रेजों के कमरल मेजर एडम्स ने उन सबसे गुप्त पत्र व्यवहार कर उन्हें फोड़ लिया। उदवा नाला नामक स्थान पर जब दोनों फौजों में लड़ाई चालू हुई तो वे सब लोग नवाब की सेना से निकल कर अंग्रेजों की फौज में जा मिले नतीजा यह हुआ कि मीर कासिम की जीत भयानक हार में बदल गई और एक रात में उसके पन्द्रह हजार सैनिक काम आये। मीर कासिम की करीब चार सौ बढ़िया तोपें इस लड़ाई में अंग्रेजों के हाथ लगीं। उसके बाद मुंगेर और अजीमाबाद के किले भी वहाँ के विश्वासघातक किलेदारों ने रिश्वत से लेकर बिना लड़ाई के अंग्रेजों के सिपुर्द कर दिये।

बक्सर की लड़ाई

उसके बाद मीरकासिम ने दिल्ली के बादशाह और नवाब शुजाउद्दौला की सहायता से बक्सर के मैदान में इतिहास प्रसिद्ध लड़ाई लड़ी। मगर इस लड़ाई में भी अंग्रेजों के बहकावे में आकर बादशाह शाह आलम धोखा दे गया और लड़ाई का मैदान फिर अंग्रेजों के हाथ आया। मीरकासिम को भागना पड़ा और नवाबी फिर मीरजाफर के गले में आई।

सन् १७६५ में दूसरी बार क्लाइव 'फोर्ट विलियम' का गवर्नर नियुक्त होकर कलकत्ते आया। यहाँ आने पर उसे पता चला कि मीर जाफर की मृत्यु हो चुकी है और कौंसिल तथा उसके साथियों ने २ लाख रुपये नकद रिश्वत लेकर नजमुद्दौला को बंगाल का नवाब बना दिया है।

क्लाइव ने आते ही सम्राट् शाह आलम से बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी का अधिकार प्राप्त कर लिया और कुछ ही दिन पहले की शुजा-उद्दौला के साथ की हुई सन्धि को रद्द करके उससे एक नई सन्धि मंजूर करा ली, जिसमें इलाहाबाद और कड़ा—दोनों स्थान कम्पनी ने अपने कब्जे में कर लिए।

वारन हेस्टिंग्स

सन् १७७२ में वारन हेस्टिंग्स फोर्ट विलियम किले का गवर्नर नियुक्त हुआ।

उस समय सम्राट् शाहआलम को ईस्टइण्डिया कम्पनी, बंगाल बिहार, उड़ीसा की दीवानी के बदले में २६ लाख रुपये सालाना 'खिराज' के रूप में भेजती थी। वारन हेस्टिंग्स ने आते ही उसे एक दम बन्द कर दिया। इसके बाद वारन हेस्टिंग्स ने, चाहे ईमानदारी से हो या बेइमानी से किसी भी प्रकार धन बटोरने का निश्चय किया। सन् १७७३ में उसने शुजाउद्दौला से ४० लाख रुपये नकद और फौज का सारा खर्च देने की शर्त पर रोहेलखण्ड की रुहेला जाति पर आक्रमण कर दिया और रुहेलों का नाश कर शुजा उद्दौला से ४० लाख रुपये कम्पनी के लिए और ९ लाख अपनी जेब के लिए वसूल किये।

वारन हेस्टिंग्स के इस काम से खुश होकर कम्पनी ने उसको कम्पनी के समूचे भारतीय राज्य का गवर्नर जेनरल नियुक्त किया।

महाराज नन्दकुमार को फाँसी

वारन हेस्टिंग्स के द्वारा किये हुए काले कारनामों और जाल-साजियों की घटनाओं में महाराज नन्दकुमार को दी हुई फाँसी एक प्रमुख घटना है।

महाराज नन्दकुमार और हेस्टिंग्स का झगड़ा काफी दिनों से चल रहा था। नन्दकुमार ने एक लंबी अर्जी लिखकर 'कलकत्ते की कौंसिल' के सामने पेश की। जिसमें उसने वारन हेस्टिंग्स पर बंगाल के रईसों और जमींदारों से रिश्वतें लेने, नकली कर वसूल करने, मुर्शिदाबाद के नवाब की माँ मुन्नी बेगम से रकमें वसूल करने लोगों को धोखा देने इत्यादि के अनेक इलजाम ठोस प्रमाणों के साथ लगाये थे। मगर वारन हेस्टिंग्स का कुछ भी नहीं बिगड़ा उसने यह कहकर कि यह केस सुनने का कौंसिल को अधिकार ही नहीं है अपना बचाव कर लिया। इसके विपरीत हेस्टिंग्स ने नन्दकुमार के ऊपर जालसाजी और जाली दस्तखत का इल्जाम लगाकर 'सुप्रीम कोर्ट' में मामला दायर कर दिया।

इस समय सुप्रीम कोर्ट का जज 'एलीजा इम्पे' वारन-हेस्टिंग्स का बचपन का दोस्त था। उसने झूठे और बेबुनियाद गवाहों के आधार पर नन्दकुमार को फाँसी की सजा सुना कर ५ अगस्त सन् १७७५ के दिन महाराज नन्दकुमार को फाँसी पर चढ़ा दिया।

चेतसिंह का विद्रोह

सन् १७७५ में अवध के नवाब ने बनारस का इलाका कंपनी के नाम कर दिया। उस समय बनारस का महाराज बलवन्त सिंह बड़ा अच्छा शासक था मगर कंपनी ने अपनी ओर से एक नई सनद जारी कर बलवन्त सिंह के पुत्र चेतसिंह को पिता के तमाम अधिकार दे दिये और महाराज चेतसिंह को ५ लाख रुपये सालाना खर्च पर अपने यहाँ तीन पल्टनें रखने का हुक्म दिया। दो साल के बाद एक घुड़सवार पल्टन और रखने का आदेश दिया। इस पर चेतसिंह ने यह भारी खर्च सहन करने से इनकार कर दिया। तब वारन हेस्टिंग्स ने अपनी सेना के साथ बनारस पहुँच कर रेजीडेंट को आज्ञा दी कि चेतसिंह को कैद कर लिया जाय। यह देखकर बनारस की प्रजा कंपनी की सेना पर टूट पड़ी और तमाम अंग्रेज सैनिकों

को कत्ल कर डाला। तब हेस्टिंग्स ने एक बड़ी सेना बनारस पर हमला करने के लिए भेजी और चेतसिंह को खिड़की के रास्ते गंगा में कूद कर भागना पड़ा। बाद में अंग्रेजी सेना ने बनारस में खूब लूट मचायी।

अवध की बेगमों पर अत्याचार

वारन हेस्टिंग्स की भूख बनारस की लूट से भी शान्त नहीं हुई। तब उसकी निगाह अवध की बेगमों के पास संचित अटूट खजाने पर पड़ी। इस काम में उसने नवाब आसफ उद्दौला को अपनी तरफ मिलाया और बेगमों पर यह इल्जाम लगाया गया कि उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ चेतसिंह के साथ साजिश की है। नन्दकुमार को फाँसी देने वाला कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट का जस्टिस एलीजा इम्पे यहाँ भी वारन हेस्टिंग्स की मदद पर आ गया। उसने अवध की बेगमों पर लगाये गये इल्जामों को सही घोषित कर दिया। तुरन्त फैजाबाद के महलों को अंग्रेजी सेना ने घेर लिया और बेगमों को तब तक खाना पीना नहीं दिया गया, जब तक कि उन्होंने सारा खजाना अंग्रेजी सेना के जिम्मे न कर दिया। इस लूट के माल की कीमत १ करोड़ २ लाख रुपये आँकी जाती है।

उधर दक्षिण में भी मराठों के साथ हेस्टिंग्स के दाँव पेंच चल रहे थे और मैसूर में हैदर अली के रूप में एक नवीन शक्ति का उदय हो रहा था, जो अंग्रेजों के लिए खतरनाक साबित हो रही थी। सन् १७७८ में अमरीका में इंग्लैंड और फ्रांस के बीच लड़ाई शुरू हो गई जिसके परिणामस्वरूप भारत में भी अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में लड़ाई होने लगी। अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों के *माही और पाण्डिचेरी नगरों पर अधिकार कर लिया।* इस घटना से मैसूर का शासक हैदरअली बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने सन् १७८० में एक बड़ी सेना लेकर कर्नाटक पर आक्रमण कर कर्नाटक की राजधानी 'अर्काट' पर कब्जा कर लिया और कर्नल बेली को मार डाला। तब वारन हेस्टिंग्स ने एक सेना के साथ सर आयरकूट को बंगाल से भेजा। सर आयरकूट ने हैदरअली को पराजित किया और १७८२ ई० में 'सालबाई' की सन्धि की गई।

दिसम्बर सन् १७८२ में हैदरअली की मृत्यु हो गई मगर उसके बाद उसके लड़के 'टीपू' ने लड़ाई को और भी जोर शोर से जारी रखी। फलस्वरूप मार्च सन् १७८४ में 'मंगलोर' की सन्धि हो गई।

इस प्रकार वारेन हेस्टिंग्स ने गवर्नर-जनरली के अपने १३ वर्ष के समय में, सब दूर भयंकर अत्याचार किये और लूट-मार मचायी।

इन अत्याचारों की संगीन शिकायतें इंग्लैण्ड की पार्लमेंट के मेम्बरों के पास पहुँची। तब पार्लमेंट में वारन-हेस्टिंग्स पर रिश्वत खोरी और अन्य अनेक अपराधों के विषय में मुकदमा चलाया गया। इसी मुकदमे में सुप्रसिद्ध विद्वान और वक्ता 'एडमंड बर्क' ने अपने अमर भाषणों के द्वारा ओजस्वी भाषा में वारन हेस्टिंग्स के अत्याचारों का चित्र खींचा, जिन्हें सुन कर सुनने वालों के कलेजे दहल गये।

यह मुकदमा सात साल तक चला मगर अन्त में ब्रिटिश पार्लमेंट ने उसे सब इल्जामों से बरी कर दिया कि उसने जो कुछ भी किया इंग्लैण्ड राष्ट्र के हित में किया।

विलियम पिट का इण्डिया एक्ट

इन दिनों इंग्लैंड की पार्लमेंट के मेम्बर हिन्दुस्तान के मामलों में बड़ी दिलचस्पी लेने लगे थे और शासन प्रबन्ध में सुधार करना चाहते थे। रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की बुराइयाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी थीं। इसके फलस्वरूप सन् १७८४ में विलियम पिट का इण्डिया एक्ट पास हुआ जिसमे कम्पनी की नीति और शासन विधान में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। कम्पनी के दीवानी और फौजी मामलों का निरीक्षण करने के लिए एक 'बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल' बनाया गया। इस बोर्ड में छः मेम्बर रक्खे गये। एक गुप्त समिति नियुक्त की गई जिसका काम डाइरेक्टरों को बिना खबर दिये बोर्ड की गुप्त आज्ञाओं को हिन्दुस्तान भेजना था। गवर्नर-जनरल की कौन्सिल के मेम्बरों की संख्या ३ निश्चित कर दी गई। बम्बई और मद्रास के प्रान्त बंगाल के आधीन कर दिये गये। गवर्नर जनरल और उसकी कौन्सिल को आदेश दिया गया कि डाइरेक्टरों के बोर्ड से अनुमति लिये बिना वे राजाओं से युद्ध अथवा संधि न करें।

लार्ड कार्नवालिस

वारेन हेस्टिंग्ज के बाद कुछ समय तक "मैकफर्सन गवर्नर जनरल रहा और इसके बाद लार्ड कार्नवालिस सन् १७८६ में गवर्नर जनरल होकर आया जो कम्पनी के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना था। वह एक अनुभवी, उदार और अपेक्षाकृत न्यायप्रिय व्यक्ति था।

लार्ड कार्नवालिस के शासन-काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना बंगाल में "इस्तमरारी बन्दोबस्त" का होना है। इस बन्दोबस्त के द्वारा जमीन की लगान को पहले हमेशा घट बढ़ रहती थी वे हमेशा के लिये निश्चित कर दी गई। इस बन्दोबस्त से सरकार, जमींदार और प्रजा—तीनों की स्थिति पर प्रभाव पड़ा। सरकार को इससे काफी नुकसान उठाना पड़ा क्योंकि भविष्य में जमीनों की कीमतें बढ़ जाने पर भी वह लगान नहीं बढ़ा सकती थी। मगर इस बन्दोबस्त से समय समय पर मालगुजारी निश्चित करने और वसूल करने के झंझट से उसे फुरसत मिल गई। जमींदारों को इससे बड़ा लाभ हुआ। उनकी हालत पहले से बहुत अच्छी हो गई। वे ब्रिटिश सरकार के पक्के राजभक्त हो गये और भारत में बंगाल का प्रांत सबसे अधिक उन्नतिशील और समृद्ध बन गया मगर किसानों को इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। जमींदारों के अत्याचार उन पर बदस्तूर जारी रहे। इन अत्याचारों को कम करने के लिए सन् १८५६ ई० में 'बंगाल टेनेन्सी एक्ट' पास किया गया।

इसी प्रकार लार्ड कार्नवालिस ने यहाँ की अदालतों का संगठन यूरोपीय ढंग पर किया और यूरोपीय लोग ही उनमें जज नियुक्त किये गये।

कार्नवालिस चाहता था कि वह 'पिट के इंडिया एक्ट' की नीति पर चले परन्तु परिस्थितियों ने उसके लिए ऐसा करना असम्भव कर दिया। क्योंकि उस समय दक्षिण का टीपू सुल्तान अंग्रेजी-राज्य को नष्ट करने के लिए पूरा प्रयत्न कर रहा था। इस कार्य में सहायता पाने के लिये सन् १७८७ में उसने टर्की और फ्रांस को अपने राजदूत भेजे थे। अंग्रेजों के विरुद्ध वह उनसे सैनिक सहायता चाहता था।

इसके दो वर्ष बाद उसने ट्रावनकोर के राजा पर भी हमला कर दिया जो कि अंग्रेजों का मित्र था। कार्नवालिस को यह सहन नहीं हुआ और उसने सन् १७८९ में निजाम और पेशवा के साथ मिलकर टीपू के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और स्वयं सेनापति बनकर लड़ाई के मैदान में गया। उसने बंगलौर को जीत लिया तथा रंगपट्टम की ओर बढ़ा। तब टीपू सुल्तान ने सन्धि की और अपने राज्य का एक बड़ा भाग, जिसकी सालाना आमदनी एक करोड़ रुपया थी तथा तीन करोड़ रुपया नकद हर्जाने के रूप में देने का वादा किया और अपने दो लड़कों को बन्धक रूप में दे दिया। टीपू से मिले हुए इलाके को निजाम पेशवा और कार्नवालिस ने बाँट लिये।

सन् १७९३ में लार्ड कार्नवालिस वापस लौट गया।

लार्ड वेलेजली

लार्ड कार्नवालिस के बाद सन् १७९३ से सन् १७९८ तक सर जानशोर गवर्नर जनरल के पद पर रहा। उसके बाद सन् १७९८ में लार्ड वेलेजली गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आया। वह बड़ा साहसी और साम्राज्यवादी विचार धारा का व्यक्ति था। जिस समय वह यहाँ आया उस समय इंग्लैंड नैपोलियन महान् के साथ जीवन-मरण के संघर्ष में व्यस्त हुआ था। इन परिस्थितियों में उसके लिए तटस्थ रहना संभव नहीं था। इसलिए उसने सभी भारतीय शक्तियों को नष्ट करके सारे भारत में एकछत्र अंग्रेजी शासन कायम करने का निश्चय किया। उसने एक के बाद दूसरे राजा को पराजित किया।

उस समय टीपू सुल्तान भारत से अंग्रेजों को निकालने के लिए बाहरी देशों से सम्पर्क बनाए हुये था। लार्ड वेलेजली ने उसको पूरी तरह अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा और टीपू सुल्तान के टाल-मटूल करने पर उसने टीपू के विरुद्ध तुरन्त युद्ध की घोषणा कर दी। सेनापति लार्ड 'हेरिस' ने निजाम की सेना की सहायता से टीपू सुल्तान पर आक्रमण कर दिया। इस लड़ाई में टीपू भी अपने साथियों के विश्वासघात से हार और बहादुरी पूर्वक लड़ते हुए मारा गया।

इसके बाद लार्ड वेलेजली ने देशी राजाओं के साथ सहायक सन्धियाँ करना शुरू किया। इस सन्धि के

नियमानुसार सन्धि करने वाले राजा को अनिवार्य रूप से अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी। वह किसी विदेशी शक्ति के साथ युद्ध और सन्धि नहीं कर सकता था। उसे अपने यहाँ एक निश्चित संख्या में अंग्रेजी सेना रखनी पड़ती थी और उसका खर्चा उसे देना पड़ता था।

इन सन्धियों की बदौलत अब अंग्रेजों की स्थिति बहुत दृढ़ हो गयी। उनके पास एक विशाल सुशिक्षित सेना तैयार हो गई, जिसके लिये उन्हें एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ता था। लार्ड वेलेजली ने बड़ी सख्ती के साथ देशी-राजाओं को सहायक-सन्धि करने के लिये मजबूर किया।

लार्ड वेलेजली ने तंजोर सूरत और कर्नाटक को उनके आपसी झगड़ों से लाभ उठाकर, अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। उसने अवध के नवाब पर दबाव डालकर रुहेलखण्ड और गोरखपुर के जिले भी अंग्रेजी राज्य में मिला लिये।

उसने बेसिन की सन्धि के द्वारा पेशवा को सहायक-सन्धि के जाल में फाँस लिया। इसी प्रकार सन् १८०३ ईसवी में सिन्धिया और भोंसला की संयुक्त सेना को 'असाई' के मैदान में हरा कर अहमदनगर पर कब्जा कर लिया और उसके बाद असीरगढ़ और बुरहानपुर के किले पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। लाचार सिंधिया को सन्धि का प्रस्ताव करना पड़ा।

नवम्बर सन् १८०३ में भोंसला को पराजित कर अंग्रेजों ने ग्वालीगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया। भोंसले के साथ देवगाँव की सन्धि हुई, जिसमें अंग्रेजों को कटक प्रान्त और बरार का वह हिस्सा जो भोंसले के अधीन था मिल गया।

सिन्धिया के साथ की अर्जुनगाँव की सन्धि में सिन्धिया ने दिल्ली, आगरा और यमुना नदी के दक्षिण का प्रदेश अंग्रेजों को दिया।

उधर उत्तरी भारत में जेनरल 'लेक' ने अलीगढ़ को जीत लिया और मुगल-सम्राट् की रक्षा का भार उसने अपने ऊपर ले लिया और सम्राट् को ९ हजार रुपये मासिक पेंशन देना स्वीकार किया।

सिर्फ यशवंतराव होलकर अंग्रेजों के विरोध में अभी तक लड़ा हुआ था। सन् १८०४ में कर्नल 'मानसून' की अध्यक्षता में अंग्रेजी फौज ने यशवंतराव पर आक्रमण किया, किन्तु यशवंतराव की फौज ने कर्नल मानसून की फौज को बुरी तरह परास्त किया।

सन् १८०५ में लार्ड वेलेजली भरतपुर की भीषण पराजय के कारण वापस बुला लिया गया। इस प्रकार अपने ७ वर्ष के शासन में लार्ड वेलेजली ने हिन्दुस्तान के बहुत बड़े भाग को लाल रंग में रंग दिया और अंग्रेजी-साम्राज्य की जड़ों को बहुत गहराई में पहुँचा दिया।

लार्ड वेलेजली की जगह पर थोड़े दिनों के लिए लार्ड कार्नवालिस दूसरी बार भारत में गवर्नर-जनरल हो कर आया। उसने आते ही सिन्धिया और होलकर के साथ सन्धि कर ली, मगर कुछ ही समय बाद गाजीपुर में उसका देहान्त हो गया।

कार्नवालिस के बाद सर जाज बार्लो भारतवर्ष का गवनर-जनरल नियुक्त हुआ। इसके समय में, सन् १८०६ में वेलोर का सिपाही-विद्रोह हुआ। उसने सिपाहियों को एक नई तरह की पगड़ी बाँधने और माथे पर तिलक न लगाने की आज्ञा दी थी। सिपाहियों ने इस चीज को अपने धर्म में हस्तक्षेप समझ कर विद्रोह कर दिया। उन्होंने किले पर कब्जा कर लिया और बहुत से अंग्रेज सिपाहियों को मार डाला। तब अर्काट से एक फौज बुला कर उस विद्रोह को शान्त किया गया।

लार्ड मिंटो

सन् १८०७ में लार्ड मिंटो गवर्नर-जनरल बन कर आया। उस समय सारे देश में बड़ी अशान्ति और अराजकता फैली हुई थी। झुंड के झुंड डाकू, ठग और पिंडारी स्वतंत्रता पूर्वक घूमते हुए लूट मार करते थे। बुंदेलखंड में पूर्णरूप से अराजकता छाई हुई थी और छोटे-छोटे सरदार आपस में लड़ते झगड़ते थे। लार्ड मिंटो ने डाकुओं और लुटेरों का सख्ती के साथ दमन करके और सरदारों के झगड़ों को परस्पर में निपटा करके देश में शान्ति स्थापित की।

सिक्ख शक्ति का उदय

उस समय पंजाब में सिक्ख शक्ति का बड़ी तेजी से विकास हो रहा था। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के बाद 'खालसा' (सिक्ख संघ) ने सन् १७६४ में लाहौर को जीत लिया था और झेलम से लेकर जमुना नदी तक सारे देश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

खालसा अनेक मिसलों में विभक्त था। हरएक मिसल का एक नेता होता था। उसके पास कुछ भूमि और सेना का एक दल होता था। इन मिसलों में १२ मिसलें बहुत प्रसिद्ध थीं। महाराज रणजीतसिंह का दादा 'चरत सिंह' 'सुकेर चुकिया' मिसल का नेता था। सन् १७९२ में चरतसिंह के पुत्र 'महासिंह' की मृत्यु के पश्चात रणजीतसिंह उसके उत्तराधिकारी हुए। रणजीतसिंह बड़े योग्य और महत्वाकांक्षी व्यक्ति थे। कुछ ही वर्षों में उन्होंने अपना एक राज्य बना लिया और खालसा के सभी मिसलों को एक सूत्र में बाँध कर एक सुदृढ़ सिक्ख-राज्य स्थापित करने की चेष्टा की।

लार्ड मिंटो ने सर 'चार्ल्स मेटकाफ' के द्वारा महाराज रणजीत सिंह से सन् १८०९ में 'अमृतसर की सन्धि' पर हस्ताक्षर करवाये जिसमें सतलज के इस पार के किलों को उसने छोड़ दिया। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार और रणजीत सिंह के बीच में एक स्थायी सन्धि हो गई।

लार्ड मिंटो को इस बात का अभिमान था कि उसने बिना हथियार उठाये सारी अव्यवस्था को दबा दिया।

सन् १८१३ में लार्ड मिंटो वापस इंग्लैंड गया और उसके स्थान पर लार्ड हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बन कर भारत में आया।

लार्ड हेस्टिंग्स

लार्ड हेस्टिंग्स को आते ही नैपाल के राज्य से मुठभेड़ करनी पड़ी। नैपाल का पहाड़ी देश अवध और बंगाल की उत्तरी सीमा पर अवस्थित है। इस देश के रहने वाले गोरखा लोग सम्पूर्ण तराई प्रदेश को अपना ही समझते थे। उन्होंने गोरखपुर और मुरादाबाद के जिलों पर कब्जा कर लिया, इसलिए अंग्रेज सरकार ने उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

गोरखा-युद्ध

अंग्रेजी सेना का सेनापति जनरल 'आक्टरलोनी' था। इस पहाड़ी क्षेत्र की लड़ाई में अंग्रेजी सेना को भयंकर कठिनाइयों और पराजयों का सामना करना पड़ा। इस लड़ाई में उनका एक सेनापति जनरल 'जिलेस्पी' बुरी तरह से हार कर मारा गया और भी कई सेनापति पराजित हुए। मालन के राजा अमरसिंह थापा ने बड़ी बहादुरी से जनरल जिलेस्पी का मुकाबला किया और उसको मार दिया मगर जनरल आक्टर लोनी पश्चिमी मोर्चे पर डँटा रहा और गोरखों की राजधानी पर हमला करने के लिए आगे बढ़ा। इतने में सन्धि की बात शुरू हो गई और सन् १८१५ में की गई 'सिगौली की सन्धि' के अनुसार गोरखों ने तराई का-प्रदेश छोड़ दिया। कुमायूँ और गढ़वाल के जिले अंग्रेजों को दे दिये। इस प्रकार प्रकृति का यह रमणीय क्षेत्र, जहाँ आजकल 'शिमला' स्थित है अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। नेपाल के राजा ने काठमांडू में अंग्रेज सरकार का एक 'रेजीडेंट' भी रखना स्वीकार कर लिया।

पिंडारियों का दमन

उस समय राजस्थान और मध्य प्रदेश में पिंडारियों के उपद्रव बहुत अधिक बढ़ गये थे। सभी जातियों के चोर, डाकू, गुंडे और लुटेरे उनके साथ हो गये थे। ये लोग बड़ी बड़ी रकमें लेकर एक राज्य की सहायता कर दूसरे से लड़ाई करते थे। अमीर खाँ वासिल मुहम्मद चीतू और करीम खाँ उनके मुख्य नेता थे।

लार्ड हेस्टिंग्स ने पिंडारियों का दमन करने के लिए १ लाख ११ हजार सिपाहियों की एक विशाल सेना संगठित की और उन्हें चार भागों में विभक्त करके चारों तरफ से पिंडारियों को घेर लिया। डाकुओं का पीछा किया गया और वे मार डाले गये। सन् १८१८ के अन्त तक पिंडारी-दल बिल्कुल छिन्न भिन्न और नष्ट कर दिया गया।

अमीर खाँ ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली। इसलिए उसे टोंक का राज्य दे दिया गया। जो अभी तक उसके वंशजों के पास था।

इसी समय सन् १८१७ के अन्त में मराठा-संघ का अन्तिम उससे संघर्ष हुआ। पेशवा अपने मार्गों पर लेकर बहुत वीरता के साथ लड़ा, परन्तु अन्त में उसने सर जान मालकम के हाथों में आत्म-समर्पण कर दिया और मालकम ने उसे ८ हजार रुपये सालाना की पेंशन देकर कानपुर के पास बिठूर में रहने का आदेश दिया।

इसी प्रकार सिन्धिया, गायकवाड़ और होलकर ने भी अंग्रेजों की सरक्षकता स्वीकार कर ली। परिणामस्वरूप पंजाब, कश्मीर और सिन्ध को छोड़कर सारे भारतवर्ष में अंग्रेजी-साम्राज्य की स्थापना हो गई।

सन् १८२१ में लार्ड हेस्टिंग्स वापस लौट गया और उसकी जगह पर लार्ड 'एमहर्स्ट' गवर्नर जनरल बनकर आया।

इस समय बर्मा के अन्दर 'अलौम्पा' नामक महत्वाकांक्षी सरदार के उत्तराधिकारी अपने राज्य का विस्तार करने में लगे हुए थे। १८११ ई० में बर्मा के राजा ने मनीपुर पर कब्जा कर लिया। सन् १८२२में उसने आसाम को जीत लिया और सन् १८२३ में चटगाँव के निकटवर्ती शाहपुरी टापू पर आक्रमण कर दिया। इन सब घटनाओं से परेशान होकर अंग्रेजों ने २४ फरवरी सन् १८२४ को बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

अंग्रेजी सेना समुद्र के मार्ग से सर आर्चीबाल्ड कैम्प- के सेनापतित्व में रवाना हुई और रंगून पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। उसके बाद आसाम, अराकान और टेनासिरम को भी जीत लिया। फरवरी सन् १८२६ में बर्मा और अंग्रेजों के बीच में सन्धि हो गई। इसके अनुसार बर्मा के राजा ने अंग्रेजों को अराकान और टेनासिरम को देना स्वीकार किया और आसाम तथा कछार से भी अपना अधिकार हटा लिया।

इसके बाद भरतपुर के किले को जीतकर सन् १८२८ में लार्ड एमहर्स्ट इग्लैंड लौट गया और उसकी जगह पर लार्ड विलियम बेंटिक गवर्नर जनरल होकर आ गया।

लार्ड विलियम बेंटिक

लार्ड विलियम बेंटिक के समय में देश में अपेक्षाकृत शान्ति की स्थापना हो चुकी थी। इसलिए उसने भारतवर्ष में सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी सुधारों को करना प्रारम्भ किया।

उस समय भारतवर्ष में 'सती-प्रथा' के समान भयंकर और अमानुषिक प्रथा प्रचलित थी, जिसमें पति की मृत्यु के पश्चात्, उसकी लाश के साथ उसकी पत्नी को जबर्दस्ती जिन्दा जला दिया जाता था। प्रसिद्ध समाज सुधारक राजा राम मोहन राय इस प्रथा का अन्त करने के लिए बगाल में लोक-मत का संगठन कर रहे थे। लार्ड बेंटिक ने राजा राम मोहन राय की प्रेरणा से १४ दिसम्बर सन् १८२९ को एक कानून पास करके सती-प्रथा को गैरकानूनी घोषित कर दिया और इस कार्य में सहायक होना—कत्ल के बराबर अपराध ठहराया गया। इस प्रकार भारतवर्ष से एक भयंकर सामाजिक प्रथा के अन्त करने का श्रेय लार्ड बेंटिक को प्राप्त हुआ।

शिक्षा के क्षेत्र में भी लार्ड बेंटिक ने काफी प्रयत्न किया। इनके समय में कलकत्ता शिवरामपुर इत्यादि कई स्थानों पर नई-नई शिक्षा संस्थाएँ खोली गई।

हिन्दुस्थान में प्रचलित ठगी-प्रथा को रोकने और ठगों के गिरोहों का नाश करने के लिए मेजर 'स्लीमेन' की अध्यक्षता में एक विभाग खोला गया, जिसने थोड़े समय में ठगों के गिरोहों का नाशकर शान्ति की स्थापना की।

लार्ड बेंटिक ने सन् १८३५ में अपने पद से इस्तीफा दे दिया। उसकी जगह कुछ समय के लिए सर चार्ल्स मेट काफ गवनर जनरल हुआ। इसने अपने पद पर आते ही भारतीय समाचार-पत्रों को स्वतंत्रता दे दी। उसका मत था कि प्रेस की स्वतंत्रता पर जो बन्धन लगाये गये हैं, वे अंगरेज जाति और अंगरेज शासन की मर्यादा के विरुद्ध हैं। चार्ल्स मेटकाफ के पश्चात् लार्ड ऑकलैण्ड गवर्नर जनरल होकर सन् १८३६ में आया।

लार्ड ऑकलैण्ड

लार्ड ऑकलैण्ड के समय की सबसे प्रधान घटना अफगानिस्तान के मामले में अंगरेज सरकार का हस्तक्षेप करना था। इस मामले में अंगरेजों की प्रतिष्ठा को भी भारी धक्का पहुँचा और उनके १६ सैनिक बड़ी बुरी तरह से मारे गये।

इस समय अफगानिस्तान में बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। अब्दाली वंश के अमीर शाहशुजा को गद्दी से हटाकर दोस्त मुहम्मद वहाँ का 'अमीर' बन गया था। दोस्त मुहम्मद बड़ा लोकप्रिय व्यक्ति था जब कि शाहशुजा बिलकुल निकम्मा था। दोस्त मुहम्मद की दोस्ती के लिए अंगरेज भी लालायित थे और रूस वाले भी उससे मित्रता बनाए रखना चाहते थे। दोस्त मुहम्मद चाहता था कि अंगरेज यदि रणजीतसिंह से पेशावर उसे दिलावें तो वह अंगरेजों से संधि करले, मगर अंगरेज रणजीत सिंह से बिगाड़ करना नहीं चाहते थे। इसलिए दोस्त मुहम्मद से संधि न हो सकी।

परिणाम यह हुआ कि लार्ड ऑकलैण्ड ने शाहशुजा को फिर से अफगानिस्तान का अमीर बनाना चाहा और उसके लिए युद्ध की घोषणा करदी। अंगरेजी सेना ने सिंध के रास्ते से अफगानिस्तान में प्रवेश किया और शाह शुजा को काबुल की गद्दी पर बिठा दिया। लेकिन ब्रिटिश सेना की करतूतों से अफगान एकदम बिगड़ उठे और सारे देश में गड़बड़ी मच गई। ब्रिटिश राजदूत सर अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स को मार डाला गया और जब अंगरेजी सैन्य सन् १८४२ में वहां से वापस लौटी तो अफगानों ने पीछे से अवसर हमला कर दिया और एक-एक अंगरेज को बीन बीन कर मार डाला। इस भयंकर दुर्घटना में सोलह हजार सैनिक कुत्ते की मौत मारे गये। केवल डॉ. ब्राइडन नामक एक व्यक्ति इस भीषण दुर्घटना की कहानी सुनाने के लिए जीता-बचा। अफगानिस्तान में शाहशुजा को भी मार डाला गया और दोस्त मुहम्मद फिर से वहाँ का अमीर बनाया गया।

इस प्रकार लार्ड ऑकलैण्ड की गलत नीति के परिणाम स्वरूप अंगरेजों को एक भयंकर पराजय का मुख देखना पड़ा जिसके फलस्वरूप ऑकलैण्ड तुरन्त वापस बुला लिये गये।

ऑकलैण्ड के पश्चात् लार्ड एलिनबरा गवर्नर जनरल होकर आये। उस समय सिंध प्रान्त में अमीर लोग छोटे छोटे टुकड़ों में शासन करते थे। एलिनबरा ने इन अमीरों के साथ छेड़-छाड़ करके सिंध को अंगरेजी राज्य में मिला लिया। सन् १८४४ में एलिनबरा वापस गये और उनकी जगह लार्ड हार्डिंज गवर्नर जनरल होकर आये।

उस समय महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु (१८३९) में हो चुकी थी और उनकी मृत्यु के पश्चात् किसी बलवान व्यक्तित्व के न रहने से सारे पंजाब में अशान्ति मची हुई थी। सन् १८४१ में रणजीत सिंह का लड़का शेरसिंह मार डाला गया और उसकी जगह रणजीतसिंह के कनिष्ठ पुत्र दिलीप सिंह को गद्दी पर बिठाया गया। वैध सन्तान न होने से अंगरेजों ने दिलीप सिंह को स्वीकार नहीं किया जिसके फलस्वरूप सन् १८४५ में सिक्खों के साथ अंगरेजों का युद्ध चल पड़ा।

यह लड़ाई भी अंगरेजों के लिए बहुत महँगी पड़ी और एक दो जगह उन्हें करारी मात भी खानी पड़ी, पर अन्त में सन् १८४६ में एक संधि हुई जिसके अनुसार दिलीप सिंह को महाराज स्वीकार किया गया। लाहौर की सैनिक शक्ति घटादी गई, सर हेनरी लारेंस को वहाँ का रेजी-डेन्ट बनाया गया। सिक्खों से व्यास पर का दोआबा और डेढ़ करोड़ रुपया हरजे में वसूल किया गया। सिक्खों के पास इतना रुपया न होने से उन्होंने एक करोड़ रुपये में 'कश्मीर क्षेत्र' को गुलाब सिंह के हाथ बेच दिया।

मगर इससे भी पंजाब में शान्ति नहीं हुई और सन् १८४८ में अंगरेजों के साथ सिक्खों की दूसरी लड़ाई हुई। इस लड़ाई में भी एकाधिक हारजीत के पश्चात् अन्तिम विजय अंगरेजों की हुई। जिसके परिणाम स्वरूप दिलीपसिंह को गद्दी से उतारकर ५ हजार पौंड सालाना की पेंशन देकर इंगलैण्ड भेज दिया गया और पंजाब का विशाल प्रान्त अंगरेजी-राज्य में मिला लिया गया।

सन् १८४८ में लार्ड हार्डिंज वापस लौट गया और उसकी जगह लार्ड डलहौजी गवर्नर जनरल होकर आया जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आखिरी गवर्नर जनरल था।

लार्ड डलहौजी

लार्ड डलहौजी कट्टर साम्राज्यवादी विचारधारा का व्यक्ति था। छोटे-छोटे राज्यों के अस्तित्व को वह साम्राज्य के लिए खतरनाक समझता था। उनके अस्तित्व को कायम रखने में वह कोई लाभ नहीं समझता था। उसका यह विश्वास

था कि ब्रिटिश राज्य लोगों के लिए लाभकारी है, चाहे उसे कोई पसन्द करे या न करे।

उसने भारत के देशी राज्यों को तीन श्रेणी में विभक्त किया। (१) स्वतंत्र राज्य जिनमें भारत सरकार राजा की मृत्यु के बाद उपयुक्त उत्तराधिकारी को गद्दी पर बिठाती थी।

(२) वे राज्य जिन्होंने मुगल-सम्राट या पेशवा के स्थान में अङ्गरेजों की अधीनता स्वीकार की थी।

(३) अधीनस्थ राज्य जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने बनाया था या जीतकर प्राप्त किया था।

पहली दो प्रकार की रियासतों को तो उसने 'दत्तक' लेने का अधिकार दे दिया, मगर तीसरी श्रेणी की रियासतों को दत्तक लेने का अधिकार नहीं दिया गया और कहा गया कि यदि ऐसी रियासतों में किसी ऐसे राजा की मृत्यु हो जाय जिसके पुत्र न हो तो वह राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया जाय।

इस नियम के अनुसार उसने सतारा राज्य नागपुर, झैतपुर इत्यादि कई छोटे-छोटे राज्यों को उनके राजाओं के मरने पर अङ्गरेजी राज्य में मिला लिया। सन् १८५६ में बाजीराव पेशवा द्वितीय की मृत्यु हो जाने पर उसकी आठ लाख की पेंशन बन्द कर दी और उनके दत्तक पुत्र धोंधु पंत को (जो पीछे जाकर सन् सत्तावन के ग़दर में नाना साहब के नाम से प्रसिद्ध हुआ) स्वीकार नहीं किया गया।

अवध के शासन पर उस समय नवाब वाजिद अली शासन कर रहे थे। उनकी रंगरेलियों और ऐशो-आराम की कहानियाँ सब दूर फैल रही थीं। शासन व्यवस्था बिल्कुल खराब हो रही थी। लखनऊ के रेजिडेण्ट कर्नल स्लीमेन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि— "नवाब भोग-विलास में डूबा रहता है और नटनियों, मसखरों और हिजड़ों से घिरा रहता है।"

तब डलहौजी ने अवध के नवाबों के साथ सन् १८३७ में की हुई संधि को रद्द कर दिया जिसमें अङ्गरेजों ने अवध के नवाबों की सुरक्षा का वचन दे रक्खा था। अङ्गरेजी राज्य के प्रति समय समय पर बतलाई हुई नवाबों की वफादारी और दोस्ती को भी वह भूल गया और सन् १८५६ में अवध को पूरा का पूरा प्रान्त अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।

लार्ड डलहौजी के समय में शासन के अन्दर अनेक सुधार किये गये। लार्ड डलहौजी के समय में ही भारत में पहली रेलगाड़ी चली और टेलीग्राफ की लाइन प्रारम्भ हुई। उसने भारत के विभिन्न भागों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। सेना की शक्ति को भी उसने बढ़ाया तथा सिक्खों और गोरखों की एक पल्टन बनाई। उसने डाक व्यवस्था के द्वारा दो पैसे में एक पत्र भारत के किसी भी कोने में भेजने की व्यवस्था की, जो लोगों के लिए बड़ी हितकर साबित हुई। देशी भाषा की शिक्षा को उसने प्रोत्साहन दिया और सिफारिश की कि थामसन की प्रणाली सारे पश्चिमोत्तर प्रान्त में प्रचलित की जाय।

लेकिन डलहौजी के द्वारा छोटे राज्यों और अवध के समान बड़े राज्यों पर किये हुए दुर्व्यवहार ने जनता के अन्दर असन्तोष की भयंकर चिनगारी पैदा कर दी जिसके परिणामस्वरूप १८५७ का भयंकर विस्फोट (ग़दर) हुआ जिसमें अंग्रेजी राज्य की नींव भी हिल गई। (ग़दर का पूरा विवरण "अठारहसौ सत्तावन" नाम के साथ प्रथम भाग में देखें)

मगर भाग्य ने अंग्रेजों का साथ दिया। ग़दर दबा दिया गया, साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन भी समाप्त हो गया और महारानी विक्टोरिया ने एक लेबली और उदार घोषणा के साथ भारत का शासन अपने हाथ में ले लिया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सम्पूर्ण इतिहास पर एक गहरी नजर डालने से इतिहास के कई महत्वपूर्ण तथ्यों का पता लगता है।

(१) जिस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कदम यहाँ पर पड़े, उस समय सारा भारत एक भयंकर संक्रमण काल में से गुजर रहा था। मुगलों और मराठों के पारस्परिक संघर्ष से जनता दिन दिन कुचली जा रही थी। शान्ति और सुव्यवस्था का बिल्कुल नाम न था। राजा लोगों के बीच में आपसी राग द्वेष इतना अधिक बढ़ गया था और सत्ता के स्वार्थ इतने घने हो गये थे कि हर एक राजा अपने छोटे से स्वार्थ के लिए सारे देश की आजादी को बेच देने के

लिए तैयार था। हर एक व्यक्ति अपने प्रतिस्पर्धी को हराने के लिए इन विदेशियों की मदद लेने के लिए तैयार था। देश का नैतिक बल एक दम समाप्त हो चुका था लोग बड़े परेशान थे कि किस प्रकार इस अव्यवस्था से उन्हें छुटकारा मिले।

(२) अंग्रेज कम्पनी के लोगों ने यहाँ के लोगों की हालत देखी। वे लोग धूर्त होते हुए भी बुद्धिमान थे। लुटेरे होते हुए भी राजनीतिज्ञ थे। वे अपने देश के लिए कुछ कर दिखाने को इस देश में आते थे। उन्होंने समझ लिया कि इस देश में धूर्तता और बुद्धि के बल से जितना लाभ उठाया जा सकता है उतना तलवार के बल से नहीं उठाया जा सकता। हालाँकि तलवार का बल भी उतना बहुत आवश्यक है। इसलिए भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का इतिहास धूर्तता और बुद्धिवाद का इतिहास है तलवारवाद का नहीं। तलवारवाद में तलवार का सहारा ही सबसे प्रधान होता है। उसमें कुछ कपट नहीं होता जैसा कि मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना के समय देखा गया। मगर बुद्धिवाद में तलवार की अपेक्षा छल कपट और राजनीति की महत्ता अधिक रहती है यही चीज अंग्रेजी साम्राज्यवाद की जड़ में प्रधान थी।

सिराजुद्दौला की ५ सेना के सामने अंग्रेजों की छोटी-सी सेना और मीरकासिम की ४ , सेना के सामने २ अंग्रेजी फौज की विजय तलवारवाद की नहीं प्रत्युत बुद्धिवाद की विजय थी।

इसी बुद्धिवाद के प्रचार में कम्पनी के लोगों ने यह भी सोचा कि राजा नवाबों और बड़े लोगों के साथ चाहे जितने छलछिद्र षड्यंत्र और चालबाजी की जाय तो कोई हर्ज नहीं मगर साधारण जनता को जहाँ तक बने इससे न पसीजा जाय। इसलिए जहाँ भी उनका अधिकार हुआ उन्होंने जनता की शान्ति, सुरक्षा और व्यवस्था की तरफ सबसे पहले ध्यान दिया। मराठा और मुसलमान नवाबों के अत्याचारों से प्रतिदिन त्रास पाने वाली जनता ने कम्पनी के शासन में शांति और सुव्यवस्था के दर्शन किये।

राजाओं के बीच तथा धर्मियों के बीच प्रतिदिन युद्ध चलाते रहने पर भी अंग्रेजी अमलदारी की जनता के ऊपर उनका असर कम होता था। इन कारणों से साधारण जनता देशी शासकों की अपेक्षा अंग्रेजी शासन की ओर आकर्षित होने लगी थी।

थोड़ीसी शान्ति स्थापित होते ही अंग्रेजी राज्य ने सामाजिक सुधार और शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों को भी हाथ में ले लिया। इसीलिए उस समय के सबसे बड़े बंगाल के नेता राजा राममोहन राय ने जो यह कहा था कि—"अंग्रेजी राज्य भारत को ईश्वर की देन है" तो उनका यह कहना निराधार नहीं था, समय की परिस्थिति पर आधारित था।

अंग्रेजी सत्ता ने ही इस देश से महात्मा सती प्रथा के समान अमानुषिक प्रथा को उठाया अंग्रेजी सत्ता ने ही देश में डाकुओं की लूटपाट, पिण्डारियों के आक्रमण और ठगों के उपद्रवों को शान्त करके जनता को राहत पहुँचाई। इसी सत्ता ने सर 'विलियम जोन्स' और 'मैक्समूलर' के समान इतिहासकार तथा भाषाशास्त्री और पारसकर्मा के समान वनस्पति शास्त्री के द्वारा इस देश के इतिहास साहित्य और वनस्पतियों की खोज करवाने का काम प्रारम्भ किया। इससे यदि जनता को सन्तोष हो और उसके पीड़ित मन को कुछ आश्वासन मिले तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

इसलिए यदि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के मूल कारणों को खोजना हो तो उसके मुकाबले अंग्रेज जाति के इतिहास में कम और पथ-भ्रष्ट उन राजाओं के इतिहास में अधिक मिलेंगे जिन्होंने इस देश में अराजकता और अव्यवस्था का एक भीषण रूप बना रखा था और सारी जनता को भयभीत कर रखा था।

मगर कम्पनी के इतिहास में यह बात साफ नजर आती है कि किस प्रकार बुद्धिवादी क्षेत्र की एक जाति धन और शासन के लिए, इन्सानियत के निम्न से निम्न क्षेत्र में उतरने को तैयार हो जाती है। छल, कपट, दगाबाजी चालबाजी इन सब चीजों का इन बुद्धिवादियों ने मानों सब अधिकार ठेका ले रखा था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का इतिहास शुरू से आखिर तक छल, कपट, दगाबाजी और चालबाजी का ऐसा इतिहास है जो शायद सारे मानव-इतिहास में बेजोड़ है।

ऐसा इतिहास उसी क्षेत्र में लागू हो सकता है जिस क्षेत्र में मानवता का नाश हो गया हो नैतिकता का

दोबारा निकल गया हो और भाग्य से ऐसा ही देश इस कम्पनी के हाथ में आता। अगर भारतीय राजाओं में किसी भी अंश में देश का प्रेम होता तो आज ईस्ट इण्डिया कम्पनी का इतिहास भी दूसरी ही तरह लिखा जाता।

ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसिएशन

बम्बई में रुई के व्यापार का नियमन करनेवाली एक प्रभावशाली संस्था जिसकी स्थापना सन् १९२२ में हुई।

समग्र एशिया में बम्बई रुई के व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र है। रुई के आयात निर्यात और औद्योगिक खपत सभी दृष्टियों से बम्बई एक प्रमुख स्थान है।

'ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसिएशन' रुई के हाजिर एवं वायदे के सारे व्यवसाय का नियमन, संचालन और व्यवस्था करती है।

एसोसिएशन की स्थापना के पहले बम्बई में रुई का व्यापार बहुत ही अव्यवस्थित रूप से चलता था। आये दिन झगड़े और फसादे होते रहते थे। इस अव्यवस्था को मिटाने के लिए सरकार ने लेजिस्ले बिल पास करके सन् १९२१ में इस संस्था की स्थापना करवाई। तब से अभी तक यह संस्था रुई के व्यापार का सफलता के साथ नियमन कर रही है।

ईस्ट इंडिया कॉटन एसोसिएशन का संचालन बोर्ड ऑफ डॉयरेक्टर्स करता है। इस बोर्ड में (१) मिल मालिक (२) खरीददार वर्ग (३) विक्रेता वर्ग और (४) दलाल वर्ग के प्रतिनिधि रहते हैं। इण्डियन सेण्ट्रल कॉटन कमेटी और भारत सरकार द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि भी बोर्ड में रहते हैं। प्रेसिडेण्ट और वाइस प्रेसिडेण्ट सहित कुल डायरेक्टर्स की संख्या २४ होती है।

इस संस्था को सबसे पहले सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास के समान अनुभवी और योग्य प्रेसिडेण्ट को प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। इनके तत्वावधान में इस संस्था को अपना विकास करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ था। इस समय (१९६१) में इसके अध्यक्ष प्रसिद्ध उद्योगपति श्री मदनमोहन वर्मा हैं।

बीस हजार रुपया डिपाजिट करके कार्ड लेने वाले व्यवसायी इसके प्रामाणिक सदस्य बनते हैं। ऐसे सदस्यों की संख्या ११ अगस्त सन् १९६२ को ५४१ थी।

एसोसिएशन की ओर से एक 'क्लीयरिंग हाउस' बना हुआ है, जिसका प्रमुख काम मेम्बरों के परस्पर किये गये सौदों के नफे-नुकसान का भुगतान कराने का रहता है। पहले रुई के व्यापार में क्लीयरिंग की प्रथा नहीं थी। बारह बारह महीने तक सौदे चलते रहते थे और उनका भुगतान वायदे के खतम होने पर ही होता था। यह प्रथा बड़ी दोषपूर्ण थी और व्यापारी उसका अनुचित लाभ उठाते थे। इस अन्धा-धुन्धी पूर्ण प्रथा को रोकने के लिए क्लीयरिंग की प्रथा प्रारम्भ की गई।

क्लीयरिंग प्रथा के अनुसार हर पन्द्रहवें दिन एक भाव निश्चित करके नफे नुकसान की भुगतान कर दी जाती थी। १ सितम्बर १९४ से यह अवधि कम करके एक सप्ताह की कर दी गई। अब हर शुक्रवार को क्लीयरींग के भाव निश्चित होकर मंगलवार तक नफे-नुकसान की भुगतान हो जाती है।

हाजिर रुई के व्यापार का संचालन तो यह संस्था करती ही है मगर वायदे के व्यापार में क्रेडिट और भुगतान का जो स्टेंडर्ड इस एसोसिएशन ने कायम किया है वह दूसरे बाजारों में कम ही देखने को मिलता है। कितनी ही मन्दा-तेजी हो, आसमानी-सुलतानी कुछ भी कारण बने, लाखों करोड़ों का नफा-नुकसान हो, फिर भी बाजार अपनी चाल पर नियमित रूप से चलता रहता है।

हाजिर का व्यापार शिवरी में होता है जहाँ १६ लाख रुपये की लागत से एसोसिएशन की विशाल बिल्डिंग बनी हुई है जिसमें बड़े-बड़े गोडाउन और प्रेसिंग हाउस बने हुए हैं।

वायदे के व्यापार के लिए सन् १९३८ में एसोसिएशन ने १८ लाख रुपये की लागत से एक भव्य और विशाल बिल्डिंग कालबादेवी रोड पर बनाई है जो एशिया की दर्शनीय इमारतों में से एक है।

ईस्टर

ईसा मसीह के स्वर्गारोहण की स्मृति में मनाया जाने वाला ईसाई-समाज का एक सुप्रसिद्ध त्योहार, जो अप्रैल मास में आता है।

ईस्टर का यह त्योहार ईसाई, ग्रीक रोमन और यहूदी इन तीनों का एक विशिष्ट त्योहार है, जो वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में पड़ता है। जिस प्रकार हिन्दू लोग वसन्त-ऋतु के त्योहार होली को बड़ी धूम-धाम राग रंग और मौज मस्ती के साथ मनाते हैं, उसी प्रकार ईसाई लोग भी इस त्योहार को बड़ी मौज मस्ती से मनाते हैं। जिस प्रकार होली के राग-रंग में मनुष्य को बेवकूफ बनाने की प्रथा है उसी प्रकार इन लोगों में अप्रैल में 'एप्रिल फूल' बनाने की प्रथा है।

ईसाइयों की परम्परा के अनुसार ईसा मसीह सूली पर चढ़ा देने पर भी मरकर जी उठे थे। उनका यह पुनर्जीवन उसी समय हुआ था जिस समय यहूदी इस त्योहार के दिन 'जेरुसलेम' में अपना पेसाख मना रहे थे। इसी कारण 'पैसाख' ईस्टर शब्द का पर्यायवाची बन गया है और पूर्व-पश्चिम के समस्त ईसाई परिवार ईस्टर का यह त्योहार बड़े उत्साह से मनाते हैं और इसका महत्व भी 'क्रिसमिस' के समान ही माना जाता है।

ग्रीक लोग इस त्योहार को २१ मार्च को मनाया करते थे। यहूदी लोग अपने साल के प्रथम महीने 'निसान' में इसे मनाते हैं। वे अपने त्योहार को पेसाख कहते हैं।

ईसाप

यूनान का संसार प्रसिद्ध कहानीकार, जिसकी कहानियाँ सारे संसार में प्रत्येक वर्ग प्रत्येक भाषा और प्रत्येक देश में बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। ईसाप के सम्बन्ध में निम्नलिखित किंवदन्ती प्रचलित है—

ईसा से करीब छः सौ वर्ष पहले यूनान के एक गुलाम घराने में 'ईसाप' का जन्म हुआ। उस समय यूनान में गुलामों की स्थिति अत्यन्त बदतर थी। उन लोगों को मनुष्य न समझकर पशु समझा जाता था और पशुओं की बिक्री के लिए जैसे हाट और बाजार लगा करते हैं उसी प्रकार गुलामों की खरीद बिक्री के लिए भी वहाँ पर हाट और बाजार लगा करते थे।

गुलाम होने के साथ ही ईसाप में एक बुराई यह भी थी कि वह अत्यन्त बदसूरत था। इसलिए सब उसे बड़ी घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखा करते थे।

एक बार गुलामों का एक व्यापारी कई गुलामों के साथ ईसाप को भी बेचने के लिए समोस के बाजार में लाया। उसके सब गुलाम बिक गये मगर बदसूरती और दुर्बलता के कारण ईसाप को किसी ने नहीं खरीदा।

संयोगवश इसी समय यूनान का प्रसिद्ध दार्शनिक 'जान्थुस' भी एक गुलाम की तलाश में वहाँ आ गया। ईसाप की बदसूरती के बावजूद उसकी बात करने की क्षमता को देखकर उसने उसे खरीद लिया।

कुछ ही दिनों में ईसाप ने अपने बुद्धि कौशल से जान्थुस और उसकी पत्नी की कृपा प्राप्त कर ली और वहाँ आराम से रहने लगा। एक बार जान्थुस को खंडहरों में लिखा हुआ एक गोपनीय, किन्तु महत्वपूर्ण कागज मिला मगर वह उसका मतलब नहीं समझ सका। ईसाप ने अपने को गुलामी से मुक्त करने की शर्त करके जान्थुस को उस कागज का मतलब समझा दिया, जिससे जान्थुस को एक बड़ा खजाना प्राप्त हो गया। फिर भी उसने ईसाप को गुलामी से मुक्त नहीं किया।

एक बार समोस के राजा के दरबार के आसमान पर एक सफेद चील ने आकर कई चक्कर लगाए और फिर अपनी चोंच में दबाई हुई एक अँगूठी एक गुलाम की गोद में गिराकर वह उड़ गई। इस घटना को एक बड़ा अपशकुन समझ राजा और दरबारी बहुत घबड़ा गये। उस समय राज्य में सबसे समझदार व्यक्ति जान्थुस समझा जाता था। राजा ने उसे बुलाकर उस घटना का मतलब समझाने को कहा और मतलब न बतलाने पर मृत्युदण्ड देने की धमकी दी।

जान्थुस ने घबराकर ईसाप से सारी बात कही। ईसाप ने उसे कहा—"घबराओ मत मुझे राजदरबार में ले चलो मैं वहाँ पर इसका मतलब बतला दूँगा।"

बाल्युस उसे राज दरबार में ले गया। ईसाप ने सबसे पहले अपने आपको गुलामी से मुक्त करने को कहा और उसके बाद में उस घटना का अर्थ बतलाने का वादा किया। राजा ने उसे गुलामी से मुक्त कर दिया। तब उसने बतलाया कि "दरबार के ऊपर उड़ती हुई चील का आशय यह है कि तुम्हारे राज्य पर कोई बड़े राजा का आक्रमण होने वाला है और गुलाम की गोद में अंगूठी डालने का आशय यह है कि अगर तुमने सावधानी नहीं रक्खी तो तब गुलाम हो जाओगे।"

कुछ ही दिनों के पश्चात् लीडिया के राजा क्रूसस ने समोस पर आक्रमण करने की घोषणा कर दी। इस विपत्ति से बचने के लिए समोस के राजा ने ईसाप को ही अपना प्रतिनिधि बनाकर लीडिया के दरबार में संधि के लिये भेजा। ईसाप ने अपनी चतुराईपूर्ण बातों से राजा को मोहित कर लिया। जिसके परिणामस्वरूप उसने समोस से सन्धि कर ली।

समोस लौटने पर "ईसाप" का राजदरबार में भारी स्वागत हुआ तथा उसकी एक मूर्ति बनाकर दरबार में लगाई गई।

मगर ईसाप अपनी खरी और स्पष्ट विचारधारा के कारण वहाँ लोकप्रिय न रह सका। बहुत से दरबारी उसके दुश्मन हो गये और उन्होंने राजमहल की एक मूल्यवान सुराही की चोरी का आरोप लगाकर ईसाप को राज-दरबार में पेश कर दिया और उसके खिलाफ इतने मजबूत प्रमाण पेश किये कि राजा भी उसकी रक्षा नहीं कर सका और उसे पहाड़ पर से ढकेल कर मार डालने की सजा दी। इस प्रकार संसार के इस महान् कहानीकार का करुण अन्त हुआ।

ईसाप की कहानियाँ छोटी-छोटी मगर अत्यन्त बुद्धिमानीपूर्ण और सारगर्भित होती हैं। सारे संसार की भाषाओं में उनके अनुवाद हो चुके हैं और सब दूर वे बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। इन कहानियों का ही संग्रह फ्रांस और जर्मनी में मूल ग्रीक रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनमें से पेरिस से प्रकाशित एमिलो शाम्ब्री संस्करण में ३५८ कहानियाँ हैं और हायम्सर की ग्रीक ग्रन्थमाला से प्रकाशित १९२७ में ४२६ कहानियों का संग्रह है।

ईसा मसीह

संसार के सुप्रसिद्ध धर्म नेता 'योसुफ क्राइस्ट' जो ईसाई धर्म या 'क्रिश्चियानिटी' के जन्मदाता थे। जिन्होंने मनुष्य की आसुरी और राक्षसी प्रवृत्तियों के खिलाफ जोरदार आवाज उठाकर मानवता और सदाचार के प्रति सारे संसार का ध्यान आकृष्ट किया और इसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया था।

ईसा मसीह की माता मरियम गैलीलिया प्रान्त के नाजरेथ ग्राम की रहने वाली थी। मरियम की सगाई दाऊद वंश के युसुफ नामक व्यक्ति से हुई थी। विवाह के पहले कुमारी अवस्था में ही मरियम ईश्वरीय प्रभाव से गर्भवती हो गई थी फिर भी ईश्वरीय संकेत पाकर युसुफ ने मरियम को पत्नी रूप से ग्रहण किया। इसके बाद युसुफ यहूदिया प्रान्त के बेथलहेम ग्राम में जाकर बस गये वहीं पर ईसवी सन् पूर्व ४ में महात्मा ईसा का जन्म हुआ।

उनके माता-पिता यहूदी थे इसलिए उनका धर्म भी यहूदी था। यहूदी धर्म की कट्टरता धर्माधिकारियों का स्वार्थपूर्ण आचरण तथा ईश्वर को सन्तुष्ट करने के लिए पशुओं का बलिदान आदि बातें ईसा को अच्छी नहीं लगती थीं और वे धर्म के सम्बन्ध में हमेशा विचार किया करते थे।

जब ईसा १ वर्ष के हुए तो उन्हें एक इलहाम (ईश्वरीय प्रेरणा) हुआ। उन्हें एक प्रकाश नजर आने लगा और उन्हें अनुभव होने लगा कि—"मुझे ईश्वर ने सच्चे धर्म की स्थापना करने के लिए अपना दूत बनाकर भेजा है जिससे मैं सच्चे धर्म की स्थापना कर सकूँ।

तब उन्होंने ई० सन् २७ में उस समय के धर्म गुरु 'बैप्टिस्ट योहन' के पास जार्डन नदी के तीर पर जाकर धर्म की दीक्षा ली।

उसके पश्चात् उन्होंने जनता के सामने अपनी आवाज पहुँचाना प्रारम्भ की। वे कहते थे कि— ईश्वर एक है। वह सब प्राणियों को प्रेम करता है। जो व्यक्ति जैसे पाप पुण्य करता है उसी के अनुसार वह उसका न्याय करता है। सब लोग उसी की सन्तान हैं। इसलिये सबको प्रेम पूर्वक हिल मिल कर रहना चाहिये। दुःखी लोगों

की उपासना करनी चाहिये। अपना आचरण शुद्ध और पवित्र रखना चाहिये। अपने से यदि कोई पाप या दुष्कर्म हो जाय तो उसके लिए पश्चाताप करना चाहिये और फिर ऐसा पापाचार न हो इसका ध्यान रखना चाहिये। मूर्तिपूजा मनुष्य के पाखण्ड का एक नमूना है। इसमें विल्कुल विश्वास न करना चाहिये। इत्यादि।

इसके बाद महात्मा ईसा 'जेरूसलेम' गये और वहाँ जनता को उपदेश देने लगे। उनके उपदेशों को सुनकर कितने ही यहूदी उनके शिष्य हो गये। इनमें १२ शिष्य जिनको अपोसल (Apostle) कहते हैं प्रधान थे।

ईसा की इस बढ़ती हुई महत्ता को देखकर प्राचीन यहूदी धर्म प्रचारकों के पैरों के तले से जमीन खिसकने लगी। उन्होंने 'कयाफास (Caiaphas) नामक व्यक्ति के नेतृत्व में महात्मा ईसा को समाप्त कर देने का संकल्प किया और कोधित होकर महात्मा ईसा के लिए पाखंडी और नास्तिक होने का 'फतवा' दे दिया।

उस समय पेलिस्टाइन 'रोमन-साम्राज्य' का एक भाग था। रोमन-साम्राज्य उस समय मूर्तिपूजक धर्म का अनुयायी था। रोम साम्राज्य की तरफ से वहाँ का गवर्नर 'पाण्टियस पाइलेट' नामक व्यक्ति था। यहूदी धर्म प्रचारकों ने रोमन अधिकारियों के सामने नास्तिकता के मामले में ईसा को पेश किया।

मजहबी मामलों में, उस समय रोमन लोग ज्यादा कट्टर शील नहीं थे। इस साम्राज्य में सब तरह के मजहबों को बर्दाश्त किया जाता था। इसलिए जब रोमन गवर्नर पाण्टियस पाइलट के सामने ईसा की नास्तिकता का मामला पेश हुआ तो इस मामले के मजहबी पहलू पर ध्यान न देकर उसने ईसा को छोड़ दिया। तब दूसरी बार इन धर्माधिकारियों ने ईसा पर एक राजनैतिक विद्रोही और एक समाज विद्रोही का जुर्म लगाकर मुकदमा चलाया और इस आरोप में उन्हें शूली (क्रास) पर लटकाने की सजा दी गई और 'गोलगोथा' नामक स्थान पर उनको शूली पर लटका दिया गया। इस कठिन समय में उनके बहुत से शिष्यों ने भी उन्हें छोड़ दिया और इस बात से साफ इन्कार कर दिया कि वे उनके गुरु थे।

शूली पर लटकते समय भी महात्मा ईसा ने इन अज्ञानियों के लिए ईश्वर से क्षमा माँगते हुए कहा था कि—"हे ईश्वर! इन अज्ञानियों को क्षमा करना। यह लोग नहीं जानते कि यह क्या करने जा रहे हैं।" 'बाइबिल' के अन्दर जिस हृदयग्राही भाषा में ईसा की मृत्यु की करुण कहानी अंकित की गई है, उसे पढ़कर पढ़ने वाले का दिल पसीज जाता है।

मगर ईसा के अन्त से ईसाई-धर्म का अन्त नहीं हुआ। वह इसा की उसी लहर की तरह समस्त मानव समाज में अपने दिव्य सन्देश का प्रचार करता गया और करोड़ों लोगों के मन में उसने ईसा के नाम के प्रति अनन्य श्रद्धा पैदा कर दी।

ईसाई धर्म

महात्मा ईसा की मृत्यु के पश्चात् उनके अपोसलों (शिष्यों) ने ईसाई धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया। 'सेंट पाल' नामक एक सुप्रसिद्ध सन्त ने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का खूब प्रचार किया। वह एक योग्य अनुभवी और विद्वान पुरुष था। उसने ईसाई धर्म की जड़ों को मजबूती से जमा दिया। उसकी बात को सुनकर सैकड़ों लोग ईसाई धर्म में दीक्षित हुए।

सबसे पहले जेरूसलेम नगर में ईसाई समिति की स्थापना हुई और वहीं पर सबसे पहले ईसाई गिर्जे का निर्माण हुआ। इसीलिए ईसाई जेरूसलेम को अपने समाज की जननी और सबसे बड़ा तीर्थस्थान समझते हैं।

यहूदियों और ईसाइयों का संघर्ष अब भी जारी था और यहूदी लोग नवोदित ईसाई धर्म पर मनमाने अत्याचार कर रहे थे। अनेक कष्ट और अनेक दुःख सहन करके ईसा के प्रधान शिष्यों ने जेरूसलेम, ऐंटिओक, स्मर्ना, एफेसस, रोम और एलेक्जेण्ड्रिया नगर में गिर्जों का निर्माण करवाया।

लेकिन जैसे-जैसे समाज में ईसाइयों का प्रभाव बढ़ने लगा वे दूसरे धर्मों के कट्टर विरोधी हो गये। उन्होंने दूसरे धर्मों की निन्दा करना भी शुरू कर दिया। रोमन सम्राट के आगे सिर झुकाने से भी उन्होंने इन्कार कर

दिया। इससे रोमन साम्राज्य और ईसाई धर्म के बीच में एक प्रकार का संघर्ष चालू हो गया जिसके परिणाम स्वरूप ईसाई लोग सताये जाने लगे। उनकी धावकाएँ नष्ट की जाने लगीं और उन्हें शेरों के पींजड़े में फौका जाने लगा।

सेंट पीटर

महात्मा ईसा के शिष्यों में सेंटपीटर एक अत्यन्त प्रसिद्ध सन्त हो गये हैं। ईसाई धर्म की जड़ों को मजबूत करने में इनका अत्यन्त महत्वपूर्ण योग था। इन्हीं की स्मृति में रोम के अन्दर ईसाइयों का संसार प्रसिद्ध गिर्जाघर बना हुआ है। वहाँ पर ईसाई रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के धर्मगुरुओं (पोप) की प्रसिद्ध गद्दी स्थापित की गयी।

ईसा मसीह के भक्तों में पीटर का स्थान श्रेष्ठ था। इंजील में ईसामसीह ने स्वयं कहा है कि "हे पीटर सुनो, तुम पीटर हो। तुम वह चट्टान हो तुम वह अचल पर्वत हो जिस पर हम अपने धर्म की स्थापना करेंगे। नरक का भय इस धर्म को भयभीत नहीं कर सकता। मैं तुम्हें स्वर्ग की कुंजी देता हूँ। तुम जिन्हें संसार में मुक्त करोगे वे स्वर्ग में भी मुक्त रहेंगे और तुम जिन्हें संसार में बन्धन में डालोगे तो वे परलोक में भी बन्धे रहेंगे।"

सेंट अगस्टाइन

आगे चलकर ईसाई धर्म के इतिहास में प्रमुख रूप से सेंट अगस्टाइन का नाम आता है, जो एक महान विचारक, विद्वान, सन्त और रोमन धर्म का पोषक था। इसका जन्म सन् १५४ में हुआ।

जिस समय सेंट अगस्टाइन कार्य-क्षेत्र में आया उस समय रोम साम्राज्य एक भयंकर संक्रमण काल में से गुजर रहा था। हूणों के प्रबल आक्रमण से उस समय वह संसार प्रसिद्ध साम्राज्य तहस नहस हो रहा था।

रोम में उस समय ईसाई धर्म का प्रवेश हुए बहुत दिन नहीं बीते थे। वहाँ के पुरातन मूर्ति पूजक लोग रोम के इस महाविनाश को देखकर इसकी सारी जिम्मेदारी ईसाई धर्म पर थोपने लगे। उनके मत से पुरानी धर्म परम्परा को छोड़कर इस नवीन धर्म को अपनाने के कारण ही ईश्वर ने रोम को इस सर्वनाश की भट्टी में झोंक दिया। इस ईश्वरीय विनाश के कारण ईसाई-धर्म के बारे में जन-समाज के अन्तर्गत एक विद्रोह की भावना जाग्रत होती जा रही थी।

इसके अतिरिक्त उस समय ईसाई चर्च की आन्तरिक स्थिति भी बहुत खराब हो रही थी। आवरियस (Alrius) और अथानासियस (Athanasius) के पारस्परिक गम्भीर मतभेदोंने ईसाई धर्म की स्थिति को कमजोर बना रक्खा था।

ऐसी परिस्थितियों पर नियन्त्रण करने के लिये सेंट अगस्टाइन ने बड़े साहस और दृढ़ता से काम लिया। उसने सिटी ऑफ गॉड (City of God) नामक महान् ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का उस समय रोम में बहुत प्रचार हुआ और उसके अध्ययन ने पुराने विचारों की दीवारों को ढहा दिया। उसने इतिहास-दर्शन (Philosophy of History) पर भी एक नवीन विचार पद्धति से विचार किया सिद्ध किया कि मानव इतिहास मनुष्य की शैतान प्रवृत्ति और दैवी प्रवृत्ति के बीच होने वाले निरन्तर संघर्ष की कहानी है। मनुष्य की शैतान प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक राज्य नश्वर और नाशवान् है जब कि दैवी प्रवृत्ति या ईश्वरीय राज्य स्थायी और अमर है।

अगस्टाइन का ईश्वरीय राज्य एक विश्वव्यापी राज्य है। जिसके अन्दर जाति वर्ण रंग तथा राज्य के भेद की चिंता किये बिना प्रत्येक मानव केवल मानव होने के नाते प्रवेश कर सकता है। जब मनुष्य के ऊपर प्रभु की दया बरसती है तभी उसमें इस महान् राज्य का सदस्य बनने की प्रेरणा उत्पन्न होती है। (विशेष वर्णन अगस्टाइन नाम के साथ पहले भाग में देखें)

कहना न होगा कि सेण्ट अगस्टाइन की विचार धारा का तत्कालीन यूरोपीय समाज पर और आगे आने वाले विचारकों पर काफी प्रभाव पड़ा। उसके दृढ़ व्यक्तित्व और कुशाग्र मस्तिष्क ने ईसाई धर्म की जड़ों को मजबूत करने में बड़ा सहयोग दिया।

इन्हीं दिनों रोम के प्रसिद्ध सम्राट "कान्स्टेन्टाइन" ने भी ईसाई धर्म से प्रभावित हो इस धर्म की दीक्षा ले ली और तभी से यह धर्म रोम का राज्य धर्म बन गया

रोमन धर्म की उन्नति

अगस्टाइन के बाद ईसाई धर्म तेजी के साथ बढ़ने

लगा और उसके साथ ही रोमन चर्च की शक्ति भी तेजी के साथ बढ़ने लगी।

मगर साथ ही रोमन साम्राज्य की स्थिति बाहर से होने वाले आक्रमणों के कारण छिन्न भिन्न होने लगी और चारों ओर अराजकता फैलने लगी। ऐसी स्थिति में चर्च के के अधिकारियों ने निश्चय किया कि ऐसी अशान्त परिस्थिति में धर्म-राष्ट्र की एक अलग स्थापना की जाना चाहिए जिसके क्षेत्र में बाहर की कोई भी राजशक्ति बाधा न डाल सके।

रोमनचर्च के बिशप ने (जो बाद में पोप प्रथम गेलेशियस नाम से प्रसिद्ध हुआ) धर्म और राज्य का संबंध इस प्रकार बतलाया है "ईश्वर ने संसार में अधिकार की दो तलवार दी हैं। एक राज्य शक्ति के हाथ में दूसरी धर्म शक्ति के हाथ में। धर्म शक्ति का अधिकार राज शक्ति के अधिकार से अधिक है। क्योंकि धर्म गुरु ईश्वर के सामने सम्राटों के कार्यों का भी उत्तरदायी है। जब धर्म और राज्य में सैद्धान्तिक झगड़ा होगा धर्म का पक्ष ही प्रमाणभूत माना जायगा।"

अब सवाल यह पैदा हुआ कि चर्च अपनी धर्म संस्था के ही कार्य करे या राज्य के कार्यों में भी वह हस्तक्षेप करे। इस सवाल का निर्णय उस समय की परिस्थिति में करना बड़ा कठिन था। क्योंकि रोमन साम्राज्य के छिन्न भिन्न हो जाने के पश्चात् किसी नवीन राष्ट्र का निर्माण नहीं हो पाया था। छोटे छोटे राजा और सरदार आपस में लड़ते थे और चारों ओर अराजकता-सी छाई हुई थी। न शान्ति स्थापना के लिए व्यवस्थित न्यायालय थे न पढ़ने के लिए स्कूल।

ऐसे समय में यूरोपीय जनता का एकमात्र आश्रय चर्च था जिसने धर्म के नाम से थोड़ी बहुत मान मर्यादा बना रक्खी थी। इस कारण कुछ भय दिखाकर, कुछ दण्ड देकर, इहलोक और परलोक दोनों के नाम से किसी किसी तरह धर्मान्ध लोग लोगों को लड़ने से रोकते थे। एक दूसरे की प्रतिष्ठा का पालन करते थे। विवाह आदि के कार्यों से लोगों को नीति पर रखते थे। विधवा और अनाथों की रक्षा करते थे विद्या हीनों को शिक्षा और आतुर जनों को भोजन देते थे। इन्हीं कारणों से जनता चर्च का बड़ा बड़ा सम्मान करती थी। इस प्रकार ईसा की पाँचवी शताब्दी तक चर्च ने एक विशुद्ध शक्ति शाली धर्म संस्था के रूप में जनता की सेवा की और ईसाई धर्म का विस्तार किया।

मगर जब सन् ४४४ में लियो नामक बिशप रोमन चर्च की गद्दी पर बैठे, तब से चर्च के अन्दर राजनीति ने प्रवेश करना प्रारम्भ किया और तभी से रोमन चर्च की शक्ति और वैभव एक साथ बढ़ने लगे। सन् ४४५ में रोम के सम्राट तृतीय वेलेनटीनियन ने यह आज्ञा दी कि "रोम का पक्ष सर्वोपरि समझा जाय और पश्चिमीय यूरोप के सारे बिशप रोम की आज्ञाओं का पालन करें।

ग्रेगरी महान्

सन् ५९० में रोम के धर्म पीठ पर ग्रेगरी महान् बैठे। ग्रेगरी महान् एक धनी पिता के पुत्र थे। मगर इनकी वृत्तियाँ त्यागपूर्ण थीं गद्दी पर आते ही एकाएक इनके मन में विचार आया कि चर्च के इतने धन तथा अधिकार से हम अभिमानी हो जायेंगे। यह विचार आते ही इन्होंने रोमन चर्च के खजाने का सारा धन धर्मशालाओं के बनाने में लगा दिया।

जिस समय ग्रेगरी पोप बनाये गये, उस समय प्राचीन रोम का रूप बहुत बदल गया था। देवताओं के मन्दिरों के स्थान पर सब दूर गिरजे बन गये थे। सेंटपाल और सेंट पीटर की समाधियाँ लोगों के लिए तीर्थस्थान बन गई थीं। ग्रेगरी ने अपने लिए ईश्वर के दासानुदास की पदवी ग्रहण की।

ग्रेगरी महान् रोमन चर्च के इतिहास में बड़ा प्रसिद्ध पोप हुआ। एक तो वह बड़ा भारी लेखक था। दूसरे बड़ा निपुण नीतिज्ञ भी था। इसके जो लिखित पत्र इस समय पाये जाते हैं उनसे इसकी दूरदर्शिता का पता चलता है। ग्रेगरी महान् को सदा इस बात की चिन्ता रहती थी कि उपयुक्त पुरुष ही बिशप (धर्मगुरु) बनाये जाँय।

ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए ग्रेगरी महान् ने देश देशान्तरों में अपने उपदेशकों को भेजा। इंग्लैंड जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में क्रिश्चियन धर्म का फैलाने

और सबको पोप के अधिकार में लेने के लिए उसने सफल प्रयत्न किया।

ग्रेगरी महान् सन्यासी था और सन्यासी के रूप में ही उसने इतनी बड़ी सफलता प्राप्त की।

इस समय ईसाई धर्म के प्रचार के लिए दो वर्ग एक साथ काम कर रहे थे। एक वर्ग सन्यासियों का था और दूसरा पादरियों का।

मध्ययुग में ईसाई-धर्म के सन्यासियों का प्रताप और प्रभाव बहुत बढ़ गया था। ईसाई धर्म के बड़े-बड़े नेता और विद्वान इन सन्यासियों में से ही निकले थे। बीड बोनी फेस, अबिलार्ड, टॉमस एक्वीनास, रोजर बेकन, रूपर, इरास्मस इत्यादि सभी प्रतिभाशाली व्यक्ति सन्यासी थे। इन लोगों के रहने के लिए स्थान-स्थान पर बहुत सी धर्मशालाएँ बनी हुई थीं।

इन सन्यासियों का प्रभाव इस बात से बहुत अधिक पड़ा कि उन्होंने पुरानी लेटिन भाषा की पुस्तकों को जीवित रखा। लगभग १६ हजार लेखक इस काम में लगे हुए थे। इन्होंने पुस्तकें लिखकर और पुरानी पुस्तकों की लिपि कर,कर मृतप्राय भाषा को जीवित रखा।

ये सन्यासी लोग धर्मशालाओं में रहकर क्रिश्चियन धर्म का प्रचार करते थे। ये लोग देश देशान्तरों में घूमकर और धर्म का उपदेश देकर क्रिश्चियनधर्म का प्रचार करते थे। आगे चलकर रोम के चर्च का जो इतना महत्व बढ़ा, वह इन्हीं लोगों की वजह से बढ़ा। इन्होंने ही जर्मन जातियों को भी क्रिश्चियन बनाया।

ग्रेगरी महान के समय में ही उसने ४ सन्यासियों के एक दल को इंगलैण्ड में धर्म प्रचार के लिये भेजा। इन सन्यासियों का नेता आगस्टिन था। इसने इंगलैंड जाकर बड़ी सफलता के साथ वहाँ ईसाई धर्म का प्रचार किया।

सेंट बोनीफेस

दूसरे प्रसिद्ध सन्यासी सेंट 'बोनीफेस' थे जो जर्मन-जातियों में धर्मप्रचार के लिए भेजे गये थे। बोनी-फेस पोप के अनन्य भक्त थे और इन्होंने पोप का अधिकार बढ़ाने में बड़ी सहायता दी।

उस समय समाज में जो भिन्न भिन्न सम्प्रदाय फैले थे उन सब को एक करके बोनीफेस पोप के अधिकार में ले आये और कई स्थानों पर अपने धर्म पीठ स्थापित किये।

चर्च का राजनीति में प्रवेश

वैसे तो रोमन-चर्च का राजनीति में प्रभाव पहले से ही हो गया था, मगर इसका वास्तविक स्वरूप तब नजर आया जब सन् ८ में जर्मनी का प्रसिद्ध राजा 'शार्लमेन' पोप लुयोव लीयो और उसके शत्रुओं के बीच में समझौता कराने के लिए रोम गया था। झगड़े का समझौता हो जाने पर पोप ने सेंट पीटर के गिर्जाघर में एक बड़ा भारी महोत्सव किया। इस उत्सव में जब शार्लमेन हाथ जोड़े खड़ा था उसी समय पोप लीयो ने रोमन सम्राट का मुकुट उसके सिर पर रख दिया और चारों ओर से रोम सम्राट की जय की ध्वनि होने लगी। इस प्रकार देखते देखते पोप ने शार्लमेन को राजा से सम्राट बना दिया।

इस घटना ने योरप के इतिहास पर बड़ा प्रभाव डाला और चर्च का राजनीति पर पूरा अधिकार हो गया।

मगर धर्म संस्था के द्वारा राजसंस्था में इस प्रकार हस्तक्षेप करने के आगामी परिणाम अच्छे नहीं हुए। इसके परिणामस्वरूप कई सदियों तक धर्म संस्था और राज संस्था के बीच संघर्ष चलते रहे और धर्मसंस्था भी अपने कर्तव्य से विमुख हो राजसत्ता की बुराइयों से घिर गई। इसका पहला उदाहरण पोप ग्रेगरी सप्तम के समय में नजर आया।

पोप ग्रेगरी सप्तम

ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में पोप ग्रेगरी सप्तम भी धर्म के इतिहास में एक प्रसिद्ध पोप हुआ। इसने अपने 'डिक्टेटस' नामक घोषणा पत्र में बतलाया कि—"पोप के पद की समता नहीं है। वह संसार भर में एक ही विशप है, जो चाहे जिस विशप को निकालने और रखने का अधिकार रखता है। केवल पोप ही एक ऐसा व्यक्ति है जिसके पैर तमाम राजे महाराजे छूते हैं। वह बादशाह को गद्दी से उतार सकता है और उसकी बे-इन्साफी को रोक सकता है। रोमन-चर्च ने न तो कभी भूल की है और न कभी कर सकता है। इत्यादि।

पोप के पद पर आते ही ग्रेगरी ने सारे यूरोप के देशों में अपने दूत भेजे जिनके द्वारा राजाओं को कहलाया कि बुरे रास्तों को छोड़ दीजिये और मेरे अनुशासन को मानिये। उसने फ्रांस के राजा को कहला भेजा कि

से भरी हुई है, जिनका वर्णन 'क्रूसेड' शब्द के अन्दर आगे के भाग में किया जायगा।

ईसाई धर्म-संस्था का विधान

ईसाई धर्म संस्था या रोमन-चर्च की शक्ति मध्य युग में आकर अर्थात् बारहवीं-तेरहवीं सदी में और भी व्यापक हो गई।

आज के जमाने में जिस प्रकार मनुष्य को राज्य संस्था से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना पड़ता है उसी प्रकार उस युग में प्रत्येक मनुष्य का धर्म संस्था के साथ अनिवार्य्य सम्बन्ध रहता था। यद्यपि कोई मनुष्य धर्म-संस्था में उत्पन्न नहीं होता था तथापि कार्यारंभ के प्रथम ही उसका बैप्टिस्मा (धर्म-दीक्षा) कर लिया जाता था। ईसाई धर्म समस्त पश्चिमी यूरोप का एक मात्र धर्म हो गया था और उसका विरोध करना परमेश्वर से विरोध करना समझा जाता था और ऐसे विरोधी को जीवित जला दिया जाता था।

मध्य युग की ईसाई धर्म संस्थाएँ केवल आध्यात्मिक जीवन का विकास करने वाली धर्म संस्थाएँ ही नहीं रह गई थीं प्रत्युत राजकीय क्षेत्र में भी उनके अधिकार असीम रूप से बढ़े हुए थे। इनके पास अपने न्यायालय थे, अपने बन्दी गृह थे। ये अपने आदेशों से राजा और सम्राटों को भी कायल कर सकती थीं।

पोप

पोप इन धर्म संस्थाओं का सर्वाधिमान और सर्वेश्वर था। वह अपने को सम्पूर्ण आध्यात्मिक तथा सदाचार सम्बन्धी अधिकारों का अधिपति समझता था। धर्म की कोई भी संस्था चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, उसकी इच्छा के प्रतिकूल कोई भी नियम नहीं बना सकती थी क्योंकि उसके अनुमोदन के बिना कोई भी नियम प्रमाणित नहीं समझा जाता था।

पोप केवल मुख्य नियम निर्माता ही नहीं था किन्तु वह मुख्य शासक भी था। सम्पूर्ण पश्चिमीय यूरोप अन्ततोगत्वा केवल एक ही सर्वोच्च शासक के अधिकार में था और वह रोम का पोप था। कोई भी नवीन नियुक्त किया हुआ आर्क बिशप पोप के आधिपत्य की शपथ उठाये और उससे "पालियम" (लायसेन्स) प्राप्त किये बिना अपने किसी अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता था।

चर्च का प्रबन्ध और आश्रितों का भरण पोषण करने के लिए पोप को बहुत बड़ी आमदनी की आवश्यकता पड़ती थी। इसके लिए धर्म संस्था के कई प्रकार के टैक्स जनता पर लगे हुए थे। इन टैक्सों को और भक्त लोगों के द्वारा दी हुई भेंटों से चर्च को बेशुमार आमदनी होती थी।

आर्क बिशप

ईसाई धर्म-संस्था में पोप के बाद धर्म-गुरुओं में दूसरा स्थान 'आर्क बिशप' का होता था। आर्क बिशप वे बिशप कहलाते थे जो प्रान्त के समग्र बिशपों पर अपना वर्चस्व रखते थे। ये लोग अपने प्रान्त के समस्त बिशपों को प्रान्तीय सभा में बुलाते थे और बिशप के द्वारा किये हुए फैसले पर अपील सुनते थे।

बिशप

बिशप ईसाई धर्म-संस्था का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग था। ये लोग "अपोसलों" के उत्तराधिकारी माने जाते थे और श्रद्धालु भक्त इनमें ईश्वरीय शक्ति होने का विश्वास करते थे। प्रत्येक बिशप की अपनी अपनी एक संस्था होती थी जिन्हें "कैथेड्रल" कहते थे।

नये पादरी नियुक्त करने और पुराने पादरियों को पदच्युत करने का अधिकार केवल बिशप को ही था। वही केवल धर्म संस्थाओं का निर्माण और राजाओं का अभिषेक कर सकता था। बिशप का अपना एक न्यायालय होता था जिसमें वह अनेक प्रकार के अभियोगों का निर्णय करता था।

राजा के सभासदों में उसका पद सबसे उत्कृष्ट माना जाता था। मतलब यह कि मध्य युग की ईसाई धर्म संस्थाओं में "बिशपों" के अधिकार बहुत विस्तृत थे।

चर्च का सबसे छोटा भाग पैरिश कहलाता था और इसका अधिकारी "पादरी" होता था। जो पैरिश के गिरजों में प्रार्थना करवाता था और अपने अनुयायियों का बैप्टिस्म विवाह और अन्तिम संस्कार करवाता था।

पादरियों को बहुत से सांसारिक विषयों से अलग रखता जाता था। उच्च पद वाले बिशप पादरी, डीकन आदि को विवाह करने की मनाई थी। वे इस प्रकार गृहस्थी के झगड़े तथा दूसरी चिन्ताओं से मुक्त रहते थे।

ईसाई धर्म में प्रवेश करते समय कुछ निश्चित संस्कार आवश्यक थे। यद्यपि चर्च का यह विश्वास था कि मनुष्य की समस्त संस्कार पद्धतियाँ ईसा मसीह ने ही प्रचलित की हैं फिर भी बारहवीं शताब्दी के मध्य तक ईसाई संस्कार-विधि को लेखबद्ध रूप में एक निश्चित रूप नहीं मिला था।

सन् ११६४ में पीटर लम्बार्ड नामक एक धर्म-शिक्षक ने मिस्सान-संस्कार विधि का एक संक्षिप्त ग्रन्थ सेण्ट आगस्टाइन के लेखों के आधार पर तैय्यार किया।

इस ग्रन्थ के मतानुसार "संस्कार" शब्द में केवल सात विषयों का समावेश होता है (१) बैप्टिज्मा (दीक्षा), (२) अनुमति, (३) अनुलेप, (४) विवाह (५) तप (६) नियोग और (७) मसाक्र् गीम। इन्हीं संस्कारों से जब धर्म-कार्य प्रारम्भ हो कर शुद्धि पाते हैं और यदि नष्ट हो गये हैं तो फिरसे पैदा होते हैं। मुक्ति के लिए ये संस्कार अति आवश्यक हैं। इनके बिना मुक्ति नहीं हो सकती।

बैप्टिज्मा—ईसाई-धर्म का सबसे पहला और पवित्र संस्कार है। इसी संस्कार के द्वारा आदम को स्वर्ग से गिरने पर उसके पापों का नाश हुआ था। पवित्र तैल को तथा विशेषता को सुरक्षितता का परिचायक मानकर अनुमति संस्कार के समय लड़के तथा लड़कियों को मस्तक पर लेपन किया जाता है जिससे कि वे ईश्वर का नाम सदा स्मरण रख सकें। यदि कोई धर्मावलम्बी बीमार हो जाता था तो पादरी भगवान का नाम लेकर उसके शरीर पर तैल या चन्दन का लेप करके इस अनुलेपन संस्कार के द्वारा उसके पापों का नाश करते थे।

अन्य धर्मों की तरह ईसाई धर्म में भी 'विवाह' एक पवित्र संस्कार माना गया है और इस कार्य्य को भी पादरी ही सम्पन्न कराते हैं। जब एक सम्बन्ध स्थिर या नियमबद्ध हो जाता है तो उसे फिर नहीं तोड़ा जा सकता।

बैप्टिज्मा से पाप-वासना कम तो हो जाती है मगर वह एक दम नष्ट नहीं होती। यदि कोई ईसाई इस पाप वासना से कोई दुष्कर्म कर बैठे तो तप के संस्कार द्वारा उसको परमेश्वर से एक बार फिर क्षमा मिल जाती है। यह तप संस्कार उपवास करना प्रार्थना करना तीर्थयात्रा करना अपने को नियम तुल और विश्वास से अलग रखना इत्यादि अनेक रूपों से किया जाता है।

नियोग के संस्कार से पादरी को पापियों को क्षमा प्रदान करने का अधिकार मिल जाता है। नियोग-संस्कार के समय बिशप पादरी से कहता है कि 'तुममें परमेश्वर की पवित्र आत्मा का निवास हो। जिनके अपराध तुम क्षमा करोगे वे क्षमा हो जायेंगे और जिनके पापों को तुम स्थायी रक्खोगे, वे स्थायी रहेंगे।'

इस प्रकार पादरी को गृहस्थ लोगों के पापों का दण्ड देने और उन्हें क्षमा करने का पूरा अधिकार मिला हुआ था। इस कार्य्य के लिए पापियों से बहुत सा द्रव्य लेकर भी वे उन्हें क्षमा कर दिया करते थे।

संशोधनवाद और नास्तिकता का उदय

धर्म-संस्था के इतने व्यापक और विस्तीर्ण अधिकार मिल जाने से उसके अन्दर भी मानव मनोविकारों का तेजी से विकास होना प्रारम्भ हुआ।

मध्य युग के व्यक्तियों के वर्णन में पोप के लिखे हुए पत्रों में तथा अन्य ऐतिहासिक सूत्रों से यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि उस समय के धर्माधिकारियों में स्वार्थपरता और दुष्चरित्रता खूब फैल गई थी। पादरियों के अन्याय, धन के प्रलोभन तथा काम-कार्य्यों के प्रति उनकी आसक्तता से साधारण जनता में भी उनकी निन्दा होती रहती थी।

धर्माधिकारियों के इस पतन के प्रतिकूल समाज में उसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। यह प्रतिक्रिया दो प्रकार के दलों से तत्कालीन समाज में पैदा हुई। एक को हम संशोधनवादी कह सकते हैं और दूसरे को क्रान्तिकारी। संशोधनवादी लोग रोमन-चर्च को पूरी तरह मानते हुए भी उसमें घुसी हुई बुराइयों को निकाल कर उसे शुद्ध रूप देना चाहते थे। मगर क्रान्तिकारी लोग ईसाई-धर्म में पूर्ण श्रद्धालु होते हुए भी चर्च की सत्ता को मानने से इन्कार करते थे। संशोधनवादियों में सेंट फ्रांसिस और डोमेनिक का नाम बहुत प्रसिद्ध है और क्रान्तिकारियों में "वाल्डो जॉन विक्लिफ" "जॉन हस" "मार्टिन लूथर" "केल्विन" इत्यादि लोगों के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। रोमन-चर्च में विश्वास न करने वाले लोगों को ही उस समय नास्तिक माना जाता था और ऐसे लोगों को पकड़ कर उनका अभियोग धर्म-अदालतों (इन्क्वीजीशन्स) में चला कर उन्हें कीड़ा बड़ा देने के समान कठोर दण्ड दिये जाते थे।

सेण्ट फ्रांसिस

सेण्ट फ्रांसिस का जन्म सन् ११८२ में इटली के असीसी नामक एक छोटे ग्राम में हुआ था। शुरू शुरू में इनका जीवन बड़े वैभव और विलास के वातावरण में बीता। मगर बीस वर्ष की अवस्था में एक बीमारी से मुक्त होने के बाद सन् १२०६ में जब वे किसी गिरजे में प्रार्थना सुन रहे थे तो पादरी ने उनकी ओर मुड़ कर इस प्रकार कहा—"और जब तू यह शिक्षा बाहर देने के लिए निकलता है कि स्वर्ग-राज्य अब मिलने ही वाला है तो अपनी गांठ में न सोना न चांदी और न पीतल ही रख। अपनी यात्रा के लिए कपड़े भी मत ले। अपने साथ कोट, जूता तथा डण्डा भी न ले, क्योंकि अभी को भोजन कहीं भी मिल जावेगा।

सेण्ट फ्रांसिस को आभास हुआ कि स्वयं ईसा मसीह ही उनको यह आदेश दे रहे हैं। उसी समय उन्होंने अपने रत्न वस्त्र तथा जूतों को फेंक दिया और उपदेशों के निर्धारित मार्ग पर चलना निश्चित किया।

सेण्ट फ्रांसिस के अनुयायी प्रसन्न चित्त संसार के भार से मुक्त और अपने को ईश्वर का दास कहते हुए नंगे पैर, धनहीन, रूखा सूखा खाकर सारे इटली में घूम घूम कर धार्मिक शिक्षा देते थे।

इसी स्थिति में सेण्ट फ्रांसिस पोप इन्नोसेंट तृतीय के दरबार में भी गये। पोप इन्नोसेण्ट इनसे बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उनको रोमन धर्म के प्रचारिक अधिकार प्रदान किये।

सेण्ट फ्रान्सिस के अनुयायी जर्मनी, फ्रान्स हंगरी स्पेन इत्यादि सब दूर फैल गये। सेण्ट फ्रान्सिस ने इन प्रचारकों के लिए जो नियम बनाये थे उनमें बतलाया गया था कि—"सम्प्रदाय के लोग अपने लिए कुछ भी न रखें वे किसी नियमित स्थान में हमेशा न रहें वे यात्रियों के समान परिव्राजक बनकर निर्धन तथा विनीत दशा में परमेश्वर की सेवा करें और भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करें" —

चर्च और धर्माधिकारियों के जीवन को त्यागपूर्ण बनाने के लिए भी सेण्ट फ्रान्सिस ने बहुत प्रयत्न किया। ईसाई धर्म के प्रचार और चर्च के संशोधन में सेण्ट फ्रांसिस की सेवायें अत्यन्त बहुमूल्य और अमर हैं।

सेण्ट डोमेनिक

भिक्षुक सम्प्रदाय के संस्थापक सेण्ट डोमेनिक एक गिरजे के अध्यक्ष थे। सन् १२०८ में वे अपने बिशप के साथ नास्तिकता के विरुद्ध विहार करने के लिए दक्षिणी फ्रान्स के प्रसिद्ध नगर में गये थे जो नास्तिकता का केन्द्र था। वहाँ नास्तिकता का प्रचार देखकर इन्हें बड़ा दुःख हुआ। पोप तृतीय इन्नोसेंट ने इनको भी धर्म प्रचार का प्रमाण पत्र दिया और इन्होंने अपने सोलह अनुयायियों को देश विदेश में धर्म प्रचार के लिए भेजा। सन् १२२१ में डोमेनिक का सम्प्रदाय पूर्ण रूप से स्थित हुआ और पश्चिमीय यूरोप में उनके करीब ६ गिरजे स्थापित हो गये। डोमीनिकन सम्प्रदाय के लोग गर्मी की धूप और जाड़े की शीत की परवाह न कर सारे यूरोप में पैदल घूमते हुए ईसाई-धर्म का प्रचार करते फिरते थे। वे धन को नहीं छूते थे और भिक्षावृत्ति से अपना गुजारा करते थे।

डोमीनियन लोग "भिक्षुक" के नाम से प्रसिद्ध थे। धर्म शास्त्र की इन्हें पूरी और गहरी शिक्षा दी जाती थी।

इन लोगों की सफलता देखकर पोप ने इन लोगों को अधिक अधिकार देना प्रारम्भ किया। धीरे धीरे इन भिक्षुओं को बिशपों के अधिकार से हटा दिया गया और अन्त में उनको अपने लिए स्वयं नियम निर्माण करने, प्रार्थना पढ़ने और शिक्षा देने का अधिकार भी दे दिया।

इस सम्प्रदाय में बड़े बड़े विद्वान तत्व चिन्तक और प्रमुख लेखक पैदा हुए। थॉमस एक्विनस जैसे विद्वान सवन रोला जैसे सुधारक, फ्रेअन्जलिको तथा फ्रा बार्टो-लोमियो के समान कलाकुशल तथा रोजर बेकन के समान वैज्ञानिक लोग इस संस्था के सदस्य थे। तेरहवीं शताब्दी के यूरोप में इस संस्था के अतिरिक्त भलाई करने वाली कोई भी संस्था ऐसी जाग्रत अवस्था में न थी।

मगर पोप के द्वारा प्राप्त अधिकारों से इन संस्थाओं में भी सत्ता और धन का प्रलोभन घुस गया और सन् १२५७ में जब बोनावेंचरा फ्रांसिस धर्मसंस्था का अध्यक्ष हुआ तो उसने लिखा कि इन त्यागपूर्ण सम्प्रदायों में लोभ, आलस्य तथा अन्य बुराइयों के घुस जाने से लोग इनसे घृणा करने लग गये हैं। ये लोग भिक्षा माँगने के इतने आदी हो

गये हैं कि पादरियों को ठगों से भी अधिक दुःख देते हैं। इन्हीं बातों के परिणाम स्वरूप आगे के समय में जान विक्लिफ, जॉन हस और मार्टिन लूथर को पैदा किया।

इसी समय सन् १३०९ में फ्रांस के राजा 'फिलिप' ने बोर्दो के आर्क बिशप को इस शर्त पर पोप की गद्दी पर बिठाया कि वह अपनी राजधानी फ्रांस में रखे। इस पोप का नाम पंचम 'क्लेमेंट' रखा गया। उसने अपनी गद्दी जीवन भर फ्रांस में ही रखी। उसके उत्तराधिकारी ने अपना निवास-स्थान फ्रांस के राज्य की सीमा के बाहर अविग्नान नामक नगर में बनाया। वहाँ पर उसने एक भारी महल बनाया। ७० वर्ष तक इस महल में रोमन-चर्च के पोप की गद्दी रही। सन् १३०५ से १३७७ ई० तक का समय रोमन-चर्च के इतिहास में 'बेबीलोनियन कारावास' के नाम से प्रसिद्ध है। इतने समय तक पोप रोम से निर्वासित रहा। इस समय में ईसाई धर्म संस्था की बड़ी निन्दा हुई और उसके परिणाम स्वरूप सन् १३७८ में दो पोप एक साथ चुने गये। रोम की जनता ने 'अरबन षष्ठ' के नाम से अपना पोप चुना और फ्रांस की जनता ने सप्तम क्लेमेंट के नाम से एक अन्य व्यक्ति को 'अविग्नान' में पोप की गद्दी पर बिठा दिया।

इस प्रकार महान वैभवशाली रोमनचर्च आपसी कलह और झगड़ों का प्रधान केन्द्र बन गया। इन झगड़ों को देख कर जनता के अन्दर चर्च के प्रति भारी विरक्ति और घृणा के भाव पैदा होने लगे।

जॉन विक्लिफ

इन भावनाओं को सबसे पहले मूर्त रूप देने वाला ऑक्सफोर्ड का धर्म प्रचारक 'जॉन विक्लिफ' था। जॉन विक्लिफ का जन्म सन् १३२० ई० में हुआ। इस धर्म-प्रचारक ने पोप और रोमन चर्च की कड़ी आलोचना करना प्रारंभ की। उसने उपदेशकों की एक संस्था स्थापित की। वे उपदेशक घूम घूम कर पोप के खिलाफ प्रचार करने लगे।

जॉन विक्लिफ ने बाइबिल का अनुवाद सरल अंग्रेजी भाषा में किया और धार्मिक विषयों पर बहुत सी पुस्तकें अंग्रेजी में लिखीं। अंग्रेजी भाषा में गद्य का जन्मदाता यही माना जाता है। जॉन विक्लिफ के अनुयायी 'लोलार्ड' कहलाते थे। उसके सिद्धान्त बाद में बोहेमिया प्रदेश में जॉन हस द्वारा फैले। लूथर ने भी बाद में इन सिद्धान्तों को अपनाया। विक्लिफ के प्रचार से परेशान होकर पोप ने उसके विरुद्ध घोषणा निकाली और इंग्लैंड में भी उसके खिलाफ कई झूठे सच्चे अभियोग लगाए गये जिसके परिणाम स्वरूप उसके बहुत से साथी उसको छोड़ कर चले गये और उसके प्रयत्नों को प्रत्यक्ष सफलता नहीं मिली, मगर इस में उसने क्रान्ति के जिन बीजों का रोपण कर दिया था वे नष्ट नहीं हुए और उनके परिणाम डेढ़ सौ वर्षों के बाद 'मार्टिन लूथर' के रूप में रोमन चर्च के खिलाफ प्रकट हुए।

इंक्वीज़ीशन अदालत

रोमन चर्च ने अपने खिलाफ बढ़ती हुई नास्तिकता की भावनाओं को दमन करने के लिए 'इंक्वीज़ीशन' नामक अदालतों के द्वारा नास्तिकों को दण्ड देने और उनको जीते जी जला देने का काम प्रारंभ किया। इन अदालतों में नास्तिकता का सन्देह होते ही लोगों को पकड़कर बन्द कर दिया जाता था। उन्हें तरह-तरह की अमानुषिक यंत्रणाएँ दी जाती थीं और अन्त में जीते-जी जला दिया जाता था। इन सब अदालतों का पूरा वर्णन 'इंक्वीज़ीशन' नाम के अन्तर्गत इसी भाग में किया गया है।

मार्टिन लूथर और प्रोटेस्टेंट क्रान्ति

रोमन चर्च के द्वारा प्रचलित भयंकर अत्याचारों और धर्म-अदालतों के द्वारा किये जाने वाले नृशंस कार्यों के प्रतिकूल जनता में जो भावनाएँ घनीभूत हो रही थीं, उनका विस्फोट मार्टिन लूथर के रूप में प्रकट हुआ।

मार्टिन लूथर का जन्म सन् १४८३ में जर्मनी के एक ग्राम में हुआ। १८ वर्ष की अवस्था में वह जर्मनी के सब से बड़े विद्यापीठ 'एरफर्ट' में दाखिल हुआ। वहाँ पर उसका बहुत से 'ह्यूमैनिस्ट' लोगों से परिचय हुआ।

सन् १५०५ ई० में मार्टिन लूथर ने ईसाई धर्म की दीक्षा ली। उसने देखा कि पोप के प्रतिनिधि कहाँ तक हो सकता है, धन एकत्र करने की चिन्ता में पड़े रहते हैं और इसी कारण वे प्रत्येक मनुष्य को अपने पापों की क्षमा के लिए और परमेश्वरी (ईश्वरीय) में पड़े हुए

उनके पूर्वजों के पापों का नाश करने के लिए क्षमा दान माँगने की प्रेरणा करते रहते थे, और इस क्षमा-दान के लिए बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ माँगते थे। इसी प्रकार और भी कई प्रकार की बुराइयों का चर्च के अनुशासन में उसे दर्शन हुआ इसलिए उसके भाव रोमन चर्च के प्रति विद्रोही-रूप धारण करने लगे।

लूथर के इस प्रकार विद्रोही हो जाने पर समाज के दूसरे पोप-विद्रोही और सुधारक उसके मित्र बनने लगे।

मार्टिन लूथर की तरह अभी तक किसी व्यक्ति ने खुल्लम-खुल्ला रोमन चर्च के प्रतिकूल इस प्रकार अकेले आन्दोलन नहीं मचाया था। जिस भाँति कोई मनुष्य अपने बराबरी के प्रतिद्वन्द्वी का सामना करता है उसी भाँति 'विटिनबर्ग' के अध्यापक मार्टिन लूथर ने पोप तथा सम्राट् की शक्ति का प्रतिरोध बराबरी में किया था। उसने पोप दशम लियो के आज्ञापत्र, धर्म-संस्था के नियम तथा एक ऐसी पुस्तक को जिससे वह बहुत घृणा करता था—अग्नि में जला दिया। इस पवित्र तथा धार्मिक होली को देखने के लिए उसने अपने समस्त छात्रों को निमंत्रित किया था। धर्म संस्था के पुराने भवन को ढा देने की जितनी अधिक वासना मार्टिन लूथर के हृदय में जाग्रत हुई थी, वैसी पहले कभी नहीं देखी गई।

इस परिस्थिति को देखकर पोप लियो के प्रतिनिधि अलेक्जेंडर ने कहा था कि "मैं जर्मन जाति के इतिहास को भली भाँति जानता हूँ। उसकी पूर्व समय की नास्तिकता और कलह को भी जानता हूँ लेकिन ऐसी विकट अवस्था कभी भी पैदा नहीं हुई। इस स्थिति के आगे चतुर्थ हेनरी तथा सप्तम ग्रेगरी के कलह तुच्छ प्रतीत होते हैं। ये पागल कुत्ते अब निडर और शस्त्र से सुसज्जित हो गये हैं। वे अब मूर्ख नहीं रह गये हैं। जर्मनी के ९ भाग तो लूथर का समर्थन कर रहे हैं और १० वाँ भाग भी रोम की सत्ता का अन्त ही किया चाहता है।

मार्टिन लूथर चाहता था कि मठों की संख्या दशमांश कर देनी चाहिए और जो लोग उनमें निवास करने के प्राप्त कामों से सन्तुष्ट न हों, उनको उनसे सम्बन्ध तोड़ने के लिए स्वतंत्रता होनी चाहिए। वह चाहता था कि गिर्जों को बन्दीगृह की तरह न बनाकर उनको व्यथित आत्माओं के लिए शान्ति तथा विश्राम का स्थान बनाना चाहिए। उसका मत था कि नागरिकों की तरह पादरियों को भी विवाह करना चाहिए और कुटुम्बी बनकर रहना चाहिए।

लूथर की इस क्रान्ति से क्षुब्ध होकर जर्मनी के सम्राट 'चार्ल्स' ने वर्म नामक स्थान में मार्टिन लूथर को बुलाया और उससे पूछा गया कि क्या जर्मन तथा लेटिन भाषा में लिखित किताबों का यह संग्रह तुम्हारा ही लिखा हुआ है और यदि लिखा हुआ है तो क्या तुम अपने मत को बदलने के लिए तैयार हो? मार्टिन लूथर ने इसके उत्तर में बयान देते हुए कहा कि—

"यदि मैं पोप के प्रतिकूल कहे हुए वचनों को लौटा लूँगा तो पोप के दुराचारों की केवल बढ़ती ही होगी और उसे नये नये माल हड़पने का मौका मिलेगा। मैं पोप और सभा की मंत्रणा मानने को प्रस्तुत नहीं हूँ। क्योंकि दोनों ने भूल की है और स्वयं भी अपने मन्तव्यों के प्रतिकूल कार्य किया है। मेरे विचार केवल ईश्वर के सहारे हैं।"

मार्टिन लूथर के इस स्पष्ट कथन से सम्राट् ने मार्टिन लूथर को आउट-ला घोषित करने का आदेश दिया। आउट-ला उस समय ऐसी व्यवस्था का नाम था, जिससे कोई भी व्यक्ति समाज में कानून के द्वारा जो सुरक्षा पाता है—वह समाप्त हो जाती है और कोई भी व्यक्ति उसे मारे-पीटे या गालियाँ दे तो कानून उसके विरोध में कुछ भी नहीं कर सकता।

इस प्रकार आउट-ला घोषित हो जाने के कारण मार्टिन लूथर को कई वर्षों तक गुप्तवास में रहना पड़ा।

मगर जर्मन जनता के अन्दर चर्च के प्रति जो घृणा भावनाएँ जाग्रत हो चुकी थीं वे दिन दिन बढ़ती ही गईं। इन भावनाओं को रोकने के लिए सन् १५२६ में जर्मनी के सम्राट् ने 'स्पेयर' में फिर सभा को निमंत्रित किया और उसमें घोषणा की कि नये दल के विश्वासी उपासकों को भी रोमन-कैथोलिक प्रथाओं का अनुसरण करना पड़ेगा।

इस आज्ञा का जर्मनी में बड़ा विरोध हुआ और १४ स्वतंत्र नगरों के राजाओं ने एक विरोध पत्र पर हस्ताक्षर करके सम्राट् के पास भेजा। जिन लोगों ने इस पर हस्ताक्षर किये थे, वे लोग 'प्रोटेस्टेंट' कहलाये, क्योंकि उन्होंने प्रोटेस्ट (विरोध) किया था। आगे चलकर यही प्रोटेस्टेंट नाम ईसाई धर्म की एक महत्वपूर्ण कड़ी बन गया।

इस सारी स्थिति को देखकर सम्राट् ने सन् १५३० में आग्सबर्ग में जर्मन जनता की एक सभा की। इस सभा में 'मेलान्कथन' नामक विद्वान व्यक्ति ने प्रोटेस्टेंट विचार धारा पर एक व्याख्या लिखी, जो 'आग्सबर्ग कन्फेशन' नाम से प्रसिद्ध है।

आग्सबर्ग की सभा के बाद सिर्फ ४ वर्ष के अन्दर प्रोटेस्टेंट धर्म की लहर सारे यूरोप में फैल गई और इंग्लैंड, स्विटजरलैंड फ्रांस तथा हालैंड में करीब एक शताब्दी तक रोमन-कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट दोनों का गर्म कर और रक्तपातपूर्ण संघर्ष जारी रहा और रोमन-चर्च के लाख प्रयत्न करने पर भी मार्टिन लूथर के द्वारा प्रचारित की हुई इस महान क्रान्ति ने ईसाई धर्म के अन्दर स्थायी रूप धारण कर लिया।

ज़्विंगली

मार्टिन लूथर की तरह स्विट्ज़रलैंड में रोमन-चर्च के विरोधियों का नेता ज़्विंगली था। वह मार्टिन लूथर से एक वर्ष छोटा था। ज़्विंगली एक किसान का लड़का था।

सन् १५१८ में उसे ज्यूरिख के एक बड़े गिर्जे में उपदेशक का पद मिला। चर्च की शोचनीय स्थिति को देखकर उसने भी मार्टिन लूथर की तरह चर्च की कड़ी आलोचना करनी प्रारम्भ की। पोप तथा उसके दूतों की ओर निन्दा करते हुए उसने कहा कि—"इनकी टोपियों तथा चादरों का लाल रंग ऐसा उचित है। यदि हम इन चादरों को निचोड़ें तो इनमें से अशर्फियाँ बरसती हैं और यदि हम इन्हें निचोड़ें तो इनमें से हमारे भाइयों, बेटों तथा अन्य सम्बन्धियों के रक्त की धार बह निकलती है।"

ज़्विंगली को दबाने के लिए भी पोप के समर्थकों ने बहुत प्रयत्न किया पर ज्यूरिख की सभा ने उसके मत का समर्थन किया। ज़्विंगली ने पादरियों के अविवाहित रहने तथा उपवास करने की प्रथा का विरोध किया। उसने करीब ६७ प्रतिज्ञाओं में अपना पूरा मत प्रदर्शित किया। ज़्विंगली का खण्डन करने के लिए कोई भी खड़ा नहीं हुआ। इस कारण नगर की सभा ने उसके मन्तव्यों को स्वीकार कर रोमन कैथोलिक चर्च से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया।

सन् १५३१ में एक लड़ाई में ज़्विंगली मारा गया।

कैल्विन और प्रेस बिटेरियन संस्था

जर्मनी में जिस तरह मार्टिन लूथर और स्विट्ज़रलैंड में ज़्विंगली रोमन चर्च के खिलाफ अपनी आवाज़ को बुलन्द कर रहे थे उसी प्रकार उस समय इंग्लैंड में कैल्विन रोमन चर्च के खिलाफ अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहा था। कैल्विन 'प्रेस बिटेरियन' सम्प्रदाय का जन्मदाता तथा उसका संस्थापक था। इसका जन्म सन् १५०९ में फ्रांस में हुआ था। उस समय फ्रांस देश में लूथर के मत का प्रचार हो रहा था। कैल्विन पर भी इस मत का प्रभाव पड़ा और वह फ्रांस से भाग कर कुछ समय तक स्विट्ज़रलैंड में रहा।

कैल्विन की लिखी हुई 'इन्स्टीच्यूट-ऑफ क्रिश्चियानिटी' नामक पुस्तक ने प्रोटेस्टेंट धर्म के विस्तार में बड़ा महत्वपूर्ण भाग अदा किया। प्रोटेस्टेंट धर्म की पुस्तकों में इस किताब का बड़ा महत्व है। ईसाई धर्म की प्रोटेस्टेंट शाखा की यह प्रथम शास्त्रीय पुस्तक मानी जाती है। इस पुस्तक में चर्च तथा पोप की अप्रामाणिकता एवं बाइबिल की पूर्ण प्रामाणिकता बतलाई गई है। कैल्विन का मस्तिष्क प्रतिभाशाली था और उसकी लेखन शैली अत्यन्त प्रौढ़ थी। तर्कशास्त्र की किसी भी पुस्तक में फ्रेंच भाषा का इतना अच्छा कभी उपयोग नहीं हुआ था जितना कि कैल्विन की पुस्तक के फ्रेंच अनुवाद में हुआ। फ्रांस तथा स्काटलैंड में लूथर के नहीं, प्रत्युत कैल्विन के ही प्रोटेस्टेंट मत का विशेष प्रचार हुआ।

इग्नेशियस लायला और जीसुइट-सम्प्रदाय

रोमन चर्च के खिलाफ चारों ओर से पैदा हुए विद्रोह को दमन करने में जब रोमन-चर्च को सफलता नहीं हुई,

इस पंथ के पक्षपातियों ने चर्च की मूलभूत नीतियों में सुधार कर चर्च को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से जर्मनी और इटली की सीमा के बीच में 'ट्रेंट' नामक नगर में सन् १५४५ ई० में एक सभा बुलाई। इस सभा ने रोमन कैथोलिक धर्म संस्था के नियम तथा पद्धति के लिए एक नवीन तथा दृढ़ आधार बनाया। इतिहास की दृष्टि से इस सभा के मन्तव्य विशेष उपयोगी थे। उन्हें हम रोमन-कैथोलिक धर्म-संस्था के मत का सच्चा और पूरा वर्णन कह सकते हैं।

सभा की इस बैठक में स्पेन का निवासी 'इग्नेशियस लायला' नामक एक व्यक्ति भी था जो पोप के अधिकारों में किसी भी प्रकार की न्यूनता करने का विरोधी था। इसी व्यक्ति ने ईसाई-धर्म में जेसुइट नामक सम्प्रदाय की स्थापना की जो आगे चलकर ईसाई धर्म की सबसे शक्तिशाली संस्था बन गई।

सन् १५४८ में इग्नेशियस लायला ने अपने अनुयायियों को पेरिस बुलाकर अपने सम्प्रदाय का काम प्रारंभ किया।

आदर्श उपस्थित करके लोगों में दया तथा ईश्वर भक्ति का प्रचार करना ही इस संस्था का उद्देश्य था। इसके सदस्यों को दरिद्रता और त्याग का जीवन बिताना पड़ता था। इस संस्था के सदस्य नगरों में जाकर लोगों को उपदेश देते थे। पाप की स्वीकृति के बयान सुनते थे और भक्ति के लिए लोगों को उत्साहित करते थे।

१८वीं शताब्दी तक इस संस्था का कार्य तेजी से बढ़ता रहा। जिसके परिणामस्वरूप जेसुइट संस्था के उपदेशक बहुत शीघ्र केवल यूरोप में ही नहीं प्रत्युत समस्त संसार में फैल गये। इग्नेशियस लायला के प्राचीन साथियों में 'फ्रांसिस जेवियर' नामक धर्माधिकारी बड़ा प्रसिद्ध था जिसने भारत मलाया तथा जापान की यात्रा कर वहाँ ईसाई धर्म का प्रचार किया। इसी प्रकार मार्क्वेज फ्लोरिडा, मैक्सिको तथा पेरू के समान सुदूरवर्ती मूर्तिपूजक देशों में भी जेसुइट सम्प्रदाय के लोग धर्म प्रचार के लिए पहुँच गये।

इस प्रकार ईसाई-धर्म के प्रचार में जेसुइट सम्प्रदाय के लोगों ने बहुत महत्वपूर्ण योग-दान किया।

मगर आगे जाकर और संस्थाओं की तरह इस संस्था में भी दुष्ट और स्वार्थी लोगों का प्रवेश हुआ। अन्य प्राचीन संस्थाओं ही की तरह इस संस्था की भी भारी और बदनामी होने लगी। कैथोलिक लोगों का भी विश्वास इस पर से उठ गया। और सन् १७७३ में पोप के आदेश से यह संस्था उठा दी गई। सन् १८१४ में इसकी फिर से स्थापना हुई।

इस प्रकार और भी कई लोगों ने ईसाई धर्म के प्रचार में तथा रोमन चर्च के पक्ष और विपक्ष में स्थान-स्थान पर आन्दोलन किये। मगर इन सब चीजों के बावजूद ईसाई-धर्म का प्रचार सारे संसार में चलता रहा।

मशीन युग में ईसाई-धर्म

१८ वीं शताब्दी में मशीनों के आविष्कार से सारे संसार में एक विराट औद्योगिक क्रान्ति का जन्म हुआ। विज्ञान की उन्नति ने मनुष्य के धार्मिक अन्धविश्वासों की दीवारों को ढा दिया। हजारों वर्षों से धार्मिक अन्ध विश्वासों की बेड़ियों में जकड़ा हुआ मनुष्य आज़ादी की खुली हवा में साँस लेने लगा। इस परिस्थिति का ईसाई धर्म पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। रोमन-चर्च की अपरिमित और असीम सत्ताएँ समाप्त हो गईं। धर्माचार्यों के अत्याचार और शोषण-वृत्ति भी समाप्त हो गई, पर ईसाई धर्म-संस्था का प्रचारकार्य उसी प्रकार चलता रहा जिसके फलस्वरूप सारे संसार में आज भी ईसाई-धर्म-मतावलम्बियों की संख्या बहुत अधिक है।

ईसाई मिशनरी (धर्म-संस्था)

मानवीय इतिहास में महात्मा ईसा का आविर्भाव और ईसाई-धर्म की स्थापना—एक युगान्तरकारी घटना है। ईसाई-धर्म की मूलभूत बुनियाद त्याग, सेवा, समानता और भ्रातृभाव पर रक्खी गई है। इस धर्म ने अपने धर्म को अन्य धर्मावलम्बियों पर तलवार के बल से थोपने का प्रयत्न नहीं किया। प्रत्युत भूखमरी और बीमारी से पीड़ित लोगों की सेवा कर उन्हें प्रेम के साथ ईसामसीह के उपदेशों को सुनाकर प्रचार मशीनरी के द्वारा इस धर्म ने अपना प्रचार किया।

ईसाई-धर्म प्रचारकों ने मिशनरियों के रूप में संसार के कोने कोने में पहुँच कर जहाँ भी उनको गरीबी दिखलाई दी भुखमरी दिखलाई दी और अशिक्षा दिखलाई दी वहीं पर उन्होंने अपने केन्द्र स्थापित कर भूखों को भोजन, अशिक्षितों को शिक्षा और बीमारों के लिये औषधि वितरण की व्यवस्था की। संसार के भिन्न भिन्न देशों में पहाड़ी प्रदेशों में सामुद्रिक द्वीपों में स्थान स्थान पर ईसाई मिशनरियों के हजारों स्कूल और अस्पताल दिन-रात चलते रहते हैं। जहाँ पर सेवा भावी प्रचारक और प्रचारिकायें दरिद्रनारायण की चिरन्तन सेवा में अपने जीवन को उत्सर्ग किये रहते हैं।

ईसाई धर्म संस्था इन्हीं सेवा भावी प्रचारकों के जरिये संसार के भूखे अपाहिज और पिछड़े हुए लोगों के बीच में ईसामसीह के उपदेशों का शान्तिपूर्वक प्रचार करती रहती है। ईसाई-राज्यों की राज संस्थायें और जनता इन मिशनरियों को करोड़ों रुपयों की सहायता पहुँचाती रहती है। समग्र संसार में जितना प्रचार और दरिद्रनारायण की जितनी सेवा ईसाई मिशनरियों के द्वारा हो रही है उसकी तुलना संसार की दूसरी किसी धर्म संस्था से नहीं हो सकती और यही कारण है कि आज समस्त मानव जाति के लगभग ३५ प्रतिशत लोग ईसाई हैं। देशों के हिसाब से यूरोप के अन्दर ७८ प्रतिशत अमेरिका में ८१ प्रतिशत, अफ्रीका में १४ प्रतिशत तथा एशिया में १ प्रतिशत ईसाई हैं।

ईसाई धर्म की इस व्यापक उन्नति के मूल कारणों पर विचार करने से निम्नलिखित तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं —

(१) ईसाई धर्म की मूल भित्ति सेवा और समानता के सिद्धान्त पर डाली गई थी। मनुष्य मनुष्य के बीच में विभेद पैदा करने वाले जातिभेद वर्णभेद रंगभेद देश भेद इत्यादि सभी प्रकार के भेदों की दीवारों को तोड़कर विशुद्ध एकतात्मक (Punective) सिद्धान्तों पर इस धर्म की बुनियाद डाली गई। संसार के किसी भी देश का किसी भी जाति का मनुष्य मर्तंद के अन्दर के भीतर आने के बाद समानता का अधिकारी हो जाता है। इस सिद्धान्त ने लोगों को इस धर्म की तरफ बहुत आकृष्ट किया।

(२) ईसामसीह के बाद सेन्टपीटर, सेंटपाल सेंट अगस्टाइन इत्यादि कई सन्त ईसाई धर्म में ऐसे उत्पन्न हुए जिन्होंने अपनी त्याग वृत्ति का सहन और विद्वता के द्वारा इस धर्म की जड़ को जमाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग दिया। विद्रोह और अराजकता के उस युग में इस नवीन धर्म को समाज में जीवित रख कर बढ़ाने का श्रेय उन्हीं महात्माओं की कठिन तपश्चर्या को है।

(३) रोमन चर्च की स्थापना और उसकी शक्ति के बढ़ने के साथ साथ ईसाई धर्म का जो सर्वव्यापी प्रचार हुआ वह भी इतिहास में एक महत्त्व की वस्तु है। रोमन चर्च में कई पोप इतने विद्वान शक्तिशाली और तेजस्वी हुए जिनके द्वारा सारे यूरोप और विदेशों में इस धर्म का बहुत बड़ा प्रचार हुआ। रोमन-चर्च ने हजारों उपदेशकों को देश विदेश में भेजकर इस धर्म का व्यापक रूप से प्रचार किया।

(४) ईसाई-धर्म के प्रचार में इस धर्म के सन्यासी वर्ग का भी बहुत गहरा हाथ रहा। सादा जीवन और उच्च विचार ईसाई सन्यासी संस्था का मुख्य लक्ष्य था। इन सन्यासियों में बड़े बड़े विद्वान कवि इतिहासकार और धर्मशास्त्री हुए जिन्होंने अपनी महान सेवाओं से इस धर्म को फूलने फलने का अवसर दिया।

(५) इस धर्म के प्रचार का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग ईसाई मिशनरी और प्रचार संस्था है जिसका विवेचन हम ऊपर कर चुके हैं।

(६) वैभव और सत्ता के कीड़ों का किसी सेवा भावी संस्था में घुस जाने से उस संस्था का किस प्रकार भयङ्कर पतन हो जाता है इस ऐतिहासिक सत्य की परिणति रोमनचर्च के इतिहास में स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। अपने प्रारम्भिक काल में जिस प्रकार इस संस्था ने ईसाई धर्म की रक्षा की उसी प्रकार अपने पतन काल में धर्म के नाम पर नास्तिकता का नाश करने के बहाने इसने लाखों आदमियों के प्राण अत्यन्त निर्दयता पूर्वक ले लिये।

बाइबिल

ईसाई धर्म और सभ्यता का मूल स्रोत बाइबिल नामक ग्रन्थ है। हिन्दुओं के वेद और मुसलमानों के

कुरान ही की तरह ईसाई धर्म का यह सबसे पूज्य ग्रन्थ है। इसी ग्रन्थ से ईसाई धर्म और संस्कृति के मूल तत्वों का उद्गम हुआ है।

ईसामसीह के आविर्भाव के पूर्व भी बाइबिल विद्यमान थी और यह यहूदियों का पूज्य धर्म-ग्रन्थ थी। इस पुराने बाइबिल को ईसामसीह के आविर्भाव के पश्चात् 'ओल्ड टेस्टामेंट' के नाम से कहा जाने लगा। इसी ग्रन्थ में मसीह के पृथ्वी पर अवतीर्ण होने की सूचना दी गई है।

ईसामसीह के पश्चात् उनके उपदेश और ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का जिसमें विवेचन किया गया वह बाइबिल न्यू टेस्टामेंट या इंजील के नाम से प्रसिद्ध है। इस पवित्र ग्रन्थ में सृष्टि की उत्पत्ति, मसीह का अवतरित होना, ईसाई मत के मूल सिद्धान्त और मनुष्य के व्यक्तिगत, सामाजिक और संस्कार सम्बन्धी सब कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है।

[उ]

उक्बा बिन-नफीर

अरब स्थान में उमैया-वंश के खलीफा म्आविया का सेनापति उक्बा बिन नफीर जो सन् ६७ के करीब हुआ।

इस्लाम के प्रचार के इतिहास में मुसलमान सेनापति उक्बा का नाम बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि मिस्र के कैरवान (कैरो) नगर की स्थापना उसी ने की थी। उक्बा इस्लाम की दिग्विजय करता हुआ उत्तरी अफ्रीका को पार करता हुआ अटलांटिक महासागर तक अर्थात् आधुनिक मोरक्को के पश्चिमी किनारे तक पहुँच गया था। समुद्र की रुकावट सामने आ जाने से उसे बड़ी निराशा हुई और वह अपने घोड़े को समुद्र में जितनी दूर वह जा सकता था ले गया। फिर उसने अल्लाह के सामने अफसोस जाहिर किया कि अब उस दिशा में कोई देश नहीं रहा जिसे अल्लाह के नाम पर वह फतह करता।

उक्समल नगर

मध्य अमरीका की प्राचीन सभ्यता में बसाया हुआ एक नगर जिसकी स्थापना ई० सन् ६९ के करीब हुई।

प्राचीन युग में अमरीका के अन्दर सभ्यता के तीन खास केन्द्र थे—मैक्सिको, मध्य अमेरिका और पेरू। सभ्यता के इन क्षेत्रों में कई राज्य और कई भाषाएँ थीं। इन भाषाओं में अच्छा साहित्य भी था। शासन सुसंगठित और मजबूत था।

उक्समल नगर की नींव सन् ६९ के करीब डाली गई। कहा जाता है कि थोड़े ही समय में यह नगर बहुत बढ़कर एशिया के समृद्ध नगरों की टक्कर का हो गया था।

उच्चल

काश्मीर का एक राजा। राजतरंगिणी के अनुसार राजा हर्षदेव के पश्चात् राजा 'उच्चल' काश्मीर की गद्दी पर बैठा था। इसके राज्यारोहण के समय में काश्मीर का राज्य-प्रबन्ध बहुत अस्त व्यस्त हो रहा था। राज्याधिकारी आपस में बुरी तरह लड़ते रहते थे। राजा उच्चल ने इन लोगों में से किसी को उच्च पद देकर, किसी को दूसरे के द्वारा अपमानित करवाकर, किसी को आपस में लड़ाकर चतुराई से शासन प्रबन्ध को ठीक किया। इस राजा ने दस वर्ष चार महीना और एक दिन काश्मीर पर राज्य किया।

उचित-वक्ता

कलकत्ते से प्रकाशित होने वाला हिन्दी का एक प्रसिद्ध समाचार-पत्र जो सन् १८८० में प्रकाशित हुआ।

उन दिनों हिन्दी की प्रारम्भिक पत्रकार-कला के युग में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र का नाम उल्लेखनीय था। हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्र "भारत-मित्र" और "सार सुधानिधि" के सम्पादन में भी इनका मूल्यवान सहयोग था।

"उचित-वक्ता" उस समय का एक तेजस्वी और प्रभावशाली पत्र था। इस पत्र में भारतेन्दु 'हरिश्चन्द्र' के भी लेख निकलते रहते थे। स्वयं दुर्गाप्रसाद मिश्र भी उस युग के एक ओजस्वी लेखक थे। उनके लेख तथा हास्य विनोद कालम में, हिन्दी की फुलझड़ियों और कहकहों के पटाखे, व्यंग और तानाकशी में किसी को भी नहीं छोड़ते थे।

पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र के कश्मीर चले जाने पर यह पत्र भी थोड़े समय बाद बन्द हो गया।

उदा

मेवाड़ के सुप्रसिद्ध महाराणा कुम्भा का पुत्र। टॉड राजस्थान के अनुसार राणा कुम्भा का पुत्र "उदा" बड़ा क्रूर और पितृघाती था। इस क्रूर पुत्र ने अपने पिता के दीर्घ जीवन को सहन न कर राज्य प्राप्ति के लोभ में सन् १४६८ में अपने पिता महाराणा कुम्भा की हत्या कर डाली। इसी ने दिल्ली के बादशाह को अपनी कन्या भी दे दी। फिर भी यह अधिक समय तक राज्य न कर पाया और बिजली के गिरने से इसकी मृत्यु हो गई।

उज्जैन

भारतवर्ष में मध्यप्रदेश प्रान्त के अन्तर्गत एक अत्यन्त प्राचीन और गौरवशाली जन-नगरी।

उज्जैन को प्राचीन काल में 'अवन्तिका' और उसके बाद 'उज्जयिनी' कहते थे। भारत की पुराण-परम्परा में समस्त भारतवर्ष में जो अत्यन्त पवित्र सप्त महानगरियाँ बताई गई हैं उनमें अवन्तिका भी एक है।

हिन्दू, जैन और बौद्ध—तीनों ही धर्मों के पुराणों और धर्म ग्रन्थों में अवन्ती और उज्जयिनी का नाम कई स्थानों पर आता है।

मगर ऐतिहासिक युग में इसका इतिहास ईसा से पूर्व छठी सदी से भगवान् महावीर और बुद्ध के समय से मिलता है। जब राजा चण्डप्रद्योत नामक एक महान् पराक्रमी राजा यहाँ पर राज्य करता था। उस समय अवन्ति भारत वर्ष में स्थापित सोलह महा जनपदों में से एक था।

चण्डप्रद्योत के पहले इस महा जनपद में वीतिहोत्र वंश का राज्य था। उस वंश का नाश कर चण्डप्रद्योत के पिता पुलिक ने अपने लड़के चण्डप्रद्योत को गद्दी पर बैठाया। चण्डप्रद्योत मगध के राजा बिम्बसार और वैशाली के राजा प्रसेनजित का समकालीन था और उन्हीं की भाँति महत्वाकांक्षी, वीर, साहसी और दुर्दान्त (चण्ड) था।

जैन-परम्परा के अनुसार उस समय कौशाम्बी में शतानिक नामक राजा राज्य करते थे। शतानिक की रानी मृगावती अत्यन्त रूपवती थी। उसके रूप की कथा को सुनकर चण्डप्रद्योत विक्षिप्त सा हो गया और उसने राजा शतानिक को लिखा कि वह रानी मृगावती को प्रद्योत के रनवास में भेज दे क्योंकि ऐसे अनुपम रत्न को रखने का अधिकार उस जैसे साधारण राजा को नहीं है।

इस पर चण्डप्रद्योत और शतानिक से युद्ध हुआ जिसमें शतानिक मारा गया। अब मृगावती पर बड़ी विपत्ति आ गई। उसकी गोद में राज्य का उत्तराधिकारी बालक "उदयन" केवल दो साल का था। तब मृगावती ने राजा प्रद्योत को धोखा देने के लिए कहा कि अब तो मैं आपकी हो ही चुकी हूँ, मगर मेरी गोद में दो बरस का छोटा बालक है और बाहरी शत्रुओं का इस राजधानी को बड़ा भय है। इसलिए पहले आप मेरी नगरी के चारों ओर ईंटों का एक मजबूत किला बनवा दें। राजा प्रद्योत ने उसके चक्कर में आकर हाथों-हाथ एक मजबूत किला बनवा दिया। मृगावती ने तुरन्त किले के फाटक बन्द करवा कर दीवारों पर अपने सैनिकों को बिठा दिया और चण्डप्रद्योत गुस्से में दाँत पीसता हुआ वापस गया।

इसी शतानिक के पुत्र इतिहास प्रसिद्ध कौशाम्बी-नरेश उदयन ने चण्डप्रद्योत की कन्या वासवदत्ता का अपहरण किया था, जिसके कथानक पर संस्कृत में 'स्वप्न वासवदत्ता' नामक प्रसिद्ध नाटक की रचना की गई है। इसका पूरा वर्णन "उदयन" नाम के साथ देखें।

उस समय अवन्ति कोशल और मगध—इन तीनों शक्ति शाली राज्यों में प्रतिस्पर्धा चलती थी। अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी उस समय एक बड़े महत्त्व की नगरी थी। पश्चिमी समुद्र के बन्दरगाहों और उत्तर भारत के बीच जो व्यापार होता था उसका रास्ता उज्जयिनी से होकर ही जाता था। उज्जयिनी से पश्चिमी देश पंजाब के काफिले मथुरा की तरफ चले जाते और पूर्वी मध्य देश तथा मगध के काफिले कौशाम्बी की तरफ जाते थे।

चण्डप्रद्योत की मृत्यु ईसवी सन् पूर्व ५४९ में हुई। उसके पश्चात् उसका पुत्र 'पालक" राजगद्दी पर बैठा। पालक ने २४ वर्ष तक राज्य किया। राजा पालक बड़ा प्रजा पीड़क और अत्याचारी राजा था। इसने अपने भाई गोपाल दारक को कैद कर रक्खा था। उज्जैन की जनता ने पालक के अत्याचारों से तंग आकर उसे गद्दी से उतार दिया और गोपाल दारक को जेल से छुड़ाकर अवन्ती की राजगद्दी पर बिठाया। कहा जाता है कि गोपाल दारक का दूसरा नाम विशाखयूप भी था और वह इतिहास में इसी नाम से प्रसिद्ध है। 'विशाखयूप" ने पचास वर्ष तक राज्य किया।

उधर मगध राज्य में अजातशत्रु के पुत्र राजा दर्शक का पुत्र उदायी सिंहासन पर बैठा। उदायी एक महत्त्वाकांक्षी और साहसी राजा था। उसने अपने शासन के दूसरे ही वर्ष में अवन्ती के राजा विशाखयूप को हराकर अपने अधीन कर लिया। विशाखयूप की मृत्यु के बाद अवन्ती का राज्य सीधे मगध साम्राज्य का अङ्ग हो गया।

अवन्ती का मगध साम्राज्य में विलीनीकरण, उस समय के इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। इस घटना से पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र तक मगध का एकछत्र साम्राज्य हो गया। बाद में बहुत लम्बे समय तक उज्जयिनी मगध-साम्राज्य के अन्तर्गत ही रही।

मौर्य्य साम्राज्य के काल में जब अशोक युवराज के रूप में था तब वह उज्जैन में गवर्नर बनाकर भेजा गया था।

इसके पश्चात् गुप्त-साम्राज्य में सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समय में फिर से इस नगरी का उत्कर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँचा है।

विक्रमादित्य के सम्बन्ध में इतिहासकारों के अन्दर बहुत सा मतभेद चलता रहा है। कुछ लोगों का विश्वास है कि ईसवी सन् से ५७ वर्ष पूर्व उज्जैन में वीर विक्रमादित्य के नाम से एक अत्यन्त प्रसिद्ध न्यायी और उदार राजा का आविर्भाव हुआ। कालिदास, वररुचि, वराह मिहिर इत्यादि बड़े-बड़े धुरन्धर ९ विद्वान् उसकी सभा में नवरत्न कहे जाते थे। यहाँ की लोक-कथाओं में वीर विक्रमादित्य के नाम से जो तरह तरह की कहानियाँ प्रचलित हैं, वे इसी विक्रमादित्य के सम्बन्ध में हैं। इसी विक्रमादित्य ने शक-आक्रमणकारियों को परास्त करके अपने नाम से विक्रम-संवत् चलाया था, जो अभी तक भारतवर्ष चला जाता है।

मगर बहुत से इतिहासकार इस विक्रमादित्य के अस्तित्व को मंजूर नहीं करते। उनका कहना है कि गुप्त साम्राज्य के सुप्रसिद्ध सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दिग्विजय करके विक्रमादित्य का 'विरुद' धारण किया था। पाटलिपुत्र के साथ उसने उज्जयिनी को भी अपनी दूसरी राजधानी बनायी थी। कालिदास इत्यादि नवरत्न उसी की सभा में रहते थे और लोक-कथाओं में प्रचलित विचित्र कहानियाँ इसी के सम्बन्ध में कही गई थीं।

चन्द्रगुप्त के समय में यहाँ पर मालव संवत् के नाम से एक संवत् चलता था जो ईसवी सन् से ५७ वर्ष पहले प्रारंभ होता था। इसी मालव संवत् का नाम बदलकर उसने अपने नाम से विक्रम-संवत् कर दिया।

उपरोक्त दलीलों में से दूसरी दलील को अर्थात् चन्द्रगुप्त द्वितीय के विक्रमादित्य होने को इतिहास के अधिकतर विद्वान् ज्यादा संगत मानते हैं। फिर भी इनके विरुद्ध में और पहली दलील के पक्ष में जो लोग प्रमाण देते हैं, उनका कथन है कि—

"ऐतिहासिक खोज से ईसवी सन् पूर्व प्रथम शताब्दी में शकों को परास्त करने वाले और विद्वानों की विपुल

दान देने वाले 'उज्जयिनीनरेश' राजा विक्रमादित्य के अस्तित्व का पता चलता है। प्रथम शताब्दी में रचित ग्रन्थ—सप्तशती नामक ग्रन्थ में विक्रमादित्य नामक एक प्रतापी तथा उदार शासक का हाल दिया हुआ है। जैन-ग्रन्थों से भी इस बात को पर्याप्त समर्थन मिलता है। मेरु तुंगाचार्य-विरचित "पट्टावली" नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शक लोगों से उज्जयिनी का राज्य वापस जीत लिया था। यह घटना महावीर-निर्वाण के ४७० वें वर्ष में हुई थी। महावीर निर्वाण का समय ईसवी सन् से ५२७ वर्ष पूर्व पड़ता है। इन ५२७ में से ४७० वर्ष को निकाल देने से ईसवी सन् पूर्व ५७ का वर्ष आता है, जो विक्रमादित्य का ठीक समय है। इसकी पुष्टि प्रबन्धकोष तथा 'शत्रुञ्जय-माहात्म्य' से भी होती है।

दूसरी दलील यह दी जाती है कि बौद्ध कवि अश्वघोष, जो ईसवी सन् से पूर्व पहली शताब्दी में हुआ उसकी रचनाओं के साथ कालिदास की रचनाओं में अत्यन्त साम्य पाया जाता है। कथानक की सृष्टि वर्णन की शैली, अलंकारों का प्रयोग छन्दों का चुनाव इत्यादि अनेक विषयों में कालिदास का प्रभाव अश्वघोष के ऊपर पड़ा। 'बुद्ध-चरित' में अश्वघोष ने कालिदास के बहुत से श्लोकों का अनुसरण किया है। इससे पता चलता है कि कालिदास का समय अश्वघोष से कुछ प्राचीन होना चाहिए।

जो भी हो यह निश्चय है कि विक्रमादित्य के नाम से उज्जैन का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इसी महान नृपति के प्रताप से इस नगरी ने अत्यन्त गौरव प्राप्त किया।

गुप्त-साम्राज्य के पश्चात् 'धारानगरी' में परमार राजाओं का शासन स्थापित होने पर उज्जैन और धारानगरी ने एकबार फिर से महत्व प्राप्त किया। फिर से यह नगरी साहित्य कला, विद्या और संस्कृति का केन्द्र बन गई।

परमार-वंश में राजा मुञ्ज तथा भोज इत्यादि कई विद्याप्रेमी नरेश हुए, जिन्होंने अनेकों ग्रन्थ लिखकर तथा विद्वानों और कवियों को आश्रय देकर भारतीय साहित्य को समृद्ध किया।

उज्जयिनी का साहित्य गौरव उसके राजनैतिक वैभव की तरह ही अत्यन्त दीप्तिमान है। महाकवि कालिदास के समान संसार प्रसिद्ध कवि और नाटककार, वराह मिहिर के समान ज्योतिष के महान विद्वान इत्यादि अनेकानेक महान विद्वानों को उत्पन्न करने का श्रेय इस नगरी को प्राप्त है।

साहित्यिक और राजनैतिक गौरव की तरह इस नगरी का धार्मिक गौरव भी एक सुदीर्घ समय से चला आ रहा है—

क्षिप्रानदी के तट पर बसे होने और महाकाल के ज्योतिर्लिङ्ग होने की वजह से समस्त भारतवर्ष की हिन्दू जनता का यह एक आकर्षक केन्द्र है। सिंह राशि के ऊपर सूर्य के आने पर हर बारहवें वर्ष में यहाँ पर सिंहस्थ का एक बड़ा भारी मेला लगता है, जिसमें सारे भारतवर्ष के यात्री इकट्ठे हो कर क्षिप्रा में स्नान करके महाकाल को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

महाकाल का मन्दिर उज्जयिनी का सबसे बड़ा आकर्षण है। इस शिवलिंग के कारण उज्जयिनी को पीठस्थान कहते हैं। इस मन्दिर में दिन रात घृत का दीपक जलता रहता है। पुरातन काल में इस मन्दिर का वैभव और सजावट अत्यन्त दर्शनीय थी।

फरिश्ता नामक मुसलमानी इतिहास लेखक लिखता है कि—"यह मन्दिर सोमनाथ मन्दिर के समतुल्य है। इसके बड़े बड़े स्तम्भ मणि माणिक्य से जड़े हुए हैं। गर्भगृह के बीच एक मामूली दीपक जला देने से उसकी रोशनी जब इन स्तम्भों के ऊपर पड़ती है तो सारा मन्दिर सूर्यलोक की तरह जगमगाने लगता है।"

मुसलमानी राजा अल्तमश ने इस मन्दिर में जड़े हुए तमाम हीरे माणिकों को लूटकर इस मन्दिर को भारी क्षति पहुँचाई थी। इसके बाद 'रामचन्द्र बापू' नामक एक सरदार ने पुनः इस मन्दिर का निर्माण करवाया।

उज्जयिनी में केदारेश्वर नामक एक और शिव मन्दिर है। इसका भी बड़ा महत्व है।

इस नगर में देवी भैरव की मूर्तियाँ और मन्दिर विद्यमान हैं। क्षिप्रा के दक्षिणी किनारे पर भैरवगढ़ है,

जिसमें एक बड़ा देव-कुण्ड है। इस देवालय में काल भैरव की एक मूर्ति प्रतिष्ठित है। यह मूर्ति बहुत प्राचीन है। वहाँ के लोगों का विश्वास है कि काल भैरव ही उज्जयिनी की रक्षा करते हैं।

उज्जयिनी में 'काली-दह' नामक एक बस्ती-मज़ार देखने योग्य है। पहले इस स्थान पर भी विष्णु का मन्दिर था। 'मीरात सिकन्दरी' नामक मुसलमानी इतिहासकार के मत से इस बस्ती-मज़ार को नसीरुद्दीन ने बनवाया था, मगर देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि यह मज़ार अधिक प्राचीन है। कालिदास ने अपने 'ऋतु संहार' में जिस ब्रह्मयंत्र मन्दिर का उल्लेख किया है, सम्भवतः यह वही बस्ती-मज़ार है। *ऐसा कहा जाता है कि कालिदास ने यहीं पर बैठकर 'ऋतु संहार' काव्य की रचना की थी।* इससे पहले इस स्थान का नाम ब्रह्मकुण्ड कहा जाता था।

नगर के एक ओर राजा भर्तृहरि की एक गुफा बनी हुई है। कहा जाता है कि संसार-त्याग के बाद भर्तृहरि ने यहीं आकर तपस्या की थी।

नगर से दक्षिण-पूर्व 'योग शरीर' नामक एक टेकरी है। कहा जाता है कि इसी टेकरी के नीचे राजा विक्रमादित्य का ३२ पुतलियों वाला सिंहासन रखा हुआ है।

राजा जयसिंह के द्वारा बनाया हुआ मान मन्दिर (आब्जर्वेटरी) भी उज्जैन की दर्शनीय वस्तु है।

आधुनिक समय में मध्यप्रदेश सरकार के अधीन उज्जैन अपने ज़िले का एक प्रमुख नगर है। प्राचीन नगरी और विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र होने के कारण मध्य प्रदेश सरकार का ध्यान इस नगर की ओर गया है। यहाँ पर विक्रम युनिवर्सिटी नाम से एक विश्व विद्यालय की स्थापना की गई है। महाकवि कालिदास की स्मृति में एक स्मारक बनाने की भी योजना चल रही है।

औद्योगिक दृष्टि से भी यह नगर अच्छी स्थिति में है। यहाँ पर तीन-चार कपड़े की मिलें बनी हुई हैं। मध्य प्रदेश का उद्योग-विभाग इस नगर की औद्योगिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील है।

साहित्यिक और ज्योतिष के क्षेत्र में भी उज्जैन नगर मध्य प्रदेश में अपना निजी अस्तित्व रखता है। श्री सूर्य नारायण व्यास यहाँ के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी और साहित्यकार हैं। माधव कालेज के प्रिंसिपल श्री शिवमङ्गल सिंह 'सुमन' हिन्दी के माने हुए कवियों में से एक हैं। श्री प्रभाकर माचवे भी भारतवर्ष के अन्य प्रसिद्ध लेखकों में अपना एक स्थान रखते हैं।

उजबक खान

मध्य युग के अन्तर्गत मध्य एशिया में सुनहरी कबीले का एक मशहूर सरदार, जिसने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और जिसके नाम के ऊपर 'उजबक' जाति का नामकरण हुआ।

ईसा की १३वीं शताब्दी में मध्य एशिया के अन्तर्गत सुनहरी कबीले का बड़ा बोलबाला था। यह जाति तुर्कों की ही एक शाखा थी। इस कबीले ने बड़े बड़े आक्रमण करके साइबेरिया, वोल्गा, दक्षिण मास्को, कीयेफ इत्यादि मध्य एशिया के एक विशाल क्षेत्र को जीतकर सन् १२३८ से १२४० ई० तक यूरोप की भूमि में भी धूमधाम मचाई और बहुत से प्रदेश विजय कर लिए। इसी कबीले का ९वाँ शासक उजबक खान हुआ, जिसका समय सन् १३१३ से १३४२ ई० तक है।

सन् १३२१ में उजबक ने अपनी सेना के साथ यूरोप के लिथुआनियाँ प्रान्त पर आक्रमण किया। यह समय कुस्तुन्तुनियाँ के बिजन्तीन सम्राटों के लिए बड़े संकट का समय था। सुनहरी कबीले वालों को प्रसन्न रखने के लिए सम्राट और सरदारों ने उसे अपनी सुन्दर कन्याएँ भेंट कीं। *फिर भी वे अपनी जान नहीं बचा पाये। १३२४ ई०* में मंगोल एड्रियानोपुल पर १ लाख २ हजार सेना के साथ चढ़ आये और ४ दिन तक 'थ्रेस' प्रदेश को खूब लूटा। बहुत सी सम्पत्ति और दास दासियों को भारी संख्या में बन्दी कर के वापस लौट आये।

उजबक खान के समय में ही सुनहरी कबीले के लोगों ने सामूहिक रूप से इस्लाम को ग्रहण किया।

उजबक का शासन-काल सुनहरी-कबीले के इतिहास में समृद्धि की चरम सीमा का है। उजबक ने अपने समय

में शान्ति और व्यवस्था को इतनी अच्छी तरह से कायम किया था कि पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण—चारों तरफ से उसके राज्य में व्यापारियों का ताँता बना रहता था। उसकी सेना भी बड़ी जबर्दस्त थी। लेकिन उससे भी अधिक वह क्रूर नीति और भेद-नीति से काम लेता था।

इस्लाम के साथ उसकी बहुत बड़ी सहानुभूति थी। सन् ११६४ में उसने खलीफा नासिर को एक पत्र लिखा था। जिसमें लिखा था कि—"मेरे राज्य में अब सिर्फ मुसलमान हैं। गद्दी पर बैठते ही मैंने उसकी कबीलों को कह दिया कि या तो इस्लाम स्वीकार करो या लड़ाई करो। जिन्होंने स्वीकार नहीं किया उन्हें मैंने लड़कर अधीनता स्वीकार करने के लिए मजबूर किया।"

उजबक खान का प्रताप इतना बढ़ा हुआ था कि मास्को और किएव के राजकुमार और महाराजकुमार को भाग जाकर रूस के प्रवासी बनना पड़ा, उजबक की कृपा के भिखारी रहते थे और उसके दरबार में हाजिरी दिया करते थे।

प्रसिद्ध यात्री इब्न-बतूता ने उजबक खान के सम्बन्ध में लिखा है—

"खान की राजधानी (सराय) एक बड़ी सुन्दर नगरी है जिसमें सड़कें हैं मस्जिदें हैं मोहल्ले हैं, जिनका धुआँ बराबर निरन्तर ऊपर उठता रहता है। उजबक सारी दुनिया के ७ बड़े राजाओं में से एक है। प्रत्येक शुक्रवार को नमाज के बाद खान एक सुनहले चंदवे के नीचे सोने चाँदी और कीमती जवाहरातों से जड़े हुए सिंहासन पर बैठता है। उसके पास में दोनों तरफ उसकी दो दो बीबियाँ बैठती हैं। सिंहासन के सामने उसके दो बड़े पुत्र खड़े होते हैं। खान के सामने उसकी लड़कियाँ बैठती हैं। खान की बीबियाँ बिल्कुल पर्दा नहीं करतीं। उनका बड़ा सम्मान किया जाता है। उनमें प्रत्येक का अलग अलग महल होता है जिनमें उनके अलग अलग सेवक और अनुचर रहते हैं।"

उजबक ने ग्रीक राजा 'एंड्रोनिकस' की लड़की 'बैसलून खातून' से ब्याह किया था। इस ब्याह को रूस के महा संवादक 'थियोग्नोस्टोस' ने कांस्टेंटिनोपुल जाकर सम्पन्न कराया था।

उजबक खान ने अपने नाम के सिक्के भी चलाये थे इन सिक्कों पर 'मुहम्मद उजबक खान' 'उजबक खान सुल्तान आदिल' इत्यादि नाम छिपे हुए मिलते हैं।

३१ साल राज्य करने के बाद सन् १३४२ में उजबक खान की मृत्यु हुई।

उजबेकिस्तान

वर्तमान उजबेकिस्तान में खोकन्द खीवा (ख्वारेज्म) और बुखारा की रियासतों का भाग सम्मिलित है जिनमें बुखारा का तो सारा ही भाग उजबेकिस्तान में है। सुनहरी कबीले का शासन खतम होने के पश्चात् यह प्रान्त रूसी शासन में चला गया था। सुनहरी कबीले के उजबक खान के नाम पर ही इस प्रान्त का नाम 'उजबेकिस्तान' और इसमें बसने वाली जाति का नाम 'उजबेक' पड़ा।

उजबेकिस्तान का क्षेत्रफल १ लाख ८८ हजार वर्ग मील तथा यहाँ की आबादी ६२ लाख के करीब है। उजबेकिस्तान की राजधानी 'ताशकन्द' में है तथा समरकन्द और बुखारा जैसे इतिहास प्रसिद्ध नगर भी उजबेकिस्तान में ही पड़ते हैं।

उजबेकिस्तान में बोल्शेविक क्रान्ति

सन् १९१७ में जब रूस के अन्दर बोल्शेविक क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ, तब उसकी लहर उजबेकिस्तान में भी पहुँची। क्योंकि यह प्रान्त भी रूसी शासन का ही एक अंग था।

प्रारम्भ में मार्च सन् १९१७ ई० से उजबेक-राष्ट्रीयतावादी वर्ग ने शूरा-इस्लामिया नामक पार्टी की स्थापना की। इसी प्रकार यहाँ के मुल्लाओं और उलमाओं ने भी एक पार्टी खड़ी की, जिसके पोषक बड़े बड़े जमींदार और सामन्त थे।

इस समय तक यहाँ पर बोल्शेविकों का अधिक प्रभाव नहीं था मगर जब यहाँ के लोगों को मालूम हुआ कि रूस में बोल्शेविक क्रान्ति किस प्रकार हो रही है तो यहाँ के लोगों में भी बोल्शेविकों का प्रभाव तेजी से बढ़ने लगा और काउफिन नामक व्यक्ति के नेतृत्व में खोकन्द में बोल्शेविकों की एक मजबूत पार्टी संगठित हो गई।

ताशकन्द एशिया का सबसे बड़ा औद्योगिक केन्द्र था। यहाँ के कारखानों में रूसी मजदूर बड़ी संख्या में काम करते थे। सन् १९१९ में यहाँ पर बोल्शेविक पार्टी की दूसरी कमिटी हुई और उसके बाद ही मध्य एशिया में बोल्शेविकों का प्रभाव बड़ी तेजी से बढ़ने लगा और उसके पश्चात् खोकन्द, समरकन्द इत्यादि सभी स्थानों पर बोल्शेविक क्रान्ति की ज्वालाएँ फैलीं और यह सारा प्रान्त 'सोवियट रूस' का एक प्रभावशाली अंग बन गया।

उटकमंड

दक्षिण भारत का एक अत्यन्त रमणीक और सुन्दर पहाड़ी स्टेशन, जो मदरास प्रान्त में समुद्री सतह से ७२२१ फीट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। यहाँ की जन-संख्या सन् १९५१ में ४११७ थी।

यह नगर चारों ओर से सात हजार फीट तक ऊँची पहाड़ियों से घिरा हुआ है। यहाँ की कृत्रिम झील अत्यन्त दर्शनीय है। 'सिनकोना' नामक वनस्पति का सरकारी उत्पादन केन्द्र यहीं पर है। इसके आसपास की भूमि में सिनकोना, चाय, कहवा और युक्लिप्टस के बहुत से बगीचे हैं। यहाँ का 'लारेंस मेमोरियल' स्कूल बहुत प्रसिद्ध है। इस स्कूल की स्थापना सन् १८५८ ई० में की गई थी। दक्षिण भारत का मुख्य टी० बी० सिनाटोरियम भी यहाँ पर बना हुआ है। यहाँ का वनस्पति-उद्यान दर्शनीय वस्तु है।

उड़ीसा

भारत के दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में बसा हुआ एक प्रान्त। इसके उत्तर में बिहार, दक्षिण में आन्ध्र, पूर्व में पश्चिमी बंगाल और पश्चिम में मध्य प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल ६ १११ वर्गमील और जनसंख्या सन् १९५१की जनगणना के अनुसार १४६ ४५,९४६ है। उड़ीसा की पुरानी राजधानी कटक और नई राजधानी भुवनेश्वर है। राज्य की भाषा उड़िया है।

उड़ीसा का प्राचीन नाम कलिंग देश था। 'प्लाइनी' के समय में इस देश के तीन भाग माने जाते थे और इसीलिए इसको 'त्रिकलिंग' भी कहा जाता था। (विजगापट्टम गजेटियर, पृष्ठ २१)। यह निश्चित करना कठिन है कि कलिंग के ये तीन भाग कौन कौन से थे। सम्भवतः वे इस प्रकार होंगे। (१) मुख्य कलिंग अर्थात् पूर्व किनारे पर के वर्तमान गंजम, विजगापट्टम और गोदावरी के जिले, (२) आन्ध्र अर्थात् पूर्वी घाट के ऊपर का प्रदेश और (३) उड़ीसा-महानदी के उत्तर का प्रदेश।

उड़ीसा का इतिहास बहुत प्राचीन समय से प्रारम्भ होता है। सम्राट अशोक के समय में कलिंग एक बहुत शक्तिशाली राज्य था जिसको जीतने में सम्राट अशोक के समान पराक्रमी नरेश को भी बहुत जोर लगाना पड़ा था और युद्ध में लाखों आदमियों का नर-संहार हुआ था। उस नर-संहार को देखकर सम्राट् अशोक के समान देवताओं के 'प्रियदर्शी सम्राट्' को अत्यन्त वेदना हुई थी और उसके बाद उन्होंने हमेशा के लिए युद्ध करना बन्द कर दिया था।

सम्राट् खारवेल

मौर्य-साम्राज्य का प्रभाव घटने के पश्चात् कलिंग देश का शासन जैन धर्मावलम्बी राजाओं के हाथ में आया। इन राजाओं में सम्राट् खारवेल का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसका समय ईसवी सन् पूर्व २०७ से ईसवी सन् पूर्व १९ तक माना जाता है।

उस समय कलिंग देश की राजधानी 'तोसली' नामक स्थान में थी जिसको कलिंगनगरी नाम से भी कहा गया है।

सम्राट 'खारवेल' एक अत्यन्त साहसी, महत्वाकांक्षी और उदार प्रवृत्तियों का शासक था। उसका हाथी-गुम्फा वाला शिलालेख बड़े महत्व का है। यह करीब १५ फीट १ इंच लम्बा, ५॥ फीट चौड़ा और १७ पंक्तियों में विभक्त है। इसकी भाषा ऐसी प्राकृत है जो अपभ्रंश प्राकृत अर्धमागधी और पाली से मिलती जुलती है। इसकी लिपि उत्तरी ब्राह्मी है। इस लेख से तथा अन्य जैन परम्पराओं से पता चलता है कि खारवेल ने सातवाहन वंशीय राजा सातकर्णी प्रथम के ऊपर आक्रमण करके उसके राज्य के बहुत से हिस्से पर अधिकार कर लिया था। उसके बाद उसने दूसरा आक्रमण राष्ट्रिक और भोजक रियासतों पर किया था। उसका तीसरा आक्रमण मगध

देश पर हुआ था। उस समय मगध में शुंग-वंशीय राजा 'पुष्यमित्र' था और उसने 'अश्वमेध-यज्ञ' करके 'चक्रवर्ती' पद प्राप्त किया था।

इसी प्रकार इस प्रसिद्ध राजा ने और भी कई आक्रमण करके अपने साम्राज्य का काफी विस्तार कर लिया था। सम्राट खारवेल जैन धर्मावलम्बी था फिर भी वैदिक विधान के अनुसार उसका 'राज्याभिषेक' हुआ था और उसने 'राजसूय' यज्ञ भी किया था। जैन-धर्म की प्रभावना के लिए सम्राट् खारवेल ने अनेकों मन्दिर और विहार बनवाये थे। उनमें चारों ओर से जैन श्रमण और विद्वान् एकत्रित हो करके ज्ञान-चर्चा किया करते थे।

इसी प्रकार उसने जैन धर्म के बहुत से ऐसे सूत्रों का उद्धार करवाया, जो उस समय लुप्त हो चुके थे। उसने जैन मुनियों के एक संघ के द्वारा ही इन शास्त्रों का पुनरुद्धार करवाया था।

जैन वंश के बाद कलिंग देश में 'गुह वंश' का अभ्युदय हुआ। सिंहल के 'दाठा वंश' नामक पाली ग्रन्थ में कलिंगाधिप 'शिव गुह' का नाम मिलता है। इस प्राचीन ग्रन्थ की परम्परा के अनुसार 'भगवान बुद्ध' के निर्वाण पर 'क्षेम' नामक उनके एक शिष्य ने बुद्ध की चिता से उनका पवित्र दाँत उठाकर कलिंग के राजा ब्रह्मदत्त को लाकर दिया था। राजा ब्रह्मदत्त ने अपनी राजधानी में एक सुन्दर मन्दिर बनाकर उसमें उस पवित्र दाँत को रखा। इसी दाँत के कारण कलिंग की राजधानी का नाम 'दन्तपुर' हुआ।

सन् ३० से ३१ ई० के बीच में शिवगुह दन्तपुर के सिंहासन पर बैठे। ब्राह्मणों के अत्यन्त भक्त होने के कारण उन्होंने दाँत की पूजा करना छोड़ दिया था। मगर कुछ नैसर्गिक घटनाओं से वे फिर उस दाँत के बहुत भक्त हो गये थे। शिवगुह के युद्ध में मारे जाने के पश्चात् उनके जामाता उज्जयिनी के राजकुमार दन्तकुमार ने राज कन्या के साथ छद्मवेश में वह दाँत उठाकर सिंहलद्वीप की यात्रा की और वहीं पर उस दाँत की स्थापना कर दी।

केसरी-राजवंश

मगध में गुप्त साम्राज्य की स्थापना होने के बाद कलिंग भी उस साम्राज्य का एक अंग बन गया। गुप्त साम्राज्य के पश्चात् इसका शासन चन्द्रवंशीय केशरी-राज वंश के हाथों में आया। केशरी-राजवंश शिव का उपासक था। इसलिए इस राजवंश के समय में उड़ीसा में नाना स्थानों पर शिव मन्दिरों का निर्माण हुआ। इन्होंने अशोक के द्वारा प्रचलित की गई बुद्ध-पूजा के बदले में शिव पूजा प्रचलित की। कटक गजेटियर में इन केसरी राजाओं के दो शिलालेखों का उद्धरण किया गया है, जो केशरी-वंश के राजा उद्योत-केशरी के सम्बन्ध में लिखे हुए हैं। एक शिलालेख तो खण्डगिरि की पहाड़ियों की किसी गुफा में मिला है और दूसरा भुवनेश्वर वाले 'ब्रह्मेश्वर' के मन्दिर में। केशरी राजाओं में ललाटेन्दु केशरी नामक एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ जिसने इसी सदी में भुवनेश्वर में सुप्रसिद्ध शिव मन्दिर का निर्माण करवाया।

इन केशरी राजाओं ने भुवनेश्वर में जो अनेक देवालय बनवाये उनका भी विस्तृत वर्णन इस गजेटियर में दिया गया है। यह देवालय तत्कालीन उत्कृष्ट शिल्पकला तथा केशरी राजाओं के ऐश्वर्य का साक्षी है।

केशरी राजाओं के पश्चात् कलिंग देश में एक नये राजवंश का उदय हुआ जो गंग राजवंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस राजवंश का संस्थापक 'वज्रहस्त' नामक राजा माना जाता है। वज्रहस्त का पुत्र राजराज चोल-वंश के प्रसिद्ध राजा राजेन्द्र की कन्या 'रूप सुन्दरी' का पति था। राजराज के पुत्र अनन्त वर्मन को गंग और चोल वंश के मेल से उत्पन्न होने के कारण 'चोड-गंग' कहते थे।

चोड गंग

अनन्त वर्मन इस चोड गंग-वंश में सबसे प्रतापी राजा हुआ। इस राजा के समय के कई शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनमें ईसवी सन् १०८१ का लेख बहुत विस्तृत है।

अनन्तवर्मन के राज्याभिषेक का समय सन् १०७८ दिया गया है। उसका एक ताम्रलेख भी 'बंगाल एशियाटिक सोसायटी जिल्द ६५ भाग १ पृष्ठ २४' पर छपा है। इस लेख में चोड-गंग के द्वारा उड़ीसा तथा उत्कल को जीतने का तथा अपने राज्य में शामिल करने का उल्लेख किया गया है। उस लेख में लिखा है कि

'इस उत्कल रूपी समुद्र का मन्थन करने पर उसे भूमि, द्रव्य, एक हजार हाथी और दस हजार घोड़े प्राप्त हुए।'

इससे पता चलता है कि चोड़-गंग के द्वारा ही उड़ीसा के केसरी वंश का अन्त हुआ।

जगन्नाथ-मन्दिर की स्थापना

इस लेख से यह भी पता चलता है कि भारत प्रसिद्ध 'जगन्नाथ का विशाल मन्दिर चोड़-गंग ने ही बनवाया था। लेख के २८ वें श्लोक में लिखा है कि—

"समस्त संसार का उत्पत्तिकर्त्ता और संसार भर में व्याप्त जगन्नाथ इस सुन्दर मन्दिर में आकर रहने लगा और लक्ष्मी भी रत्नाकर के घर को छोड़कर यहाँ पर आकर आनन्दपूर्वक रहने लगी।'

इस लेख में चोड़-गंग के लिए परमवैष्णव शब्द लिखा गया है। इससे मालूम होता है कि इस समय इस कुल का आराध्य देवता 'शिव' की जगह 'विष्णु' हो गया था और राजा अपने को परम वैष्णव कहने लग गये थे। इस लेख के अनुसार चोड़-गंग ने करीब ७ वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद उसका पुत्र 'कामार्णव' गद्दी पर बैठा। कामार्णव के बाद' राघव उसके बाद 'राजराज द्वितीय,उसके बाद सन् ११९२ में भीमदेव राजा हुआ। अनंग भीमदेव के बाद उसका पुत्र 'राजराज गद्दी पर आया। इसके बाद नरसिंह देव प्रथम गद्दी पर बैठे जिनके समय में १३ वीं शताब्दी में कोणार्क के विश्व विख्यात सूर्य मन्दिर का निर्माण हुआ जिसकी शिल्पकला आज भी दर्शकों को बरबस अपनी ओर खींचती है। सन् १४५२ ई० तक इस चोड़-गंग वंश का शासन चलता रहा।

सन् १४५१ में कपिल नामक एक सूर्यवंशी पुरुष 'कपिलेन्द्र देव' की उपाधि धारण कर उड़ीसा का राजा बना जिसने सेतुबन्ध रामेश्वर तक अपना अधिकार फैलाया। इसी वंश में प्रतापरुद्र नामक भी एक राजा हुआ। सन् १५५२ तक कपिल-वंश का शासन चला। उसके बाद मुकुन्द देव रा। हुआ।

काला पहाड़ का आक्रमण

मुकुन्द देव के पुत्र छोटिया गोविन्द जब राजा थे तब बंगाल के प्रसिद्ध आक्रमणकारी 'काला पहाड़ का भयंकर आक्रमण जगन्नाथपुरी पर हुआ। राजा गोविन्द जगन्नाथ देव की मूर्ति को उठाकर गढ़पार कूदकर भाग गये। उसके बाद रामचन्द्रदेव नामक राजा ने जगन्नाथ देव की अवस्थित मूर्ति पुनः पुरी में स्थापित कराई। उसके बाद सन् १५७९ में उड़ीसा का यह राज्य सम्राट् अकबर के शासन में आया। उन्होंने मासूमखान काबुली को उड़ीसे का गवर्नर बनाकर भेजा, पर उसने पठानों के साथ मिल कर विद्रोह कर दिया, तब कुतुलखान नामक एक पठान उड़ीसा की गद्दी पर आया।

सन् १५९ ई० में सम्राट् अकबर के सेनापति और बंगाल-बिहार के गवर्नर—राजा मानसिंह ने उड़ीसा पर आक्रमण किया, मगर कुतुलखान ने मानसिंह की सेनाओं को बुरी तरह से हराया और मानसिंह के पुत्र जगतसिंह को गिरफ्तार करके विष्णुपुर' पर अधिकार कर लिया। उसके बाद-कुतुलखान के मरने पर उड़ीसा स्थायीरूप से अकबर के अधिकार में आ गया। सिर्फ राजमहेन्द्री का हिस्सा स्वाधीन रहा।

सन् १७९५ में मुहम्मद तकी खान उड़ीसे के सहकारी शासनकर्त्ता बन कर आये। उनके समय में राजा रामचन्द्र देव ने विद्रोह का झंडा उठाया। काफी लड़ाई के बाद वे हार गये और कटक में कैद किये गये। मुसलमानों के भय से पण्डे जगन्नाथदेव की मूर्ति को लेकर भाग गये।

इसके बाद नवाब मुर्शिदकुली खान उड़ीसा के सहकारी शासन-कर्त्ता बने। उन्होंने आकर देखा कि जगन्नाथदेव की मूर्ति के न होने से यात्री लोगों का आना एकदम बन्द हो गया है और उनसे होने वाली आमदनी भी रुक गई है। तब उन्होंने पण्डों से बड़ जुम-कर मूर्ति को वापिस मन्दिर में प्रतिष्ठित करवाया।

सन् १७८१४९ में उड़ीसा मराठों के आक्रमण का शिकार हुआ। मुर्शिदकुली के दीवान मीरहबीब ने षड्यंत्र करके मराठों को उड़ीसा बुलाया था।

सन् १७४५ में रघुजी भोंसले ने उड़ीसा पर अधिकार कर लिया और मीरहबीब को अपना प्रतिनिधि बनाकर रघुजी वापस देश चले गये।

मराठों में शिवभट्ट शास्त्री उड़ीसा के पहले गवर्नर हुए। सन् १७५१ से १८०३ तक उन्होंने उड़ीसे पर शासन चलाया। मराठों के अत्याचारों से तंग होकर यहाँ की प्रजा 'त्राहि माम्' कर उठी और उसने अंग्रेजों से सहायता माँगी।

सन् १८०३ की १४ वीं अक्टूबर को केवल एक दिन की लड़ाई में अंग्रेजों ने मराठों को यहाँ से भगा दिया और यहाँ पर शान्ति स्थापित कर सुव्यवस्था की घोषणा की।

अंग्रेजों के हाथ विजित होने के बाद यह प्रान्त बिहार के साथ मिलाकर 'बिहार और उड़ीसा' के नाम से इसका नामकरण किया गया, मगर उड़ीसा के निवासी अपनी प्राचीन संस्कृति और भाषा के आधार पर उड़ीसा को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में देखना चाहते थे। इसके फलस्वरूप १ अप्रैल सन् १९३६ को उड़ीसा एक स्वतंत्र प्रान्त के रूप में बना दिया गया।

भारतवर्ष को आजादी प्राप्त होने के पश्चात् इस प्रान्त में २४ देशी रियासतों को मिलाकर एक नये उड़ीसा राज्य का संगठन किया गया जो इस समय १३ जिलों में विभक्त है।

उड़िया-साहित्य

उड़िया भाषा आर्य प्रसिद्ध सम्पादकी और मुंडारी भाषा के सम्मिश्रण से बनी हुई, एक स्वतंत्र भाषा है जो उड़ीसा प्रान्त में बोली जाती है।

प्रत्येक भाषा के साहित्य की तरह उड़िया भाषा का भी अपना एक साहित्य है, हालाँकि वह बहुत समृद्ध नहीं है।

उड़िया भाषा के साहित्य का इतिहास ११ वीं सदी के मध्य से प्रारम्भ होता है, जिसके लिए कहा जाता है कि गंग देश के प्रथम राजा चोडगंग देव ने सन् १०४२ ई० में 'मादला पाञ्जी' नामक ग्रन्थ का लिखना प्रारम्भ किया था। मादला पाञ्जी की हस्तलिखित प्रति जगन्नाथ मन्दिर में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ में उड़ीसा के राजवंश और जगन्नाथ मंदिर का इतिहास लिखा हुआ है।

इसके पश्चात् उड़ीसा के प्रथम जातीय कवि और उड़ीसा-साहित्य के आदिकाल के प्रतिनिधि 'सारलादास' माने जाते हैं जिनका समय १४ वीं शताब्दी के मध्य में समझा जाता है। इनकी रचनाओं में 'महाभारत' 'चण्डी पुराण' और 'बिलंका रामायण' उपलब्ध हैं।

मध्य युग में पंच सखाओं ने उड़िया साहित्य को समृद्ध किया। इन पंच सखाओं के नाम बलराम दास, जगन्नाथ दास, यशोवन्त दास, अनन्त दास और अच्युतानन्द दास हैं। इन पंच सखाओं ने पुरी के जगन्नाथ की उपासना और भक्ति-साहित्य पर बहुत से ग्रन्थों की रचना की, जिनमें कुछ तो छप चुके हैं और कुछ छपना बाकी है।

इसी प्रकार शिशु शंकर दास की 'उषाभिलाष' कवि देवस्वर दास की 'कल्पलता' दिवाकर दास का जगन्नाथ चरितामृत, हरिहर दास का चन्द्रावती विलास, देवदुर्लभ दास की 'रहस्य-मञ्जरी' और प्रताप राय की शशि सेण नामक कृतियाँ भी उड़िया साहित्य में निर्मित हुईं।

भक्ति-काव्य के साथ साथ रीति-काव्य और शृंगार रस प्रधान कविताओं का भी मध्यकाल या १८वीं शताब्दी में अच्छा विकास हुआ। रीति युग के श्रेष्ठ कवियों में 'उपेन्द्र भञ्ज' का नाम सबसे आगे है। इन्हीं के नाम पर उड़िया साहित्य में रीति युग को 'भञ्ज युग' भी कहते हैं। उपेन्द्र भञ्ज का जन्म सन् १६८८ में और मृत्यु सन् १७४० में हुई। इनकी कविताओं में भाषा का प्रसार शब्दों की मित व्ययता, ओज प्रसाद और माधुर्य इत्यादि गुणों का समावेश पाया जाता है। इनकी कृतियों में 'वैदेही श विलास' 'सुभद्रा-परिणय' 'अवनीरसा' 'लावण्यवती' 'कोटि ब्रह्माण्ड सुन्दरी' 'रसिक हारावली' आदि अनेक काव्य-ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। रीति काव्य के समय शब्दों का विकास होने के साथ-साथ जिनको आजकल की भाषा में अश्लीलता कहा जाता है, उसकी झलक भी कहीं कहीं इनके काव्यों में देखने को मिलती है।

उपेन्द्र भञ्ज के पश्चात् उड़िया-भाषा के साहित्य में सच्चिदानन्द कवि सूर्य भक्त चरणदास गोपाल कृष्ण पटनायक, जगन्नाथ बड़जेना भीम भोई इत्यादि के नाम प्रसिद्ध हैं। भीम भोई आदिवासी जाति के जन्मान्ध

और निरक्षर कवि थे, लेकिन उनके रचे हुए 'स्तुति-चिंतामणि' और 'ब्रह्म निरूपण-गीता' के भजन आज भी उड़ीसा के अन्दर बड़े प्रेम और आदर के साथ गाये जाते हैं।

आधुनिक युग के प्रधान कवि 'राधानाथ राय' माने जाते हैं। कई लोग इस युग को इन्हीं के नाम पर 'राधानाथ युग' भी कहते हैं। इनके लिखे हुए काव्यों में 'पार्वती' 'चन्द्रिकेश्वरी' 'महायात्रा-केसरी' इत्यादि ऐतिहासिक काव्य प्रसिद्ध हैं। मेघदूत, वेणी-संहार और द्रौपदी-पत्रावली का अनुवाद भी इन्होंने किया था।

उपन्यासों के क्षेत्र में उड़िया भाषा के अन्तर्गत 'फकीर मोहन' का नाम बहुत प्रसिद्ध है। छमाण, मामू, छमाण आठ गुंठ, प्रायश्चित्त इत्यादि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। अन्य-ग्रन्थों में इनकी लिखी हुई उत्कल-भ्रमण, पुष्पमाला आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। रामायण और महाभारत का पद्यानुवाद भी इन्होंने किया है।

नाट्य कला के क्षेत्र में इस युग के प्रधान नाटककार 'रामशंकर राय' माने जाते हैं। इनकी कृतियों में कांचि कावेरी, वनमाला, कलि-युग इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

राधानाथ युग के पश्चात् उड़िया-साहित्य में गोपबन्धु दास, नीलकण्ठ दास, गोदावरीश मिश्र, पद्मचरण पट्टनायक, कुन्तला कुमारी साबत और लक्ष्मीकान्त महापात्र इस युग के प्रधान कवि और साहित्यकार हैं। गोपबन्धु दास की रचनाओं में धर्मपद, बन्दीर आत्मकथा इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। लक्ष्मीकान्त महापात्र हास्य-रस के लेखक हैं। कुन्तला कुमारी साबत छायावाद की कवयित्री हैं। मायाधर मानसिंह उड़िया-साहित्य में रोमांटिक रचनाओं के लेखक हैं। इनकी रचनाओं में 'धूप' 'हेम-पुष्प' 'हेम-शस्य' इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

प्रगतिवाद के आधुनिक युग में सच्चिदानन्द राउत राय का नाम सबसे आगे आता है। 'पल्ली चित्र' 'पाण्डुलिपि' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इस युग के लेखकों में नित्यानन्द महापात्र, राधामोहन गड़नायक, कान्हु चरण महान्ति इत्यादि लेखक प्रसिद्ध हैं।

उण्णायि वारियर

मलयालम-साहित्य में कथकली-साहित्य का महान् कलाकार उण्णायि वारियर।

मलयालम-साहित्य के कथकली-धारा के कवियों में उण्णायि वारियर का अद्वितीय स्थान है। मलयालम-साहित्य के श्रेष्ठतम कवियों में इनकी गणना है। केरल की साहित्यिक फुलवारी में इनकी रचना कभी न मुरझाने वाली ऐसी पुष्पलता है, जो अपनी सुगन्ध से चारों दिशाओं को हमेशा सुरभित रखती है।

उण्णायि वारियर का जन्म १७वीं सदी के अन्त में या १८वीं सदी के प्रारंभ में त्रिचूर पेरूर-नगरी के समीप हुआ था। 'कूटल माणिक्यम्' नामक मन्दिर में वे कार्य-कर्त्ता थे। अपना अधिक समय उन्होंने त्रावणकोर की राजधानी में मार्तण्ड वर्मा और धर्मराजा के आश्रय में बिताया था।

उण्णायि वारियर की सर्वोत्तम कृति उनकी 'नल चरितम्' नामक रचना है। एक करुणापूर्ण कथा को चुनकर उसमें स्थान स्थान पर लोगों के हृदय में तरह तरह के भाव जगाते हुए जीवन के सभी पहलुओं पर इन्होंने अपनी इस कृति में प्रकाश डाला है। मर्मस्पर्शी घटनाओं का चित्रण चुने हुए शब्दों के द्वारा करने की कला पर इनका अगाध अधिकार था। नये-नये शब्दों का प्रयोग करने में वे बड़े सिद्धहस्त थे।

नल दमयन्ती का मिलन इस काम में हंस का भाग नव दम्पति का काम-शृंगार, वन गमन दमयन्ती से नल का बिछुड़ना आदि सभी प्रसंगों का विवेचन सजीव और करुणापूर्ण भाषा में करने में इस कवि ने अत्यन्त सफलता प्राप्त की है।

नल चरितम् के अतिरिक्त 'राम पञ्चशती' और 'गिरिजा-कल्याण' नामक रचनाएँ भी उण्णायि वारियर की मानी जाती हैं मगर इन रचनाओं के सम्बन्ध में कुछ मत-भिन्नता है और कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इन रचनाओं को उण्णायि वारियर की नहीं मानते।

उण्णीयच्ची चरितम्

मलयालम-साहित्य का सबसे पहला चम्पू (गद्य-पद्यमय) ग्रन्थ। विद्वानों के मतानुसार इसका निर्माण सन् १३५० के आसपास किसी समय हुआ मगर इसके रचयिता के नाम का पता नहीं चलता।

इस चम्पू ग्रन्थ का कथानक इस प्रकार है—

मलाबार प्रदेश में कोट्टूरम नामक एक नगर है। यहाँ इस कथानक की नायिका उण्णीयच्चि जन्म लेती है। जब वह स्यानी हुई तो उसका अनूप सौन्दर्य देखकर एक गन्धर्व उस पर अनुरक्त हो जाता है। इसी ही कथानक पर यह रचना की गई है। इसमें कई मन्दिरों, वैद्यों तथा ज्योतिषशास्त्र के पंडितों का वर्णन किया गया है तथा इन पंडितों की लोकव्यवहार शून्यता की हँसी उड़ाने का कवि ने सफल प्रयास किया है।

उण्णूनीलि-सन्देश

संस्कृत-साहित्य के मेघदूत के समान केरल साहित्य की एक अनूठी रचना जिसका रचना-काल १४वीं शताब्दी में माना जाता है।

कथासार—इस कृति का नायक अपनी प्रिया के साथ महल में सो रहा था। आधी रात के समय एक यक्षिणी उसके महल में आती है और नायक को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चली जाती है। नायक उससे छुटकारा पाने के लिए ईश्वर की प्रार्थना करता है। तब यक्षिणी उसे छोड़ देती है। वह जिस जगह पर छोड़ जाती है, वह स्थान उस देश की राजधानी 'तिरुवनन्तपुरम्' है। यहीं पर उसे पद्मनाभ-मन्दिर से शंख तथा घंटे की ध्वनि सुनाई पड़ती है। यहाँ आने पर उसे उसका बाल्य-दोस्त कोल्लम-राज्य का राजकुमार मिलता है। उसे वह अपना सन्देश-वाहक बनाकर अपनी धर्मपत्नी के पास भेजता है। सन्देश देकर प्रिया के देश जाने का रास्ता बता देता है।

इस काव्य में रास्ते के नगरों, वहाँ के निवासियों, सुन्दरियों, मन्दिरों तथा फुलवारियों का चित्र अनूठी शैली में खींचा गया है। मलयालम-साहित्य के विद्वानों का निर्विवाद मत है कि 'उण्णुनीलि-सन्देश' मलयालम साहित्य की एक अमूल्य सम्पत्ति है।

उण्णुनीलि सन्देश पर मलयालम-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान कुञ्जन पिल्ला ने एक समीक्षात्मक ग्रन्थ भी लिखा है।

उत्तर प्रदेश

गणतन्त्र भारत का एक विशाल राज्य जिसके उत्तर में नेपाल और तिब्बत, पूर्व में बिहार, पश्चिम में हिमाचल-प्रदेश, पंजाब और दिल्ली तथा दक्षिण में मध्यप्रदेश है। इसका कुल क्षेत्रफल १ लाख १३ हजार ४ ६ वर्गमील है। जनसंख्या ७ करोड़ ३६ लाख २ हजार है। जनसंख्या की दृष्टि से समस्त भारत के राज्यों में यह सबसे बड़ा है। इस राज्य का नाम सन् १९५० में संयुक्त प्रान्त से बदल कर उत्तर प्रदेश कर दिया गया।

प्राग्ऐतिहासिक युग

उत्तर प्रदेश के कई भागों का इतिहास बहुत प्राचीन है। आर्य संस्कृति का मूल विकास आर्यावर्त नामक जिस क्षेत्र में हुआ उस क्षेत्र का बहुत सा भाग उत्तर प्रान्त में सम्मिलित है। इसी क्षेत्र के तपोवनों में आर्य संस्कृति के अविनाशी महान् साहित्य का निर्माण हुआ। आर्य संस्कृति के अनेक राजवंशों का क्रीड़ा-स्थल भी यह प्रान्त ही रहा है। अयोध्या, हरिद्वार, ऋषिकेश, मथुरा, वृन्दावन, प्रयाग, काशी, नैमिषारण्य इत्यादि अनेकों धार्मिक क्षेत्र और आर्य संस्कृति के मूल उद्गम-स्थान उत्तरप्रदेश में ही सम्मिलित हैं।

इसी प्रदेश में आर्य सभ्यता के कई प्रतापी राजवंशों का उदय और अस्त हुआ।

इक्ष्वाकु वंश

इन राजवंशों में इक्ष्वाकु का सूर्यवंश बहुत प्रसिद्ध है। राजा इक्ष्वाकु वैवस्वत मनु के सबसे बड़े पुत्र थे। मनु ने जब अपने राज्य को अपने दस बेटों में बाँट दिया तो बड़े पुत्र इक्ष्वाकु को मध्य देश का राज्य मिला जिसकी राजधानी अयोध्या थी। इन्हीं इक्ष्वाकु के वंश में १९ वीं पीढ़ी में सम्राट मान्धाता सम्राट तथा इस युग का सबसे बड़ा राजा हुआ। उसने दिग्विजय कर आसपास

के राज्यों पर अधिकार प्राप्त किया। 'सम्राट' शब्द का उपयोग सबसे पहले उसी के लिए किया गया। जहाँ से सूर्य उगता और जहाँ जाकर डूबता है, वह समूचा 'पौना रव मान्धाता का क्षेत्र कहलाता था। मान्धाता का विवाह यादव-वंश के शशबिन्दु नामक प्रतापी राजा की पुत्री 'बिन्दुमती' से हुआ था।

मान्धाता ने पौरवों का देश, कन्नौज का राज्य और पञ्जाब की सीमा पर द्रुह्यु-वंश के राजा 'अंगार' को हराकर उसके राज्य को भी जीत लिया था। मान्धाता के पुत्र 'पुरुकुत्स' की रानी का नाम 'नर्मदा' था और उसी के नाम से रेवा नदी 'नर्मदा' कहलाने लगी। नर्मदा नदी के बीच एक टापू पर पुरुकुत्स के भाई मुचकुन्द ने एक नगरी बसाई थी। वह नगर आज भी मान्धाता के नाम से प्रसिद्ध है।

पुरुकुत्स के बाद अयोध्या के राज्य की अवनति होने लगी और इस नगर पर हैहय राजवंश के लोगों के आक्रमण होने लगे जो मान्धाता की १ वीं पीढ़ी में होने वाले राजा सगर के समय तक जारी रहे।

हैहय वंश में राजा 'कृतवीर्य' का पुत्र कार्तवीर्य अर्जुन बड़ा पराक्रमी राजा हुआ। उस समय नर्मदा के प्रदेशों में रहने वाले भार्गव ब्राह्मण कार्तवीर्य के पुरोहित थे। किन्तु कार्तवीर्य ने उनके साथ कुछ बुरा व्यवहार किया जिससे वे भागकर मध्यदेश के कान्यकुब्ज नामक स्थान में आये और उनके मुखिया और्व ऋषि ने कन्नौज के राजा 'गाधि' की कन्या 'सत्यवती' से विवाह किया। इन्हीं का पुत्र जमदग्नि हुआ। जमदग्नि का विवाह अयोध्या के राजवंश की एक कुमारी 'रेणुका' से हुआ। उनके पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र का नाम राम था जो जामदग्न्य-परशुराम के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। क्योंकि वह एक प्रसिद्ध योद्धा था और उसका मुख्य अस्त्र 'परशु' था। परशुराम ने कार्तवीर्य अर्जुन से बदला लेने के लिए अयोध्या और कान्यकुब्ज के राजाओं की सहायता से उस पर आक्रमण किया और कार्तवीर्य अर्जुन का वध कर डाला।

इसी समय सूर्यवंश में अयोध्या के राजा सत्यव्रत के पुत्र संसार प्रसिद्ध राजा 'सत्य हरिश्चन्द्र' हुए, जिनका विवाह शिविवंश की राजकन्या 'शैब्या' से हुआ, जिनके सत्यव्रत का कथानक भारतवर्ष का बच्चा-बच्चा जानता है।

राजा सगर

मान्धाता की उन्नीसवीं पीढ़ी में अयोध्या का राजा 'सगर' बड़ा प्रतापी हुआ। उसने हैहय-राजवंश की सत्ता को समाप्त कर विदर्भ पर चढ़ाई कर वहां की राजकन्या केशिनी से विवाह किया। सगर की गिनती चक्रवर्ती राजाओं में है और इसीके समय में सतयुग का अन्त और त्रेता युग का प्रारम्भ माना जाता है।

राजा भागीरथ, दिलीप और रघु

राजा सगर के पश्चात् उसका पुत्र असमान सूर्यवंश का राजा हुआ। असमान का पौत्र प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट 'भागीरथ' हुआ जिसके सम्बन्ध में आर्य परम्परा में कहा गया है कि वह गंगा को स्वर्ग से उतार कर लाया। उसी के नाम पर गंगा "भागीरथी" भी कहलाती है।

भागीरथ के पश्चात् अयोध्या का राज्य बहुत कमजोर हो गया जिसे आगे चलकर राजा दिलीप ने पुनः समृद्ध किया। राजा दिलीप सम्भवतः भागीरथ की चौदहवीं पीढ़ी में हुए थे।

दिलीप का पोता चक्रवर्ती सम्राट् "रघु" हुआ जिसके नाम पर यह राजवंश 'रघुवंश' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रघु के पुत्र का नाम "अज" था जिसका विवाह 'इन्दुमती' के साथ हुआ था। अज के पुत्र "दशरथ" और दशरथ के पुत्र संसार प्रसिद्ध राजा 'रामचन्द्र' हुए। इनसे कुछ समय पूर्व ही अयोध्या "कोशल" देश के नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी।

रामराज्य

रामचन्द्र ने वानर और ऋक्ष जाति के राजाओं के सहयोग से लंका पर आक्रमण करके रक्ष-संस्कृति के राजा रावण का नाश किया और दक्षिण भारत में भी अपने राज्य का विस्तार किया। रामचन्द्र के समान प्रजा पालक राजा संसार के इतिहास में बहुत कम हुए। हजारों वर्ष बीत जाने पर भी आज 'रामराज्य' का नाम जिस मधुर कल्पना को जन्म देता है, उसके सामने संसार की राज्य कल्पना का ऊँचे से ऊँचा रूप भी फीका पड़ जाता है।

इसी वंश में आगे चलकर पृथु, हिरण्यनाभ, दशरथ इत्यादि अनेक राजा और हुए।

ऐलवंश या चन्द्रवंश

सूर्यवंश के राजा इक्ष्वाकु के समय के लगभग ही मध्यदेश में एक और प्रतापी राज्य था जिसका राजा पुरुरवा ऐल था और उसकी राजधानी "प्रतिष्ठान" में थी। यह स्थान इस समय प्रयाग के सामने झूसी के पास "पीहन" के नाम से एक छोटे गाँव के रूप में अभी भी विद्यमान है।

आर्य्य परम्परा के अनुसार "पुरुरवा" का विवाह 'उर्वशी" नामक अप्सरा से हुआ था और इनका वंश ऐलवंश या चन्द्रवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऐलवंश ने शीघ्र ही बहुत उन्नति की और दूर दूर के प्रदेशों में अपने राज्य स्थापित किये। पुरुरवा के एक पुत्र ने गंगातट पर ऊपर की ओर कान्यकुब्ज (कन्नौज) में एक नवीन राज्य की स्थापना की। प्रतिष्ठान वाले मुख्य वंश में पुरुरवा की चौथी पुश्त में ययाति नामक राजा बड़ा प्रतापी हुआ। उसने प्रतिष्ठान के पश्चिम दक्षिण और दक्षिण पूर्व के देशों को जीतकर उत्तर पश्चिम में सरस्वती तक के सब देशों को अपने अधीन किया। आर्यावर्त के इतिहास में यह सबसे पहला चक्रवर्ती राजा था।

ययाति के पाँच पुत्र थे जिनमें प्रतिष्ठान का राज्य सबसे छोटे पुत्र 'पुरु' को मिला। इसी पुरु के नाम पर इसका वंश "पौरव" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ययाति के एक भाई ने गंगा के नीचे किनारे पर वाराणसी में एक नया राज्य स्थापित किया जो बाद में उसके वंशज राजा 'काश' के नाम पर काशीराज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हैहयवंश के आक्रमण से कन्नौज का राज्य समाप्त हो चुका था और 'पौरव' लोगों की प्राचीन राजधानी प्रतिष्ठान वत्सभूमि में सम्मिलित हो चुकी थी जो काशी राज्य का एक भाग थी।

दुष्यन्त और शकुन्तला

इसी पौरववंश में राजा दुष्यन्त" नामक एक प्रतापी राजा हुआ जिसने नष्टप्राय पौरव-सत्ता को फिर से स्थापित किया। उसका राज्य अब गंगा और यमुना काठे के उत्तरी भाग में था। कई लोगों के मत से उसकी राजधानी यही थी जो आगे चलकर 'हस्तिनापुर' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

राजा दुष्यन्त एक बार शिकार खेलते-खेलते मार्ग के अधीन हो कण्व मुनि के आश्रम में पहुँच गया। वहीं पर उसको शकुन्तला का दर्शन और उसके साथ प्रेम हुआ। इसी कथानक को लेकर महाकवि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध 'अभिज्ञान शाकुन्तल' (पूरा परिचय "अभिज्ञान शाकुन्तल" नाम के अन्तर्गत इस कोष के प्रथम भाग में देखें), नामक नाटक की रचना की, जो आज समग्र विश्व साहित्य को संस्कृत साहित्य की अमूल्य देन है।

इसी राजा दुष्यन्त को शकुन्तला के गर्भ से महान् पराक्रमी "भरत" नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। राजा भरत अत्यन्त प्रतापी और प्रसिद्ध राजा था। सरस्वती से गंगा तक और गंगा के पूरब पार अयोध्याराज्य की सीमा तक सब प्रदेश भरत के राज्य में सम्मिलित हो गये। यह चक्रवर्ती सम्राट और आर्य्यावर्त्त का सार्वभौम अधिपति कहलाता था। भरत के वंशज 'भारत' कहलाये और आगामी दो युगों तक भारतों की अनेक शाखाएँ उत्तर भारत पर राज्य करती रहीं।

कई लोगों के मतानुसार इसी 'भरत' के नाम पर इस देश का नाम "भारत" पड़ा। मगर कई इतिहासकारों के मत से ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा।

इसी वंश में आगे चलकर हस्ती, अजामीढ़, संवरण कुरु और कौरव पाण्डव वंश के राजा हुए।

ऐतिहासिक युग

ऐतिहासिक युग में बौद्ध काल के अन्तर्गत प्रसिद्ध सोलह महा जनपदों में काशी, कोशल, वत्स पांचाल और चेदि जनपद का कुछ भाग भी उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत था।

काशी महाजनपद की राजधानी वाराणसी उस समय समूचे भारत में सबसे समृद्ध नगरी थी। कोशल-देश की राजधानी श्रावस्ती एक बहुत प्राचीन नगरी थी जिसके

अकरोत गोण्डा और बहराइच जिलों की सीमा पर सहेठ-महेठ के गाँवों के नाम से अब भी विद्यमान हैं। साकेत (अयोध्या) की हैसियत भी श्रावस्ती से कम नहीं थी।

महाभारत के पश्चात् उपनिषदों के युग में ही काशी का राज्य अपनी सामरिक शक्ति के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया था। समृद्धि में भी उसका मुकाबिला कोई दूसरा राज्य नहीं कर पाता था।

वत्सदेश काशी के पश्चिम में स्थित था। उसकी राजधानी कौशाम्बी जमना के किनारे पर प्रयाग के समीप स्थित थी और उस समय की बड़ी समृद्ध नगरियों में गिनी जाती थी। यह व्यापार और युद्ध के रास्तों को काबू करने वाले अपने नाके पर थी। इस नगरी के अवशेष इलाहाबाद के पास 'कोसम' नामक ग्राम के रूप में अभी विद्यमान है।

पाञ्चाल जनपद कौशल और वत्स के पश्चिम और चेदि के उत्तर में लगा हुआ था। उत्तर पांचाल में आधुनिक रोहेलखण्ड और दक्षिणी पांचाल में फरूखाबाद कन्नौज और कानपुर के क्षेत्र शामिल थे।

उत्तर प्रदेश के इन जनपदों में कई प्रसिद्ध राजवंशों ने राज्य किया। इन जनपदों में हमेशा पारस्परिक संघर्ष चलते रहते थे।

वत्स जनपद में भारत वंश का राज्य बहुत समय तक चलता रहा। ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में इस देश में 'उदयन' नामक बड़ा प्रतापी राजा हुआ जो राजा शतानिक का पुत्र था। उदयन संगीत, कला और सम्मोहन-विद्या का बड़ा जानकार था। राजा उदयन को अवन्ती के राजा 'चण्डप्रद्योत' ने अपनी पुत्री वासवदत्ता को संगीत और कला की शिक्षा देने के लिए कौशलपूर्वक बन्दीकर बुलवाया था। वहाँ पर वासवदत्ता से उसका प्रेम हो गया और वह उसे हरण कर अपने राज्य में ले आया था।

इस प्रकार कौशल मगध और अवन्ति-इन तीन बड़े महाजनपदों में हमेशा प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती थी।

ईसा से पूर्व सातवीं सदी के मध्य में कौशल जनपद और काशी जनपद में लगातार संघर्ष होते रहे। अन्त में ईसा से करीब ६२५ वर्ष पूर्व कौशल जनपद के एक विजयी राजा "महाकौशल" ने काशी को अन्तिम रूप से जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया। महाकौशल का पुत्र प्रसेनजित भी बड़ा प्रसिद्ध हुआ।

इनके कुछ समय पश्चात् मगध के राजा अजातशत्रु के पौत्र 'उदायी' के समय में इनमें से बहुत से जनपद समाप्त होकर मगध साम्राज्य में विलीन हो गये और जनपदों के स्थान पर भारतवर्ष में साम्राज्यवाद के युग का प्रारंभ हुआ।

साम्राज्यवाद के युग में हमेशा मगध साम्राज्य की प्रधानता रही और उत्तर प्रदेश भी इसी साम्राज्य का एक अंग बना रहा।

सम्राट् हर्षवर्द्धन

इसके पश्चात् उत्तर प्रदेश का इतिहास उस समय फिर से अपने गौरवपूर्ण रूप में प्रकट होता है, जब हर्षवर्द्धन के समान प्रतापी राजा कन्नौज के सिंहासन पर आता है। इस काल में उत्तर प्रदेश का सारा वैभव कन्नौज में आकर केन्द्रित हो जाता है।

हर्षवर्द्धन सन् ६०६ में कन्नौज की गद्दी पर बैठे। और इसी वर्ष से उन्होंने हर्ष संवत् के नाम से अपना एक संवत् चलाया। ये एक महत्वाकांक्षी और धर्मात्मा नरेश थे। गद्दी पर बैठते ही इन्होंने आसपास के छोटे-छोटे राजाओं को जीत कर साम्राज्य को एक सूत्र में बाँधना प्रारम्भ किया। सबसे पहले उनकी लड़ाई गौड़ के राजा शशांक से हुई। उसको जीतकर उसका राज्य उन्होंने अपने राज्य में मिला लिया। उसके बाद वल्लभी को जीता। वल्लभी के राजा दूसरे ध्रुवसेन ने भड़ौंच के राजा से सहायता माँगी, पर अन्त में दोनों को हर्षवर्द्धन की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद बंगाल की खाड़ी के पास के प्रदेश को जीता गया आसाम के राजाओं ने भी हर्षवर्द्धन का आधिपत्य स्वीकार किया।

मगर दक्षिण में चालुक्य वंश के सम्राट द्वितीय पुलकेशिन से हर्ष को करारी हार खानी पड़ी। उसी समय से नर्मदा हर्ष के राज्य की दक्षिणी सीमा स्थिर हुई।

हर्षवर्द्धन के पास ५ हाथी २ सवार और ५ पैदल सैनिकों का विशाल सैन्यदल था।

चीन का प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसांग हर्षवर्द्धन के समय में ही भारत में आया था। उसके वर्णन से मालूम होता है कि हर्षवर्द्धन के समय में शासन सुव्यवस्थित था प्रजा में शांति थी तथा विद्वानों का आदर होता था।

हर्षवर्द्धन ने प्रयाग के संगम त्रिवेणी के तट पर प्रति पाँचवें वर्ष एक धार्मिक मेला लगाना प्रारम्भ किया था जिसमें वे बहुत दान करते थे। उनके राज्य के तीसवें वर्ष में छठी बार यह मेला लगा था उस समय ह्वेनसांग भी मेले में हर्षवर्द्धन के साथ था। इस मेले में हर्षवर्द्धन ने राजकीय विभाग की आवश्यक सम्पत्ति को रखकर शेष निज की और राज्य की सारी सम्पत्ति को दान कर दिया। यहाँ तक कि अपने पहनने का वस्त्र भी अपनी बहन से भिक्षा में लेकर पहना।

हर्षवर्द्धन बौद्ध-धर्मावलम्बी थे और ऐसा कहा जाता है कि इनके द्वारा अन्य धर्म वालों पर कुछ ज्यादतियाँ भी होती थीं मगर सर्वसाधारण प्रजा में इनका शासन सुशासन ही माना जाता था।

हर्षवर्द्धन की मृत्यु सन् ९४८ में हो गयी। उनके पश्चात् ही उनका विस्तृत साम्राज्य बिखर गया।

कन्नौज में इसके कई वर्षों पश्चात् प्रतिहारों का राज्य अस्तित्व में आता है। प्रतिहार-राजवंश में वत्सराज नामक सम्राट बहुत प्रतापी हुआ जिसका शासन काल सन् ७७८ के करीब माना जाता है। जैनाचार्य उद्योतन सूरि ने अपने कुवलयमाला नामक ग्रन्थ में लिखा है कि—"जाबालिपुर (जालोर) में प्रतिहार सम्राट् वत्सराज राज करता था। उसने गौड़ बंगाल मालवा कोशल दूर-दूर के बड़े प्रदेश विजित कर उत्तर भारत के कान्यकुब्ज नगर में अपनी राजधानी स्थापित की थी। इन्हीं प्रतिहारों के समय में आगे जाकर सन् १ १८ में प्रसिद्ध आक्रमणकारी महमूद गजनवी का आक्रमण कन्नौज पर होता है। उस समय कन्नौज में प्रतिहार राजवंश का राजा राज्यपाल राज्य करता था और कन्नौज उत्तरी भारत की एक वैभव पूर्ण नगरी थी। महमूद के डर से राजा राज्यपाल वहाँ से भाग गया और महमूद ने कन्नौज को खूब लूटा।

प्रतिहार-वंश की समाप्ति के पश्चात् कन्नौज का राज्य चेदि के हैहय-वंशीय राजा 'गांगेय' के अधिकार-क्षेत्र में आया। यह बड़ा प्रतापी राजा था। प्रतिहारों के राजवंश को निर्मूल कर इसने अपने राज्य का बहुत विस्तार किया। उसने आन्ध्र चालुक्यों से कलिंग और वेंगनाथा भी जीत लिया। बनारस भी इसी की राज्य-सीमा में था। इसने भी सम्भवतः विक्रमादित्य की उपाधि ग्रहण की थी। गांगेय के पश्चात् उसका लड़का कर्ण गद्दी पर बैठा। यह गांगेय से भी अधिक पराक्रमी और प्रसिद्ध राजा हुआ। इसकी स्त्री आवल्लदेवी हूण-राजकन्या थी। राजा कर्ण ने चोल, पाण्ड्य मुरल, अंग बंग कलिंग इत्यादि अनेक देशों को जीतकर एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की थी।

कर्ण ने सम्भवतः १ ४ से १ ८ तक शासन किया। कर्ण की मृत्यु के पश्चात् गहड़वाल वंश के राजा चन्द्र ने कन्नौज पर अधिकार कर गहड़वाल राठौर, राजवंश की स्थापना की।

राजा चन्द्र के समय के कई शिलालेख अभी उपलब्ध हैं। इन शिलालेखों में कहा गया है कि चन्द्र ने नरपति गजपति और गिरीन्द्रपति को जीतकर पांचाल के राज्य को पराजित किया। इसमें पांचाल देश से अभिप्राय कन्नौज के राज्य से ही है। राजा चन्द्र का समय सन् - के बाद माना जाता है।

राजा चन्द्र के पश्चात् कन्नौज के गहड़वाल वंश में उसके पौत्र गोविन्द चन्द्र का नाम आता है। गोविन्दचन्द्र ने सन् १११४ से ११५५ तक राज्य किया। बनारस के पास एक स्थान पर २१ ताम्रपत्र इकट्ठे मिले थे। इनमें १४ गोविन्द चन्द्र के थे। कुल मिलाकर गोविन्द चन्द्र के ४ दानपत्र मिले हैं। जिन्हें कीलहार्न ने ए प १ ४ में छापा है।

अत्यन्त प्रतापी राजा होने के साथ साथ गोविन्दचन्द्र स्वयं भी बड़ा विद्वान था। ताम्रपत्रों के लेखों में उसके नाम के पीछे "विविध-विचार-विद्यावाचस्पति" विशेषण लगाये गये हैं।

गोविन्दचन्द्र के पश्चात् विजयचन्द्र और विजय चन्द्र के पश्चात् गहड़वाल के प्रसिद्ध राजा जयचन्द्र का नाम आता है जिसने अजमेर के चौहान राजा पृथ्वीराज के

खिलाफ अपनी प्रतिस्पर्धा को चरितार्थ करने के लिए मुहम्मद गोरी को आमंत्रित कर सारे देश की स्वतन्त्रता को मुसलमानों के हाथ बेच दी और अन्त में उसी मुहम्मद गोरी से लड़ता हुआ उसका हाथी और वह गंगा में डूब कर मर गये।

इसके बाद उत्तरप्रदेश की यह पवित्र भूमि मुसलमान आक्रमणकारियों का अखाड़ा बन गई। बाद में यह प्रान्त दिल्ली के मुसलमान-सम्राटों की अधीनता में रहा और उनके भेजे हुए सूबेदार लोग यहाँ पर शासन करते रहे। इनमें से कोई-कोई सूबेदार विद्रोही होकर स्वतंत्र शासक भी हो जाते थे।

इसके बाद औरंगजेब के बाद से अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भ तक अवध के नवाबों का शासन उत्तर प्रदेश में बड़ा दिलचस्प रहा जिनका वर्णन "अवध" नाम के अन्तर्गत इस ग्रन्थ के पहले भाग में किया गया है।

लार्ड डलहौजी ने अवध के अन्तिम नवाब वाजिद अली शाह को पदच्युत करके सारे प्रान्त को ब्रिटिश शासन में मिला लिया। ब्रिटिश-शासन के अन्तर्गत यह प्रान्त "संयुक्त प्रान्त, आगरा और अवध" के नाम से प्रसिद्ध रहा।

ब्रिटिश-शासन का अन्त होने पर स्वाधीन भारत में यह प्रदेश अपनी पुरानी सरहदी सीमा के अन्तर्गत भिन्न आगरा और अवध के संयुक्त प्रान्त, रामपुर, टेहरी-गढ़वाल और बनारस की देशी रियासतों तथा अन्य राज्यों के छोटे छोटे टुकड़ों को मिला कर बनाया गया है। इस प्रकार पहले के संयुक्त प्रान्त आगरा अवध की तुलना में यह प्रान्त बहुत बड़ा हो गया है। यह सारा प्रान्त ५२ जिलों में विभक्त है।

स्वाधीन भारत का अंग होने के पश्चात् इसका औद्योगिक विकास बड़ी तेजी से हुआ। यहाँ के प्रधान उद्योगों में चीनी, चमड़ा, काँच, रासायनिक उद्योग, एल्युमिनियम, सिमेंट, कागज इत्यादि प्रधान हैं। कानपुर इस प्रान्त का सबसे बड़ा औद्योगिक केन्द्र है। शक्कर का उद्योग इस प्रान्त का सबसे बड़ा उद्योग है।

मशीन युग के साथ साथ उत्तर प्रदेश का हस्त-उद्योग भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है। बनारस की जरी और रेशम की साड़ियाँ, मिर्जापुर तथा मुरादाबाद के पीतल और कलई के बर्तन, आगरे की दरियाँ, लखनऊ का चिकन, अलीगढ़ के ताले, बरेली एवं सहारनपुर का फर्नीचर और फिरोजाबाद की चूड़ियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

शिक्षा का विकास

उत्तर प्रदेश शिक्षा के विस्तार का एक विशाल केन्द्र है। इस प्रान्त में इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ, अलीगढ़, आगरा, रुड़की एवं गोरखपुर में सात बड़े विश्व विद्यालय चल रहे हैं। मेरठ और कानपुर में भी विश्व विद्यालय स्थापित करने के प्रयास चालू हैं बनारस, रुड़की और प्रयाग में इञ्जीनियरिंग कालेज और बनारस, लखनऊ तथा कानपुर में मेडिकल कालेज चालू हैं। देहरादून में 'सर्वे ऑफ इण्डिया' तथा 'फारेस्ट रीसर्च इन्स्टीट्यूट', लखनऊ में 'सेण्ट्रल ड्रग रीसर्च इन्स्टीट्यूट' और राष्ट्रीय वनस्पति-उद्यान और कानपुर में शुगर टेक्नालोजिकल इन्स्टीट्यूट स्थापित हैं। कई प्रकार के हस्त उद्योगों की शिक्षा देने का भी इस प्रान्त में सरकार की ओर से प्रबन्ध किया गया है।

उत्तरप्रदेश का धार्मिक और साहित्यिक विकास

आर्यावर्त की इस पवित्र भूमि पर जिस समय रघुवंश के समान प्रतापी राजवंश के राजा धर्मानुमोदित न्याय प्रिय शासन से जनता में सुख शान्ति का योग क्षेमकर राजतन्त्रीय शासन-व्यवस्था के इतिहास में एक नवीन अध्याय को जोड़ रहे थे। उस समय हमारे धर्म-नेता तपोवनों में बैठकर जीवन के परम रहस्यों की खोज में तल्लीन हो रहे थे। उनके तपोवन प्रतिदिन वेदों की ऋचाओं से गूँजते रहते थे। उपनिषद्, दर्शन शास्त्र, ब्राह्मण ग्रंथ, स्मृतियाँ—इन सारे महान साहित्य की रचना इन्हीं तपोवनों में हुई थी। जिसकी जोड़ का साहित्य समस्त संसार के साहित्य में चिराग लेकर ढूँढने पर भी नहीं मिलता। अनेकों बड़े बड़े ऋषि-मुनि जिनके नामों से हमारा साहित्य भरा पड़ा है जीवन के मूलभूत तत्वों—हम कहाँ से आये हैं, यह सांसारिक संसार क्या है जीवन और कर्म का क्या सम्बन्ध है—पर दिनरात चिन्तन करके साहित्य का सृजन करते

रहते थे। यद्यपि कालक्रम के अनुसार उनका ठीक से *विभाजन नहीं किया जा सकता है।*

महर्षि वाल्मीकि संस्कृत-साहित्य के आदिकवि माने जाते हैं जिन्होंने रामायण की श्लोकबद्ध रचना की। आज भी समग्र विश्व-साहित्य में आप्त देश की यह महान् कृति प्रकाशपुञ्ज की तरह दीप्तिमान हो रही है।

उत्तर प्रदेश में नैमिषारण्य इस प्रकार के सर्जनकों का एक प्रधान केन्द्र रहा है। कहा जाता है कि महर्षि वेदव्यास ने इसी अरण्य के तपोवन में बैठकर महाभारत श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता के समान महान् ग्रंथों की रचना की थी।

नैमिषारण्य में और भी अनेक ऋषियों ने जीवन के तत्व को ढूँढ़ने की प्रक्रिया में बहुत से साहित्य का सृजन किया।

मध्यकाल में हिन्दी काव्य का विकास होने पर भी इस भूमि में अनेकों महाकवियों ने अवतीर्ण होकर साहित्य में महान् योग दिया।

इनमें सबसे पहला नाम महाकवि तुलसीदास का आता है।

महाकवि तुलसीदास का जन्म विक्रम संवत् १५८९ *में और देहान्त संवत् १६८० में हुआ। अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ* रामचरित-मानस में इस महान् कवि ने भक्ति ज्ञान और कर्म की जो अविरल धारा बहाई है, वह समग्र संसार के साहित्य में बेजोड़ है। रामचरित के सहारे इस सरस्वती के वरद्पुत्र ने मानव-जीवन और संसार की गहन से गहन उलझी हुई गुत्थियों को सुलझा कर सरल और सीधी भाषा में ऐसे स्पष्ट रूप में रख दिया है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। देश की हिन्दी भाषी जनता में झोपड़ी से लेकर महलों तक और जंगली गाँवों से लेकर शहरों तक जितने प्रेम से तुलसीदास के रामचरित-मानस का पाठ होता है उतना दूसरे ग्रंथ का नहीं।

महात्मा कबीरदास भी उत्तर प्रदेश की भूमि में ही अवतीर्ण हुए थे। इनका जन्मकाल विक्रम संवत् १४५५ की जेठ सुदी पूर्णिमा को माना जाता है।

काव्यधारा की भाषा में महात्मा कबीर ने अपने सिद्धान्तों को जनता के सामने रखा। इनकी साखियों में *वेदान्त का सारतत्व, हिन्दू और मुसलमानों को मिलाने का* प्रयत्न संसार की अनित्यता हृदय की शुद्धि प्रेम साधना की कठिनता, माया की प्रबलता मूर्ति पूजा और तीर्थाटन आदि की असारता आदि चीजों पर बड़ी सजीव भाषा में वर्णन किया गया है।

महाकवि सूरदास की प्रतिभा का विकास भी उत्तर प्रदेश में ही हुआ जिनके कृष्ण-भक्ति से सम्बन्ध रखने वाले पद हिन्दीसाहित्य में अमर हैं।

मध्ययुग में और भी अनेक कवि उत्तर प्रदेश की इस भूमि में हुए, जिनका वर्णन उनके नामों के साथ यथा स्थान किया जायेगा।

आधुनिक युग में भी उत्तर प्रदेश की भूमि ने हिन्दी के साहित्य सृजन में जो महत्वपूर्ण योग दिया है, उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता।

आधुनिक हिन्दी गद्य के परिष्कर्ता भारतेन्दु बाबू *हरिश्चन्द्र इसी क्षेत्र में पैदा हुए थे जिन्होंने हिन्दी-गद्य* साहित्य के इतिहास में एक युगान्तर कर दिया। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्थापक और अनेक हिन्दी-पुस्तकों लेखक बाबू श्यामसुन्दर दास भी इसी प्रान्त के थे, *जिन्होंने हिन्दीभाषा के विकास में महत्वपूर्ण योग* दिया। इसी प्रकार सरस्वती के सम्पादक पं॰ महावीर प्रसाद द्विवेदी की लेखनी का विकास भी इसी भूमि में हुआ। जयशंकरप्रसाद सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा *और भी अनेकानेक प्रतिष्ठित लेखकों* कवियों और समा-लोचकों को उत्पन्न करने में उत्तर प्रदेश की साहित्यिक भूमि बहुत उर्वरा रही है।

सार्वजनिक क्षेत्र में आधुनिक युग में उत्तर प्रदेश की *भूमि में महामना पं॰ मदनमोहन मालवीय का नाम सबसे* पहले आता है। जिनके हृदय में अपने देश के प्रति, अपने धर्म के प्रति अपनी संस्कृति के प्रति निःस्वार्थ प्रेम कूट-कूटकर भरा हुआ था। अपने देशवासियों की अशिक्षा और हीन अवस्था पर जिनके हृदय में हमेशा करुणा की एक धार बहती रहती थी, जिन्होंने अपने जीवन का उत्सर्ग करके बनारस में हिन्दू-विश्वविद्यालय के समान

एक महान् संस्था को जन्म देकर उसे देश की एक सर्वश्रेष्ठ संस्था बना दिया। किसी भी एक व्यक्ति के प्रयत्न से और उसके उत्साह से इतनी विशाल संस्था का स्थापित किया जाना देश के इतिहास में एक आश्चर्यजनक और महत्त्वपूर्ण घटना है।

इसी प्रकार राजनीति के क्षेत्र में पं. मोतीलाल नेहरू, पं. जवाहरलाल नेहरू, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, डा. कैलाशनाथ काटजू इत्यादि महानुभावों ने देश की आजादी के लिए महात्मा गांधी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर त्याग और बलिदान के जो दृश्य दिखलाये वह किसी भी देश के इतिहास को गौरवान्वित कर सकते हैं।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश की यह भूमि आर्य सभ्यता के आदिकाल से एक गौरवमयी भूमि रही है, जिसने क्या राजनीति के क्षेत्र में क्या धर्म के क्षेत्र में और क्या साहित्य के क्षेत्र में सभी दूर एक नया जीवन और एक नया आदर्श कायम किया है। गंगा और यमुना की पवित्र जलधाराएं जिस क्षेत्र की भूमि को हमेशा पवित्र करती रही हैं और हिमालय की विशाल पवित्र शृंखलाएं जिस भूमि का मुकुट बनकर उसे शोभायमान कर रही हैं।

उत्तर रामचरित्र

समग्र विश्व-साहित्य में करुणा और त्याग की निर्मल कल्लोलिनी प्रवाहित करने वाला, संस्कृत भाषा के एक महान कवि भवभूति का काव्य नाटक।

उत्तर रामचरित्र रामचन्द्र के लंका-विजय के पश्चात् अयोध्या के राज्य सिंहासन पर आसीन होने के बाद की घटनाओं पर लिखा गया एक सुन्दर नाटक है, जिसमें बहती हुई करुणा-रस की महान् धारा पाठक के रोम-रोम को द्रवित कर देती है।

सीता के साथ राम का वियोग और उसके बाद फिर उनका मिलन—यही दो इस नाटक की प्रधान घटनाएँ हैं। महाकवि भवभूति ने अपने नाटक में इस उपाख्यान को इस तरह बनाया है—

पहला अंक—अन्तःपुर में सीता और राम बैठे हैं। अष्टावक्र मुनि का प्रवेश। उनके आगे प्रजारंजन के लिए जानकी तक को त्याग देने की राम की प्रतिज्ञा। चित्रपट देखते देखते सीता का तपोवन देखने की इच्छा प्रकट करना। दुर्मुख नाम के जासूस का प्रवेश और सीता के सम्बन्ध में लोकापवाद की सूचना। राम का सीता को त्याग देने का संकल्प।

दूसरा अंक—राम का 'पंचवटी' नामक वन में प्रवेश और शूद्रक राजा का सिर काट डालना। राम का वन-स्थान की सैर करना।

तीसरा अंक—वासन्ती तमसा और छाया सीता के सामने राम का विलाप। वनवास के अन्त में प्रसव वेदना से पीड़ित होकर सीता का गंगा में कूदना। पृथ्वी तथा गंगा के द्वारा सीता का पाताल में ले जाकर रखना तथा लव और कुश को महर्षि के हाथों में सुपुर्द करना।

चौथा अंक—जनक अरुन्धती और कौशल्या का मिलाप। लव के साथ उनका परिचय।

पाँचवाँ अंक—लव और चन्द्रकेतु का युद्ध।

छठा अंक—लव, कुश और चन्द्रकेतु के साथ राम की भेंट और कुश के मुख से रामायण की गाथा सुनना।

सातवाँ अंक—राम का सीता-निर्वासन का अभिनय देखते देखते मूर्छित हो जाना। गंगा और पृथ्वी का सीता को लेकर प्रकट होना। राम और सीता का पुनर्मिलन।

उत्तर रामचरित्र को पढ़ने से पता चलता है कि महाकवि भवभूति मानवीय धरती पर चलने वाले यथार्थवादी (रीयलिस्टिक) कवि नहीं हैं वे आदर्श और कल्पना के स्वप्नलोक में विचरण करके शान्त और करुणा की अविरल धारा बहाने वाले महान् कवि हैं। वे भोग की भूमि पर विचरण करने वाले पार्थिव भावनाओं के कवि नहीं प्रत्युत त्याग और बलिदान के पराक्रम पर समस्त संसार के वैभव को लुटा देने वाले महाकवि हैं। संसार में क्या हो रहा है यह वर्णन करने वाले यथार्थवादी कवियों में भवभूति का स्थान नहीं है प्रत्युत संसार में क्या होना चाहिए उसी आदर्श का निर्माण करने वाले कवियों में भवभूति श्रेष्ठ हैं। राजा प्रजा के लिए, स्त्री पुरुष के लिए अमीर गरीब के लिए अपने सर्वस्व का

त्याग करें तभी संसार में कल्याण की, ऐसी कल्पना की, स्थापना हो सकती है—यही भवभूति का लक्ष्य था।

उनका नायक राजा रामचन्द्र एक आदर्श राजा है जो प्रजा की खुशी के लिए, उसके हित के लिए, उसके कल्याण के लिए हमेशा सब कुछ करने को तैय्यार रहता है। अष्टावक्र ऋषि के सामने प्रतिज्ञा करता हुआ वह कहता है।

स्नेहं दयां तथा सौख्यं, यदि वा जानकी मपि।
आराधनाय लोकस्य, मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

प्रजारंजन के लिए, स्नेह, दया, सुख यहाँ तक कि यदि जानकी तक को भी छोड़ना पड़े तो मुझे व्यथा नहीं होगी।

प्रजारंजन के लिए जानकी का त्याग करते समय वे यह नहीं देखते कि निरपराधिनी जानकी के साथ यह कैसा अन्याय और अविचार है। जो कठिन अग्नि-परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर अपनी निरपराधिता को साबित कर चुकी है जिसने जीवन भर उनके विश्वास की रक्षा की है, उस सीता के साथ यह कैसा अन्याय हो रहा है। वे सिर्फ एक विचार करते हैं राजा को प्रजा के लिए बलिदान करना चाहिए। जानकी का क्या उनका स्वयं का बलिदान भी यदि प्रजा माँगती तो वे करने को तैयार थे।

सीता के त्याग से रामचन्द्र को कितनी गम्भीर वेदना हुई, इस घटना से उनका आगे का जीवन कैसा बना हुआ—यह सब इसकी आगे नाटक में आगे स्थान-स्थान पर देखने को मिलती है।

सीता

उत्तर रामचरित की नायिका "सीता" एक ऐसी नारी है जो पति को ही अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य समझती हैं। पति के लिए अपने सर्वस्व का त्याग करने में उसे रत्ती भर संकोच नहीं है। यह देखना उसका काम नहीं कि उसके पति ने उसके साथ क्या न्याय किया है या क्या अन्याय किया है। वह इस बात पर विचार नहीं करना चाहती कि उस निरपराधिनी और पति के ऊपर अगाध विश्वास रखने वाली स्त्री का अकारण निर्वासन करके उसके पति ने उसके साथ क्या अन्याय किया है।

तीसरे अङ्क में जब जनस्थान में रामचन्द्र सीता की पूर्व स्मृति से अभिभूत होकर मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं तब छायामूर्ति के रूप में उपस्थित सीता कहती हैं—

"हा धिक्, हा धिक् मां मन्दभागिनीं व्याहृत्य, अमीलन्नेत्र नीलोत्पलः मूर्छित एव आर्य्यपुत्रः हा कथं धरणीपृष्ठे निरुत्साह निःसहं विपर्यस्त। भगवत तमसे परित्रायस्व परित्रायस्व जीवय आर्य्यपुत्रम्।

(हा धिक्कार है, हा धिक्कार है! आर्य्यपुत्र मुझ अभागिनी का नाम लेकर नील-कमल-तुल्य नयन मूंदकर मूर्छित और निरुत्साह होकर पृथ्वी पर विपर्यस्तभाव से पड़े हुए हैं। भगवती तमसा रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए! आर्य्यपुत्र को सचेत कीजिए" इसके बाद सचेत होने पर जब रामचंद्र कहते हैं—

"न खलु वत्सलया सीता देव्या अभ्युपपन्नोस्मि"

(स्नेहमयी सीतादेवी ने ही क्या मुझे आश्वासन दिया है) तो सीता कहती हैं।

"हा धिक्! हा धिक्! किमितियां आर्यपुत्रो मार्गिष्यति"

(हा! मुझे धिक्कार है। आर्य्यपुत्र क्या मुझे ही खोज रहे हैं) फिर कहती है—*एवमस्मि मन्दभागिनी पुनरप्यायास कारिणी आर्य्यपुत्रस्य।* मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि फिर भी आर्य्यपुत्र के क्लेश का कारण हुई।)

उस समय एक ही भावना दृष्टिगोचर होती है "आर्य्य पुत्र मेरे लिए कष्ट पाते हैं आर्य्यपुत्र इतने दिनों में मुझे भूल क्यों नहीं गये! सकल मंगल-मूलाधार राम मुझ तुच्छ नारी के लिए बारंबार मोह-संताप को प्राप्त हो रहे हैं। दूर दूर केवल आर्य्यपुत्र का ख्याल है—अपने सुख-दुःख तथा अपने प्रति किये गये अन्याय-अविचार का लेशमात्र भी इस महान् नारी को ख्याल नहीं है।

बंगाल के महान् नाटककार द्विजेन्द्र लाल राय लिखते हैं—

यह प्रेम क्या जगत में है? स्वामी के कल्याण में, सब प्राणियों के कल्याण में आत्म-बलिदान करनेवाला प्रेम क्या इस जगत में है? अगर है तो धन्य हो भवभूति! तुमने ही पहले पहल उसे पहचाना है। अगर नहीं है तो भी धन्य हो भवभूति! तुमने ही पहले पहल उसकी कल्पना की है, जिस प्रेम में अपमान में अभिमान नहीं है, निष्ठुरता

में ह्रास नहीं है, अवस्थाओं में विपर्यय नहीं है, जो प्रेम आप ही अपने रंग में सराबोर है उस प्रेम का आविष्कार हजार वर्ष पहले इस भारत भूमि में एक कवि ने किया फिर कहता हूँ "धन्य हो भवभूति"।

तीसरे अङ्क में भवभूति के द्वारा की हुई "छायासीता" की कल्पना पर लिखते हुए—द्विजेन्द्रलाल राय लिखते हैं—

"मुझे तो स्मरण नहीं आता कि मैंने और किसी काव्य में कभी ऐसे मधुर रूपक की कल्पना पढ़ी हो। कल्पना जैसी नवल है वैसी ही हृदयग्राही है। राम फिर उसी पञ्चवटी वन में आये हैं जहाँ उन्होंने शुरू जवानी में प्रथम प्रणय के मजे लूटे थे। वे उन्हीं वन पर्वतों, उन्हीं शिलातलों, उन्हीं कुञ्जों और उसी गोदावरी को देख रहे हैं। अनपथ पास से हट जाने के कारण अस्पष्ट हो गये हैं, कुञ्ज और भी घने हो गये हैं, गोदावरी अपने स्थान से कुछ हट गई है। सब वही है, केवल सीता नहीं है। किन्तु सीता की स्मृति है, राम उसे पकड़ना चाहते हैं, मगर पकड़ नहीं पाते। उसी घड़ी वह मूर्ति शून्य में विलीन हो जाती है। सीता का कण्ठस्वर और स्पर्श अनुभव करते-करते ही मानो खो जाता है। यह स्वप्न यह मृगतृष्णा यह अपर्याप्तता यह मर्मभेदी विरह व्यथा इस जगत में शायद ही और कोई कवि कल्पना के द्वारा दिखा सका हो!"

सीता की छायामूर्ति की कल्पना भवभूति की उत्कृष्ट कल्पना का चरम उदाहरण है। यह छायामूर्ति केवल मात्र राम की कल्पना नहीं है। भागीरथी तमसा उसे स्पष्ट देख रही हैं उसके कण्ठस्वर को सुन रहे हैं। रामचन्द्र के मूर्छित होने पर सीता के पश्चाताप को सब सुन रहे हैं। सिर्फ रामचन्द्र उसे नहीं देख पाते हैं—

द्विजेन्द्रलाल राय लिखते हैं— मुझे जान पड़ता है कि भवभूति ने पहले तो कवित्व के विचार से काल्पनिक सीता की कल्पना की भी पीछे जब वे उस कल्पना को मूर्तिमती बनाने लगे, [राम को बचाने लगी तब उन्होंने सीता को ही छायामूर्ति के रूप में वहाँ ला खड़ा किया]। इस वास्तव और अवास्तव के मिश्रण से जिस दृश्य की सृष्टि की है, वह जगत् भर के साहित्य में अतुलनीय है।"

उत्तर रामचरित्र नाटक का सातवाँ अङ्क करुण-रस की धारा बहाने में सबसे अधिक समर्थ सिद्ध हुआ है।

इस अङ्क में राम, लक्ष्मण और पुरवासी लोग वाल्मीकि-रचित "सीता-निर्वासन" नाटक का अभिनय देख रहे हैं। उस अभिनय में लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ आये। उसके बाद की घटनाओं को राम आँखों से आँसू बहाते हुए देख रहे हैं। सीता जब रङ्गशाला में प्रवेश कर जाती है, तब—

"*हा देवि! दण्डकारण्य-वास-प्रिय-सखि! चारित्र देवते! लोकान्तरं गताऽसि*", हाय देवी दण्डकवन में निवास के समय की प्रिय सखि! देवताओं के से पवित्र चरित्रवाली तुम दूसरे लोक में चली गईं!' कहकर रामचन्द्र मूर्छित हो गये।

यह देखकर लक्ष्मण ने घबरा कर कहा—

"*भगवन् वाल्मीके, परित्रायस्व, परित्रायस्व! एषः किं ते काव्यार्थः?*' भगवान् वाल्मीकि! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, आपके इस काव्य का क्या अर्थ है।

इसी समय नेपथ्य में आकाशवाणी होती है—

"*भो भो सजङ्गम स्थावराः प्राणभृतो मर्त्यामर्त्याः पश्यत भगवता वाल्मीकिनानुज्ञातं पवित्रमाश्चर्यम्।*"

हे चराचर और मनुष्य देवयोनि-प्राणियो! भगवान् वाल्मीकि की आज्ञा से अनुष्ठित इस आश्चर्य घटना को देखो।

लक्ष्मण ने देखा—

> "*मन्थादिव क्षुभ्यति गाङ्गमम्भो,*
> *व्याप्तञ्च देवर्षिभिरन्तरिक्षम्।*
> *आश्चर्यमार्या सह देवताभ्यां*
> *गंगा महीभ्यां सलिलादुदेति।*'

जैसे कोई मथ रहा हो इस तरह गंगा का जल क्षोभ को प्राप्त हो रहा है। सारा अन्तरिक्ष देवों और ऋषियों से भर गया है। कैसा आश्चर्य है! आर्या जानकी गंगा और पृथ्वी इन दो देवियों के साथ जल से ऊपर आ रही है।

फिर आकाशवाणी होती है—

अरुन्धति जगद्वन्द्ये गंगापृथ्व्यौ भवस्व मौ।
अर्पितेयं तवन्यासे सीता पुण्यव्रता वधूः॥

हे जगत् भर की पूजनीया अरुन्धती देवी! हम गंगा और पृथ्वी दोनों उपस्थित हैं और पवित्र चरित्रवाली पवित्रता वधू सीता को तुम्हें अर्पित करती हैं।

लक्ष्मण ने कहा— 'आश्चर्यमाश्चर्यम्, आर्य, पश्य पश्य (आश्चर्य है, आश्चर्य है। आर्य देखिए)

मगर उस वक्त रामचन्द्र मूर्छित हो थे। तब स्वयं सीता ने आकर अपने स्पर्श से रामचन्द्र को सचेत किया। अरुन्धती ने गंगा और पृथ्वी से रामचन्द्र का परिचय करवाया तब राम ने हाथ जोड़ कर उनसे पूछा—

"कथं कृतमहापराधो भगवतीभ्यामनुकम्पितः"

(इतना बड़ा अपराध करने पर भी मैं भगवतियों की अनुकम्पा कैसे प्राप्त कर सका!)

इसके बाद अरुन्धती ने वहाँ पर एकत्र हुई प्रजा समाजको पुकार कर और सुनाकर कहा—

"हे पुरवासी और जनपदवासी लोगो! इन सीता देवी को मर्यादापूर्वक शुद्ध चरित्रवाली कहकर भगवती गंगा और पृथ्वी ने मुझ अरुन्धती को सौंप दिया है। इसके पहले भगवान् अग्निदेव ने निश्चय कर दिया था कि इनका चरित्र परम विशुद्ध है—अब महाराज रामचन्द्र इनको ग्रहण करते हैं—इस विषय में तुम लोगों की क्या सम्मति है? तुम इसका अनुमोदन करते हो या नहीं?"

लक्ष्मण ने कहा—"आर्या अरुन्धती ने यों कहकर अपवाद लगानेवाली प्रजामण्डली की भर्त्सना की है। तब प्रजा-समूह आर्या जानकी को प्रणाम करते हैं लोकपाल और सप्तर्षिगण फूलों की वर्षा करते हैं।"

राम ने अरुन्धती की आज्ञा से सीता को ग्रहण किया। लव और कुश का प्रवेश हुआ अभ्यर्थना आलिंगन और आशीर्वाद के पश्चात् यवनिका-पतन हुआ।

परित्याग करने के पश्चात् राम और सीता का पुनर्मिलन वाल्मीकि तथा अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं है। भवभूति ने अपने कल्पना कौशल से नाटक को सुखान्त बनाने के लिए सम्भवतः पुनर्मिलन की इस घटना की कल्पना की है।

नारी रूप के वर्णन में कालिदास और भवभूति के बीच सीमारेखा खींचते हुए द्विजेन्द्रलाल राय लिखते हैं—"नारी रूप के वर्णन में भवभूति की अपनी एक विशेषता है। कालिदास तथा अन्य बहुत से कवियों के नारी सौन्दर्य वर्णन में लालसा का भाव भरा हुआ है किन्तु भवभूति का नारी रूप-वर्णन वन दूर पहाड़ी झरनों के समान निर्मल और पवित्र है। कालिदास रमणी के बाहरी रूप में ही मस्त हैं पर भवभूति की दृष्टि स्त्री के अन्तःकरण के सौन्दर्य पर है। नारी यदि 'पृथुस्तनी' "श्रोणीभारादलस-गमना और "बिम्बाधरा" हुई तो बस, कालिदास को और कुछ न चाहिए। अपने काव्यों में स्थान स्थान पर रमणी के अंगों का वर्णन करने में कालिदास को बड़ा ही आनन्द आता है, किन्तु भवभूति की दृष्टि में नारी "गेहे लक्ष्मी" है। उसके वचन 'अमृतानि' हैं उसका स्पर्श "शरीरस्यैव चन्दनरसः" है। उसका आलिंगन "सुखमिति वा दुःखमिति वा" है। कालिदास का रूप वर्णन प्रकाश अवश्य है, मगर वह दीपक का तेज वर्ण प्रकाश है। भवभूति का वर्णन उज्ज्वल चाँदनी का प्रकाश है। कालिदास जब पृथ्वी पर चलते हैं उस समय भवभूति मानो उनसे बहुत ऊपर आकाश में विचरण करते हैं।

उत्तर मीमांसा

महर्षि बादरायण व्यास के द्वारा रचित 'ब्रह्मसूत्र' नामक ग्रन्थ का दूसरा नाम। इसका पूरा वर्णन ब्रह्मसूत्र नाम के अन्तर्गत अगले भागों में देखिये।

उत्तर पुराण

दिगम्बर जैन-साहित्य का एक सुप्रसिद्ध पुराण ग्रन्थ, जिसकी रचना सुप्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेनाचार्य के शिष्य गुणभद्राचार्य ने ९ वीं शताब्दी के तीसरे चरण में की।

उत्तरपुराण महापुराण का उत्तरार्द्ध भाग है। इसमें करीब १० हजार श्लोकों में जैन-धर्म के सुप्रसिद्ध २३ तीर्थंकर (आदिनाथ को छोड़कर) ११ चक्रवर्ती, ९ नारायण ९ बलभद्र और ९ प्रतिनारायण का सुन्दर पद्यबद्ध काव्यभाषा में

विवेचन किया गया है। यद्यपि दिगम्बर-जैन साहित्य के आदि पुराण ग्रन्थ से विस्तार में यह छोटा है, पर कला की दृष्टि से यह ग्रन्थ काफी महत्वपूर्ण है।

सन् ८६८ ईस्वी में गुणभद्राचार्य के शिष्य आचार्य लोकसेन के तत्वाधान में इस ग्रन्थ का पूजा महोत्सव सम्पन्न किया गया।

आचार्य गुणभद्र जैन-साहित्य के धुरन्धर विद्वान और संस्कृतकाव्य के पारदर्शी कलाकार थे। ये अत्यन्त विनीत स्वभाव के और गुरु के प्रति पुनीत श्रद्धा रखने वाले आचार्य थे। उत्तरपुराण की कथाओं में श्रीकन्धर की कथा बहुत प्रसिद्ध है, जिसके आधार पर आगामी संस्कृत और तामिल के कवियों ने अपने कई काव्यों की रचना की है।

उत्तराध्ययन-सूत्र

श्वेताम्बर जैन-साहित्य के ४ मूलसूत्रों में तीसरा मूल सूत्र 'उत्तराध्ययन सूत्र' है।

श्वेताम्बर जैन-साहित्य में मूलसूत्र ग्रन्थों में उत्तराध्ययन सूत्र का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह पूरा सूत्र अत्यन्त आनन्ददायक और ज्ञान का भण्डार है। इसमें ३६ अध्ययन हैं जिनका क्रम इस प्रकार है—

१—विनयधर्म २—परिषहविजय ३—चतुरंगीय परिषह, ४—प्रमादाप्रमाद ५—अकाम-मरण, ६—क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय, ७—औरभ्र ८—कापिलीय, ९—नमी प्रव्रज्या १०—द्रुमपत्र ११—बहुश्रुत पूजा १२—हरिकेश १३—चित्त संभूतीय १४—इषुकारीय १५—समिक्षुक, १६—ब्रह्मचर्य गुप्ति १७—पापश्रमणीय १८—संयतीय १९—मृगापुत्रीय, २०—महा निर्ग्रन्थीय २१—समुद्रपालीय २२—रथनेमीय २३—केशि गौतमीय २४—प्रवचन-माता २५—यज्ञीय २६—सामाचारीय २७—खलुंकीय २८—मोक्षमार्ग, २९—सम्यक्त्व-पराक्रम ३०—तपोमार्ग ३१—चरणविधि ३२—प्रमादस्थान ३३—कर्म प्रकृति, ३४—लेश्या ३५—अनागार मार्ग और ३६—जीवाजीव विभक्ति।

इन ३६ अध्ययनों का वर्णन करते हुए उनका भाव दृष्टान्तों के द्वारा समझाया गया है। कहा जाता है कि श्री वर्धमान (महावीर) प्रभु ने अपने निर्वाण के समय १६ पहर की देशना (उपदेश) दी थी। इस देशना में श्री वर्धमान ने ५५ अध्ययन पुण्यफल विपाक पर और ५५ अध्ययन पाप फल विपाक पर कहे थे। उसके पश्चात् बिना पूछे हुए उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों पर प्रकाश डाला था। इसीसे इनको 'अपृष्ट व्याकरण' कहा जाता है।

आचार्य भद्रबाहु उत्तराध्ययन-सूत्र पर की हुई 'निर्युक्ति' में बतलाते हैं कि इसके ३६ अध्ययनों में कुछ जिन भाषित, कुछ प्रत्येक बुद्ध प्रभाव रूप और कुछ संवाद अंगों में संग्रह किये गये हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र की तुलना बौद्ध-साहित्य के 'सुत्त निपात' नामक सूत्र से की जा सकती है।

उत्पलाचार्य

संस्कृत साहित्य के एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक, जिनका समय ९ वीं सदी के अन्त में माना जाता है।

उत्पलाचार्य के पिता सोमानन्द काश्मीर शैवमत की प्रत्यभिज्ञा शाखा के प्रवर्तक थे।

उत्पलाचार्य ने अपने ईश्वर प्रत्यभिज्ञा-कारिका नामक ग्रन्थ के द्वारा प्रत्यभिज्ञा मत के समर्थन और अन्य मतों के खण्डन में अनेक तर्कों का प्रयोग करके दार्शनिकों की श्रेणी में अपना स्थान बना लिया था। इनकी रचनाओं में स्तोत्रावली, सिद्धित्रय, शिवदृष्टि व्याख्या 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा—कारिका' इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

ईश्वर प्रत्यभिज्ञा कारिका पर प्रसिद्ध लेखक अभिनव गुप्त ने विमर्शिनी और विवृति विमर्शिनी नामक अत्यन्त प्रसिद्ध टीकाएँ लिखी हैं। उत्पलाचार्य के शिष्य लक्ष्मणगुप्त अभिनव गुप्त के गुरु थे।

उत्पलापीड़

कश्मीर के राजा अजितापीड़ के पुत्र। जिन्हें सुख वर्मा ने अजितापीड़ को कश्मीर की गद्दी से उतारकर इनको कश्मीर का राजा बनाया था। इन्हीं के समय में पुन उत्पल शिवों का अधिकार कश्मीर में फैलने लगा

कुछ समय बाद शूर नामक मंत्री ने उत्तराधीश को राज्य से हटा दिया। इन्होंने तीन वर्ष तक राज्य किया।

उदयन मेहता

गुजरात के प्रसिद्ध जैन राजा कुमारपाल का मंत्री और प्रसिद्ध जैन-तीर्थ शत्रुंजय के विशाल मन्दिर का निर्माता। जो सन् ११४५ में राजा कुमारपाल का मंत्री था।

जिस समय कुमारपाल को राज्य प्राप्त नहीं हुआ था और वह बेकसी की हालत में इधर-उधर घूम रहा था उस कष्टमय स्थिति में वह खंभात पहुँचा और वहाँ भोजन माँगने के लिए उदयन मेहता के घर गया। यहाँ पर उदयन मेहता ने उसकी धन एवं आवश्यक वस्तुओं से बड़ी सहायता की। इससे कुमारपाल बहुत प्रसन्न हुआ और सन् ११४३ में जब वह गद्दी पर बैठा तो तुरन्त उसने उदयन मेहता को अपना प्रधान मंत्री बनाया और उसके पुत्र बाहड़ को महामात्य नियुक्त किया।

एक बार कुमारपाल ने सोराष्ट्र के समर राजा को पकड़ने के लिए अपने मंत्री उदयन को सेनापति बनाकर भेजा। उदयन अपनी सेना के साथ रवाना होकर आगे बढ़ा और 'पालीताना' पहुँचकर उसने भक्तिभावपूर्वक श्री ऋषभदेव का पूजन और चैत्यवन्दना की। पूजन करते समय उसने देखा कि दीपमाला में से एक चूहा बत्ती उठाकर एक तरफ ले गया और लकड़ी से बने हुए उस मन्दिर के एक भाग में जाकर बैठ गया। रक्षकों ने यद्यपि उस चूहे से बत्ती छुड़ा लिया पर मंत्री की समाधि भंग हो गई। उदयन ने अपने मन में सोचा कि यह तीर्थ लकड़ी का मन्दिर खतरे में है। इसलिए उसने उसी समय इस मन्दिर को पाषाण का बनवाने का संकल्प किया और जब तक यह कार्य पूरा न हो जाय तब तक ब्रह्मचर्य से रहने एक बार भोजन करने जमीन पर सोने और ताम्बूल न खाने का नियम कर लिया।

इसके बाद राजा समर को लड़ाई में हराकर उसे मारकर उसके पुत्र को गद्दी पर बिठाकर जब वह वापस लौटा तब शरीर में बहुत से घाव लग जाने से वह मूर्छित हो गया था। मरते समय श्री गिरनार-तीर्थ पर नई सीढ़ियाँ बनाने और 'शत्रुंजय तीर्थ' पर पाषाणमय मन्दिर बनाने का भार अपने पुत्र बाहड़ पर छोड़ कर वह मर गया।

बाहड़ ने अपने पिता की आज्ञानुसार गिरनार पर जाकर सुगम पगडंडी का रास्ता बनवाकर सीढ़ियाँ बनवाईं और इसमें ६३ लाख रुपया खर्च किया। फिर कपर्दी मंत्री को अपना काम सौंपकर ४ हजार सवारों सहित शत्रुंजय की तलहटी में जाकर डेरा डाला। वहाँ पर दूसरे व्यापारी भी इस तीर्थ के जीर्णोद्धार में अपना भाग अदा करने के लिए धन ले-लेकर आये और बाहड़ मंत्री से प्रार्थना की कि—"यद्यपि आप अकेले ही इस तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ हैं तथापि इस महापुण्य में हमें भी सम्मिलित कर कृतार्थ करें।" यह कहकर उन्होंने उसके सामने सोने का ढेर लगा दिया। शुभ मुहूर्त देखकर मंत्री ने तीर्थ काष्ठमय प्रासाद को उतरवा दिया। नींव में विधिपूर्वक वास्तु मूर्ति पधराकर शिला से दबवाई और फिर दो वर्ष में प्रासादचैत्य बनवाकर तैयार करवा दिया।

इसके बाद उसने हेमचन्द्राचार्य तथा संघ को बुला कर—विक्रम संवत् १२११ में शनिवार के दिन सोने के दण्डकलश और ध्वजा चढ़ाकर प्रतिष्ठा की तथा देव पूजा के निमित्त २४ गाँव और २४ बाग दान में दिये। तल हटी में अपने नाम पर बाहड़पुर नगर बसाया और वहाँ पर 'श्री पार्श्वनाथ' की प्रतिमा से अलंकृत 'त्रिभुवनपाल' विहार बनवाया। कुछ लोगों के मत से इस सारे कार्य में बाहड़ ने १ करोड़ ६७ लाख द्रम्म खर्च किये थे मगर मेरुतुंगाचार्य के मतानुसार इस काम में १ करोड़ ६ लाख द्रम्म खर्च हुए।

उदयप्रभ सूरि

एक प्रसिद्ध जैनाचार्य जो आबू मन्दिरों के निर्माता गुजरात के प्रसिद्ध सेठ वस्तुपाल के कुलगुरु विजयसेन सूरि के शिष्य थे और अवस्था में वस्तुपाल से छोटे थे। इनकी मुख्य कृति 'धर्माभ्युदय' महाकाव्य अपर नाम 'संघपति-चरित' है, जिसमें वस्तुपाल की यात्रा का वर्णन

है। इस रचना की एक प्रति खंभात के जैन भंडार में सुरक्षित है, जो स्वयं वस्तुपाल की हस्तलिपि में हस्तलिखित है। इसका समय ईस्वी सन् १२ के आसपास माना जाता है।

उदयन-वासवदत्ता

भगवान् बुद्ध के समय में कौशाम्बी का सुप्रसिद्ध राजा 'उदयन' जो संगीतकला और ललितकलाओं का बड़ा मर्मज्ञ था और जिसका समय ईसा से पूर्व छठी शताब्दी के मध्य में माना जाता है। वह चन्द्रवंशी राजा शतानीक का पुत्र था।

उसी समय अवन्ति के सुप्रसिद्ध राजा चण्डप्रद्योत की अंगारवती रानी से उत्पन्न 'वासवदत्ता' नामक अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। राजा चण्डप्रद्योत उसे संगीतकला तथा ललित कलाओं की शिक्षा देना चाहता था। और उस कला का दक्ष उस समय वत्सराज 'उदयन' के सिवा कोई दूसरा दृष्टिगोचर नहीं होता था।

जैन परंपरा के अनुसार राजा चण्डप्रद्योत ने उदयन को कई कौशलों से हरण करवा कर मँगवा लिया और कारागार में बन्द करवा दिया। फिर उसने उससे कहा कि—"मेरे एक आँख वाली एक लड़की है उसे यदि तुम संगीत कला और वीणा वादन में निपुण कर दो तो तुम्हें कारागार से छुट्टी मिल सकती है। लेकिन मेरी कन्या एकाक्षी है इसलिए तुम कभी उसकी तरफ न देखना। क्योंकि तुम्हारे देखने से वह अत्यन्त लज्जित होगी। उधर उसने वासवदत्ता से कहा कि—'तेरे लिए गन्धर्व विद्या विशारद एक गुरु बुलवाया है। वह तुम्हें संगीत शास्त्र की शिक्षा देगा, पर वह कुष्ठी है इसलिए तू कभी उसके सामने मत देखना।"

कन्या ने पिता की बात को स्वीकार किया और वत्सराज उदयन ने उसे शिक्षा देना प्रारंभ किया। प्रद्योतराजा के किये हुए कौशल से कुछ दिनों तक उन दोनों ने एक दूसरे को नहीं देखा पर एक दिन वासवदत्ता को उदयन के देखने की इच्छा हुई जिससे वह जानबूझ कर हतबुद्धि सी हो गई। यह देखकर उदयन ने क्रोध में आकर कहा कि—"अरी एकाक्षी! पढ़ने में ध्यान न देकर तू क्यों गन्धर्व विद्या का नाश कर रही है।" इस तिरस्कार से क्रोधित हो उसने वत्सराज से कहा कि—"अरे कुष्ठी! अपनी ओर न देखकर तू मुझे एकाक्षी कहता है।'

यह सुनकर वत्सराज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि जैसा मैं कुष्ठी हूँ, वैसी ही यह एकाक्षी होगी। प्रद्योतराजा ने यह सब जाल किसी विशेष उद्देश्य सिद्धि के लिए बनाया है। यह सोचकर उसने वासवदत्ता को देखने की इच्छा से बीच का परदा हटा दिया।

बादलों से मुक्त होकर शरद् पूर्णिमा का चन्द्रमा जिस प्रकार अपनी कला का विस्तार करता है, उसी प्रकार परदे से मुक्त होकर चन्द्रकला की तरह वासवदत्ता उदयन को देखने में आई। इधर वासवदत्ता ने भी नेत्र भर कर साक्षात् कामदेव के समान सुन्दर वत्सराज उदयन को देखा। देखते ही दोनों ने एक दूसरे पर अपने को उत्सर्ग कर दिया।

एक दिन अवसर देखकर वत्सराज उदयन अपने मंत्री की सहायता से वासवदत्ता का हरण कर उसको हथिनी पर बैठा कर उज्जयिनी से निकल भागा। चण्डप्रद्योत ने उसे पकड़ने का बहुत यत्न किया, मगर सफलता न मिली और उदयन सकुशल अपनी राजधानी में पहुँच गया।

वासवदत्ता हरण का यह दृश्य ईसा से दूसरी सदी पूर्व की शुंग-कालीन मिट्टी की ईंटों पर खुदा हुआ मिला है। एक ऐसी ईंट काशी-विश्व-विद्यालय के भारती-कला-भवन में भी सुरक्षित है।

महाकवि भास ने अपने स्वप्न-वासवदत्ता और प्रतिज्ञा यौगन्धरायण दोनों नाटकों में अपने कथानक का नायक राजा उदयन को ही बनाया है।

जैन और बौद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी कई ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं जिनसे उदयन की ऐतिहासिकता सिद्ध होती है।

उदयनाचार्य

न्याय और वैशेषिक दर्शन के प्रसिद्ध व्याख्याता, जिनका समय सन् ९८४ के आसपास माना जाता है।

उदयनाचार्य मिथिला के 'करीयोन' नामक ग्राम के निवासी थे जहाँ इनके वंशज अभी भी मौजूद हैं। अक्षपाद गौतम की न्याय परम्परा के वे प्रौढ़ व्याख्याता माने जाते थे। इनके बनाये हुए ग्रन्थों में 'किरणावली' 'न्याय कुसुमांजलि' 'आत्मतत्त्व विवेक' 'न्याय परिशिष्ट' और 'न्याय-वार्तिक-तात्पर्य परिशुद्धि' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

नैयायिक श्रीधर ने उदयन की किरणावली को देख कर सन् ९९१ में प्रशस्तपाद भाष्य पर न्याय कन्दली नामक टीका की रचना की।

उदयनाचार्य ने बौद्ध-धर्म के खिलाफ आन्दोलन उठाकर उसको बड़ा धक्का पहुँचाया। ऐसा कहा जाता है कि सम्राट् हर्षवर्द्धन के पिता प्रभाकरवर्द्धन के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ था। मगर यह बात इसलिए ठीक नहीं मानी जा सकती कि प्रभाकरवर्द्धन का समय इनसे बहुत पश्चात् करीब ११ वीं शताब्दी के अन्त में पड़ता है।

उदयसिंह

मेवाड़ के सुप्रसिद्ध राणाप्रताप सिंह के पिता राणा उदय सिंह जिनका समय सन् १५४१ से १५७२ तक है।

राणा उदयसिंह राणा साँगा के छोटे पुत्र थे। राणा साँगा की मृत्यु के पश्चात् उनके दो पुत्र राणा रत्नसिंह और राणा विक्रमजीत मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। विक्रमजीत के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर मंत्रियों ने उसे राज्यच्युत करके बनवीर सिंह नामक एक व्यक्ति को 'चित्तौड़' की गद्दी पर बैठाया। उस समय राणा साँगा के कनिष्ठ पुत्र उदयसिंह की उम्र ६ वर्ष की थी। बनवीर सिंह ने यह समझकर कि बालिग होने पर उदयसिंह को गद्दी पर बैठाया जायगा—उसने उदयसिंह की हत्या करने का निश्चय कर लिया।

उस समय उदयसिंह का पालन-पोषण पन्ना धाय नामक एक स्त्री कर रही थी जो मेवाड़ के इतिहास में अपने अपूर्व त्याग की वजह से 'पन्नाधाय' के नाम से बहुत प्रसिद्ध है।

उदयसिंह की हत्या करने के लिए एक दिन बनवीर सिंह तलवार लेकर महल में पहुँचा। पन्ना धाय को जब यह बात मालूम हुई तो उसने उदयसिंह को छिपाकर उसकी जगह अपने पुत्र को रख दिया और संकेत से बता दिया कि उदयसिंह यही है। बनवीर सिंह ने उसी को उदयसिंह समझकर अपनी तलवार से मार डाला।

उसके बाद पन्ना धाय उदयसिंह को लेकर आश्रय के लिए मेवाड़ के सभी सरदारों के यहाँ गई, मगर बनवीर सिंह के डर से किसी ने आश्रय देना स्वीकार नहीं किया तब पन्ना धाय अकेली उदयसिंह को लेकर पहाड़ों को लाँघकर कमलमीर के सामन्त आशाशाह के आश्रय में गई। आशाशाह जैन धर्मावलम्बी थे। इन्होंने इन दोनों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा की।

उसके बाद यह बात चारों ओर फैल गई तब उदयपुर के मंत्रियों ने बनवीर को निकालकर उदयसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर सन् १५४१ में बैठाया।

कुछ वर्षों के पश्चात् अकबर बादशाह के आक्रमण मेवाड़ पर होने लगे। कुछ समय तक तो उदयसिंह अकबर की सेनाओं से लड़े मगर फिर चित्तौड़ से भागकर अरावली की उपत्यकाओं में इन्होंने 'उदयपुर' नामक नगर बसाया और वहीं अपनी राजधानी स्थापित की। तब से अभी तक मेवाड़ की राजधानी उदयपुर ही चली आ रही है।

सन् १५७२ में उदयसिंह का स्वर्गवास हुआ।

उदयनाथ त्रिवेदी 'कवीन्द्र'

अमेठी के राजा हिम्मतसिंह के दरबारी कवि, जो सन् १७१२ में विद्यमान थे।

उदयनाथ त्रिवेदी पं० कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। वे बनपुरा-बुक्सार के निवासी थे और अमेठी के राजा हिम्मतसिंह के दरबारी कवि थे। राजा द्वारा इन्हें 'कवीन्द्र' की उपाधि मिली थी। यह उपाधि इन्हें 'रस-चन्द्रोदय' नामक ग्रन्थ निर्माण करने पर प्राप्त हुई थी। इस ग्रन्थ की रचना सन् १७४७ में की गई थी।

उदयपुर

राजपूताने की इतिहास प्रसिद्ध रियासत और मेवाड़ की राजधानी, जिसे मेवाड़ के राणा उदयसिंह ने १६वीं शताब्दी में बसाया था। इसके उत्तर में अजमेर, दक्षिण में डूँगरपुर और बाँसवाड़ा, पूर्व में कोटा और बूँदी और पश्चिम में अरावली पहाड़ है।

यह नगर अरावली पर्वत की उपत्यकाओं में प्रतिष्ठित होने से इसका प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर और परम मनोरम है। यह नगर राजस्थान की उस पवित्र भूमि मेवाड़ में अवस्थित है, जहाँ का इतिहास स्वतंत्रता के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने वाले महावीरों की कीर्ति-गाथाओं से भरा हुआ है, जिनका पूरा वर्णन 'मेवाड़' नाम के साथ में इस ग्रन्थ के अगले भागों में किया जायगा।

उदयपुर के अन्तर्गत बहुत सी कृत्रिम और प्राकृतिक झीलें और बगीचे बने हुए हैं। इनमें 'फतेह-सागर' और पिछोला नामक जलाशय बहुत सुन्दर हैं। पिछोला नामक जलाशय के बीच में 'जग मन्दिर' जग-निवास नामक महाराणा का अत्यन्त सुन्दर महल बना हुआ है, जिसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते रहते हैं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी अर्ध शिखर पर नाना प्रकार के मूल्यवान पत्थरों से निर्मित महाराज का महल 'सुखराज घर' दरबार-भवन और 'जगन्नाथ मन्दिर' दर्शनीय हैं। बगीचों में 'सहेलियों की बाड़ी' नामक उद्यान बहुत सुन्दर बना हुआ है।

यहाँ की शिक्षा-संस्थाओं में डा० मोहनसिंह मेहता और उनके साथियों के प्रयत्न से स्थापित विद्या-भवन नामक संस्था सारे भारतवर्ष की शिक्षा-संस्थाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बहुत छोटे पाये से प्रारम्भ हुई इस संस्था ने अब बड़ा विशाल रूप धारण कर लिया।

महिलाओं की शिक्षा के लिए पं० रमाशंकर ओमिया के प्रयत्नों से स्थापित महिला-मण्डल नामक संस्था अपने काम को सुचारु रूप से कर रही है।

स्वतन्त्र भारत में 'वृहद् राजस्थान' का निर्माण होने के पश्चात् उदयपुर अब राजस्थान के एक ज़िले के रूप में परिवर्तित हो गया। इस पुण्यभूमि की महत्ता को समझ कर राजस्थान के वर्तमान प्रधान मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने इस नगर को शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र बना दिया है। इस नगर में इञ्जीनियरिंग, एग्रीकल्चर इत्यादि भिन्न-भिन्न विषयों के अनेक कालेजों की स्थापना कर दी गयी है।

राजस्थान-साहित्य 'एकाडेमी' का प्रधान आफिस भी इसी नगर में स्थित है जिसके अध्यक्ष पं० जनार्दन राय नागर पुराने मँजे हुए साहित्यकार और राजनैतिक कार्यकर्ता हैं।

उदयशंकर भट्ट

हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक जिनका जन्म सन् १८९७ में इटावा में हुआ। इनके रचे हुए काव्यों में 'तक्षशिला' 'राका' 'मानसी' इत्यादि काव्य प्रसिद्ध हैं मगर इनकी कला का पूर्ण विकास पौराणिक नाटकों में दिखाई पड़ता है। पौराणिक क्षेत्र के भीतर उनके पात्र जीवन की रहस्यमयी विषमता से घिरे हुए नज़र आते हैं। ऐसी विषमतायें, जो वर्तमान समाज को क्षुब्ध करती रहती हैं। इनके नाटकों में अम्बा 'मत्स्यगन्धा' 'विश्वामित्र' और सगर-विजय प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक नाटकों में 'विक्रमादित्य' और 'दाहर' अथवा 'सिन्ध-पतन' उल्लेखनीय हैं।

उदन्त-मार्तण्ड

हिन्दी का एक समाचार-पत्र जिसका प्रकाशन कानपुर के पं० जुगल किशोर ने सन् १८२६ में कलकत्ते से प्रारम्भ किया।

अभी तक ऐसा माना जाता है कि 'उदन्त मार्तण्ड' हिन्दी का सबसे पहला समाचार है, जो प्रति मंगलवार को कलकत्ते से प्रकाशित होता था। इसके पहले अंक की लम्बाई १२ अंगुल और चौड़ाई ११ अंगुल थी।

इसके एक अंक में लिखा था—

'यह उदन्त-मार्तण्ड अब पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी व फारसी व बंगले में जो समाचार का कागज छपता

है उसका मूल्य उन कौमियों के जानने को पढ़ने वालों को ही होता है। इससे अब समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ के समझ लेवें जो पराई अपेक्षा न करें जो अपने माथे की उपज न छोड़ें। इसलिए श्रीमान् गवर्नर जनरल बहादुर की आयत से ऐसे छापे में चित्त लगाय के एक प्रकार से नया ठाट ठाटा। जो कोई प्रशस्त लोग इस खबर के कागज के लेने की इच्छा करें तो अमड़ातल्ला की १० अंक मार्तण्ड छापाघर में अपना नाम जो ठिकाना भेजने ही से सतवारे के सतवारे यहाँ के रहने वाले घर बैठे जो बाहर रहने वाले डाक पर कागज पाया करेंगे।

करीब डेढ़ वर्ष चलने के पश्चात् यह पत्र आर्थिक कठिनाई के कारण बन्द हो गया।

उदयादित्य

मालवा का एक परमार राजा जो राजा भोज के पुत्र जयसिंह के पश्चात् मालवे की गद्दी पर बैठा। इसका समय लगभग सन् १०५९ है।

उदयादित्य के राज्यारूढ़ होने पर राजा भोज के पश्चात् मालवे का वैभव जो ह्रास पाने लग गया था वह फिर से स्थिर हो गया। उदयादित्य एक शक्तिशाली राजा था और उसमें अपने पूर्वजों की तरह विद्याभिरुचि भी थी। अपने नाम पर उसने 'उदयपुर' नामक एक नगर भी बसाया था और वहाँ उसने एक अत्यन्त भव्य शिवालय बनवाया। नागपुर और उदयपुर की प्रशस्ति से यह मालूम होता है कि उसने मालवे का उद्धार अपने स्वयं पराक्रम से किया था और किसी विदेशी शक्ति की सहायता नहीं ली थी।

उदयपुर के शिवालय के इतना ऊँचा शिखर भारतवर्ष में किसी देवालय का नहीं है। इस मन्दिर के बनाने में चूना या मसाला नाम को भी नहीं लगाया गया था। उसमें पत्थर काट कर इस तरह से लगाये हैं कि वे मानो एक ही से जुड़ गये हैं। इस देवालय में परमार राजाओं के कई शिलालेख हैं। इन शिलालेखों में दो शिलालेख बहुत पुराने हैं जो स्वयं उदयादित्य के हैं। इनसे ज्ञात होता है कि देवालय के निर्माण का काम सन् १०५९ से प्रारंभ हुआ और सन् १०८० में समाप्त हुआ।

उदयादित्य ने सन् १०५९ से १०८१ तक राज्य किया।

उदायी

प्राचीन मगध का प्रतापी सम्राट् राजा अजातशत्रु का पोता और राजा दर्शक का पुत्र जिसका राज्यकाल ई० सन् पूर्व ४८३ से ४६७ तक अनुमान किया जाता है।

सम्राट् उदायी शिशुनाग-वंश का एक अत्यन्त प्रतापी सम्राट् था। अपने राज्यकाल के दूसरे ही वर्ष में इसने समस्त अवन्ति के राजा विशाखयूप को जीतकर अपने अधीन कर लिया। १ वर्ष के पश्चात् विशाखयूप की मृत्यु होने पर सम्राट् उदायी ने उज्जयिनी को सीधे मगध-साम्राज्य में मिला लिया मगर दोनों के शासन को उसने अलग-अलग रखा। अवन्ति का मगध-साम्राज्य में सम्मिलित होना इस युग की सबसे बड़ी घटना थी, जिसके परिणामस्वरूप पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक मगध का एकच्छत्र राज्य हो गया और केन्द्रीय भारत में कोई दूसरा उसका प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा।

सम्राट् उदायी ने पाटलीपुत्र नामक नगर को बसाकर मगध साम्राज्य की राजधानी को राजगृह से हटाकर इस नवीन नगरी में स्थापित कर दिया। पाटलीपुत्र नगर की स्थापना सम्राट् उदायी ने गंगा और सोन के ठीक संगम पर की थी। पाटलीपुत्र आधुनिक पटना का प्राचीन नाम है, पर सोन की धारा अब आठ मील पश्चिम में खिसक गई है जिससे पटना अब सोन और गंगा के ठीक संगम पर नहीं रहा है।

बिम्बसार के समय से मगध का जो साम्राज्य समृद्ध होना प्रारंभ हुआ था वह एक शताब्दी की प्रथम पाद के बाद अब सम्पूर्ण हुआ। बिम्बसार के समय तक अंग देश जीता जा चुका था। अजातशत्रु ने कोशल का पराभव किया अवन्ति का मुकाबला किया और वृजी-संघ को अपने राज्य में मिलाया। अन्त में उदायी ने अवन्ति को जीतकर इस साम्राज्य को केन्द्रीय-भारत में सबसे शक्तिशाली साम्राज्य बना दिया।

उदासी-सम्प्रदाय

भारतवर्ष में नानकपंथी संन्यासियों का एक सम्प्रदाय।

ऐसा कहा जाता है कि गुरु नानकदेव के पुत्र श्रीचन्द्र नामक एक साधु हुए जिन्होंने इस सम्प्रदाय को विशेष रूप से संगठित किया। इनकी १६ वीं पीढ़ी में 'बनखंडी' नामक एक प्रसिद्ध साधु हुए, जिन्होंने सन् १८२१ ईस्वी में सिन्ध के अन्तर्गत 'साधुबेला' नामक तीर्थ की स्थापना की। तब से यह तीर्थ इस सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र बन गया। बाद में सिन्ध के पाकिस्तान में चले जाने से बनखंडी की चौथी पीढ़ी में वर्तमान साधु गणेश दास ने सन् १९४८ में इसे काशी के भदैनी मुहल्ले में स्थापित किया।

इस सम्प्रदाय के अनुयायी विशेषकर सिन्ध और पंजाब में पाये जाते हैं। हरिद्वार, काशी और वृन्दावन में भी इसके अनुयायी मिलते हैं। उज्जैन और नासिक में भी उदासियों के अखाड़े स्थापित हैं।

उदासी सम्प्रदाय की ४ शाखाएँ प्रधान हैं। (१) फूल साहिबवाली बहादुरपुर की शाखा (२) बाबा हसन की चरनकौल की शाखा (३) अलमस्त साहब की नैनीताल की शाखा और (४) गोबिन्द साहब की शिकारपुरवाली शाखा।

विलियम क्रुक के मतानुसार पूर्वी भारत के अन्तर्गत इनकी १७ गद्दियों का होना बतलाया गया है।

उदासियों के अखाड़ों को 'धुनी' कहा जाता है। इनकी परम्परा के अनुसार काबुल के किसी मन्दिर में अब भी ऐसी धुनी जल रही है जिसे स्वयं श्रीचन्द्र ने प्रज्वलित किया था।

उदासी लोग सिक्खों के आदिग्रन्थ को पूज्य मानते हैं और शंख-घड़ियाल बजाकर उसकी पूजा करते हैं। इस सम्प्रदाय में कुछ लोग नागा हुआ करते हैं जिनके नामों के आगे दास या शरण की उपाधि लगी रहती है और कुछ लोग परमहंस होते हैं जिनके नाम के आगे 'आनन्द' शब्द लगा रहता है। नागा लोगों के पहनावे का वस्त्र बहुत कम रहता है। वे अपने शरीर पर भस्म का अधिक प्रयोग किया करते हैं। परमहंस का पहनावा गेरुवे वस्त्र का होता है और उनका सिर मुँड़ा हुआ रहता है। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों में स्त्री संन्यासिनियों की संख्या बहुत कम होती है।

उद्योतकर

न्याय दर्शन के एक विद्वान आचार्य जिनका समय ईसवी सन् ६३५ के लगभग माना जाता है।

गौतम के न्याय-दर्शन पर वात्स्यायन का जो भाष्य था उसकी आलोचना बौद्ध-दार्शनिक 'दिङ् नाग' ने अपने 'प्रमाण-समुच्चय' ग्रन्थ में की थी। दार्शनिक उद्योतकर ने वात्स्यायन-भाष्य पर व्याख्या लिखकर न्यायशास्त्र की दृष्टि से बौद्ध मत का खण्डन किया। इनकी व्याख्या पर वाचस्पति मिश्र ने 'तात्पर्य टीका' नामक व्याख्या-ग्रंथ का निर्माण किया।

उद्योतन सूरि

कुवलय माला-कथा नामक प्रसिद्ध जैन ग्रंथ के रचयिता श्री उद्योतन सूरि जिनका समय सन् ७७७ के लगभग माना जाता है।

श्री उद्योतन सूरि ने अपने ग्रन्थ में अपना परिचय देते हुए लिखा है कि—"उन्होंने 'ह्री-देवी' के दर्शन के प्रताप से इस कथा की रचना की। उनके सिद्धान्त गुरु वीरभद्र नामक आचार्य थे और युक्तिशास्त्र सिखाने वाले गुरु हरिभद्र थे। इस कथा की रचना करते समय उन्होंने अपना नाम दाक्षिण्यचिह्न सूरि रख लिया था।'

उद्योतन सूरि की कुवलय माला नामक प्रसिद्ध कथा प्राकृतभाषा में एक अमूल्य रत्न के समान है। इसकी रचना-शैली 'बाण की कादम्बरी' या 'त्रिविक्रम की 'दमयन्ती कथा' की तरह है। इसकी भाषा अत्यन्त मनोरम और कल्पना चमत्कारपूर्ण है। प्राकृत-भाषा के विद्यार्थियों के लिए तो यह एक अनुपम ग्रन्थ है। इस कथा में कवि ने कौतुक और विनोद के वशीभूत होकर मुख्य प्राकृत भाषा के

अतिरिक्त अपभ्रंश और पैशाची-भाषा में भी इन्होंने ही वर्णन किये हैं, जिनकी उपयोगिता भाषाशास्त्र की दृष्टि से बहुत अधिक है। अपभ्रंश-भाषा में लिखे हुए इनके प्राचीन ग्रन्थ अभी तक अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होते।

इस कथा की रचना कवि ने 'जाबालिपुर' नामक स्थान पर 'आदिनाथ' भगवान के मन्दिर में की थी। यह जाबालिपुर आजकल 'जालोर' के नाम से प्रसिद्ध है जो जोधपुर के दक्षिण में राजस्थान का एक जिला है। उस समय यह एक नगर के रूप में था।

उस समय की राजनैतिक स्थिति का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि—"उस समय प्रतिहार राजवंश का महान् सम्राट् वत्सराज अपने पराक्रम से उत्तर भारत के कान्यकुब्ज साम्राज्य का स्वामी बन गया। प्रतिहार-वंश की मूल जन्मभूमि गुजरात थी। इस राजवंश का विशेष प्रभाव बढ़ाने वाला सम्राट् वत्सराज था। गुजरात के भीनमाल स्थान से उत्पन्न हुआ और कन्नौज में उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचा हुआ गुर्जर-प्रतिहार वंश भारत में गुर्जरों का प्रतिनिधित्व था। वत्सराज की राजधानी पहले जाबालिपुर (जालोर) में थी। वहाँ से वत्सराज के पुत्र 'नागभट्ट' ने हमेशा के लिए राजधानी को हटाकर कन्नौज में स्थापित की और सौराष्ट्र, मालव इत्यादि दूर-दूर के बड़े प्रदेशों को विजय कर 'उत्तरापथ' में एक महान् साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

इससे पता लगता है कि प्रतिहार-वंश का यह वत्सराज वही होना चाहिए जिसने कन्नौज के राजा इन्द्रायुध को परास्त कर कन्नौज में अपना राज्य स्थापित किया।

उदयशंकर

भारतवर्ष में नृत्य शास्त्र के एक पारंगत कलाकार जिन्होंने आधुनिक युग में भारतीय नृत्यकला को नवजीवन प्रदान कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति को प्राप्त किया जिससे सारे संसार का ध्यान भारतीय-नृत्यकला की ओर आकर्षित हुआ।

उदयनारायण तिवारी

हिन्दी-साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक, जिनका जन्म सन् १९०५ में बलिया जिले के दीयरपाँती नामक ग्राम में हुआ।

डा० उदयनारायण तिवारी ने भोजपुरी-साहित्य पर अनुसन्धानात्मक (शोधपूर्ण) निबन्ध प्रस्तुत कर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इनके शोधपूर्ण निबंधों की प्रशंसा सर जार्ज ग्रियर्सन के समान विदेशी विद्वानों ने भी की। इनकी रचनाओं में कवितावली रामायण की भूमिका राजस्थानभाषा, अमरकीर्ति वीरकाव्य-संग्रह कहानी-कुञ्ज इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

उदयामती

गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम की पत्नी और राजा कर्ण सोलंकी की माता, जिनका समय सन् १०२२ से १०७२ तक समझा जाता है।

राजा कर्ण का विवाह चन्द्रपुर के राजा जयकेशी की पुत्री मीनल देवी' से हुआ था मगर विवाह करने के बाद राजा कर्णराज ने अधिक रूपवती न होने के कारण मीनल देवी से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखा। मीनल देवी अपने पति के ऐसे व्यवहार से बहुत दुःखी हुई और उसने अपनी दासियों सहित चिता में जलकर प्राण त्याग करने का विचार किया। कर्ण की माता उदयामती ने भी अपनी पुत्रवधू के दुःख से दुःखी होकर आग में जलकर प्राणत्याग करने की धमकी दी। कर्ण की प्रजा ने भी राजा को इस कष्ट और पाणिग्रहण को शुभ रूप में लिया थी, मगर राजा कर्ण टस से मस नहीं हुआ।

वह मयणल्ला नामक एक अत्यन्त सुन्दरी नर्तकी पर आसक्त था। उसने उससे एकान्त में मिलने का संकेत किया। यह बात जब उसके मंत्री 'मुंजाल' को मालूम हुई तो उसने किसी प्रकार उस नर्तकी के स्थान पर मीनल देवी को पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया। कर्णराज जाल में फँस गया और रानी उसी दिन उससे गर्भवती हुई। रानी ने उससे युक्ति के साथ एक अँगूठी की निशानी इसलिए ले

गुजराती सुल्तान के राज्यकाल में यह नगर बहुत प्रसिद्ध हो गया था।

उन्नाव

उत्तरप्रदेश का एक ज़िला, जिसका मुख्य शहर उन्नाव कानपुर और लखनऊ के बीच अवस्थित है।

ऐसा कहा जाता है कि मुसलमानों के आक्रमण के पहले यहाँ पर विष्णुराज नामक कोई राजा राज्य करता था। एक समय जबकि उसके राजपुत्र का विवाह था उसी समय सैय्यद सालारउद्दीन नामक एक मुसलमान ने धोखे से हमला करके इस स्थान पर कब्ज़ा कर लिया। तब से यह स्थान मुसलमानों की जमींदारी में आ गया।

उन्नाव के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती इस प्रकार है—'कोई ११ सौ वर्ष पहले कंनराज के अधीन गजसिंह नामक चौहान सिपाही ने इस स्थान को साफ करवा कर यहाँ पर सरायगढ़ा के नाम से एक गाँव बसाया किन्तु थोड़े दिन बाद वह इसे छोड़कर चला गया। उसके बाद कन्नौज के राजा जयचन्द ने इस स्थान पर अपना अधिकार जमाया। उसने खांडेसिंह नाम के एक व्यक्ति को यहाँ का शासनकर्त्ता बना कर भेजा। कुछ दिनों के बाद उनवन्तसिंह नामक एक व्यक्ति खांडेसिंह को मारकर यहाँ का राजा बन बैठा। उसने अपने नाम के अनुसार सरायगढ़ा का नाम बदलकर उन्नाव नाम रखा। १७६५ ई० में उसके वंशज राजा अमरजन सिंह के समय दिलवर लोगों ने दगाबाज़ी से इस नगर को अपने हाथ में कर लिया।'

सन् १८५७ के ग़दर के समय में यह शहर फिर से जाग उठा। सिपाही विद्रोह में उन्नाव के कितने ही लोगों ने क्रान्तिकारियों का साथ दिया। जनवार के राजा जसोसिंह ने कई अंग्रेजों को पकड़-पकड़ कर मौत के घाट भेजा। तब अंग्रेज सेनापति 'हैवलाक' ने उनके विरुद्ध सेना भेजी। इस लड़ाई में जसोसिंह मारे गये।

ग़दर के समाप्त होने पर अंग्रेजों ने यहाँ के राजपुत्र को फाँसी पर चढ़ा दिया और उन्नाव को अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया।

उपनिषद्

भारतीय अध्यात्म विद्या की खोज में ऋषि-मुनियों के द्वारा किये हुए प्रयत्नों का महान् साहित्य उपनिषद् है।

ब्रह्मविद्या और संसार तथा लोक-परलोक के ज्ञान को प्रतिपादित करना उपनिषदों का प्रधान ध्येय रहा है। उपनिषद् भारतीय अध्यात्मशास्त्र के ऐसे देदीप्यमान रत्न हैं जिनकी प्रभा काल के भीषण प्रहारों से भी कभी मलीन नहीं होती। थोड़े शब्दों के अन्तर्गत सूत्ररूप में जीवन के जटिल रहस्यों की जितनी गहन समीक्षा उपनिषदों में की गई है उतनी मार्मिकता को छोड़ कर और स्थानों पर कम ही देखने को मिलेगी।

यमराज से वर माँगते हुए 'नचिकेता' पूछता है—"हे यमराज! मनुष्य के मर जाने पर शरीरस्थ चेतन जीवात्मा व परमात्मा को कुछ लोग नित्य और कुछ लोग नाशवान मानते हैं—इस प्रकार का संशय जो संसार में है, उसको निवृत्ति के लिए मैं आपके समान महान् गुरु से यह तीसरा वर माँगता हूँ। कृपाकर मुझे समझाइये कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा की क्या स्थिति होती है?"

इसी प्रश्न के उत्तर यमराज की जो व्याख्या है, वही कठोपनिषद् में बतलायी गई है।

इसी प्रकार अन्य उपनिषदों में भी भारतीय महर्षियों ने अपने ज्ञानचक्षुओं से जिन आध्यात्मिक तत्त्वों का साक्षात्कार किया था उनका विवेचन उपनिषदों में किया गया है।

उपनिषदों की संख्या मुक्तिकोपनिषद् में १०८ बतलायी गई है। इनमें से १० उपनिषदें ऋग्वेद से सम्बद्ध हैं, १९ शुक्ल यजुर्वेद से, ३२ कृष्ण यजुर्वेद से, १६ सामवेद से और ३१ अथर्ववेद से। इनके सिवाय और भी उपनिषद् हैं, पर इन सब में ११ उपनिषद् बहुत प्रसिद्ध हैं जिनके नाम १ ईश २ केन ३ कठ, ४ प्रश्न ५ मुण्डक, ६ माण्डूक्य ७ तैत्तिरीय ८ ऐतरेय ९ छान्दोग्य १० बृहदारण्यक और ११ श्वेताश्वतर हैं।

वेदान्त के कई प्रसिद्ध आचार्यों ने अपने मत को पुष्ट करने के लिए समय-समय पर इन उपनिषदों पर भाष्यों की रचना की है।

उपनिषदों के रचना-काल के विषय में भी विद्वानों के अन्दर बड़ा मतभेद है, पर इतना तो निश्चित ही है कि प्रधान उपनिषदों की रचना बुद्ध के आविर्भाव से बहुत पहले हो चुकी थी। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक सब उपनिषदों से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा प्राचीन माने जाते हैं।

उपनिषद् वास्तव में वह आध्यात्मिक-स्रोत है, जिससे भिन्न-भिन्न ज्ञान सरिताएँ निकल कर मनुष्य जाति के इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण के लिए हमेशा प्रवाहित होती रहती हैं। हिन्दू-दर्शनशास्त्र की प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत उपनिषद् को ही प्रथम प्रस्थान के रूप में ग्रहण किया गया है।

द्वितीय प्रस्थान श्रीमद्भगवद्गीता है जिसको भगवान कृष्ण ने अर्जुन के लिए उपनिषदों के तत्वों का मन्थन करके सारभूत रूप में प्रस्तुत किया था।

तृतीय प्रस्थान बादरायण व्यास के द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र है, जिसमें विरोधी प्रतीत होने वाले उपनिषद् के वाक्यों का समन्वय और अभिप्राय दिखलाया गया है। इस प्रकार गीता और ब्रह्मसूत्र-उपनिषदों पर ही आश्रित हैं। अतः उपनिषद् ही भारतीय दर्शन-शास्त्र के मूल स्रोत हैं इसमें कोई सन्देह नहीं।

उपनिषद् कोई एक शताब्दी की रचना न होकर अनेक शताब्दियों के आध्यात्मिक चिन्तन के परिणाम हैं। अतः उनमें परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का मिलना स्वाभाविक है। फिर भी उनका चरम लक्ष्य एक ही है और वह इस परिवर्तनशील जगत् के मूल में विद्यमान रहने वाले शाश्वत पदार्थ को ढूंढ निकालना है।

विदेशों में उपनिषदों का प्रभाव

भारतीय दर्शन-शास्त्र के इन दिव्य ग्रन्थों ने अपनी गम्भीर विवेचना से विदेशी विद्वानों को भी बहुत प्रभावित किया है। १७वीं शताब्दी में दाराशिकोह ने चुने हुए ५ उपनिषद्-ग्रन्थों का फारसी-भाषा में अनुवाद किया था। इसी अनुवाद का लैटिन-भाषा में अनुवाद फ्रेंच विद्वान 'आंक्वेतील डुपेरों' ने किया था। यह अनुवाद टूटा-फूटा और अधूरा था, परन्तु इसी को पढ़ कर जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक 'शोपेनहार' ने कहा था कि—"उपनिषद् मानव-मस्तिष्क की सबसे ऊँची एवं पूर्ण रचना है और मेरे जीवन में इन ग्रन्थों से वास्तविक शान्ति प्राप्त हुई है।

इसीलिए वह विद्वान अपने ३ गुरुओं में प्लेटो और कैंट के साथ उपनिषदों को भी स्थान देता है। उसके पश्चात् तो पाश्चात्य-जगत के विद्वान उपनिषदों के प्रति बहुत अधिक आकर्षित हुए और अब तो शायद ही कोई ऐसी सभ्य-भाषा होगी जिसमें उपनिषदों का अनुवाद न मिलता हो।

उपनिवेशवाद

किसी भी शक्तिशाली राष्ट्र के द्वारा अन्य देशों पर विजय प्राप्त करके अपनी राजनैतिक प्रभुता स्थापित करने के लिए अथवा व्यापारिक विस्तार करने के लिए जो बस्तियाँ आबाद की जाती हैं उन्हें आधुनिक युग की भाषा में 'उपनिवेश' कहते हैं।

औपनिवेशिक बस्तियों की स्थापना का इतिहास बहुत प्राचीन समय से चला आता है प्राचीन-काल में रोम साम्राज्य ने ब्रिटेन फ्रांस आदि दूर दूर के अनेक देशों में अपने उपनिवेशों की स्थापना की थी। इसी प्रकार फिनीशिया के लोगों ने भी समुद्र-मार्ग से अपार दिग्विजय ट्यूनिस और अफ्रिका में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे।

इजियायी सभ्यता के प्रमुख केन्द्र क्रीट के मिनोस राजाओं ने क्रीट के आसपास के सब द्वीपों में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। महाकवि होमर-द्वारा वर्णित ट्राय नगर भी मिनोई-राजवंश का एक उपनिवेश था।

इन्हीं दिनों कार्थेज के निवासियों ने राजकीय सत्ता स्थापित करने के लिए अफ्रिका सिसली, स्पेन इत्यादि अनेक स्थानों पर अपने उपनिवेश स्थापित किये हुए थे।

भारतवर्ष के राजाओं ने भी समय-समय पर जावा, सुमात्रा स्याम तथा इण्डोचायना के अन्य स्थानों पर

अपने नये उपनिवेश स्थापित किये थे और वहाँ पर कई शताब्दियों तक राज्य करके अपनी सभ्यता और अपने धर्म का विस्तार किया था।

१४ वीं शताब्दी से उपनिवेशों का इतिहास व्यवस्थित रूप से स्पेन और पुर्तगाल के द्वारा प्रारम्भ हुआ। स्पेन और पुर्तगाल के व्यापारियों ने १५ वीं शताब्दी से समुद्र मार्ग के द्वारा विश्व के अनेक स्थानों का पता लगाना शुरू किया। सन् १४९३ में रोमन-चर्च के पोप ने एक फरमान निकाल कर अजोर्स नामक स्थान के पश्चिम ३ सौ मील के फासले पर उत्तर से दक्षिण तक समुद्र में एक काल्पनिक रेखा खींच दी और इस रेखा के पूर्व में जितने गैर ईसाई मुल्क मिले, उन पर पुर्तगाल का और पश्चिम में मिले हुए मुल्क पर स्पेन का अधिकार घोषित कर दिया। इस घोषणा के अनुसार अमेरिका महाद्वीप स्पेन के हिस्से में और इण्डोनेशिया इण्डोचायना भारत चीन अफ्रिका आदि मुल्क पुर्तगाल के हिस्से में आये।

इस फैसले के अनुसार ईसा की १६ वीं सदी से अमेरिका में स्पेनी लोगों ने प्रवेश करना प्रारम्भ किया। मैक्सिको में हर्नेन कोर्टे ने अपने घोड़ों और बन्दूकों के बल से प्राचीन अजटेक-साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया और पेरू में 'पिजारो' नामक स्पेन वासी ने इन्का नाम राज्य को नष्ट कर अपना उपनिवेश स्थापित किया।

दूसरी तरफ पुर्तगालवालों ने ब्राजील भारत के पश्चिमी समुद्र-तट और मलाया तथा पूर्वी द्वीप समूह में अपने उपनिवेश कायम किये।

इनकी बढ़ती को देखकर फ्रांस इंग्लैण्ड और हालैण्ड के लोगों ने भी उत्तरी अमेरिका पश्चिमी द्वीप समूह दक्षिण पूर्वी एशिया अफ्रिका तथा भारत में अपने व्यापारिक केन्द्रों की स्थापना की।

इन उपनिवेशों की स्थापना के लिए इन सब देशों में बड़ी प्रतिस्पर्धा और लड़ाइयाँ चलती रहीं और एक देश के लोग दूसरे देश वालों को इन उपनिवेशों से निकालने की कोशिश करते रहे।

इन उपनिवेशवादियों में सबसे अधिक भाग्यशाली इंग्लैण्ड का राष्ट्र रहा जिसने भारत और अमेरिका में अपने सब प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त कर एक-छत्र शासन की स्थापना की। हालांकि कुछ दिनों के पश्चात् उसके अमेरिका के उपनिवेश स्वतंत्रता की लड़ाई लड़कर उसके शासन से बाहर हो गये। फिर भी आस्ट्रेलिया कनाडा भारतवर्ष अफ्रिका इत्यादि अनेक स्थानों पर उसके साम्राज्य में इतने अधिक उपनिवेश हो गये कि एक समय ऐसा आया जबकि उसके साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता था।

इंग्लैण्ड के पश्चात् फ्रांस हालैण्ड और पुर्तगाल के उपनिवेश भी संसार के विभिन्न भागों में फैले हुए थे।

मानवीय इतिहास में उपनिवेशवाद का इतिहास कत्ल, लूटखसोट और धोखाधड़ी का एक वीभत्स इतिहास है जिसमें सभ्य और उन्नत कही जाने वाली गोरी जातियों ने काली जातियों पर उनकी कमजोरी, अज्ञान और फूट-परस्ती का लाभ उठाकर अमानवीय अत्याचार किये।

उपनिवेशवाद औद्योगिक क्रान्ति और मशीन-युग का एक अवश्यंभावी परिणाम था जिसमें पश्चिम के राष्ट्रों ने अपने कारखानों में बने हुए माल को खपाने के लिए और उद्योगपतियों को मालामाल करने के लिए संसार में नये-नये बाजारों को ढूँढने का प्रयत्न चालू किया। यही पूँजीवाद आगे चलकर अपनी शक्ति और संगठन के बल से साम्राज्यवाद के रूप में परिणित हो गया और मुट्ठीभर लोग करोड़ों-अरबों लोगों के रक्त का शोषण कर अपने को समृद्ध बनाने लगे।

इसी समृद्धिकाल के बीच इन उपनिवेशवादी राष्ट्रों के अनुकरण पर जर्मनी ने भी अपने उपनिवेशवाद का प्रसार करने का संकल्प किया जिसको इंग्लैण्ड और फ्रांस के लोग सहन नहीं कर सके और जिसके परिणामस्वरूप २५ वर्षों की मर्यादा में यूरोप की भूमि ने दो महान् भयंकर युद्धों की विभीषिका को जन्म दिया। इन युद्धों में जर्मनी का तो सर्वनाश हो ही गया मगर विजेता राष्ट्र भी अपने विशाल साम्राज्यों की संचित की हुई विशाल निधि को सुरक्षित रखने में असमर्थ हो गये।

२० वीं सदी के मध्यकाल का इतिहास 'उपनिवेशवाद' के लिए मौत का परवाना लेकर आ पहुँचा। सदियों से साम्राज्यवाद के फौलादी शिकंजे में फँसी हुई शोषित,

पीड़ित और शोषित जनता में एक नवीन जागृति और चेतना की लहर दौड़ गई। यह लहर अत्यन्त शक्तिशाली और दुर्दमनीय थी। सताया हुआ मानव अपनी पूर्ण-शक्ति के साथ स्वाधीनता के लिए झुँझला उठा था और इतिहास को चुनौती दे रहा था। इस चुनौती को सबसे पहले इंग्लैंड के राष्ट्र ने समझा और बड़ी बुद्धिमानी के साथ किसी गहरे झमेले में न पड़कर उसने भारत बर्मा और सीलोन को अपने पंजे से मुक्त कर दिया। इससे तो सारे संसार के उपनिवेशों में हलचल मच गयी और एक के बाद दूसरे उपनिवेश तेजी के साथ कहीं शान्ति पूर्ण क्रान्ति के द्वारा और कहीं रक्तपातपूर्ण क्रान्ति के द्वारा अपनी आजादी को प्राप्त करने लगे।

सन् १९४९ से सन् १९६१ ई० तक संसार के अधिकांश उपनिवेशों ने अपनी गुलामी की बेड़ियों को तोड़ दिया और दक्षिण अफ्रिका आदि के जो थोड़े उपनिवेश बच गये हैं, वे भी बहुत तेजी के साथ अपनी गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं और उनकी सफलता के निश्चित होने में और भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार इस उपनिवेशवाद का वह भयंकर भूत जो कई शताब्दियों से मानवीय इतिहास के ऊपर हावी हो रहा था, अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर बेतहाशा भागता हुआ नजर आ रहा है और सारे संसार की जनता आनन्द के साथ तालियाँ बजा-बजाकर इस पलायन के दृश्य को देख रही है।

उपन्यास-साहित्य

मानवीय जीवन और समाज के चित्र को कहानी द्वारा कुछ यथार्थ और कुछ कल्पना के मिश्रण से गद्य-साहित्य में चित्रित की हुई रचना को साधारणतः आधुनिक भाषा में उपन्यास कहा जाता है।

उपन्यास की कला का विकास मानवीय साहित्य के अन्तर्गत अनेक युगों में, अनेक परिवर्तनों के साथ हुआ है और इसी विकास का परिणाम आधुनिक उपन्यास साहित्य के रूप में विद्यमान है।

सभ्यता के आदिम काल से ही मानव समाज के अन्तर्गत वीर-गाथाओं के रूप में कहानियाँ कहने की प्रथा प्रचलित थी, जिसमें घर की बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ और पुरुष बच्चों के मनोरंजन और ज्ञान की वृद्धि के लिए तरह-तरह की आश्चर्यजनक कहानियाँ कहा करते थे।

इन कहानियों और वीर गाथाओं का साहित्यिक रूप पहले काव्य के रूप में और उसके बाद गद्य के रूप में प्रकट हुआ। गद्य साहित्य के अन्दर दिये गये इस कहानियों के रूप में ही आधुनिक उपन्यास का बीज विद्यमान था।

शुरू-शुरू में इन कहानियों और उपन्यासों की रचना समाज के जीवन को उन्नत बनाने और मनुष्य का मनोरंजन करने के निमित्त हुई थी। इन प्राचीन कहानियों और कथानकों को देखने से मालूम होता है कि इनमें मानव समाज की वास्तविक और यथार्थवादी घटनाओं का समावेश बहुत कम किया जाता था। प्रायः आदर्शवादी आश्चर्यजनक और अति मानववादी घटनाओं का वर्णन इनमें अधिक रहता था।

आगे चलकर पश्चिमी देशों के उपन्यासकारों ने यथार्थवादी और समाज तथा मनुष्य के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विकास के चित्रण को उपन्यास-लेखन का प्रमुख अंग बनाया और उन्हीं के अनुकरण पर संसार के अन्य देशों के उपन्यासकारों ने भी इसी ध्येय को अपनाया। फिर भी इन उपन्यासों में समाज के उच्चवर्गीय नायकों का ही बाहुल्य रहता है। ये उपन्यास सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक इत्यादि कई प्रकार के होते हैं।

आधुनिक मानवीय इतिहास में समाजवादी धारा का प्रादुर्भाव होने के पश्चात् समाजवादी देशों के उपन्यासकारों ने समाज के शोषित पीड़ित और दलित लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रण करने में ही अपनी कला की सार्थकता समझी। उनके उपन्यासों के नायक राजमहलों में रहने वाले लोग नहीं बल्कि समाज की उपेक्षित बस्तियों में रहने वाले गरीब और दुखी मजदूर और किसान होते थे।

इस विचारधारा को प्रगतिवादी विचारधारा कहा जाता है। आधुनिक युग में इस विचारधारा ने संसार में कुछ

अधिक महत्त्व प्रदान कर रखा है। अब हम अत्यन्त संक्षेप में भिन्न भिन्न देशों के उपन्यास साहित्य के विकास का वर्णन थोड़े में कर रहे हैं।

संस्कृत-साहित्य में उपन्यास

भारतवर्ष के संस्कृत साहित्य में उपन्यास साहित्य का प्रारम्भ महाकवि बाणभट्ट से माना जाता है। बाणभट्ट का समय ईसा से ७ वीं सदी में सम्राट् हर्षवर्द्धन के काल में होना सिद्ध है। 'कादम्बरी' बाणभट्ट की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इस महान उपन्यास में पात्रों और स्थानों का चित्रण करने में कवि ने अपनी कलम तोड़ दी है। उनके पात्र इतनी सजीवता के साथ चित्रित किये गये हैं कि उनको पढ़ते-पढ़ते उनकी वास्तविक मूर्ति हमारे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाती है।

शुभ्रवस्त्रा तपस्विनी महाश्वेता और कमनीय कलेवरा कादम्बरी कवि की तूलिका से चित्रित हो संसार के साहित्य में अमर हो गईं। पात्रों के चरित्र-चित्रण के साथ ही कादम्बरी का प्रकृति चित्रण भी बड़ा ही सुन्दर और सजीव हुआ है। एक ओर कवि ने प्रकृति के सुन्दर मनोरम और नयनाभिराम चित्र को चित्रित करने में जहाँ अपनी कला का सुन्दर प्रदर्शन किया है, वहाँ दूसरी ओर विन्ध्या वटी के भयंकर रूप का चित्रण करने में भी वह बहुत सफल हुआ है।

यद्यपि कादम्बरी के वर्णन हर स्थान पर अत्यन्त लम्बे और मूलकथा को शिथिल कर देने वाले हो गये हैं और कथानक में दिलचस्पी रखने वाले पाठक उनको पढ़ते-पढ़ते ऊब भी जाते हैं पर कला के पारखी और कला की दृष्टि से कादम्बरी का अध्ययन करने वाले पाठकों को उनमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है।

सचाई यह है कि अलंकार तथा रस के मधुर मिलन में, भाषा तथा भाव के सम्पर्क में कल्पना और चरित्र के अनुरूप संघटन में कादम्बरी संस्कृत-गद्य-साहित्य में अद्वितीय है। कादम्बरी एक ऐसी मीठी मदिरा है जो रसिक हृदयों को मस्त कर देती है। कहा गया है—

> कादम्बरी रसभरेण समस्त एव।
> मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्।

बाणभट्ट के पश्चात् दण्डी के दशकुमार-चरित को संस्कृत के गद्य साहित्य में उपन्यास के रूप में लिया जा सकता है। महाकवि दण्डी का समय ७ वीं सदी का अन्तिम भाग माना जाता है। दशकुमार-चरित की भाषा प्रसादपूर्ण, मैंजी हुई और मुहावरेदार है। दण्डी ने अपनी भाषा को अलंकारों के बोझ से अधिक बोझिल बनाने का प्रयत्न नहीं किया। उनके वर्णन में कल्पना क्रम के अन्दर शिथिलता पैदा नहीं होती। वह स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ता है। उनका कथानक कौतुक और विस्मयजनक घटनाओं के बीच में से बढ़ता हुआ तत्कालीन समाज की मनोरम झाँकी पाठकों के आगे पेश करता है। राजनीति का मधुर वर्णन कामशास्त्र के गूढ़ तत्त्वों का प्रकटीकरण और चौर्यशास्त्र की विचित्र एवं अद्भुत बातें भी इस गद्य-काव्य में पढ़ने वालों का मनोरंजन करती हैं।

इसके बाद संस्कृत के गद्य-साहित्य में कहानियों के क्रम में 'पंचतन्त्र' का नाम आता है जो विश्व-साहित्य को संस्कृत-साहित्य की एक महान् देन है। पंचतंत्र में ५ तंत्र हैं। १ मित्र भेद २ मित्र लाभ ३ सन्धि-विग्रह, ४ लब्ध प्रणाश और ५ अपरीक्षित कारक—प्रत्येक तंत्र में मुख्य कथा एक ही है। लेकिन उसको पुष्ट करने के लिए कहानी में से कहानी निकलती रहती है। पंचतंत्र के अनुवाद प्राचीनकाल से पहलवी, सीरियन अरबी इत्यादि भाषाओं में हुए हैं और अब तो संसार की सभी सभ्य भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं।

इसी प्रकार संस्कृत-साहित्य में और भी अनेक गद्य और चम्पूकाव्यों के लेखक हुए, जिन्होंने भिन्न भिन्न कथाओं के ऊपर गद्य-काव्य लिखकर संस्कृत के उपन्यास-साहित्य को समृद्ध बनाया।

चीनी-साहित्य में उपन्यास

चीन के अन्दर उपन्यास-कला का प्रारंभ थांग वंश के समय से प्रारंभ होता है। इस वंश का समय सन् ६१८ से ९०६ तक माना जाता है। महान् चीनी सम्राट् हॅमाई ट्सुङ्ग के युग में चीनी साहित्य और कला को बहुत प्रोत्साहन मिला। इनका समय सन् ७१३ से

६१४ तक था। यह संसार का महान् उदारचेता सम्राट था। इसके समय में यू-श्राक् चिन नामक लेखक ने सुई-किंग इ ग की कहानी और पो-हि ऐंग-ची पन नामक रचना की। इन रचनाओं को उपन्यास-साहित्य के अन्दर लिया जा सकता है। उस काल के प्रधान उपन्यासों में सॉन पिश्रो-ची तीन राज्यों की कहानी और सुई-यू-सुचान मनुष्य मात्र भाई हैं—इन उपन्यासों की भाषा सरल थी और उनका उद्देश्य लोक-कल्याण था। उपन्यास और कहानियों को उस समय चीनी साहित्य में हेय समझा जाता था। इससे ऐसी कई रचनाओं पर लेखकों ने अपने नाम नहीं दिये।

आधुनिक युग के चीनी उपन्यासकारों में लुसिन का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसका जन्म १८८१ में हुआ था यह चीनी साहित्य का मैक्सिम गोर्की माना जाता है। इसने "कला के लिए कला" इस दृष्टिकोण को छोड़कर "जीवन के लिए कला" के दृष्टिकोण को अपनाया। दूसरा प्रसिद्ध उपन्यासकार मो-श्रो है। इसने बस सुन्दर उपन्यासों की रचना की है। मो-श्रो वर्तमान चीन के महान् ग्रन्थकारों में है इसका जन्म १८९९ ई में हुआ। इसी प्रकार माश्रो-तुन या श्रो त्स्नान चांगचाओ इत्यादि उपन्यासकार भी आधुनिक चीनी साहित्य में उल्लेखनीय है।

फ्रेंच-साहित्य में उपन्यास

फ्रेंच साहित्य में कथा और उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत जीन-डी-ला-फौनटेन (Jean-De-La-Fontaine) का नाम सबसे पहले लिया जाता है जिसने सन् १६६८ से १६९४ के बीच फ्रेंच कथा-साहित्य में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव किया। उसने १२ खंडों में अनेक काल्पनिक कहानियाँ लिखीं। उसकी कहानियों का अनुवाद अनेक यूरोपीय भाषाओं में हुआ और योरोप के अनेक लेखकों ने अपनी कहानियों में उनका अनुकरण किया।

१८ वीं सदी में फ्रेंच साहित्य के अन्दर कथा की साधारण-स्थिति से उठकर उपन्यास की परम्परा प्रारंभ हुई। डर्फे (D urfe) और स्कुडेरी (Scudery) ने उपन्यासों का लिखना प्रारंभ किया। यद्यपि ये उपन्यास घटना प्रधान ही थे और इनमें चरित्र चित्रण और घटनाओं के विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था।

विक्टर ह्यूगो

वास्तविक फ्रेंच उपन्यास साहित्य का वास्तविक विकास सन् १८११ से प्रारंभ होता है जब फ्रेंच-साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध उपन्यासकार 'विक्टर ह्यूगो' का प्रादुर्भाव होता है। उनके ले-मिजरेबुल (अभागा) हाफिंग मैन (अनोखा) और नोट्रे डेम डि पैरिस (Natredame De-Paris) नामक उपन्यासों ने प्रकाशित होकर फ्रेंच-साहित्य में एक क्रान्ति कर दी।

विक्टर ह्यूगो ने एक उपन्यासकार के रूप में अभूतपूर्व प्रतिभा पाई थी। वे विश्व-साहित्य के महान् उपन्यासकार थे। इनके उपन्यासों में पात्रों का चरित्र-चित्रण तम सामयिक समाज का दरयांकन अत्यन्त प्रभावशाली भाषा में हुआ है।

ह्यूगो के बाद फ्रेंच-उपन्यास-साहित्य में 'बाल्जाक' (Honore-de-Balzac) का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इस महान् लेखक ने फ्रेंच-साहित्य में ऐसे उपन्यासों की परम्परा बाँध दी जिसमें फ्रेंच जनता का और प्रान्तों का जीवन सिनेमा चित्रों की तरह प्रत्यक्ष हो उठा। उसकी रचना 'ला-कामेडी ह्यूमेन' ने सारी फ्रेंच जनता को चुम्बक की तरह अपनी ओर खींच लिया। इसने और भी कई उपन्यास लिखे जिसमें 'फोल्ड गोरी श्रोट', 'युजिनीग्रान्ड' इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इसकी रचनाएं सन् १८१९ से १८४८ तक प्रकाशित हुईं।

बाल्जाक के पश्चात् फ्रेंच उपन्यास-साहित्य में 'एमिली जोला' का नाम भी प्रसिद्ध है जिसने समाज के उपेक्षित और घृणित अङ्गों को अपने चित्रण का माध्यम बनाया।

२० वीं सदी में रोमाँ रोलां नामक प्रसिद्ध उपन्यासकार ने फ्रेंच साहित्य को अपनी रचनाओं से समृद्ध किया। उनकी रचना 'जाँ क्रिस्तोफ' बहुत प्रसिद्ध हुई। यह कृति पश्चिमी सामाजिक जीवन की एक सफल समालोचना है।

'अनातोल फ्रांस' फ्रेंच-साहित्य में १९ वीं सदी के अन्त का एक उच्च उपन्यासकार था जिसके प्रसिद्ध उपन्यास 'थायाँ' ने फ्रेंच-साहित्य को एक अनुपम देन दी है। उसके और भी अनेक उपन्यास हैं जो विचार-शैली की दृष्टि से अत्यन्त उत्तम कहे जा सकते हैं।

अंग्रेजी-साहित्य में उपन्यास

अंग्रेजी साहित्य में उपन्यास साहित्य का वास्तविक प्रारंभ सन् १७१९ से होता है जबकि डेनियल डी-फो (Danial De-Foe) का 'राबिन्सन क्रूसो' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में लेखक की कल्पना यात्रा के अनुभव और यथार्थवाद ने मिलकर जो नीव प्रस्तुत की, उसने अंग्रेजी साहित्य में अत्यन्त महत्व प्राप्त कर लिया। इस उपन्यास का अंग्रेजी-साहित्य में बड़ा आदर हुआ और संसार की अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद हुए।

डी फो के बाद 'लारेंस स्टेर्न (Lawrence Sterne) का 'लाइफ ऐंड ओपीनियन ऑफ ट्रिस्ट्रम शैंडी' नामक उपन्यास सन् १७६९ में प्रकाशित हुआ जिसने अंग्रेजी साहित्य में काफी लोक-प्रियता प्राप्त की। इसके साथ ही 'आलिवर गोल्ड-स्मिथ' का 'विकर ऑफ वेक फील्ड' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ जो वस्तुतत्व हास्य और चरित्र-चित्रण—सभी बातों में गोल्डस्मिथ की असाधारण कलाकारिता को प्रदर्शित करता है।

१९ सदी में अंग्रेजी-साहित्य के अन्दर सर 'वाल्टर स्कॉट' का आविर्भाव हुआ जिन्होंने अंग्रेजी-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास परंपरा को जन्म दिया। अध्ययन की गहराई और सुरुचि में 'सर वाल्टर स्कॉट' अद्वितीय थे। उन्होंने जिस परंपरा का आरंभ किया उसने परवर्ती उपन्यासकारों को बहुत ही प्रभावित किया। फ्रांस, इस और अमेरिका में भी सर वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों की बहुत कद्र हुई।

१९ वीं सदी के प्रारंभ में 'चार्ल्स डिकेन्स' अंग्रेजी-साहित्य में सबसे बड़ा उपन्यासकार हुआ। उसके उपन्यासों में तत्कालीन समाज व्यवस्था के प्रति उसकी विद्रोह भावनाएं स्पष्ट रूप से झलकती हैं। चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत स्वाभाविकता उसका प्राण है। उसके 'ऑलिवर ट्विस्ट' 'निकोलस निकलबी' 'मार्टिन चजलविट' 'डिवमस बुक' इत्यादि उपन्यास अंग्रेजी-साहित्य में बड़े लोकप्रिय हुए हैं।

'थैकरे मिल्स' भी अंग्रेजी-साहित्य में सर्वतोमुखी प्रतिभा का उपन्यासकार हुआ। स्कॉट की भाँति उसने भी ऐतिहासिक उपन्यासों को लिखकर अच्छी कीर्ति सम्पादित की।

'टामस हार्डी' भी अंग्रेजी-साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकारों में से एक है। यह भाग्यवादी था और उसके उपन्यासों में दुर्भाग्य के शिकार मानवों के प्रति उसकी गहरी सहानुभूति सजीव हो उठी। कथा-वस्तु और चरित्र-चित्रण का भी यह एक सुन्दर शिल्पकार है। ग्रामीण जीवन का प्रतिबिम्ब उसके उपन्यासों में बड़ी सुन्दरता से अंकित हुआ है। अंग्रेजी साहित्य में इस उपन्यासकार का अपना विशिष्ट स्थान है।

१९ वीं सदी के अन्त में एच जी वेल्स ने अंग्रेजी साहित्य में उपन्यास और कहानी लेखन के क्षेत्र में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया। वह अत्यन्त ऊँचे दर्जे का वैज्ञानिक, इतिहासकार निबन्धकार और उपन्यास-लेखक था। उसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा वैज्ञानिक आधार पर निर्मित थी। उसने अपने युग को अपनी प्रतिभा से अनेक रूपों में प्रभावित किया। उसके उपन्यासों ने उसके ऐतिहासिक ग्रन्थों ने और उसके वैज्ञानिक विचारों ने अंग्रेजी साहित्य को अत्यन्त समृद्ध बनाया।

२० वीं सदी के उपन्यासकारों में ह्यू वालपोल ए जी गार्डिनर जी एच लारेन्स 'आल्डुअस हक्सले' 'जेम्स ज्वायस' इत्यादि उपन्यासकारों के नाम अंग्रेजी-साहित्य में उल्लेखनीय हैं।

अमरिकन साहित्य में उपन्यास

इङ्गलैंड की ही भांति अमेरिका में भी अंग्रेजी-उपन्यास साहित्य का काफी विकास हुआ। यहां के उपन्यास-साहित्य में 'विलियम डीन-हावेल्स' का नाम काफी प्रसिद्ध है। हावेल्स का जन्म सन् १८३७ में और मृत्यु सन् १९२० में हुई। अपनी रचनाओं में उसने सामाजिक न्याय का यथार्थवादी चित्र प्रदर्शित किया। उसका

दृष्टिकोण टॉल्स्टाय के दृष्टिकोण से मिलता-जुलता था। 'दि सेवर उड याड'-उपन्यासों में उसकी सर्वोत्तम रचना मानी जाती है।

'मार्कट्वेन' का नाम न केवल अमेरिकन-साहित्य में, बल्कि समस्त यूरोपीय साहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय है। उसकी रचनाओं में 'टॉमसॉयर' 'लाइफ ऑन दि मिसीसीपी' इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

अमेरिका की सुप्रसिद्ध लेखिका 'हेरियट-बीचर-स्टो' द्वारा लिखित 'अंकल-टाम्स-केबिन' नामक उपन्यास ने अमेरिका में गुलामी प्रथा के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन को जन्म दिया। सन् १८५२ में इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक का प्रकाशन अमेरिकन साहित्य के इतिहास की एक अत्यन्त आश्चर्य जनक घटना है। एक ही वर्ष में इसकी ३ लाख प्रतियाँ बिकीं और बाहर से अपने खास आठ प्रेसों को इसकी माँग पूरी करने के लिए दिन-रात काम करना पड़ा। संसार की अनेक प्रधान भाषा में इसके अनुवाद हुए।

'अर्नेस्ट-हैमिंग्वे' अमेरिका के सुन्दर उपन्यासकारों में हैं। उनकी लेखन-शैली अद्भुत है। उनके 'फेयरवेल टु आर्म्स' और 'फ़र हूम दि बेलटाल्स' नामक दोनों उपन्यास संसार के आधुनिक साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इस लेखक का जन्म सन् १८९८ में हुआ।

'अप्टन सिंक्लेयर' ने अपनी अद्भुत योग्यता और क्षमता से औद्योगिक जीवन को चित्रित करने वाले ६ उपन्यासों से अमेरिकन साहित्य को समृद्ध किया।

नोबेल-पारितोष प्राप्त उपन्यासकार सिन्क्लेयर लुईस भी अमेरिकन-उपन्यास-साहित्य का एक महारथी था जिसकी रचनाओं में 'बेबिट' 'ऐरोस्मिथ' 'डाडस वर्थ' इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

यथार्थवादी महाविचार की कथा में 'जॉन स्टीनबेक' का स्थान बहुत प्रसिद्ध है। उसकी कुछ कृतियों का संसार के आलोचकों ने बड़ा आदर किया है।

रूसी-साहित्य में उपन्यास

रूसी-साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास साहित्य का वास्तविक विकास १९वीं सदी में अलक्जेंडर प्रथम के राज्यारोहण से प्रारंभ हुआ। यह युग 'पुश्किन-युग' कहलाता है। इसी युग में महाकवि पुश्किन ने अवतीर्ण होकर सारे रूसी साहित्य को आलोकित कर दिया। कविता के साथ-साथ पुश्किन ने उपन्यास क्षेत्र में भी अपना कमाल दिखलाया। उसके 'ओनेगिन' उपन्यास ने रूसी-साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया। कई आलोचकों की राय में इस उपन्यास की जोड़ का रूसी-साहित्य में कोई दूसरा उपन्यास नहीं है। इसका चरित्र नायक 'यूजिन ओनेगिन' तत्कालीन रूसी-समाज का प्रतिबिम्ब है। अपने पिता के मरने पर चचा की जायदाद पाकर 'ओनेगिन' देहात में जाता है और वहाँ पर 'तातियाना' नामक युवती से उसका प्रेम हो जाता है। तातियाना का चरित्र-चित्रण करने में पुश्किन ने अपनी कलम को तोड़ दिया है। तातियाना रूसी नारी की प्रतीक है। कहा जाता है कि उसके समान यथार्थ चरित्र-चित्रण, टॉल्स्टाय और तुर्गनेव की कला भी नहीं कर सकी। तातियाना अपना प्रेम प्रकट करने के लिए उसको एक पत्र लिखती है। इस पत्र के लिए आलोचकों का कहना है कि संसार के काव्य-क्षेत्र में ऐसी सरल और हृदय ग्राही आत्माभिव्यक्ति खोजने से भी नहीं मिलेगी।

ओनेगिन तातियाना के प्रेम को अस्वीकार कर देता है। तातियाना उसका कुछ इन्तजार करने के बाद एक दूसरे धनी से ब्याह कर लेती है। ओनेगिन को जब यह मालूम पड़ता है तो वह उसकी ओर अत्यन्त आतुरता से आकृष्ट होता है। मगर तातियाना अपने पति को धोखा देने से स्पष्ट इनकार कर देती है। काव्य के रूप में लिखा हुआ पुश्किन का यह उपन्यास रूसी-साहित्य की अमूल्य निधि है।

तुर्गनेव

अपनी कृतियों से रूसी-उपन्यासों को विश्व-साहित्य में अमर कर देने वाला महान कलाकार 'तुर्गनेव' था। उसके उपन्यासों ने रूसी-गद्य के क्षेत्र में वही कमाल करके दिखलाया जो पद्य के क्षेत्र में पुश्किन ने किया था। उसके 'अमीरों का घोंसला' और 'रूदिन' नामक उपन्यासों ने रूसी-साहित्य को योरोपीय धरातल पर आकर कर दिया।

टाल्सटाय

तुर्गनेव के ही युग में रूसी-साहित्य ने दो अत्यन्त महान विश्व-साहित्य के कलाकारों को पैदा किया, जिनमें पहले टॉल्सटाय और दूसरा 'दास्तो-ए-वस्की' था। टॉल्स्टाय ने धर्म और जीवन के क्षेत्र में वैयक्तिक क्रान्ति की।

सन् १८६९ में उसने 'युद्ध और शान्ति' के ऊपर एक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास के नायक 'पीयर बेजुखोव' और नायिका 'नताशा' के चरित्र-चित्रण में टॉल्सटाय ने मानव-सौन्दर्य को जिस कलात्मक रूप में प्रदर्शित किया है वह उपन्यासों की दुनियाँ में बेजोड़ है।

टाल्सटाय का दूसरा उपन्यास 'अनाकेरेनिना' है। इस उपन्यास में इस महान कलाकार ने रूस और सेंट पीटर्सबर्ग के उच्च कुलीन समाजाश्रित जीवन का एक सजीव, जीता जागता वास्तविक और अनूठा चित्र अंकित किया है। अद्भुत कलाकारिता के साथ 'बोन्स्की' के प्रति 'अना' के प्रेम का उत्थान और विकास होता है। अत्यन्त घात-प्रतिघात के साथ कहानी का प्रत्येक दृश्य और प्रत्येक घटना स्वाभाविक तरीके से आगे बढ़ती है मगर कहीं तक कहीं भी शिथिलता या अत्यधिक विस्तार का अनुभव नहीं होता।

रूसी उपन्यास-साहित्य में टॉल्सटाय के बाद 'दास्तो-एवस्की' का नाम अत्यन्त महान समझा जाता है। टॉल्स-टाय समाज के उच्च वर्ग का क्लाम चित्रकार है। जबकि दास्तो-एवस्की अपराधियों, पागलों, दरिद्रों और भूख से पीड़ित लोगों का चित्रकार था। गरीबी ने उसको दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर कर दिया था। उसकी पहली पुस्तक, उसका पहला उपन्यास 'गरीब' सन् १८४६ में निकला और सन् १८६६ में उसका 'अपराध और दण्ड' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसने उसकी ख्याति को चारों ओर फैला दिया। इसके बाद उसका 'मूर्ख' और उसके बाद 'भूत' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इन उपन्यासों ने उसकी कीर्ति को रूसी साहित्य में अमर कर दिया और सन् १८८१ में जब उसकी मृत्यु हुई तो उसकी अर्थी के साथ असंख्य नर-नारियों की भीड़ ने इकट्ठा होकर इस महान साहित्यकार को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

२० वीं सदी में रूसी साहित्य ने दो और महान् कलाकारों को पैदा किया जो अपनी रचनाओं से विश्व-साहित्य में अमर हो गये। इन दो कलाकारों में पहला 'एंटोन चेखोव' और दूसरा 'मैक्सिम गोर्की' था।

एंटोन चेखोव ने तुर्गनेव की पुरानी परंपरा में अपने उपन्यास तैयार किये। इन उपन्यासों में उसने रूस के अन्धकार-युग को प्रकाशित किया।

मैक्सिम गोर्की

मैक्सिम गोर्की कला का एक नया सन्देश लेकर आया। एक नई दुनिया को अपने उपन्यासों में उसने चित्रित किया जिसकी अभी तक किसी ने कल्पना न की थी। जीवन के प्रति उसके नायकों का रुख उसके पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से बिल्कुल भिन्न था। जीवन के साधारण का अमिट चित्रण करने में गोर्की ने एक नवीन पद्धति का अनुकरण किया। रूसी गद्य-साहित्य के अन्दर उसने एक नवीन हवा बहा दी। गोर्की सक्रिय कल्पना के साथ यथार्थ का निरूपण करता है जिसमें कल्पना और वास्तविकता-दोनों एक साथ अपना भाग अदा करती हैं।

इस युग में 'मेरेज्कोवस्की' के उपन्यासों ने भी रूसी साहित्य में धूम मचाई। उसकी 'ट्रिलोजी' का यूरोप की प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद हुआ।

बोल्शेविक क्रान्ति के पश्चात् रूसी साहित्य में प्रोले-टेरियन उपन्यासों की रचना विशेष रूप से होने लगी। ऐसे उपन्यासकारों में 'सेरा-फिमो-विच' 'अलेक्जेंडर-फेद येव' 'निकोल-शोलोखाव' 'इल्या एहरेन बर्ग' 'अन्ना-करेनीना (महिला)' इत्यादि उपन्यासकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

बंगला साहित्य में उपन्यास

आधुनिक भारतीय भाषाओं में बंगला भाषा का साहित्य उपन्यासों के क्षेत्र में सबसे आगे बढ़ा हुआ है- यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी। वैसे लोक-कथाओं के रूप में अन्य भाषाओं की तरह ही बंगला-भाषा में भी उपन्यास के बीज पहले से मौजूद थे पर वास्तविक उप-न्यास के रूप में पहला उपन्यास सम्भवतः सन् १८५८ में प्यारी-चाँद मित्र उर्फ 'टेकचाँद' का लिखा हुआ

'अक्षातेर घरेर दुलाल' के नाम से प्रकाशित हुआ। कुछ विद्वानों ने तो इसे मौलिक और पौराणिक की रचनाओं के समकक्ष मान लिया। इस उपन्यास की शैली का प्रभाव प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी की शैली पर भी पड़ा था।

बंकिमचन्द्र चटर्जी

पर बंगला-साहित्य में आधुनिक उपन्यास-युग को प्रवर्तन करने का श्रेय बंकिमचन्द्र चटर्जी को ही है। उनका पहला उपन्यास 'दुर्गेश-नन्दिनी' सन् १८६५ में प्रकाशित हुआ। वस्तुतः उपन्यास की पूरी परिभाषा की दृष्टि से बंगला का प्रथम उपन्यास दुर्गेश-नन्दिनी ही है। बंगला साहित्य के इतिहास में दुर्गेश-नन्दिनी का प्रकाशन एक चमत्कार पूर्ण घटना थी। इस उपन्यास के प्रकाशन के पश्चात् बंगाली-साहित्य के ऊपर बंकिम बाबू मानों छा गये। उपन्यास के जिस विकास की चोटी पर बंकिम बाबू के प्रयत्न प्रतिष्ठित हैं, वहाँ तक पहुँचने की कोई सीढ़ी भी नहीं। सिद्ध उपन्यासकार की भाँति बंकिम की लेखनी ने बंगला-साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने ऐतिहासिक सामाजिक और राजनैतिक-तीनों प्रकार के उपन्यासों की रचना की। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'दुर्गेश-नन्दिनी', 'कपाल कुण्डला', मृणालिनी, 'चन्द्रशेखर' और 'राजसिंह' राजनैतिक उपन्यासों में 'आनन्द-मठ' और देवी चौधरानी और सामाजिक उपन्यासों में विष-वृक्ष और 'कृष्णकान्तेर विल' उल्लेखनीय हैं।

बंकिमचन्द्र के पश्चात् ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में रमेशचन्द्र दत्त और राखालदास बन्द्योपाध्याय ने बंगला-साहित्य के गौरव को बढ़ाया। रमेशचन्द्र दत्त के 'बंग-विजेता', 'माधवी-कंकण', 'राजपूत-जीवन-सन्ध्या' तथा 'महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात' बंगला-साहित्य में बहुत लोक-प्रिय हुए।

राखालदास बन्द्योपाध्याय ने बंगला-साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासों में युगान्तर कर दिया। यह इतिहास के प्रकाण्ड पंडित और प्राचीन इतिहास की कड़ियों को जोड़ने में सिद्धहस्त थे। इनके उपन्यासों ने प्राचीन इतिहास को सजीव रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दिया। इनके 'शशांक' 'करुणा' और 'ध्रुवा' नामक उपन्यासों ने गुप्त-साम्राज्य के इतिहास को मूर्तिमान चित्रपट की तरह प्रकाशित कर दिया। इनके अन्य उपन्यासों में 'धर्मपाल', 'मयूख' और 'असीम' भी उल्लेखनीय हैं। बंकिमचन्द्र और शरच्चन्द्र के बीच के उपन्यासकारों में प्रभात कुमार और जलधर का नाम भी बंगला उपन्यास क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध है। प्रभात कुमार के रमा सुन्दरी, नवीन सन्यासी, रत्नदीप इत्यादि तथा जलधर के विशुदादा, किशोर, अभागी इत्यादि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

मगर बंगला-साहित्य के सामाजिक उपन्यास के क्षेत्र में शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने प्रकट हो कर बंगला-साहित्य को अमर जीवन प्रदान कर दिया।

शरच्चन्द्र में एक मौलिक प्रतिभा थी। उनके विचार मौलिक थे। उनके सोचने का तरीका मौलिक था। आज से ४० वर्ष पहले उन्होंने अपने उपन्यास 'श्रीकान्त' में जिस राजलक्ष्मी का, 'पथेर दाबी' में जिस भारती का और 'शेष प्रश्न' में जिस कमल का चरित्र अङ्कित किया है, वह न केवल भारतीय साहित्य में, प्रत्युत समग्र विश्व-साहित्य में अपने ढंग का अनूठा है। नारी-चरित्रों के अङ्कन में शरच्चन्द्र अद्वितीय हैं, अनूठे हैं। इस क्षेत्र में उनकी कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं।

शरच्चन्द्र ने बंगला-उपन्यास-क्षेत्र का पलड़ा पलट दिया। कथा-वैचित्र्य और घटना-वैचित्र्य के स्थान पर चरित्रगत वैषम्य उभर आया और रोमांचक घटनाओं का स्थान सामान्य जीवन की आकस्मिक बाह्य घटनाओं और मानसिक उत्तेजना ने ले लिया। इतना ही नहीं, पारस्परिक विरोध के अन्तर में से प्रेम के उदय की एक नई प्रणाली का प्रचलन इन्होंने किया। शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय वस्तुतः उपन्यास के क्षेत्र में बंगला-साहित्य में ऐसे छा गये, जैसे काव्य के क्षेत्र में रवीन्द्र छा गये थे।

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के पश्चात् या उनके साथ-साथ जिन लोगों ने बंगला उपन्यास-साहित्य को परिपुष्ट किया उनमें 'विभूति भूषण भट्ट' 'मनोमोहन चट्टोपाध्याय', 'सुरेन्द्रनाथ मजूमदार' 'अनुरूपा देवी' 'इन्दिरा' 'शैलबाला घोषजाया' सुरेन्द्र मोहन भट्टाचार्य इत्यादि उपन्यासकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

द्वारा लिखित 'मीनल देवी' और 'मुन्जाल मन्त्री' गुजराती साहित्य में अमर हो गये।

सरस्वती चन्द्र

गुजराती औपन्यासिक साहित्य में 'सरस्वती चन्द्र' नामक उपन्यास का प्रकाशन एक महान घटना है। इसके लेखक श्री गोवर्धन राम त्रिपाठी ने सन् १८८७ से सन् १९०१ तक १४ साल लगातार परिश्रम करके इस विशाल ग्रन्थ के ४ भागों का सृजन किया। किसी एक अमूल्य हीरे को जिस प्रकार भिन्न-भिन्न बाजुओं से देखने पर उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की चमक दिखाई देती है, उसी प्रकार 'सरस्वती चन्द्र' को भी भिन्न-भिन्न दृष्टिबिन्दुओं से देखने पर उसमें भिन्न-भिन्न प्रकाश दिखाई पड़ता है।

एक गुजराती की छोटी-छोटी मनोवृत्ति से लेकर राजा रत्ननाथ और श्री मन्त्रों के दम्भपूर्ण बने हुए जीवनवाले आधुनिक शिक्षा पाये हुए युवकों के आदर्श के साथ पुराने समय के मुनीम और गुमास्तों का व्यवहार, कुमुद-सुन्दरी के समान आधुनिक युग की युवती के आदर्श के साथ अलकनन्दा के समान कलित मार्ग पर ठगी हुई स्त्री का चित्रण—इन सब भिन्न है और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म चित्रों के बीच में उलझ कर भी ग्रन्थ लेखक अपने दृष्टि-बिन्दु से एक इंच भी इधर-उधर नहीं हटता है। अपने समय के जीवन में दृष्टिगोचर होने वाले प्रश्नों का चित्रण और सामाजिक जीवन को एक निश्चित दिशा में पहुँचाने का प्रयत्न ग्रन्थकर्ता की महान आकांक्षा थी।

इस पुस्तक का चरित्र-चित्रण इतनी सूक्ष्म घटनाओं व मधुर कवित्व से भरा हुआ, अनुपम-अलंकारों से शोभित बना हुआ तथा बुद्धिमानी पूर्ण कटाक्षों और विचारपूर्ण वाणी से इतना सुसज्जित है कि इसका सार निकालना सम्भव नहीं। गुजराती-साहित्य में समय व इसने कल्पनाओं के बावजूद इस ग्रन्थ का अस्तित्व मिलता है।

'सरस्वतीचन्द्र' का प्रथम भाग प्रकाशित होते ही वह समग्र गुजराती-साहित्य में इतना लोकप्रिय हुआ और इसका इतना अधिक प्रचार हुआ कि आगे गुजराती में जो भी उपन्यास प्रकाशित हुए उन पर इस ग्रन्थ की छाप स्पष्ट रूप से नजर आती है।

रमणलाल देसाई

त्रिपाठी और मुन्शी के साथ साथ सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में रमणलाल देसाई का नाम गुजराती-साहित्य में एक प्रकाश-स्तंभ की तरह दृष्टिगोचर होता है। इस क्षेत्र में इनकी असाधारण सफलता के कारण गुजराती साहित्य में इन्हें "युग मूर्ति वार्ताकार" नाम से सम्बोधित किया जाता है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'ग्रामलक्ष्मी कौन ?' ४ भागों में समाप्त हुई है। इसमें ग्रामीण जीवन का घन समस्याओं चित्र खींचा गया है। इसके सृजन में लेखक की गंभीर विचार शक्ति स्पष्ट रूप से झलकती है। राजनीति, नैतिक, धार्मिक और व्यावहारिक विषयों पर लेखक का दर्शन और चिन्तन पाठक को अनन्त आनन्द देता है। बहुत थोड़े शब्दों में अर्थ गाम्भीर्य से परिपूर्ण सूत्रों में विवेचन किया गया है। इनका एक उपन्यास 'दिव्यचक्षु' नाम से भी प्रकाशित हुआ है। इनकी और भी कई रचनाओं ने गुजराती साहित्य को समृद्ध किया है।

इसी प्रकार और भी कई लेखकों ने जिनमें पारसी लेखक भी शामिल हैं और कुछ स्त्री-लेखक भी हैं गुजराती साहित्य को समृद्ध किया है। मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त देश और विदेश की विभिन्न भाषाओं के उत्तम उपन्यासों के अनुवाद भी गुजराती में बहुत हुए हैं।

इस प्रकार गुजराती का उपन्यास-साहित्य आज एक समृद्ध साहित्य में गिना जा सकता है।

मलयालम-साहित्य में उपन्यास

मलयालम-भाषा में उपन्यास-साहित्य का प्रारंभ सन् १८८७ में अप्पु नेडुङ्गाडी नामक लेखक ने 'कुन्दलता' नामक उपन्यास लिखकर किया। उसके पश्चात् चन्दुमेनोन नामक लेखक ने इन्दुलेखा और शारदा उपन्यास की रचना करके मलयालम उपन्यास-साहित्य में दिशा सूचक यन्त्र का काम किया।

चन्दुमेनोन का जन्म सन् १८४७ में और मृत्यु सन् १८९९ में हुई। सामाजिक उपन्यासों के लिखने में चन्दु मेनोन ने मलयालम-साहित्य में अच्छी कीर्ति सम्पादित की।

ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में सी० वी० रामन पिल्ला ने मलयालम-साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान

प्राप्त किया। मार्तण्ड वर्मा, धर्मराज और रामराज-बहादुर इनके ३ विख्यात ऐतिहासिक उपन्यास हैं। कहा जाता है कि अंग्रेजी भाषा में स्कॉट, फ्रेंच भाषा में अलेक्जेंडर ड्यूमा, बंगला में बंकिमचन्द्र, मराठी में हरिनारायण आपटे और गुजराती में कन्हैयालाल मुंशी को जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान मलयालम-साहित्य में सी० वी० रामन पिल्लै का समझा जाता है।

इसी प्रकार श्री के एम पणिक्कर ने भी मलयालम में ५ उपन्यासों की, ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर रचना की है। इन उपन्यासों में 'केरल सिंह' नामक उपन्यास श्रेष्ठ माना जाता है।

इनके अतिरिक्त वर्तमान काल के मलयालम-उपन्यासकारों में तकषी शिवशंकर पिल्लै, वैक्कम मुहम्मद बशीर, एस० के पोट्टेक्काट इत्यादि लेखक और उल्लेखनीय हैं।

उप्टन सिन्क्लेअर
(Upton Sinclair)

अमेरिकन उपन्यास-साहित्य का एक सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, जिसका जन्म सन् १८७८ में हुआ।

उप्टन सिन्क्लेअर औद्योगिक क्षेत्र और फैक्टरियों के यथार्थ जीवन को चित्रित करने वाला एक कुशल कलाकार था। इसके 'दि जंगल', 'किंग कोल', 'दि गाय स्टेप', 'आइल', 'बोस्टन', 'दि फ्लवर किंग' आदि उपन्यासों में अमेरिका के औद्योगिक क्षेत्रों के जीवन की सुन्दर आलोचना की है।

प्रथम महायुद्ध और द्वितीय महायुद्ध के मध्यवर्ती जीवन पर ६ उपन्यासों की सीरीज के रूप में उप्टन ने समस्त विश्व-साहित्य को एक अमूल्य देन दी है।

उपमितिभव-प्रपञ्च कथा

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य सिद्धर्षि सूरि द्वारा रचित एक महान् रूपक ग्रन्थ, उपमिति-भव-प्रपञ्च-कथा, जिसकी रचना ईस्वी सन् ९०५ में हुई।

उपमिति-भव-प्रपञ्च-कथा एक रूपक कथानक के रूप में सारे जैन-दर्शन शास्त्र का मन्थन है। समस्त भारतीय साहित्य में ही इसको पहला रूपक ग्रन्थ कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

जर्मनी के सुप्रसिद्ध डा हर्मन जैकोबी इस ग्रन्थ की अंग्रेजी-प्रस्तावना में लिखते हैं कि "I did find some thing still more imporatant the great literary value of the U Katha and the fact that it is the first allegorical work in Indian literature.'

इस ग्रन्थ में निष्पुण्यक नामक भिखारी के चरित्र के रूपक में संसारी जीव को सत्य धर्म प्राप्त होने के समय से सम्पूर्ण संसार त्याग करने तक किस प्रकार धीरे-धीरे ऊँचे चढ़ना पड़ता है, इसका वर्णन किया गया है। फिर बाद में उन्होंने बतलाया है कि यह निष्पुण्यक भिखारी दूसरा कोई नहीं बल्कि सत्य धर्म प्राप्त करने के पहले स्वयं मेरा ही जीव था।

इस ग्रन्थ के रचयिता ने इस कथा का वर्णन सर्वसाधारण को लागू हो जाय-इस प्रकार से करने का प्रयत्न किया है। दूसरे संस्कृत-ग्रन्थ कर्त्ताओं की अपेक्षा मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियों का इतिहास सिद्धर्षि की इस कृति में विशेष रूप से मिलता है। ज्यों-ज्यों पाठक इस पुस्तक को पढ़ता जाता है, त्यों त्यों उसे मनुष्य के आन्तरिक भाव का और पाप-पुण्य के परिणामों का स्पष्ट दर्शन होता जाता है।

इसलिए भारत में धर्म और नीति के ग्रन्थों को लिखने वाले ग्रन्थकारों में सिद्धर्षि सूरि का स्थान प्रथम श्रेणी में माना जाता है।

इस रूपक-कथा का निर्माण 'भिनमाल' नामक नगर के बड़े जैन मन्दिर में किया गया और दुर्ग स्वामी की "गणा' नामक शिष्या ने इस ग्रन्थ की पहली प्रति लिखी।

उन्मत्तावंत्त

कश्मीर के उत्पल वंशीय पार्थ राजा का पुत्र जिसका समय सन् ९३७ से ९३९ तक समझा जाता है।

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम यद्यपि इस संसार में एक महान् कवि, दार्शनिक और विचारक की तरह ही प्रसिद्ध है, पर उन्होंने बंगला-साहित्य में कई उपन्यासों का भी निर्माण किया, जिनमें 'गोरा' 'चोखेर बाली', 'मास्टर्स घटना' इत्यादि उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

सन् १६११ में 'नरेशचन्द्र सैन' ने 'पापेर छाप' और सन् १६१ में 'कपेर अभिशाप' प्रकाशित कर यौन-सम्बन्धी नग्न-चित्रणों की परम्परा बंगाली-साहित्य में आरम्भ की। यौन भावाश्रित अपराधी मनोवृत्ति का चित्रण पहले-पहल इन्हीं उपन्यासों में हुआ।

कुछ भी हो, बंगला के जिस उपन्यास-साहित्य को शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय और बंकिमचन्द्र के समान महान कलाकार प्राप्त हुए, वह साहित्य अवश्य ही भाग्यशाली कहा जा सकता है।

हिन्दी में उपन्यास-साहित्य

हिन्दी भाषा में उपन्यास-साहित्य का प्रारंभ बंगाली-उपन्यासों के अनुवादों और बंगाली तथा तिलस्मी उपन्यासों की रचनाओं से प्रारंभ होता है। एक ओर बंकिमचन्द्र रमेशचन्द्र दत्त, चण्डीचरण सेन शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय रवीन्द्र बाबू इत्यादि के उपन्यासों का अनुवाद करने में पं० रूपनारायण पाण्डेय पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा, बाबू गोपाल राम गहमरी इत्यादि लोगों ने तत्परता दिखलाई। दूसरी ओर तिलस्मी उपन्यासों के क्षेत्र में बाबू देवकी नन्दन खत्री ने बोलचाल की उर्दू मिश्रित हिन्दी-भाषा में अपनी रचनाएँ प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य में एक तहलका मचा दिया। इन उपन्यासों का प्रधान लक्ष्य आश्चर्यजनक कल्पनाओं का चित्रण करके पाठकों की विस्मयकारक मनोवृत्ति को जागाना था। इन उपन्यासों में रस-संचार भाव विभूति तथा चरित्र-चित्रण का कोई नाम नहीं था। इस *लिए ये साहित्यिक कोटि में नहीं रखे जा सकते* पर हिन्दी-साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनन्दन का स्मरण इस बात के लिए सदा बना रहेगा कि उनकी रचनाओं ने जितने पाठक हिन्दी-साहित्य में उत्पन्न किये उतने महा कवि तुलसीदास की रामायण को छोड़कर किसी दूसरे ग्रन्थकार की रचना ने नहीं किये। चन्द्रकान्ता पढ़ने के लिए न जाने कितने उर्दूदाँ लोगों ने हिन्दी-भाषा का ज्ञान प्राप्त किया।

हिन्दी-साहित्य में उपन्यासों का ढेर लगा देने वाले दूसरे मौलिक उपन्यासकार पं० किशोरीलाल गोस्वामी थे, जिनका जन्म सन् १८६५ में और मृत्यु सन् १६१२ ई० में हुई।

किशोरीलाल गोस्वामी ने सन् १८९८ में 'उपन्यास' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था। उनके लिखे हुए करीब ६५ छोटे बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए। अतः साहित्यिक दृष्टिकोण से सबसे पहले उपन्यासकार यही माने जायेंगे।

प्रेमचन्द

मगर हिन्दी के उपन्यास-साहित्य को, अपने मौलिक उपन्यासों से चमत्कृत कर के हिन्दी-साहित्य के औपन्यासिक क्षेत्र को, अमर कर देने वाले कलाकार प्रेमचंद हुए। प्रेमचंद का नाम हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र में उसी प्रकार स्थिर है जिस प्रकार बंगाल में बंकिमचंद्र चटर्जी का। समाज के निम्न और मध्यम वर्गों के पात्रों का चित्रण करने में प्रेमचन्द बेजोड़ हैं। उनके पात्रों में ऐसी स्वाभाविक रुचि की व्यक्तिगत विशिष्टतायें मिलेंगी, जो समाज के अन्दर रात-दिन रहने वाले व्यक्तियों में मिलती हैं। जिस प्रकार अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द यथार्थवादी और स्वाभाविक हैं उसी प्रकार उनकी भाषा भी अत्यन्त स्वाभाविक सरल और प्रभावपूर्ण है। उनकी रचनाओं में 'सेवासदन' 'प्रेमाश्रम' 'गबन' 'गोदान' 'रंगभूमि' इत्यादि रचनायें उत्कृष्ट मानी जाती हैं।

प्रेमचन्द के साथ ही हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र में आचार्य चतुर सेन शास्त्री का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक सभी विषयों पर उपन्यासों की रचना की। भाषा का प्रवाह और चरित्र-चित्रण की यथार्थता में शास्त्री जी हिन्दी साहित्य के माने हुए लेखक थे। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'जय सोमनाथ' 'सोना और खून' 'वयं रक्षामः' इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी, श्री जैनेन्द्र कुमार इत्यादि उपन्यासकारों ने भी

भारत के सामाजिक जीवन के स्वाभाविक और सुन्दर चित्रों के द्वारा हिन्दी साहित्य के औपन्यासिकक्षेत्र को समृद्ध किया। हिन्दी के उपन्यासक्षेत्र में ये चोटी के उपन्यासकार थे।

श्री भगवतीचरण वर्मा का नाम भी हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र में उल्लेखनीय है। उपन्यास तो इनके कई हैं पर जिस एक उपन्यास ने हिन्दी साहित्य में इनकी स्थिति को दृढ़ कर दिया है—वह 'चित्रलेखा' है। यह उपन्यास फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक अनातोल फ्रांस के 'थाया नामक उपन्यास के अनुकरण पर लिखा गया है, मगर चित्रलेखा और बीजगुप्त का चरित्र-चित्रण इतना सुन्दर और भावपूर्ण हुआ है कि कई स्थानों पर अनातोल फ्रांस की चित्रकारी से भी यह आगे बढ़ गया है।

ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में श्री वृन्दावन लाल वर्मा का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। गुजराती के उपन्यास-साहित्य को जिस प्रकार श्री कन्हैयालाल मुंशी की रचनाओं ने तथा बंगला के उपन्यास-साहित्य को जिस प्रकार राखाल दास बन्द्योपाध्याय की रचनाओं ने समृद्ध किया है, उसी प्रकार हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य को भी वृन्दावन लाल की रचनाओं ने समृद्ध किया है। इनके उपन्यास अधिकतर बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक घटनाओं पर ही आधारित हैं। इन उपन्यासों में 'गढ़ कुण्डार' 'विराटा की पद्मिनी' 'मृगनयनी' इत्यादि अनेकों उपन्यास बड़ी सफलता के साथ लिखे गये हैं। श्री आनंद प्रकाश जैन ने भी 'कठपुतली के धागे' इत्यादि मुसलमान कालीन ऐतिहासिक रचनाओं का काम सफलता के साथ प्रारंभ किया है।

श्री जैनेन्द्र कुमार श्री अज्ञेय श्री यशपाल जैन अमृत लाल नागर आदि उन उपन्यास कारों में हैं जिन्होंने हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र में, नवीन युग की एक नवीन विचार धारा की स्थापना की।

भारत की प्राचीन संस्कृति पर उपन्यास लिखने वालों में श्री गुरुदत्त का नाम भी उल्लेखनीय है।

श्री अनन्त गोपाल शेवड़े हिन्दी के विशिष्ट उपन्यास कारों में हैं। समाजवादी आंदोलन के साथ हिन्दी के औपन्यासिक और कहानी-कला के क्षेत्र में भी प्रगतिवाद की धारा चल निकली है। हिन्दी-साहित्य के कई नवीन और सफल लेखक इस प्रकार के उपन्यास और कहानियों के द्वारा हिन्दी साहित्य को भरपूर बना रहे हैं। इन लेखकों में श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', श्री किशन चन्दर, अमृता प्रीतम, श्री राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुजराती-साहित्य में उपन्यास

गुजराती-उपन्यास-साहित्य में सबसे पहले राय बहादुर नन्दशंकर तुलजाशंकर का नाम 'गुजराती-उपन्यास-साहित्य के पिता' की तरह माना जाता है। इनका एक ही उपन्यास 'करण घेलो' सन् १८६८ में प्रकाशित हुआ। इसी पुस्तक को लिखकर ये गुजराती के औपन्यासिक-साहित्य में प्रसिद्ध हुए।

'करण-घेलो' एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें गुजरात के अन्तिम हिन्दू राजा 'करण' के जीवन की घटना चित्रित है और अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा उसके पराजित होने की करुण कथा भी इसमें बतलाई गई है।

इसके बाद राय साहब महीपति राम के दो ऐतिहासिक उपन्यास 'वनराज चावड़ो' और 'सिद्धराज जयसिंह' सन् १८८१ में प्रकाशित हुए। मगर ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में असल क्रांति सुप्रसिद्ध लेखक कन्हैयालाल माणिक-लाल मुन्शी के द्वारा हुई।

कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी

सन् १९११ में श्री मुन्शी की कुछ छोटी-छोटी ऐतिहासिक कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं। मगर उनकी प्रतिभा का वास्तविक प्रकाश गुजराती संसार को उस समय मिला जब सन् १९१६ में 'पाटणनी प्रभुता' नामक उनका उपन्यास प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात तो कन्हैया लाल मुन्शी का व्यक्तित्व सारे गुजराती साहित्य पर छा गया और उनके एक के बाद एक अनेक ऐतिहासिक उपन्यास धारा प्रवाही रूप से प्रकट होने लगे।

सन् '१९१८ में उनका 'गुजरात नो नाथ' सन् १९२ में 'पृथ्वी-वल्लभ' और उसके पश्चात् 'जय सोमनाथ' 'स्वप्न द्रष्टा' 'भगवान परशुराम' इत्यादि उपन्यास प्रकाश में आये। कन्हैयालाल मुन्शी ने गुजरात के १ वीं से लेकर १३वीं शताब्दी तक के इतिहास को अपनी तूलिका से अनेक रंग भरकर गुजराती जनता के सामने प्रस्तुत किया। इनके

द्वारा चित्रित 'मीनल देवी' और 'मुञ्जाल मन्त्री' गुजराती साहित्य में अमर हो गए।

सरस्वती चन्द्र

गुजराती औपन्यासिक साहित्य में सरस्वती चन्द्र नामक उपन्यास का प्रकाशन एक महान घटना है। इसके लेखक श्री गोवर्धन राम त्रिपाठी ने सन् १८८७ से सन् १९०१ तक १४ साल लगातार परिश्रम करके इस विशाल ग्रन्थ के ४ भागों का सृजन किया। किसी एक अमूल्य हीरे को जिस प्रकार भिन्न-भिन्न बाजुओं से देखने पर उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की चमक दिखलाई देती है उसी प्रकार 'सरस्वती चन्द्र' को भी भिन्न-भिन्न दृष्टि बिन्दुओं से देखने पर उसमें भिन्न-भिन्न प्रकाश दिखाई पड़ते हैं।

एक पुजारी की टूटी-फूटी झोंपड़ी से लेकर राजा रजवाड़े और भी मन्त्रों के कलापूर्ण सजे हुए दीवानखाने, आधुनिक शिक्षा पाए हुए युवकों के आदर्शों के साथ पुराने समय के मुनीम और गुमास्तों का व्यवहार कुमुद-सुन्दरी के सामने आधुनिक युग की युवती के आदर्श के साथ कनकलता के समान पवित्र मार्ग पर उतरी हुई स्त्री का चित्रण—इन सब भिन्न २ और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म चित्रों के बीच में उतरने पर भी ग्रन्थ लेखक अपने दृष्टि-बिंदु से एक इंच भी इधर उधर नहीं हटता है। अपने समय में जीवन में दृष्टिगोचर होने वाले प्रश्नों का चित्रण और सामाजिक जीवन को एक निश्चित दिशा में खींचने का प्रयत्न ग्रन्थकर्ता की महान आकांक्षा थी।

इस पुस्तक का चरित्र-चित्रण इतनी सूक्ष्म घटनाओं से भरपूर पाण्डित्य से भरा हुआ, संस्कृत-अवतरणों से बोझिल बना हुआ तथा बुद्धिमानी पूर्ण चर्चाओं और विचारपूर्ण बातों से इतना गुम्फित है कि इसका सार निकालना सम्भव नहीं। गुजराती-साहित्य में समय के इतने परिवर्तनों के बावजूद इस ग्रन्थ का अस्तित्व निराला है।

सरस्वतीचन्द्र का प्रथम भाग प्रकाशित होते ही यह ग्रन्थ गुजराती-साहित्य में इतना लोकप्रिय हुआ और इसका इतना अधिक प्रचार हुआ कि बाद में गुजराती में जो भी उपन्यास प्रकाशित हुए, उन पर इस ग्रन्थ [illegible] स्पष्ट रूप से नजर आती है।

रमणलाल देसाई

त्रिपाठी और मुन्शी के साथ साथ सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में रमणलाल देसाई का नाम गुजराती-साहित्य में एक प्रकाश-स्तंभ की तरह दृष्टिगोचर होता है। इस क्षेत्र में इनकी प्रशस्त सरलता के कारण गुजराती साहित्य में इन्हें "युग मूर्ति वार्ताकार" नाम से सम्बोधित किया जाता है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'ग्रामलक्ष्मी कौन ?' ४ भागों में समाप्त हुई है। इसमें ग्रामीण जीवन का चित्र मनहरतापूर्ण चित्र खींचा गया है। इसके सृजन में लेखक की गंभीर विचार शक्ति स्पष्ट रूप से झलकती है। राजनीति नैतिक, आर्थिक और व्यावहारिक विषयों पर लेखक का दर्शन और चिन्तन पाठक को बहुत आनन्द देता है। बहुत थोड़े शब्दों में अर्थ गाम्भीर्य से परिपूर्ण सूत्रों में विवेचन किया गया है। इनका एक उपन्यास 'दिव्यचक्षु' नाम से भी प्रकाशित हुआ है। इनकी और भी कई रचनाओं ने गुजराती साहित्य को समृद्ध किया है।

इसी प्रकार और भी कई लेखकों ने जिनमें पारसी लेखक भी शामिल हैं और कुछ लोक-लेखक भी हैं गुजराती साहित्य को समृद्ध किया है। मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त देश और विदेश की विभिन्न भाषाओं से उत्तम उपन्यासों के अनुवाद भी गुजराती में बहुत हुए हैं।

इस प्रकार गुजराती का उपन्यास-साहित्य आज एक समृद्ध साहित्य में गिना जा सकता है।

मलयालम-साहित्य में उपन्यास

मलयालम-भाषा में उपन्यास-साहित्य का प्रारंभ सन् १८८७ में 'अप्पु नेडुङाडी' नामक लेखक ने 'कुन्दलता' नामक उपन्यास लिखकर किया। उसके पश्चात् 'चन्दुमेनोन' नामक लेखक ने इन्दुलेखा और शारदा उपन्यास की रचना करके मलयालम उपन्यास-साहित्य में दिशा सूचक यन्त्र का काम किया।

चन्दुमेनोन का जन्म सन् १८४७ में और मृत्यु सन् १८९९ में हुई। सामाजिक उपन्यासों के लिखने में चन्दुमेनोन ने मलयालम-साहित्य में अच्छी कीर्ति सम्पादित की।

ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में सी वी रामन पिल्ला ने मलयालम-साहित्य के अन्दर अद्वितीय स्थान

प्राप्त किया। मार्तंड वर्मा, धर्मराज और रामराज-बहादुर इनके ३ विख्यात ऐतिहासिक उपन्यास हैं। कहा जाता है कि अंग्रेजी भाषा में स्कॉट, फ्रेंच भाषा में ड्यूमा, बंगला में बंकिमचन्द्र, मराठी में हरिनारायण आपटे और गुजराती में कन्हैयालाल मुंशी को जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान मलयालम-साहित्य में सी वी० रामन पिल्ले का समझा जाता है।

इसी प्रकार श्री के एम पणिक्कर ने भी मलयालम में ५ उपन्यासों की, ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर रचना की है। इन उपन्यासों में 'केरल सिंह' नामक उपन्यास श्रेष्ठ माना जाता है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान काल के मलयालम-उपन्यासकारों में तकषी शिवशंकर पिल्ला, वैक्कम मुहम्मद बशीर, एस के पोट्टेक्काट्ट इत्यादि लेखक और उल्लेखनीय हैं।

उप्टन सिन्क्लेअर
(Upton Sinclair)

अमेरिकन उपन्यास-साहित्य का एक सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, जिसका जन्म सन् १८७८ में हुआ।

उप्टन सिन्क्लेअर औद्योगिक क्षेत्र और फैक्टरियों के यथार्थ जीवन को चित्रित करने वाला एक सफल कलाकार था। इसके 'दि जङ्गल, किंग कोल' 'दि गाड स्टेप' 'आइल', 'बोस्टन', 'दि फ्लावर किंग' आदि उपन्यासों में अमेरिका के औद्योगिक क्षेत्रों के जीवन की सुन्दर आलोचना की है।

प्रथम महायुद्ध और द्वितीय महायुद्ध के मध्यवर्ती जीवन पर ८ उपन्यासों की सीरीज के रूप में उप्टन ने समस्त विश्व-साहित्य को एक अमूल्य देन दी है।

उपमितिभव प्रपञ्च कथा

सुप्रसिद्ध जैनाचार्य सिद्धर्षि सूरि द्वारा रचित एक महान् रूपक ग्रन्थ उपमिति-भव-प्रपञ्च-कथा जिसकी रचना ईस्वी सन् ९०५ में हुई।

उपमिति-भव-प्रपञ्च-कथा एक रूपक कथानक के रूप में सारे जैन-दर्शन शास्त्र का मन्थन है। समस्त भारतीय साहित्य में ही इसको पहला रूपक ग्रन्थ कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

जर्मनी के सुप्रसिद्ध डा हर्मन जैकोबी इस ग्रन्थ की अंग्रेजी-प्रस्तावना में लिखते हैं कि 'I did find some thing still more imporatant the great literary value of the U Katha and the faet that it is the first allegorical work in Indian literature."

इस ग्रन्थ में निष्पुण्यक नामक भिखारी के चरित्र के रूपक में संसारी जीव को सत्य धर्म प्राप्त होने के समय से सम्पूर्ण संसार त्याग करने तक किस प्रकार धीरे-धीरे ऊँचे चढ़ना पड़ता है, इसका वर्णन किया गया है। फिर बाद में उन्होंने बतलाया है कि वह निष्पुण्यक भिखारी दूसरा कोई नहीं बल्कि सत्य धर्म प्राप्त करने के पहले स्वयं मेरा ही जीव था।

इस ग्रन्थ के रचयिता ने इस कथा का वर्णन सर्व साधारण को लागू पड़े ऐसे-इस प्रकार से करने का प्रयत्न किया है। दूसरे संस्कृत ग्रन्थ कर्ताओं की अपेक्षा मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियों का इतिहास सिद्धर्षि की इस कृति में विशेष रूप से मिलता है। ज्यों-ज्यों पाठक इस पुस्तक को पढ़ता जाता है, त्यों त्यों उसे मनुष्य के आन्तरिक जगत का और पाप-पुण्य के परिणामों का स्पष्ट दर्शन होता जाता है।

इसलिए भारत में धर्म और नीति के ग्रन्थों को लिखने वाले ग्रन्थकारों में सिद्धर्षि सूरि का स्थान प्रथम श्रेणी में माना जाता है।

इस रूपक-कथा का निर्माण 'भिनमाल' नामक नगर के बड़े जैन मन्दिर में किया गया और दुर्ग स्वामी की "गणा" नामक शिष्या ने इस ग्रन्थ की पहली प्रति लिखी।

उन्मत्तावंत

काश्मीर के उत्पल वंशीय पार्थ राजा का पुत्र जिसका समय सन् ९३७ से ९३९ तक समझा जाता है।

कश्मीर की राज्य-परम्परा में जिन क्रूर और दुष्ट राजाओं का नाम आता है, उनमें उन्मत्तावन्ति प्रमुख है। महाकवि कल्हण ने अपनी 'राजतरंगिणी' में इसकी क्रूरता की कहानियों का विस्तार से वर्णन किया है। लिखा है—"दुर्मिन और जयापीड़" जैसे भाग्यशाली राजाओं ने बड़े यत्न से जिस प्रजा का पालन किया था इस दुष्ट राजा ने उसका सत्यानाश कर डाला। हूण राजा मिहिर-गुल की तरह इस राजा को भी क्रूरता के काम करने में बड़ा आनन्द आता था। गर्भवती स्त्रियों के गर्भ के बच्चों को मार डालना इत्यादि बीभत्स कार्यों में उसे बड़ा आनन्द मिलता था। इसके राज्य काल के पहिले से ही कश्मीर की आन्तरिक दशा अधिकारियों के षड्यंत्रों और बेइमानियों से छिन्न भिन्न हो चुकी थी। इस दशा को देखकर तथा अपने पुत्र के कुकृत्यों से विरक्त होकर उसका पिता पार्थ 'जयेन्द्र विहार' नामक महल में एकान्त-वास करने लगा। मगर वहाँ पर भी उन्मत्तावन्ति ने अपने पिता को नहीं छोड़ा और उसने अपने पिता तथा सभी भाइयों की हत्या कर डाली।

दो वर्ष तक अपना क्रूर शासन करके इस क्रूर कर्मी को भी अपने शासन से हाथ धोना पड़ा और कश्मीर का राज्य इसके अवैध पुत्र शूर वर्मन के हाथ में चला गया।

उपयोगितावाद

उपयोगिता के मूलभूत सिद्धान्तों पर समाज की नैतिक, धार्मिक और राजनैतिक धाराओं पर विचार करनेवाली एक आधुनिक विचार-धारा जिसके पुरस्कर्ता 'बैन्थम' और 'जान स्टुअर्ट मिल' समझे जाते हैं।

उपयोगितावादी-विचारधारा का विश्वास है कि समाज में हर वस्तु का मूल्यांकन उपयोगिता के आधार पर होना चाहिये। जो वस्तु व्यक्ति और समाज की सुख-वृद्धि में सहायक हो या उसके दुःख निवारण में उसकी सुख-शान्ति का विस्तार करने में उपयोगी हो उसी को महत्व देना चाहिये, हरेक तत्व के जाँच की कसौटी उसकी उपयोगिता पर आधारित होनी चाहिए। मनुष्य की जो भावनाएँ या जो सिद्धान्त उपयोगिता पर आधारित नहीं हैं व गलत हैं।

उपयोगिता-वाद की विचारधारा को ग्रहण करने पर संसार की वे सभी विचार-धाराएँ निरर्थक हो जाती हैं जो त्याग, बलिदान, निरासक्ति और शालीनता के ऊपर आधारित थी और जिन भावनाओं के ऊपर संसार में इतने भव्य और महान कार्य हुए हैं। जिन्होंने मानवीय इतिहास को गौरवान्वित किया है और जिसने यह सिद्ध किया है कि संसार में किसी समय आनंद भी दुःख और दुःख भी महान हो सकता है।

इसीलिए इस विचारधारा के आलोचक यह कह कर इसकी आलोचना करते हैं कि यह सिद्धान्त सुन्दरता, शालीनता एवं विशिष्टता की उपेक्षा कर केवल उपयोगिता और लौकिक स्वार्थ को ही महत्व देता है। इसलिए सामान्य किस रूप से यह पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकता।

फिर भी इस विचार-धारा के पुरस्कर्ताओं ने यूरोप के तथा अन्य देशों के विचारों को भी प्रभावित किया। आचरण के क्षेत्र में पूर्णतः सफल न होने पर भी व्यवहार के क्षेत्र में इस धारा के पुरस्कर्ता बैन्थम ने काफी प्रयत्न किया। जेलों के सुधार में न्याय-व्यवहार को सरल करने में अमानुषिक-परिणामहीन दण्ड व्यवस्था को हटाने में बैन्थम ने बहुत सहायता दी। जब उसे निश्चय हो गया कि संसदीय सुधार के बिना वैधानिक सुधार असंभव है, तब वह उस ओर आकर्षित हुआ।

उपेन्द्र भञ्ज

उड़िया-साहित्य के महान कवि जिनका समय सन् १६८५ से १७५५ तक है।

उपेन्द्रभञ्ज के पिता का नाम नीलकण्ठ था। ऐसा कहा जाता है कि घुमसर नामक स्थान में जहाँ इनके पिता का अन्तिम जीवन व्यतीत हुआ था ओड़गाँव के मंदिर में उपेन्द्रभञ्ज ने अपनी साधना के द्वारा वहाँ के देवता 'श्रीरघुनाथजी' को प्रसन्न किया था और उन्हीं के प्रसाद से उन्हें कवित्वशक्ति प्राप्त हुई थी। उन्होंने संस्कृत भाषा में न्याय वेदान्त दर्शन साहित्य व्याकरण और अलंकार शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था।

उपेन्द्रभञ्ज रीति-युग के कवि थे। इनके काव्यों में 'लावण्यवती' 'कोटि-ब्रह्माण्ड-सुन्दरी और 'वैदेहीश-विलास' विशेष प्रसिद्ध हैं। वैसे उनकी कुल रचनाओं की संख्या ५ के करीब है।

उड़िया-साहित्य में उपेन्द्रभञ्ज का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत पण्डितों के साथ प्रतियोगिता में उतर कर उन्होंने बहुत से चमत्कारिक काव्यों की रचना की। धर्म और साहित्य के बीच एक सीमा-रेखा खींच कर उन्होंने धर्म को साहित्य से हमेशा अलग रखा।

उपेन्द्रभञ्ज शब्द रचना के बड़े जादूगर थे। उनके सबसे बड़े काव्य-'वैदेहीश-विलास' में प्रत्येक पंक्ति का प्रारम्भ 'ब' अक्षर से ही होता है। 'चन्द्रकला'-रसात्मक नामक अपूर्व काव्य में उन्होंने कहीं भी मात्रा का प्रयोग नहीं किया है। संगीत-शास्त्र पर भी उन्होंने 'चौपदी-भूषण' 'चौपदी-चन्द्र' इत्यादि ग्रन्थ लिखे हैं जो उड़ीसा की जनता में लोकप्रिय हैं।

उपेन्द्रनाथ दास

बंगला-साहित्य के एक नाटककार और निर्देशक जो गिरीशचन्द्र घोष के समकालीन थे। इनका 'शरत् सरोजिनी' नामक नाटक और 'गजदानन्द' नामक परिहास-नाटक बंगाली समाज में बड़े लोक-प्रिय हुए।

गजदानन्द नाटक की रचना उस समय हुई जब सन् १८७५ में सम्राट एडवर्ड प्रिंस ऑफ वेल्स के रूप में बंगाल में आये और यहाँ के एक प्रतिष्ठित रईस जगदानन्द मुखर्जी के घर पर उनके जनानखाने की स्त्रियों के द्वारा भी उनका स्वागत सत्कार किया गया। इससे बंगाली समाज में तहलका मच गया। पत्रों में जगदानन्द पर बहुत व्यंग्य किये गए और इसी घटना पर उपेन्द्रनाथ ने 'गजदानन्द' नाटक की रचना की।

यह नाटक 'सरोजिनी नाटक के साथ सन् १८७६ में खेला गया। गजदानन्द के इस खेल ने जगदानन्द को समाज में मुँह दिखाने लायक नहीं रखा। तब सरकार ने एक 'आर्डिनेन्स' निकाल कर इस नाटक का अभिनय रोका। बंगला के रंगमञ्च पर सरकार का यह सबसे पहला प्रहार था।

उबैदुल्ला शैबानी

मध्य एशिया में शैबानी वंश का एक प्रसिद्ध राजा जिसका समय सन् १५१२ से १५४ तक था।

मध्य एशिया में सन् १५ से १५९९ तक शैबानी वंश के शासकों का बड़ा प्राबल्य रहा। यह राजवंश उजबक जाति के राजवंश की एक शाखा थी। इस वंश का पहला शासक महमूद शैबानी था। उबैदुल्ला इस वंश का चौथा शासक था।

शैबानी राजवंश इस्लाम के सुन्नी सम्प्रदाय का अनुयायी था और ईरान का शाह इस्माइल शिया पन्थ का अनुयायी था। सुन्नी लोग उन दिनों शियाओं को काफिरों से भी बदतर समझते थे और इनके आपस में बड़े जोरदार झगड़े होते रहते थे।

जिस समय उबैदुल्ला ने शासन नहीं सम्हाला था और वह राजकुमार की हैसियत से था, उसी समय सन् १५१७ में समरकन्द में बाबर तैमूर के सिंहासन पर बैठा था। इसी बाबर ने आगे जाकर भारतवर्ष में विशाल मुगल साम्राज्य की नींव डाली।

बाबर की ईरान के शाह इस्माइल से गहरी मित्रता थी। शैबानियों के साथ की लड़ाई में शाह इस्माइल ने बाबर की मदद की थी और उसे समरकन्द में तैमूर के तख्त पर बैठाने के लिए भी भारी सेना की मदद भेजी थी। इसी सेना की सहायता से बाबर ने उबैदुल्ला शैबानी को हराकर सारे 'अन्तर्वेद' पर अधिकार कर लिया था।

लेकिन शाह की मदद बाबर के लिए बहुत मँहगी पड़ी। उसने अंतर्वेद में इस्माइल शाह के नाम का 'खुत्बा' पढ़वाया। एक शिया बादशाह के नाम का खुत्बा पढ़े जाते देखकर अन्तर्वेद के सुन्नी कैसे खुश हो सकते थे। खासकर जब बाबर ने खुद ईरानी पोशाक धारण की और अपनी सेना को भी वैसा करने का आदेश दिया। इससे सुन्नियों का कोप भड़क उठा और जगह-जगह पर विद्रोह होने

गयी। यह मौका देखकर उबैदुल्ला बुखारा की ओर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। कुलमलिक स्थान पर बाबर का उबैदुल्ला की फौजों के साथ संघर्ष हुआ। बाबर की सेना में ४० हजार सैनिक थे। जबकि उबैदुल्ला की सेना में केवल ३ हजार उजबक सैनिक थे। मगर यह एक चमत्कार पूर्ण घटना थी कि उबैदुल्ला की उजबक सेना ने बाबर की सेना को बड़ी बुरी तरह से हराया।

तब शाह इस्माइल ने बाबर की मदद पर ६ हजार सैनिक भेजे। इस सेना ने उजबक सेनापति को हराकर दोबारा और करशी को लूटा और वहाँ के १५ हजार नागरिकों को एक साथ कत्ल कर डाला।

इसके बाद उबैदुल्ला की ईरान के शाह के साथ कई छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। अन्त में उसने ईरान के शाह का मुकाबला करने के लिए डेढ़ लाख सेना एकत्रित की और दक्षिण की ओर बढ़ा। ईरानी सेना में यद्यपि ३ हजार ही आदमी थे मगर वे बड़े शानदार अनुशासन सम्पन्न और तोपों तथा बन्दूकों के नवीन हथियारों से सुसज्जित थे। ईरान का शाह 'तहमास्प' स्वयं सेना का नेतृत्व कर रहा था।

इस प्रकार युद्ध में तोपों और बन्दूकों के सामने उबैदुल्ला के सैनिक घास- भूसी की तरह उड़ने लगे और उजबक सेना को भयंकर पराजय का मुँह देखना पड़ा।

सन् १५३३ में उबैदुल्ला शैबानी वंश के खान की गद्दी पर बैठा। इसने फिर खुरासान में लूट मार करना प्रारम्भ किया और शिया लोगों पर बहुत अत्याचार करने प्रारम्भ किये। शाह तहमास्प जब उसका मुकाबला करने के लिए आया तो बन्दूकों के डर के मारे उबैदुल्ला भाग निकला।

इस प्रकार सामने की लड़ाई को छोड़कर उबैदुल्ला ने शाह को तंग करने और शिया लोगों के खिलाफ जिहाद करने के लिए छुट-पुट पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया।

सन् १५४० में उबैदुल्ला की मृत्यु हो गई। इतिहासकार 'हैदर' उबैदुल्ला के लिए लिखता है—

'पिछले सौ सालों में उबैदुल्ला जैसा कोई बादशाह नहीं हुआ। वह बड़ा ही नम्र, सदाचारी, न्याय परायण और वीर पुरुष था। उसने अपने हाथ से कुरान की कई प्रतियाँ लिखीं। तुर्की अरबी और फारसी का वह कवि तथा संगीतज्ञ था। उसके समय की राजधानी बुखारा हुसेन मिर्जा के 'हिरात' की याद दिलाती है।

उमर खैय्याम

ईरान देश में फारसी साहित्य के सुप्रसिद्ध रुबाइयाँ वाले महान् कवि उमर खैयाम। जिनकी मदभरी रुबाइयों ने विश्व-साहित्य में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। इनका जन्म ग्यारहवीं सदी के मध्य में और मृत्यु बारहवीं सदी के तीसरे दशक में हुई।

उमर खैयाम का पूरा नाम गयासुद्दीन अबुलफतह उमर इब्नइब्राहिम उमर खैयामी था।

उमर खैयाम अपने समय के प्रसिद्ध गणित शास्त्री और ज्योतिषी थे। अपने ज्योतिष ज्ञान के आधार पर इन्होंने सुलतान मलिक शाह के पंचांग का संशोधन किया था। जिसके फलस्वरूप तारीखे मलिकशाही जलाली सन् या सलजुक संवत् का प्रारंभ हुआ। कविता या रुबाइयों की रचना ये अपने निजी शौक के लिए करते थे।

उमर खैयाम की रुबाइयों तथा कविताओं का पूर्ण संग्रह अभी तक उपलब्ध नहीं है। सबसे पुराने संग्रह में १५८ रुबाइयाँ संग्रहित की गई हैं।

यूरोप में इन रुबाइयों का प्रचार उन्नीसवीं सदी के मध्य में हुआ। ऑक्सफोर्ड के एक पुस्तकालय में प्रोफेसर कोवेल को एक फारसी पाण्डुलिपि मिली जिसमें उमर खैयाम की १५८ रुबाइयों का संग्रह था। एक दूसरी पाण्डुलिपि उन्होंने एशियाटिक सोसायटी से प्राप्त की जिसमें ५१६ रुबाइयाँ थीं। उन्होंने अपने मित्र फारसी के विद्वान फिट्जरलैण्ड को ये पाण्डुलिपियाँ अनुवाद के लिये दे दीं।

फिट्जरलैण्ड के द्वारा किया हुआ अनुवाद संसार में उमर खैयाम का सबसे सुन्दर अनुवाद माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अनुवाद करते समय अनुवादक भावावेश में इतना तल्लीन हो गया कि उसने उन

कविताओं की सारी भावुक सृष्टि को अपने अनुवाद में हूबहू उतार दिया।

इसके पश्चात् तो अंग्रेजी साहित्य में धड़ाधड़ उमर खैयाम के सुन्दर और सचित्र अनुवाद प्रकाशित होने लगे। फिर भी कोई लेखक अभी तक फिट्जरलैण्ड के अनुवाद के मुकाबले में सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत न कर सका।

हिन्दी में उमर खैयाम के अभी तक दस पन्द्रह अनुवाद छप चुके हैं। ये अनुवाद फ़िट्जरलैण्ड के अंग्रेजी अनुवाद को लेकर ही किये गये हैं। एक अनुवाद मूल फारसी से किया गया है। एक अनुवाद हिंदी काव्य के उमर खैय्याम मधुशाला और मधुबाला के लेखक श्री हरिवंश राय 'बच्चन' ने भी किया है जो हिंदी काव्य-जगत् में विशेष लोकप्रिय हुआ है।

उमर खैयाम की रुबाइयात पर अपने विचार प्रकट करते हुए कवि बच्चन लिखते हैं कि—

"उच्चश्रेणी के काव्यों में यह विशेषता होती है कि उनकी कविता तो सुन्दर होती ही है मगर साथ ही वह पाठक को ऐसी दृष्टि प्रदान करती है जिससे वह उसके सौंदर्य को समझ सके। उमर खैयाम की रुबाइयों में भी यह गुण प्रचुर मात्रा में है। पहली पंक्ति से ही वह पाठक को अपने वातावरण में उठा ले जाती है। आप अपनी दुनिया भूल जाते हैं और उमर खैयाम की दुनिया में चले जाते हैं। फिर वह अपनी दुनिया के स्थूल, असाधारण रंगीन और अर्थ गर्भित दृश्य और रूपों को किसी सिद्धहस्त जादूगर की तरह और तेजी के साथ आप के सामने ला ला कर रखने लगता है। साथ ही उनपर जिन भावों और विचारों का आरोप करता है उनमें ऐसी उद्बोधिनी शक्ति रहती है कि पाठक को ऐसा मालूम होने लगता है कि वे केवल उमर खैयाम के भाव और विचारों को ही नहीं बता रहा है आप के हृदय और मस्तिष्क का भी प्रतिनिधित्व करता है।"

उमर खैयाम एक स्वतन्त्र विचार के कवि थे। सौंदर्य के उपासक थे मस्ती के उपासक थे, आनन्द के उपासक थे। आचार शास्त्र की बाधायें उनके काव्य-प्रवाह को नहीं रोक पाती थीं। मजहबी संकीर्णता कट्टरता, तथा कठमुल्लापन के वे बड़े विरोधी थे। साथ ही सूफी सन्तों और कवियों के सिद्धान्तों से भी उनकी नहीं पटती थी। उनकी रुबाइयों में मदिरा की मस्ती, सौंदर्य की अनुभूति और मनुष्य की अतृप्त तृष्णा और अनन्त वासना के चित्रण के साथ जीवन की गम्भीर समस्याओं के लिए एक नया दृष्टिकोण भी है।

उमर खैय्याम धर्म-शास्त्रियों, समाज-शास्त्रियों और आचार शास्त्र के आचार्यों द्वारा बनाये हुए विधान की परवाह नहीं करता। एक गगन विहारी पक्षी की तरह विस्तृत काव्य क्षेत्र में वह स्वच्छन्दता पूर्वक एक के बाद दूसरी उड़ाने भरता है। हर जगह वह सौंदर्य के दर्शन करता है संगीत की मधुर ध्वनि सुनता है और रिम्भाङ्गना साकी के द्वारा दिये हुए सुवासित मदिरा के जामों का आस्वादन करता है।

कल क्या होगा इसकी वह परवाह नहीं करता वह आज को अधिक से अधिक सुन्दर बनाना चाहता है। वह कहता है—

पिलाकर प्यारी! मदिरा आज, नशे में इतना करदो चूर।
भविष्यत् के भयभावने भाग, भूत के दारुण दुःख हों दूर।
प्रिये लेना मत कल का नाम, नहीं कल पर मुझको विश्वास।
अरे, कल दूर एक दम बाद काल का मैं हो सकता ग्रास।

(प्रसिद्ध कवि बच्चन का अनुवाद)

वह धर्म शास्त्रों में बताये हुए अमरत्व स्वर्ग पर विश्वास नहीं करता। वह इसी दुनिया में अपनी जन्नत का निर्माण करता है और उसे उपभोग करने की सलाह देता है।

अरे अब जो भी कुछ है शेष, भोग वह सकते हम स्वच्छन्द।
राख में मिलजाने के पूर्व न क्यों करलें जी भर आनन्द।
गड़ेंगे जब हम होकर राख, राख में तब फिर कहाँ वसन्त।
कहाँ स्वरकार, सुरा संगीत कहाँ इस सूनेपन का अन्त।

(कविवर बच्चन द्वारा अनुवादित)

वह अपनी मंजिल मकसूद पर पहुँचना चाहता है, मगर ऐसे रास्ते से जिस रास्ते पर फूल खिले हुए हों, अप्सरायें नृत्य कर रही हों, और जाम छलक रहे हों।

उमर खैयाम न सूफी है, न धर्मवादी वह एक ऐसा मयूर है जो हमेशा विस्तृत गगन में नाचता रहता है और जिसके बगीचे में हमेशा बसन्त छाया रहता है।

लगे। यह मौका देखकर उबैदुल्ला बुखारा की ओर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। कुलमलिक स्थान पर बाबर का उबैदुल्ला की फौजों के साथ संघर्ष हुआ। बाबर की सेना में ४ हजार सैनिक थे। जबकि उबैदुल्ला की सेना में केवल ३ हजार उज़बक सैनिक थे। मगर यह एक चमत्कार पूर्ण घटना थी कि उबैदुल्ला की उज़बक सेना ने बाबर की सेना को बड़ी बुरी तरह से हराया।

तब शाह इस्माइल ने बाबर की मदद पर ६ हजार सैनिक भेजे। इस सेना ने उज़बक सेनापति को हराकर खोजारा और करशी को लूटा और वहाँ के १५ हजार नागरिकों को एक साथ कत्ल कर डाला।

इसके बाद उबैदुल्ला की ईरान के शाह के साथ कई छोटी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। अन्त में उसने ईरान के शाह का मुकाबला करने के लिए तेज़ खास सेना एकत्रित की और दक्षिण की ओर बढ़ा। ईरानी सेना में यद्यपि ६ हजार ही आदमी थे, मगर वे बड़े तजुर्बेकार अनुशासन-सम्पन्न और तोपों तथा बन्दूकों के नवीन हथियारों से सुसज्जित थे। ईरान का शाह 'तहमास्प' स्वयं सेना का नेतृत्व कर रहा था।

इस भयंकर युद्ध में तोपों और बन्दूकों के सामने उबैदुल्ला के सैनिक गाजर-मूली की तरह कटने लगे और उज़बक सेना को भयंकर पराजय का मुँह देखना पड़ा।

सन् १५३३ में उबैदुल्ला शैबानी वंश के खान की गद्दी पर बैठा। उसने फिर खुरासान में लूट मार करना आरम्भ किया और शिया लोगों पर बहुत अत्याचार करने आरम्भ किये। शाह तहमास्प जब उसका मुकाबला करने के लिए आया तो बन्दूकों के डर के मारे उबैदुल्ला भाग निकला।

इस प्रकार सामने की लड़ाई को छोड़कर उबैदुल्ला ने शाह को तंग करने और शिया लोगों के खिलाफ जिहाद करने के लिए छिप छिप कर आक्रमण करना आरम्भ किया।

सन् १५४ में उबैदुल्ला की मृत्यु हो गई। इतिहासकार 'हैदर' उबैदुल्ला के लिए लिखता है—

पिछले सौ सालों में उबैदुल्ला जैसा कोई बादशाह नहीं हुआ। यह बड़ा ही नम्र, सदाचारी, न्याय परायण और वीर पुरुष था। उसने अपने हाथ से कुरान की कई प्रतियाँ लिखीं। तुर्की, अरबी और फारसी का यह कवि तथा संगीतज्ञ था। उसके समय की राजधानी बुखारा हुसैन मिर्जा के हिरात की याद दिलाती है।

उमर खैय्याम

ईरान देश में फारसी साहित्य के सुप्रसिद्ध हालाप्यालावादी महान् कवि उमर खैयाम। जिनकी मधुभरी रुबाइयों ने विश्व-साहित्य में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। इनका जन्म ग्यारहवीं सदी के मध्य में और मृत्यु बारहवीं सदी के तीसरे दशक में हुई।

उमर खैयाम का पूरा नाम गयासुद्दीन अबुल्फतह उमर इब्नइब्राहिम उमर खैयामी था।

उमर खैयाम अपने समय के प्रसिद्ध गणित शास्त्री और ज्योतिषी थे। अपने ज्योतिष ज्ञान के आधार पर इन्होंने सुलतान मलिक शाह के पंचांग का संशोधन किया था। जिसके फलस्वरूप तारीखे मलिकशाही जलाली सन् या सलजूक संवत् का प्रारंभ हुआ। कविता या रुबाइयों की रचना वे अपने निजी शौक के लिए करते थे।

उमर खैयाम की रुबाइयों तथा कविताओं का पूर्ण संग्रह अभी तक उपलब्ध नहीं है। सबसे पुराने समय में २५ रुबाइयाँ रचित की गई हैं।

यूरोप में इन रुबाइयों का प्रचार उन्नीसवीं सदी के मध्य में हुआ। ऑक्सफोर्ड के एक पुस्तकालय में प्रोफेसर कोवेल को एक फारसी पाण्डुलिपि मिली जिसमें उमर खैयाम की १५८ रुबाइयों का संग्रह था। एक दूसरी पाण्डुलिपि उन्होंने एशियाटिक सोसायटी से प्राप्त की जिसमें ५१६ रुबाइयाँ थीं। उन्होंने अपने मित्र फारसी के विद्वान फिट्ज़जेराल्ड को ये पाण्डुलिपियाँ अनुवाद के लिये दे दीं।

फिट्ज़जेराल्ड के द्वारा किया हुआ अनुवाद संसार में उमर खैयाम का सबसे सुन्दर अनुवाद माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अनुवाद करते समय अनुवादक भावावेश में इतना तल्लीन हो गया कि उसने उन

रूबाइयों की सारी सौंदर्य सृष्टि को अपने अनुवाद में हूबहू उतार दिया।

इसके पश्चात् तो अंग्रेजी साहित्य में धड़ाधड़ उमर खैयाम के सुन्दर और सचित्र अनुवाद प्रकाशित होने लगे। फिर भी कोई लेखक अभी तक फिटजरलैण्ड के अनुवाद के मुकाबले में सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत न कर सका।

हिन्दी में उमर खैयाम के अभी तक दस पन्द्रह अनुवाद छप चुके हैं। ये अनुवाद फिटजरलैण्ड के अंग्रेजी अनुवाद को लेकर ही किये गये हैं। एक अनुवाद मूल फारसी से किया गया है। एक अनुवाद हिंदी काव्य के उमर खैय्याम मधुशाला और मधुबाला के लेखक श्री हरिवंश राय 'बच्चन' ने भी किया है जो हिंदी काव्य-जगत् में विशेष लोकप्रिय हुआ है।

उमर खैयाम की रुबाइयात पर अपने विचार प्रकट करते हुए कवि बच्चन लिखते हैं कि—

'उच्चश्रेणी के काव्यों में यह विशेषता होती है कि उनकी कविता तो सुन्दर होती ही है मगर साथ ही वह पाठक को ऐसी दृष्टि प्रदान करती है जिससे वह उसके सौंदर्य को समझ सके। उमर खैयाम की रुबाइयों में भी यह गुण प्रचुर मात्रा में है। पहली पंक्ति से ही वह पाठक को अपने वातावरण में उठा ले जाती है। आप अपनी दुनिया भूल जाते हैं और उमर खैयाम की दुनिया में चले जाते हैं। फिर वह अपनी दुनिया के स्थूल, असाधारण, रंगीन और अर्थ गर्भित दृश्य और रूपकों को किसी सिद्धहस्त जादूगर की सफाई और तेजी के साथ आप के सामने ला ला कर रखने लगता है। साथ ही उनपर जिन भावों और विचारों का आरोप करता है उनमें ऐसी उद्बोधिनी शक्ति रहती है कि पाठक को ऐसा मालूम होने लगता है कि वे केवल उमर खैयाम के भाव और विचारों को ही नहीं बता रहा है आप के हृदय और मस्तिष्क का भी प्रतिनिधित्व करता है।'

उमर खैयाम एक स्वतन्त्र विचार के कवि थे। सौंदर्य के उपासक थे, मस्ती के उपासक थे आनन्द के उपासक थे। धर्म्मर शास्त्र की बाधायें उनके काव्य-प्रवाह को नहीं रोक पाती थीं। मजहबी संकीर्णता कट्टरता तथा कठमुल्लापन के वे बड़े विरोधी थे। साथ ही सूफी सन्तों और कवियों के सिद्धान्तों से भी उनकी नहीं पटती थी। उनकी रुबाइयों में मदिरा की मस्ती, सौंदर्य की अनुभूति और मनुष्य की अतृप्त तृष्णा और अनन्त वासना के चित्रण के साथ जीवन की गम्भीर समस्याओं के लिए एक नया दृष्टिकोण भी है।

उमर खैय्याम धर्म-शास्त्रियों, समाज-शास्त्रियों और आचार शास्त्र के आचार्यों द्वारा बनाये हुए विधान की परवाह नहीं करता। एक गगन विहारी पंछी की तरह विस्तृत काव्य क्षेत्र में वह स्वच्छन्दता पूर्वक एक के बाद दूसरी उड़ाने भरता है। हर जगह वह सौंदर्य के दर्शन करता है संगीत की मधुर ध्वनि सुनता है और विश्वाङ्गना साकी के द्वारा दिये हुए सुवासित मदिरा के जामों का आस्वादन करता है।

कल क्या होगा, इसकी वह परवाह नहीं करता वह आज को अधिक से अधिक सुन्दर बनाना चाहता है। वह कहता है—

पिलाकर प्यारी! मदिरा आज, मरो में इतना करदो चूर।
भविष्यत् के भयवाले भाग, भूत के दारुण दुःख हों दूर।
मिले लेना मत कल का नाम, नहीं कल पर मुझको विश्वास।
अरे, कल दूर एक दिन बाद काल का मैं हो सकता ग्रास।
(प्रसिद्ध कवि बच्चन का अनुवाद)

वह धर्म शास्त्रों में बनाये हुए अप्रत्यक्ष स्वर्ग पर विश्वास नहीं करता। वह इसी दुनिया में अपनी जन्नत का निर्माण करता है और उसे उपभोग करने की सलाह देता है।

अरे अब जो भी कुछ है शेष, भोग वह सकते हम स्वच्छन्द।
राख में मिल जाने के पूर्व न क्यों करलें जी भर आनन्द।
गड़ेंगे जब हम होकर राख, राख में तब फिर कहाँ बसन्त।
कहाँ स्वरकार, सुरा संगीत कहाँ इस सूनेपन का अन्त।
(कविवर बच्चन द्वारा अनुवादित)

वह अपने मंजिले मकसूद पर पहुँचना चाहता है, मगर ऐसे रास्ते से जिस रास्ते पर फूल खिले हुए हों, अप्सरायें नृत्य कर रही हों, और जाम छलक रहे हों।

उमर खैयाम न सूफी है न धर्मवादी वह एक ऐसा मयूर है जो हमेशा विस्तृत गगन में नाचता रहता है और जिसके बगीचे में हमेशा बसन्त छाया रहता है।

मरे थे सुन्दरतम वे भव जिन्हें हम करते इतना प्यार
क्रूर मृदु काल कर्म के हाथ, होगये कितने शीघ्र शिकार।
न पी पाये थे प्याले चार गया उनका जीवन मधु भूल
गये करने विश्राम अनन्त लिए निज अरमानों की धूल।

उमास्वाति वाचक

एक सुप्रसिद्ध जैनाचार्य जिन्होंने समग्र जैन-तत्त्वज्ञान का मन्थन कर 'तत्त्वार्थाधिगम् सूत्र' नामक महान् ग्रन्थ की रचना की।

वैदिक धर्म में श्री भगवद्गीता का जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान जैन-धर्म के अन्दर उमास्वाति-रचित 'तत्त्वार्थाधिगम्' सूत्र का है। इस महान् ग्रन्थ को श्वेताम्बर और दिगम्बर—दोनों सम्प्रदाय अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक मानते हैं।

उमास्वाति का जन्म 'न्यग्रोधिका' नामक ग्राम में हुआ था। उनकी माता का नाम 'वात्सी' और पिता का नाम 'स्वाति' था। उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना 'कुसुमपुर' ('पाटलिपुत्र') में की। इनके गुरु का नाम मुनि घोष नन्दी था।

उमास्वाति किस काल में हुए। यह सन्देहास्पद है। कुछ लोगों के मत से इनका समय वीर संवत् १७० अथवा ईस्वी सन् से पूर्व ३५३ वर्ष होना चाहिए। मगर सतीशचन्द्र विद्याभूषण की खोज के अनुसार उमास्वाति का समय ईस्वी सन् १ से लेकर ८५ के बीच किसी समय होना चाहिये।

जिस समय उमास्वाति का आविर्भाव हुआ, उस समय के उपलब्ध जैन साहित्य का अवलोकन करने से मालूम होता है कि उमास्वाति के पूर्व जैन-दर्शन में तर्क शास्त्र सम्बन्धी किसी स्वतंत्र सिद्धान्त का प्रचलन नहीं था। इनके पहले तर्क-शास्त्र और प्रमाण सम्बन्धी बातें केवल आगम ग्रन्थों में ही प्रसंग रूप से सङ्कलित थीं। उस समय का युग तर्क-प्रधान न होकर आगम-प्रधान था। उमास्वाति ने ही सब से पहले 'तत्त्वार्थाधिगम् सूत्र' की रचना करके समस्त जैन तत्त्वों को एक स्थान पर एकत्रित किया और उन्होंने इस बात की आवश्यकता बतलाई कि इसमें संग्रहीत तत्त्वों को अर्थ, प्रमाण और नय (Philosophy of stand points) के द्वारा निश्चित करना चाहिए। (प्रमाण नयैरधिगमः) कहा जाता है कि उनके पश्चात् ही जैन-न्याय के धुरन्धर विद्वान् 'सिद्धसेन दिवाकर' ने सबसे पहले 'न्यायावतार' नामक तर्क-प्रकरण की संस्कृत में रचना करके जैन-तर्क-शास्त्र की बुनियाद स्थिर की। मगर कुछ इतिहास-कार उमास्वाति का समय सिद्धसेन के पश्चात् मानते हैं।

उमास्वाति के इस तत्त्वार्थाधिगम-सूत्र में १० अध्याय हैं। पहले अध्याय में सम्यक् दर्शन—ज्ञान—चरित्र—रत्नत्रय को मोक्षमार्ग का साधन रूप बतलाकर (सम्यक् दर्शन-ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः) उनकी प्राप्ति के साधनरूप ७ तत्त्व ४ निक्षेप, प्रमाण, नय निर्देश और अनुयोग द्वार बतलाकर ज्ञान अज्ञान और नय के स्वरूप का वर्णन किया है।

दूसरे अध्याय में अध्यवसाय, उनके भेद और लक्षण, इन्द्रिय—गति—योनि, शरीर और आयु का स्पष्टीकरण किया गया है।

तीसरे अध्याय में नरक—भूमि वहाँ के जीवों की दशा और मनुष्य क्षेत्र तथा तिर्यञ्च प्राणियों का विवेचन किया गया है।

चौथे में देवलोक की स्थिति तथा जुदे जुदे देवों की आयुष्य का वर्णन है।

पाँचवें अध्याय में अजीव या जड़ वस्तुओं का वर्णन उनके भेद-प्रभेद की व्याख्या, लक्षण आदि का विवेचन किया गया है।

छठे अध्याय में मन-वचन काया के विकार से किस प्रकार कर्मों का आस्रव (आगमन) होकर वह जीव को जकड़ लेते हैं—इसका विवेचन किया गया है। जीव के साथ कर्मों का मेल होने को 'आस्रव' कहा जाता है।

सातवें अध्याय में मुनियों के ५ महाव्रत और उनकी भावना और गृहस्थों के १२ अणुव्रत और उनके अतिचारों का स्पष्टीकरण करके गृहस्थ और मुनि धर्म को समझाया है।

आठवें अध्याय में बन्ध-तत्त्व का विवेचन है। ८ कर्म और उनकी कर्म-प्रकृतियों का तथा उनके स्थिति और प्रदेश-बन्ध की चर्चा की गई है।

नवें अध्याय में ३ गुप्ती, ५ समिति, १० प्रकार का त्याग-धर्म, १२ भावना और २२ परिषहों का विवेचन करने के पश्चात् बतलाया गया है कि इनके द्वारा किस प्रकार संवर (कर्मों की रोक) और निर्जरा (कर्मों का क्षय)—इन दो तत्वों का प्रारम्भ होता है। इस अध्याय में ५ प्रकार के चरित्र और १२ प्रकार के तप का स्वरूप बतला कर ५ प्रकार के निर्ग्रन्थ का वर्णन किया गया है।

दसवें अध्याय में मोक्ष तत्व का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

इस तत्वार्थ-सूत्र पर कालान्तर में अनेक दिगम्बर और श्वेताम्बर आचार्यों ने बीसों टीकाओं की रचना की है। इससे मालूम पड़ता है कि यह ग्रन्थ जैन-साहित्य में कितना महत्वपूर्ण है।

तत्वार्थ-सूत्र के अतिरिक्त उमास्वति ने करीब ५ सौ प्रकरणों की और रचना की। इनमें से 'प्रशंरति' 'श्रावक प्रज्ञप्ति' 'पूजा प्रकरण' समास प्रकरण' 'क्षेत्र-विचार' इत्यादि रचनाएँ इस समय उपलब्ध हैं।

उमास्वाति प्रकरणों की रचना करने में अद्वितीय थे। और वे एक उत्कृष्ट संग्रहकर्त्ता भी थे।

उमापतिधर

१२ वीं शताब्दी में बंगाल के सेन-वंशीय राजाओं के समय में एक प्रसिद्ध कवि उमापतिधर।

गीत-गोविन्दकार श्री जयदेव ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'गीत गोविंद' में उमापतिधर का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया। इससे अनुमान होता है कि उमापतिधर जयदेव कवि के समकालीन थे।

जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मण-सेन के समकालीन थे यह बात निश्चित् हो चुकी है और यह भी निश्चित् हो चुका है कि राजा लक्ष्मण सेन का समय सन् ११११ में था। अतएव उमापतिधर का समय १२ वीं शताब्दी के प्रारम्भ या उसके मध्य में मानना संगत होगा।

श्रीमद्भागवत की भावार्थ-दीपिका टीका पर जो वैष्णव तोषिणी टीका लिखी गई है उसमें लिखा है कि 'श्री जयदेवसहचरेण महाराजलक्ष्मणसेन मंत्रिवरेणोमापतिधरेण'

इससे भी विदित होता है कि उमापतिधर नामक कवि सेन-वंशी राजा बल्लाल सेन के पुत्र लक्ष्मण सेन के मन्त्री थे।

उमापतिधर का रचा हुआ कोई स्वतंत्र ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं है, पर इनके रचे हुये और शिला पर खुदे हुये ११ श्लोक 'रायल एशियाटिक सोसायटी' में रखे हुये हैं।

उमर शेख मिर्जा

तैमूरलंग के लड़के मीरान शाह का प्रपौत्र और दिल्ली के बादशाह बाबर का पिता।

उमर शेख मिर्जा का जन्म सन् १४५६ में 'समरकन्द' में हुआ था। इन्होंने अपने पिता के जीते जी मध्यएशिया के अन्दिजान और फरगान प्रांत पर शासन किया था।

सन् १४६४ ई० में वह मंच पर खड़े हो उड़ते हुए कबूतर देख रहा था। उसी समय मंच टूट गया और इसकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय इसकी उमर ३६ वर्ष की थी। इसका पुत्र बाबर इसकी जगह सिंहासन पर बैठा।

उमर-अल-मकसूस

उमैया-वंश के खलीफा मुआविया द्वितीय का गुरु, जिसका समय सन् ६६८ ई है।

खलीफा मुआविया द्वितीय ने अपने पिता के मरने पर इससे पूछा कि हम 'खिलाफत' लें या नहीं। इसने कहा कि यदि आप मुसलमानों पर न्यायपूर्वक शासन कर सकें तो खिलाफत लेलें और यदि न कर सकें तो छोड़ दें।

उक्त खलीफा ने ६ सप्ताह तक राज्य चलाने बाद अपने को अयोग्य पाया और खिलाफत को छोड़कर एक एकान्त कोठरी में घुस गया जहाँ उसकी मृत्यु हुई। उमैया वंश के लोग इस घटना से उमर अल मकसूस पर बहुत चिढ़ उन्होंने समझा कि इसी के कहने से उमैया ने तख्त छोड़ा है और इसको जिन्दा ही जमीन में दफन कर दिया।

उमाजी नायक

बम्बई प्रांत में थाना जिले का एक मशहूर विद्रोही मराठा सरदार जिसका समय १८२७ के आसपास है। अंग्रेज इतिहासकारों ने इसे डाकू सरदार लिखा है।

उमाजी नायक ने १८२७ ई० में १ आदमी और घोड़े लेकर पूने से कमाठि पहाड़ को पार किया और जनवेस से ६ कोस पूर्व सफल पर्वत के नीचे डेरा डाल दिया। यहाँ इसने घोषणा की कि—'सब किसान अंग्रेज गवर्नमेंट की तरह हमको भूमि का लगान दें। जो नहीं देगा उसके घरमें आग लगा दी जायगी। १ दिसम्बर को २ डाकुओं ने मिलकर पुरन्दर के सरकारी खजाने को लूटा और रक्षक-सैन्य को मारापीटा।

सन् १८२८ और १८२९ में उमाजी नायक के उपद्रव और भी बढ़ गये किंतु बाद में कैप्टेन मार्किंसन ने बड़ी मुस्तैदी के साथ सन् १८३४ तक यह सारी अशांति मिटा दी।

उमेशचन्द्र बनर्जी

इण्डियन-नेशनल-कांग्रेस के प्रथम सभापति, जो सन् १८८५ में बंबई के अन्तर्गत हुई थी।

२८ दिसम्बर सन् १८८५ को दिन के १२ बजे बंबई के गोकुलदास तेजपाल-संस्कृत-कालेज के भवन में 'इंडियन नेशनल-कांग्रेस' का पहला ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ। मि० ह्यूम ने श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व का प्रस्ताव उपस्थित किया और श्री एस. सुब्रह्मण्य ऐय्यर और श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग ने उस प्रस्ताव का समर्थन किया। वह एक बड़ा गम्भीर और ऐतिहासिक दृश्य था जिसमें मातृभूमि के द्वारा सम्मानित अनेक पुरुषों में प्रथम पुरुष ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा के प्रथम स्थान को ग्रहण किया।

कांग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान दिलाते हुए अध्यक्ष महोदय ने कांग्रेस का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया।

(क) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश-हित के लिए लगन से काम करने वाले लोगों के बीच में सम्पर्क और घनिष्ठता बढ़ाना।

(ख) समस्त देश प्रेमियों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री-व्यवहार के द्वारा वंश, धर्म, और प्रान्त सम्बन्धी भिन्नता के संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की तमाम उन भावनाओं का जो लार्ड 'रिपन' के चिरस्मरणीय शासनकाल में पैदा हुईं, उनका पोषण और परिवर्द्धन करना।

(ग) महत्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह से चर्चा होने के बाद जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों, उनका प्रामाणिक संग्रह करना।

(घ) उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश-हित के कार्य कर सकें।

इसके पश्चात् सन् २८-१२-१८९२ ई० को इलाहाबाद में होने वाले कांग्रेस के आठवें अधिवेशन की अध्यक्षता भी श्री उमेशचन्द्र बनर्जी ने की थी।

उम्मेद सिंह (१)

कोटे के एक नरेश जिनको सन् १८२७ ई० में राज्याधिकार प्राप्त हुए। इनका दीवान जालिमसिंह बड़ा अधिकार प्रिय और प्रतिभाशाली व्यक्ति था। ४५ वर्ष तक उसने बड़ी सफलता के साथ कोटा का राज्य-कारबार चलाया। इसके शासनकाल में किसी की हिम्मत नहीं थी कि कोटे की तरफ उँगली उठा सके।

शान्ति के ऐसे समय में जब कि सारे राजपूताने में लूट-खसोट के कारण 'त्राहि-त्राहि' मच रही थी, कोटा अपनी पूर्ण उन्नति के शिखर पर आरूढ़ था। जालिम सिंह ने बूँदी वालों से 'इन्दरगढ़' 'बलवान' और 'करवर' नामक परगने छीन लिए। जालिम सिंह की नीति हर कामों में अंग्रेजों का साथ देने की थी और इसी के कारण अंग्रेज सरकार की कोटा राज्य पर बड़ी निगाह रहती थी और इसीसे होल्कर सरकार से मिले हुए शाहाबाद आदि के ४ परगने ब्रिटिश सरकार ने जालिम सिंह को निजी रूप से प्रदान किये।

आगे जाकर कोटा के महारावों से जब जालिम सिंह की अनबन हुई तो ब्रिटिश सरकार ने ये चार परगने जालिम सिंह को देकर कोटे की रियासत से ई० सन् १८३८ में झालावाड़ के हिस्से को अलग कर दिया, तभी से झालावाड़ की रियासत स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व में आई।

उम्मेद सिंह (२)

कोटा के सुप्रसिद्ध महाराव, जिनका जन्म सन् १८७३ में हुआ और सन् १८८९ में जिनको राज्य-शासन के अधिकार प्राप्त हुए।

महाराव उम्मेद सिंह कोटा के इतिहास में एक बड़े लोकप्रिय नरेश रहे। इनके समय में कोटा राज्य की सब तोमुखी उन्नति हुई और यहाँ के शिक्षा-विभाग और कृषि-विभाग ने बड़ी तरक्की की।

उम्मेद सिंह (३)

बूँदी के राजा बुधसिंह के बड़े पुत्र। इनके छोटे भाई का नाम दीपसिंह था।

बुधसिंह का देहान्त होने पर जयपुर के राजा जयसिंह की सम्मति से उदयपुर के महाराणा ने इनके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। ऐसी स्थिति में इन असहाय बालकों ने कोटे के राजा दुर्जनशाल के यहाँ आश्रय लिया।

सन् १७४४ में जयपुर के राजा जयसिंह का देहान्त हो गया और उनकी जगह पर ईश्वर सिंह गद्दी पर बैठे। यह अवसर देखकर उम्मेद सिंह ने कोटे के राजा और हाड़ा लोगों की सहायता से बून्दी पर आक्रमण कर दिया, ईश्वरी सिंह की सेना भी लड़ने के लिए गई, मगर उसमें ईश्वरी सिंह की पराजय हुई। तब ईश्वरी सिंह ने एक भारी सेना इनके विरोध में भेजी। हाड़ा लोग इस सेना से भी बड़ी वीरता के साथ लड़े मगर अन्त में इनकी पराजय हुई। तब तीसरी बार उम्मेद सिंह ने फिर अपनी सेना को एकत्रित करके होल्कर की मदद से सन् १७४८ में बूँदी पर अधिकार कर वहाँ पर फिर से अपना राज्य स्थापित किया।

उमैया खलीफा

इस्लाम के खलीफा अली की मृत्यु के पश्चात् खलीफा की गद्दी पर आसीन होने वाला उमैयावंश, जिसका समय सन् ६६१ से ७४९ ई० तक है।

हजरत अली की मृत्यु के पश्चात् उनके बड़े बेटे हसन के उत्तराधिकारी होने की पूरी आशा थी। क्योंकि मदीने का शासक मुआविया मदीने में लोकप्रिय नहीं था। पैगम्बर का नाती होने के कारण लोगों का आकर्षण भी हसन के प्रति अधिक था, मगर मुआविया ने चतुराई से हसन की बीबी, जो ईरान के सासानी शाहंशाह यज्दगर्द की लड़की थी उसको अपनी तरफ मिलाकर उसके द्वारा हसन को जहर दिलवा दिया, जिससे हसन की मृत्यु हो गई और मुआविया स्वयं खलीफा बन बैठा।

मुआविया ने ही खलीफा पद लेकर उमैया-वंश की नींव रखी। इस वंश में कुल १३ खलीफा हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१—मुआविया बेरयानाप्रथम, (६६१ से ६८० ई०) २—यजीद प्रथम (६८० से ६८३ ई०) ३—मुआविया द्वितीय (६८३) ४—अब्दुल मलिक (६८३ से ७०५ ई०) ५—वली प्रथम (७०५ से ७१४ ई०) ६—सुलेमान (७१४ से ७१७ ई०) ७—उमर द्वितीय (७१७ से ७२० ई०) ८—यजीद द्वितीय (७२० से ७२४ ई०) ९—हिशाम (७२४ से ७४२ ई०) १०—वली द्वितीय (७४२) ११—यजीद तृतीय १२—इब्राहीम और १३—मेरवान द्वितीय (७४९ ई० तक)।

मुआविया प्रथम

जिस समय मुआविया इस्लाम का खलीफा बना, उस समय तक पूर्वी ईरान पर अरबों का अधिकार व्यवस्थित रूप से जमने नहीं पाया था। इसलिए उधर के गवर्नर बराबर बदलते रहते थे।

उस समय मध्य एशिया के गैरमुस्लिम शासक बड़े बहादुर और राजपूतों की तरह मौत को ललकारने वाले होते थे। युद्ध उनके लिए एक खेल था किन्तु उनमें भी राजपूतों की तरह एकता नहीं थी। आपसी शत्रुता के कारण वे एक-दूसरे के विरुद्ध अरबों की सहायता करते

रहते थे। इसी युद्ध का लाभ मुसलमान विजेताओं को मिला।

रोम और ईरान के जीते हुए इलाकों में जिस तरह इन गैर मुस्लिम लोगों ने भीषण संघर्ष किया, उससे अरबों को यह विश्वास नहीं था कि गैर-मुस्लिम भी उनके वफादार हो सकते हैं। इसीसे खलीफा उमर ने यह नियम बनाया था कि मोमिन (सच्चा मुसलिम) को छोड़ कर किसी को हथियार रखने का अधिकार नहीं है।

गैर-मुस्लिमों के इस भयंकर विद्रोह का कारण यह था कि अरब विजेता किसी देश को केवल राजनैतिक तौर पर ही पराजय नहीं करना चाहते थे, बल्कि वे वहाँ के धर्म और संस्कृति को भी निमूल कर देना चाहते थे। इसलिए यूनानियों, रूसों, तुर्कों की तरह अरबी मुसलमानों को प्राचीन धर्म और संस्कृति के साथ किसी प्रकार का समझौता करने की गुंजाइश नहीं थी। इसीलिए पूर्वी ईरान में अरबों की विजय हो जाने पर भी वहाँ का विद्रोह दमन करने में खलीफा को काफी समय लगा।

बुखारा की शासिका 'खातून' ने बहुत समय तक मुसलमान आक्रमणकारियों का मुकाबला किया मगर अन्त में कोई और सहायता न मिलने पर उसे भी मुसलमान आक्रमणकारियों के सामने झुकना पड़ा और 'बुखारा' तथा 'समरकन्द' पर खलीफा का अधिकार हो गया।

खलीफा यजीद

मुआविया की मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का यजीद खलीफा हुआ।

मुआविया का बेटा यह वही यजीद है, जिसने 'कूफा' का राज्यपाल रहते समय 'कर्बला' के मैदान में इमाम हुसैन और उनके साथियों की निर्मम हत्या कराई थी।

इसके समय में 'सलम' नामक 'खुरासान' के गवर्नर ने बुखारा के ऊपर तेजी से आक्रमण करके उसको विजय किया।

इसके पश्चात् चौथे खलीफा अब्दुल मलिक के समय में मध्य एशिया में अरबों को आगे बढ़ने में बहुत सफलता मिली।

खलीफा वलीद

मगर इस्लाम की विजय का असली डंका, पाँचवें खलीफा वलीद के समय में मिस्र के बनी कुतैब ने बजाया। इस्लाम के इतिहास में कुतैब एक भारी विजेता था। मध्य एशिया में अरब शासन और इस्लाम की दृढ़ नींव डालने में सबसे अधिक हाथ कुतैब का था। इसके पहले के क्षत्रपों (गवर्नरों) का प्रधान लक्ष्य जब तब लूट मार करना और 'चौथ' को उगाहना था। यद्यपि बहुत वर्षों से अरब खुरासान के स्वामी थे और मर्व उनके क्षत्रपों की राजधानी थी, किन्तु 'वक्षु' नदी के उस पार उनका शासन नाम मात्र का था। वक्षु और सिर दरिया के बीच की भूमि पर इस्लाम का झंडा गाड़ने वाला कुतैब था। उसने वहाँ से 'अग्निपूजक' और बौद्ध धर्मों को मिटा कर इस्लाम को स्थापित किया और सैनिकों को 'जिहाद' के लिये उत्तेजित किया।

इसके बाद कुतैब खुरासान का राज्यपाल हो गया और उसने दिग्विजय पर दिग्विजय करना प्रारम्भ किया। सन् ७१४ में खलीफा वलीद की मृत्यु हुई और उसके बाद सुलेमान खलीफा की गद्दी पर आया।

खलीफा सुलेमान की कुतैब के साथ शत्रुता हो गई और उसने खलीफा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मगर जब सेना के लोगों को यह मालूम हुआ कि इस्लाम का खलीफा कुतैब के विरुद्ध है तो वे भी कुतैब के एकदम खिलाफ हो गये और उन्होंने कुतैब के महल को घेर लिया। जिस सेना के बल पर कुतैब ने इतनी बड़ी बड़ी दिग्विजय प्राप्त की थी और विधर्मियों के ऊपर अत्यन्त निर्दयता पूर्ण अत्याचार किये थे, वही सेना उसकी जान की गाहक हो गई और उसने उसकी बोटी-बोटी कर डाली।

इस तरह ४९ साल की उम्र में धर्म के नाम पर सर्व-स्वा करने में अतिवीर कुतैब को उसका परिणाम भुगतना पड़ा।

कुतैब के बाद यजीद खुरासान का गवर्नर होकर आया। उसने सन् ७१६ ई० में कास्पियन सागर के पश्चिम जुरजान और तबारिस्तान पर आक्रमण किया। जुरजान

के लोगों ने अपनी स्वतंत्रता धर्म और संस्कृति के दुश्मनों का कड़ा प्रतिरोध किया। इस पर यजीद ने शपथ ली कि मैं तब तक अपनी तलवार को म्यान में नहीं रखूँगा, जब तक कि इतना खून न बह जाय जिससे आँटे की चक्की चल सके और उससे पिसे आँटे की रोटी मैं न खाऊँ। भगवान जाने उसकी शपथ पूरी हुई या न हुई, मगर इससे यह पता चलता है कि अत्याचार करने की शक्ति उसकी कितनी तीव्र थी। सन् ७१७ में खलीफा सुलेमान की मृत्यु हुई।

खलीफा सुलेमान के पश्चात् खलीफा उमर द्वितीय खलीफा की गद्दी पर आया। निष्पक्ष इतिहासकारों का मत है कि उमैया-वंश के सब खलीफाओं में यह सबसे सज्जन और सदाचारी था। धर्मान्धता के नाम पर होने वाले अत्याचारों के यह खिलाफ था। इसने हुक्म दिया कि सभी जाति के मुसलमानों को अरबी मुसलमानों के बराबर माना जाय। जिन लोगों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया है, उन्हें खतना कराने के लिए मजबूर न किया जाय। दूसरे धर्मवालों के गिरजे, सिनागोग और मन्दिर न तोड़े जायँ, लेकिन उन्हें नये मन्दिर बनाने की इजाजत न दी जाय।

खलीफा उमर द्वितीय की मृत्यु के बाद खलीफा यजीद द्वितीय और उसके बाद खलीफा हिशाम खिलाफत की गद्दी पर आया।

शिया और सुन्नी

खलीफा हिशाम के समय में मुसलमानों के अन्दर शिया और सुन्नी के भेदों ने बड़ा जोर पकड़ लिया। खिलाफत के लिए पैगम्बर मुहम्मद के हाशिम वंश और दूसरे पक्षों में जो झगड़ा उठा हुआ था और जिसमें खलीफा अली और उनके पुत्र हसन और हुसेन का बलिदान हुआ था वही विरोध अब जोर पकड़ गया और जो लोग उमैया वंश से सम्बन्ध नहीं रखते थे, उनकी भी सहानुभूति धीरे धीरे विरोधियों के साथ होती गई।

मगर हाशिम वंश के पक्षपातियों में भी सभी एक मत नहीं थे। कुछ हजरत मुहम्मद की पुत्री 'फातिमा और दामाद 'अली' की संतान को ही मुहम्मद का असली उत्तराधिकारी मानते थे और कुछ लोग मुहम्मद के चचा 'अब्बास' की संतानों को भी खिलाफत का अधिकारी मानते थे। जो अली की संतानों को ही 'खिलाफत' का अधिकारी समझते थे वे ही लोग 'शिया' कहलाये।

खुरासान में शिया-आंदोलन का आरंभ खलीफा हिशाम के समय में ही हुआ और यह आंदोलन इतनी तेजी से बढ़ा कि उसी के बल पर उमैया वंश का नाश हो गया। फिर भी खिलाफत अली के वंश में न आकर अब्बासी वंश के हाथ में चली गई।

शिया लोगों का कहना था कि पैगम्बर के उत्तराधिकारी होने का अधिकार उनकी पुत्री फातिमा और अली की संतान को है। आगे चलकर इस सम्प्रदाय ने इस्लाम के अन्तर्गत दार्शनिक मतभेदों में भी हाथ बँटाया। इब्न-सबा नामक एक व्यक्ति ने जो कि यहूदी से मुसलमान हुआ था इन दार्शनिक मतभेदों का नेतृत्व किया। वह पैगम्बर के दामाद अली में भारी श्रद्धा रखता था। इसलिए लोगों को यह कहने का मौका मिला कि इब्न-सबा के सिद्धान्त हजरत अली के ही सिद्धान्त थे।

इब्न-सबा की परंपरा आगे बढ़ती गई और इस्लाम में शिया और खारजी जैसे सम्प्रदाय पैदा हुए। अन्त में शिया लोगों ने अरबों और ईरानियों में सदियों चले आते द्वेष से फायदा उठाने में इतनी सफलता प्राप्त की कि १५ वीं शताब्दी में ईरान ने शिया मत को अपना राजधर्म घोषित कर दिया।

सुन्नियों में आगे चल कर जो मतभेद हुए उनके कारण उनके चार सम्प्रदाय हो गये। १—कूफा (मेसोपोटेमिया) के रहने वाले अबू हनीफा (७६७ ई.) के अनुयायी 'हनफी' कहे जाते हैं, जिनकी संख्या भारत और पाकिस्तान में अधिक है। २—मदीना निवासी इमाम मलिक (७१५ से ७९५ ई.) के अनुयायी मालिकी' कहे जाते हैं। मोरक्को और मुसलिम स्पेन में इनकी संख्या अधिक थी। इमाम मालिक ने कुरान के अतिरिक्त पैगम्बर के कथन 'हदीस' को धर्म-निर्णय के लिए बहुत आवश्यक बतलाया जिसके कारण हदीसों के जमा करने का काम शुरू हुआ। ३—इमाम-शाफ़ई (७६७ से ८२० ई.) के अनुयायी 'शाफ़ई' कहे जाते हैं। वे पैगम्बर के आचरण (सुन्नत) को सर्वाधिक अनुकरणीय मानते हैं। ४—चौथा सम्प्रदाय इमाम अहमद-इब्न

इस्माइल' के अनुयायियों का है जो 'इस्माइली' कहलाते हैं। जो अल्लाह को साकार मानते हैं। धर्म के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय के लिए कुरान, सुन्नत, क़यास (अनुमान या सादृश्य) द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के अतिरिक्त चौथे प्रमाण 'इज्मा' (बहुमत) को भी आवश्यक मानते हैं।

अबू-मुस्लिम

इसी समय अबू मुस्लिम नामक एक व्यक्ति जो इस्फ़हान का रहने वाला था एक तीर्थ यात्री-दल के साथ 'मक्का' गया। वह एक २ वर्ष का नवयुवक था। उसी समय मक्का में अब्बासी वंश का मुहम्मद अब्बासी भी आया हुआ था।

अबू-मुस्लिम को देखकर मुहम्मद अब्बासी ने तुरन्त उसे अपने पक्ष में कर लिया और भविष्यवाणी की कि यही व्यक्ति अब्बासी-राज्य की स्थापना करेगा।

मुहम्मद अब्बासी ने अबू-मुस्लिम को ईराक में अपना प्रचार करने को भेजा। वह जानता था कि अब अरबों का नहीं ईरानियों का पलड़ा भारी होने जा रहा है। अबू-मुस्लिम दो साल (७४२ से ७४४ ई.) अपने गुरु की ओर से ईरान में प्रचार करता रहा। वह अच्छा वक्ता संगठन करने में निपुण और ईरानी होने के कारण ईरानियों का विश्वास-पात्र था।

उस समय भीतर-ही-भीतर लोग उमैया-वंश के शासन से असन्तुष्ट हो रहे थे। उमैया वंश का झंडा सफेद था। शीयों ने अपने झंडे के लिये काला रंग अपनाया था। अबू-मुस्लिम ने देखा कि यही अच्छा मौका है, उसने अपना काला झंडा फहरा दिया। चारों तरफ से 'शामी' लोग अबू मुस्लिम के झंडे के नीचे आने लगे।

७४७ ई. में अबू-मुस्लिम ने अपनी सिपाहियों सेना को लेकर सारे 'खुरासान' और 'सोग्द' की राजधानी 'मर्व' में प्रवेश किया और जुमे की नमाज पर उमैया खलीफ़ा की जगह अब्बासी-खलीफ़ा के नाम से 'खुत्बा' पढ़ने का हुक्म दिया।

उमैया-सर्दारों ने अपनी सारी सेना के साथ इस्फ़हान के पास मोर्चा लिया मगर अबू-मुस्लिम के सेनापति 'कहतबा' ने सन् ७४९ में उनकी सेना को हराकर 'नहावन्द' का किला भी ले लिया और सन् ७५० ई. में मेसोपोटेमिया की लड़ाई में अन्तिम फैसला हुआ जहाँ उमैया-वंश का अन्तिम खलीफ़ा 'मेरवान द्वितीय' मारा गया।

मगर अब 'अब्बासी-वंश' और खलीफ़ा अली के वंश के बीच में संघर्ष शुरू हुआ। शारिक नामक एक व्यक्ति अली का पक्षपाती था और अबू अब्बास को नहीं चाहता था। उसने एक नया अरब संगठन कायम किया। इस संगठन में थोड़े ही समय के अन्दर ३ हजार आदमी अली के नाम पर इस झंडे के नीचे चले आये। बुखारा और समरकन्द के अरब सरदारों और नागरिकों ने शारिक का साथ दिया मगर शारिक ने अपने प्रोग्राम में समानता को स्थान दे कर सम्पत्ति वाले वर्गों को अपने विरुद्ध कर लिया था। अबू मुस्लिम ने शारिक के विद्रोह को दबाने के लिये सेनापति 'ज़ियाद' को पूरी शक्ति के साथ भेजा। ज़ियाद ने बड़ी क्रूरता से विद्रोहियों को दबाया। बुखारा नगर में आग लगा दी गई। विद्रोहियों को पकड़ कर शहर के दरवाजों पर लटका दिया गया।

समरकन्द में भी इसी प्रकार से विद्रोहियों का दमन किया गया। उमैया-वंश का खात्मा हुआ। अली के वंशजों का स्वप्न भंग हुआ और खलीफ़ा की गद्दी पर अब्बासी-वंश का पहला खलीफ़ा 'सफ़्फ़ाह' खलीफ़ा की गद्दी पर आसीन हुआ।

खलीफ़ा घोषित होने के साथ ही 'कूफ़ा' में अबुल-अब्बास ने उमैया-वंश के सर्वथा उच्छेद करने का हुक्म दिया। ये लोग 'कर्बला के शहीदों' को भूल नहीं सकते थे। सफ़्फ़ाह के चचा 'दाऊद' ने मक्का में 'अब्दुल्ला' ने फिलिस्तीन में और 'अबू मुस्लिम' ने खुरासान में एक-एक उमैया को चुन चुन कर कत्ल किया। हाशमी खानदान ने उमैया खानदान को उच्छिन्न करके ही संतोष नहीं किया बल्कि उमैया खलीफ़ाओं की कब्रों को खुदवा कर उनके मुर्दों के कंकालों को चूर-चूर कर के हवा में उड़ा दिया। उमैया के पक्षपातियों ने चीन के सम्राट् 'स्वेन-चुङ' की सहायता से बुखारा सोग्द और फरगाना में जबर्दस्त

विद्रोह किये, लेकिन समरकन्द के शासक जियाद ने इस विद्रोह को बड़ी क्रूरता से दबा दिया।

इस प्रकार उमैया-वंश के शासन का प्रारम्भ और अवसान हुआ।

उर्दू भाषा और साहित्य

भारतवर्ष की एक प्रसिद्ध भाषा, जिसका जन्म मुसलमान आक्रमणकारियों के भारत में प्रवेश होने के पश्चात् हिन्दी और उर्दू के सहयोग से हुआ।

तुर्की भाषा में 'उर्दू' शब्द का प्रयोग सैनिक-छावनी के लिये किया जाता है। मुसलमानों की सैनिक-छावनियों में बहुत से भारतीय भी आते-जाते रहते थे और उनके पारस्परिक सम्पर्क से एक-दूसरे को समझने के लिये आपस में शब्दों का आदान-प्रदान होता रहता था। इसी आदान-प्रदान से इन सैनिक-छावनियों में हिन्दी भाषा और फारसी के सहयोग से एक नवीन भाषा का जन्म हो रहा था। इन्हीं सैनिक-छावनियों के नाम पर इस सैनिक-भाषा का नाम भी उर्दू पड़ा।

उर्दू भाषा की उत्पत्ति आपसी व्यवहार और बोलचाल के लिये हुई थी और ११ वीं शताब्दी से १५ वीं शताब्दी तक यह केवल इसी काम में आती रही। मुसलमानों को हिन्दी शब्दों का ज्ञान कराने के लिये 'खुसरो नामक विद्वान ने 'खालिक बारी' नामक कोष तैयार किया था। जिसकी हजारों प्रतिलिपियाँ गाँव-गाँव में बटवाई गई थी और यह कहावत प्रसिद्ध हो गई थी कि—

'रसूलरा ऊँट, खालाक गानी। तिस पर लादी खालिक बारी इस कोष में पंजाबी, हिन्दी तथा ब्रजभाषा के शब्दों के लिये अरबी और फारसी के पर्याय दिये हुये हैं।

खालिक-बारी-कोष के रचयिता—खुसरो को कई लोग अमीर खुसरो ही मानते है, जब कि कई लोगों के मत से यह अमीर खुसरो से भिन्न कोई दूसरा ही खुसरो है।

उर्दू-भाषा जब तक केवल नागरी लिपि में लिखी जाती रही और उसकी वाक्य रचना हिन्दी-व्याकरण पर आधारित रही तब तक हिन्दी के साथ उसका कोई बुनियादी अंतर नहीं हुआ। मगर जब यह फारसी लिपि में लिखी जाने लगी और फारसी-व्याकरण के अनुसार उसका संगठन होने लगा, तब उसका एक स्वतंत्र रूप स्थापित हुआ।

स्वतंत्र भाषा के रूप में उर्दू की स्थापना कब हुई और उसका साहित्यिक रूप कब से आरम्भ हुआ—इस विषय में भी बड़ा मतभेद है। कुछ लोगों के मत से ईसा की १२ वीं शताब्दी में 'मसऊद' नामक कवि ने 'रेख़्ता' में एक कविताओं का संग्रह तैयार किया और १३ वीं शताब्दी के अन्त में फारसी के महाकवि अमीर खुसरो ने फारसी मिश्रित हिन्दी में कविताएँ की। तभी से बहुत से लोग उर्दू भाषा के साहित्यिक रूप का प्रारम्भ मानते हैं।

मगर दूसरी विचारधारा के लोगों का कहना है कि मसऊद और अमीर खुसरो की कविताओं की रचनाएँ हिन्दी छन्द शास्त्र के अनुसार हिन्दी भाषा में की गई हैं। केवल फारसी के कुछ शब्दों का समावेश हो जाने के कारण इन रचनाओं को उर्दू-साहित्य का प्रारम्भ मानना गलत बात है। ये रचनाएँ तो हिन्दी-साहित्य की हैं। वास्तविक उर्दू का प्रारम्भ तभी माना जा सकता है जब फारसी छन्द-शास्त्र के अनुसार फारसी लिपि में इस साहित्य की रचना की गयी हो और यह समय ईसा की १६ वीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ होता है, जबकि गोलकुण्डा के सुल्तान मुहम्मद अली कुतुबशाह ने फारसी छन्द शास्त्र के अनुसार उर्दू भाषा में कविता करना प्रारम्भ किया।

उर्दू के पूर्वरूप

अपना साहित्यिक रूप प्राप्त करने के पूर्व, हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक व्यवहार की यह भाषा कई नामों में से होकर इस रूप में आई है। पहले-पहल मुसलमानी शासक इस भाषा को 'हिन्दुई' के नाम से सम्बोधित करते थे। उसके बाद इस भाषा का नाम 'रेख़्ता' रक्खा गया। रेख़्ता का अर्थ 'मिली जुली' या 'गिरी-पड़ी' होता है और फारसी में एक राग का नाम भी रेख़्ता है यह शब्द इस भाषा को तब मिला जब कविता या गानों के लिए इस भाषा का प्रयोग होने लगा और चूँकि इसकी साहित्यिक अवस्था का प्रारम्भ दक्षिण में हुआ इसलिए इसका नाम 'दक्खिनी' भी कहलाया।

अंग्रेज लोगों के भारत में आने पर उन लोगों ने इस भाषा को 'इंडोस्तानी' कहना प्रारंभ किया और इसी शब्द से 'हिन्दोस्तानी' का रूपान्तर हुआ।

उर्दू के प्रारंभिक रूप में पंजाबी का प्रभाव सबसे अधिक दिखाई पड़ता है। १५ वीं और १६ वीं सदी में दक्षिण के जिन कवियों और लेखकों ने उर्दू में अपनी रचनाएँ कीं, उन रचनाओं में पंजाबी का असर पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है।

१७ वीं और १८ वीं शताब्दी में ब्रज भाषा का गहरा प्रभाव उर्दू पर पड़ा और बड़े-बड़े विद्वान कविता में 'भाखिभरी' भाषा को अधिक शुद्ध मानने लगे।

मगर इसी समय उर्दू पर मुसलमान लोग अपना विशेष अधिकार समझने लगे। उनके धर्मग्रन्थ और रीति रस्म सम्बन्धी ग्रन्थ भी इसी भाषा में तैयार हुए और इसी मजहबी जोश में आकर कुछ मुसलमान विद्वान और कवियों ने उर्दू को एक नया-रूप देने के लिए उसमें से भारतीय भाषा के शब्दों को निकाल कर फारसी और अरबी के शब्दों को भरना आरम्भ किया। दक्षिण में भारतीय भाषाओं के शब्दों से युक्त जिस उर्दू का प्रयोग किया जाता था, उसे उत्तर भारत के लोग हीन समझने लगे और दिल्ली में उद्भूत उस उर्दू-भाषा को उच्च भाषा माने जिसकी फारसी शब्दों और फारसी संस्कृति की महक से ओतप्रोत थी। संस्कृत और हिन्दी के शब्दों का बहिष्कार धीरे-धीरे होता गया जिसके परिणामस्वरूप १९ वीं शताब्दी का प्रारंभ होते-होते केवल कुछ सर्वनाम और क्रियाएँ ही हिन्दी की बच गईं और केवल उन्हीं से ही उर्दू और फारसी की भिन्नता मालूम होती है।

उर्दू शायरी का परिचय

हिन्दी साहित्य ही की तरह उर्दू शायरी में भी अनेक प्रकार के छन्दों का व्यवहार होता है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

(१) गजल—उर्दू पद्य का प्रारम्भ पहले गजल से हुआ। फिर धीरे धीरे कसीदे मसनवी मर्सिया नज्म वगैरह और आजाद नज्में लिखी जाने लगीं।

गजल का अर्थ है वह कविता, जिसमें वस्ल (मिलन) फिराक (विरह) इश्क (प्रेम) इश्तयाक (चाह) हसरत (कामना) और यास (निराशा) का वर्णन हो। उर्दू गजल में १६ तरहें (छन्द) होती हैं।

(२) मतला—मतला गजल के प्रारम्भिक शेर को कहते हैं। इसके दोनों मिसरे काफिया और रदीफ से युक्त होते हैं। जैसे

कमर बाँधे हुए चलने को याँ सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गये बाकी जो हैं तैयार बैठे हैं।

यह मतला का उदाहरण है।

(३) शेर—शेर में भी दो मिसरे होते हैं। पहले मिसरे में काफिया और रदीफ न होकर केवल दूसरे मिसरे में होते हैं।

(४) कसीदा—कसीदा उर्दू का एक छन्द है जिसमें १५ से अधिक चरण होते हैं। जन्मगाँठ, विजयोत्सव तथा खुशी के अवसर पर जो प्रशंसात्मक कविता कही जाती है उसे कसीदा कहते हैं। उर्दू-साहित्य में 'कसीदा' के प्रवर्तक महाकवि "सौदा" माने जाते हैं। ये कसीदों के बादशाह कहे जाते थे।

(५) मसनवी—उस कविता को कहते हैं, जिसमें दो चरण एक साथ रहते हैं और दोनों चरणों का तुक मिलाया जाता है। प्रेमकथाओं को लिखने में अक्सर मसनवियों का प्रयोग होता है। उर्दू में मीर गुलाम हसन "हसन" की मसनवियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी मसनवियों में 'सिहरुल बयान' सबसे अधिक प्रसिद्ध है जिसमें शाहजादा "बेनजीर" और शाहजादी "बदरमुनीर" की प्रेम कथाओं" का वर्णन है।

(६) मर्सिया—दुःख, निराशा करुणा और रंजो-गम का बयान जिस कविता में किया जाता है उसे उर्दू साहित्य में "मर्सिया" कहते हैं। करबला के मैदान में हजरत इमाम हुसैन की वीरतापूर्ण शहादत पर जो कविताएं लिखी गई उन्हीं से "मर्सिया" शब्द का नामकरण हुआ।

(७) नातिया—किसी भी ग्रन्थ के मंगलाचरण के रूप में जो कविता लिखी जाती है और जिसमें खुदा का स्मरण किया जाता है, उसे "नातिया" कहा जाता है।

(८) तसव्वुफ़—सूफ़ी-कवियों ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार जिस तरीके में किया उसे तसव्वुफ़ कहते हैं, तसव्वुफ़ का अर्थ है सब कामनाओं से रहित होना और सब वस्तुओं में ईश्वर का अस्तित्व समझना। सूफ़ी दिव्य प्रेम के उपासक होते थे। इन्हें न कुफ़्र से मतलब था न ईमान से। क्योंकि वे दोनों को ढोंग समझते थे। सूफ़ी का ध्येय सत्य की खोज, प्रेम और संसार से वैराग्य था। ईश्वर उसका माशूक़, भक्ति उसकी शराब और जिस जगह ईश्वर से साक्षात्कार हो, वही उसका मयखाना था। मज़हबी क्रियाओं के प्रति विद्रोह और मज़हबी लोगों के प्रति उपहास की भावना यह सब उर्दू शायरी को सूफ़ी सिद्धान्त की देन है।

(९) रुबाई—ग़ज़ल के दो शेरों में एक ही भाव आवे और पहले दूसरे तथा चौथे चरणों के तुकान्त मिलते हों तो उसे रुबाई कहते हैं। रुबाई की बहरें ग़ज़लों से जुदा होती हैं। फ़ारसी-साहित्य में रुबाइयों का बादशाह "उमर ख़ैय्याम" माना जाता है।

उर्दू का साहित्यिक विकास

उर्दू भाषा के साहित्यिक विकास पर ध्यान देने से पता लगता है कि शुरू-शुरू में इस भाषा की कविताओं की रचना हिन्दी छन्द शास्त्र के अनुसार होने लगी। उस समय इसमें पहला नाम ख्वाजा 'मसऊद' लाहौरी का आता है जिन्होंने सन् ११६६ में अपना काव्य संग्रह एकत्रित किया था, मगर वह इस समय उपलब्ध नहीं है।

अमीर ख़ुसरो

इसके पश्चात् सबसे प्रसिद्ध नाम 'अमीर ख़ुसरो' का आता है, जो भारतवर्ष में उर्दू और फ़ारसी के प्राचीनतम कवि माने जाते हैं। अमीर ख़ुसरो का जन्म एटा ज़िले के पटियाली ग्राम में सन् १२५५ ई॰ में हुआ था। अमीर ख़ुसरो 'निज़ामुद्दीन औलिया' के शिष्य थे। उन्होंने अपनी आँखों से ग़ुलाम वंश का पतन, ख़िलजी वंश का उत्थान और पतन और तुग़लक़-वंश का उत्थान देखा था। इनके समय में दिल्ली के सिंहासन पर ११ सुल्तान बैठे, जिनमें ७ की इन्होंने सेवा की थी।

फ़ारसी-साहित्य के इतिहास में इन्हें 'तूतिये-हिन्द' की पदवी से बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। उर्दू में कविता लिखने वालों में ये प्रथम हैं। इन्होंने जो पहली उर्दू ग़ज़ल लिखी वह दो भाषाओं का मेल थी। इस ग़ज़ल में एक मिसरा फ़ारसी का और एक उर्दू का था। इनकी फ़ारसी कृतियों को छोड़कर जो दूसरी रचनाएँ हैं, वे साहित्यिक उर्दू की अपेक्षा हिन्दी के अधिक नज़दीक हैं। इसीलिए कई लोग इनको फ़ारसी के अतिरिक्त हिन्दी का कवि मानते हैं, उर्दू का नहीं। इनकी ग़ज़ल के कुछ शेरों का नमूना इस प्रकार है—

ज़े हाल मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल—
दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिज्रां न दारम् ऐ जां
न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
सखी पिया को जो मैं न देखूं, तो कैसे काटूं अंधेरी रतियाँ।
(?)

चकवा चकवी दोय जने, इन मत मारो कोय,
यह मारे करतार के रैन बिछोया होय
गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस
चल ख़ुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस
ख़ुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भये इक रंग।

अमीर ख़ुसरो के बाद सैय्यद 'गेसू दराज़' का नाम आता है जिनकी मृत्यु सन् १४२२ में हुई। इन्होंने निशातुल-इश्क़ का अनुवाद उर्दू में 'मेराजुल आशकीन' के नाम से किया है। इनकी अन्य रचनाओं में से 'चक्कीनामा' 'शिकारुल कवर' 'मेराजनामा, इत्यादि रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं। इन सबमें सूफ़ी-विचार प्रकट किये गये हैं।

गेसू दराज़ दिल्ली के निवासी थे, परन्तु उनका ज़्यादा समय दक्षिण में बीता था। इसी कारण उनकी भाषा को दक्खिनी उर्दू कहा जाता है।

दक्खिनी उर्दू-साहित्य

कहने को चाहे अमीर ख़ुसरो और गेसू दराज़ को उर्दू का आदिकवि कह लें पर वास्तविक साहित्यिक उर्दू का पहला विकास-केन्द्र दक्षिण भारत के गोलकुण्डा नामक स्थान को ही माना जाता है। यहाँ के सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने दक्खिनी शैली की उर्दू में अपना "दीवान" लिखा। इस दीवान की भूमिका से मालूम

होता है कि इन्होंने उन मिलाकर कोई ५ शेर लिखे थे। इस दीवान की भाषा में दक्खिनी शब्दों की भरमार है और शेरों में फारसी के अनुकरण पर हाला और प्याला का चित्र बराबर दिखाई देता है। एक दो उदाहरण इस प्रकार हैं—

> कुफर दीवि क्या होर इस्लाम दीस,
> हर एक दीस में इश्क का राज है
> उनींदी मुख नैन खुमार सेती,
> क्यो तुम मगन में है कोकी कुमारी।
> सम्पूरन है तुम चोर तो सब काज
> नहीं चाली है नरते कोई रे।
> तुम्हारा मया होना मुँज चूक सगर,
> कि मैं काली हूँ और मोंटा बिचारी।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह के पश्चात् दक्खिनी उर्दू के क्षेत्र में अब्दुल्ला कुतुबशाह इब्न निशाती, गवासी, मौलाना वजही, फरोशुद्दीन, सुल्तान इब्राहीम आदिल शाह मिर्जा हाशिमी इत्यादि कवियों ने अनेक दीवान और मसनवियों का निर्माण किया।

वली

मगर उर्दू साहित्य को एक स्थिर रूप देने और उसमें मधुर काव्यधारा बहाने का काम मुहम्मदअली कुतुबशाह के सौ वर्ष बाद महाकवि वली ने किया। जिनका नाम उर्दू साहित्य की अमर हस्तियों में है। इनका पूरा नाम मुहम्मद शमसुद्दीन "वली" था। इनका जन्म सन् १६६८ में औरंगाबाद में हुआ था। इन्होंने रेख्ता भाषा में एक दीवान तैय्यार किया और सन् १८२१ में दिल्ली की यात्रा की। दिल्ली में उस समय सम्राट मुहम्मद शाह "रंगीले" का युग था। दिल्ली का दरबार राजनीतिज्ञों और सेना अधिकारियों की जगह कवियों और गवैय्यों का अखाड़ा बन रहा था। मुहम्मदशाह "रंगीला" और दिल्ली के दूसरे शायर "वली" के दीवान को देखकर दीवाने हो गये और इनके दीवान को वहाँ बड़ी प्रसिद्धि मिली इस दीवान को देखकर सभी उस दिल्ली के जो शायर फारसी में कविता करते थे वे भी 'रेख्ता' में कविता करने लगे।

महाकवि वली बड़ी सिमारवाला के थे। इनकी रचनाएँ भाषा और काव्य की दृष्टि से बड़ी मनोहर हैं। प्रकृति निरीक्षण की बहार भी इन कविताओं में बहुत है। जैसे—

> बागे इरम से बेहतर मोहन तेरी गली है—
> शाकिन तेरी गली का हर आन में वली है।
>
> × × ×
>
> पत्तीतों से न हो बेरंग लाला जम्हे होली है,
> तेरा जामा गुलाबी है तो मेरा जिगर भगवा है।
> न पूछो यह बगूला है मेरा इस दौर सहरा में
> या बाबे इक्रते मजनूँ है बागबोस सहरा में
> शिगाफों के गुलों से बूए रंगी वर्द आती है।
> भरी बुलबुल चमन से दिल उठा था बोल सहरा में।

दिल्ली का उर्दू-साहित्य

उर्दू साहित्य का प्रारम्भ चाहे दक्खिन से हुआ हो *मगर इसका पूर्ण विकास दिल्ली और लखनऊ के केन्द्रों में हुआ।* सम्राट औरंगजेब के पश्चात् दिल्ली का शाही दरबार राजनीति और शासकों के लिए व्यक्तियों से खाली होकर राग रंग और ऐशो-आराम का अखाड़ा हो गया। राजनीति से शून्य मनमौजी सम्राट रंगीले ने तलवार और राजनीति को मराठों, रुहेलों, तथा अंग्रेजों को सौंप कर कविता करने के लिए लेखनी पकड़ ली। ऐसे वातावरण *में उर्दू-कविता को फलने-फूलने का खूब अवसर मिला।* प्रारम्भिक काल के कवियों ने जिस वाटिका की नर्सरी में साहित्य के छोटे-छोटे पौधे तैयार किये थे, उन पौधों को इस काल के कवियों ने अलग-अलग क्यारियों में लगाकर उर्दू साहित्य की वाटिका को रंग बिरंगे फूलों से सुरभित कर दिया। इस वाटिका में भारत की कोयल और पपीहे के साथ-साथ फारस की बुलबुलें भी हजार दास्ताँ गाने लगीं।

दिल्ली केन्द्र के प्रारम्भिक काल में सिराजुद्दीन आरजू, मुबारक आबरू शरफुद्दीन मजमून, बहादुर हातिम मकहर तथा यकरंग इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आरजू की रचना—

> मैलाने आव बाबर सीखे तमाम तोड़े।
> साहिबने आज अपने दिल के फफोले फोड़े॥
> तुम कुफ्र में सनम न रहे, दिल तो क्या करे।
> बेकार है अमक न रहे, दिल तो क्या करे॥

आबरू की रचना—

आया है सुबह नींद से, उठ रसमसा हुआ।
जामा गले में रात का, फूलों बसा हुआ॥
गर वह है मुस्किराना तो किस तरह छिपेगी।
हमको तो वह हँसी है, पर है मरन हमारा॥

मजमून की रचना—

जला फ़िरक़ी में आगे से, जो मह मदफ़ून जाता है।
कभी आँखें भर आती हैं, कभी जी डूब जाता है॥
नहीं हैं ओंठ तेरे पान से सुर्ख,
हुआ है खून मेरा आके लबरेज़।

हातिम की रचना—

आबे-हयात जाके किसू ने पिया तो क्या!
मानिन्द खिज़र जग में अकेला जिया तो क्या।

मज़हर की रचना—

तोबा की है हमने भी धूमें मचाती है बहार।
हाय, कुछ चलता नहीं क्या मुफ़्त जाती है बहार॥
कोई लेवे दिल अपने की ख़बर, या दिलबर अपने की।
किसी का यार आशिक बन कहीं हो, क्या क़यामत है॥

ताँबा की रचना—

बहुत चाहा कि आवे यार, या इस दिल को सब्र आवे।
न यार आया न सब्र आया किया जी मैं निशान अपना॥
मुझे आता है रोना ऐसी तनहाई पे, ऐ ताँबा।
न यार अपना, न दिल अपना न मन अपना, न जान अपना॥

दिल्ली-साहित्य-केन्द्र का मध्यकाल

दिल्ली-साहित्य-केन्द्र के आरम्भिक काल में जिन कवियों ने उर्दू-साहित्य का बीजारोपण किया था, उसका पूरा विकास मध्यकाल में अर्थात् सन् १७४१ से १८४१ तक हुआ। इस काल के महान कवियों में ४ नाम प्रकाश स्तम्भों की तरह उर्दू-साहित्य में जगमगा रहे हैं। इनका नाम १ मीर २. सौदा ३ दर्द और ४ मीर हसन था।

इन कवियों ने फ़ारसी-भाषा के आधार पर उर्दू-भाषा को सँवारने और परिमार्जित करने में बहुत परिश्रम किया। यह काल उर्दू काव्य-कौशल की टकसाल के समान था जिससे निकली हुई रचनाएँ आगे के परवर्ती कवियों के लिए आदर्श बन कर सिद्ध हुईं। मीरहसन की 'सहरबी' सौदा के 'क़सीदे' मीर तकी की 'ग़ज़लें' समय की चोटों की परवाह न करते हुए आज भी उर्दू के साहित्य को उसी प्रकार प्रकाशमान कर रही हैं।

ख्वाजा मीरमियाँ 'दर्द'

ख्वाजा मीरमियाँ 'दर्द' का जन्म सन् १७२१ ई० में हुआ। २८ वर्ष की अवस्था में अपने पिता की इच्छानुसार यह दरवेश बन गये और ३९ वर्ष की अवस्था में यह सूफ़ी मत के मुर्शिद बन गये। यह स्वयं सूफ़ी-मत के विद्वान् थे। इससे इनका मान बहुत बढ़ गया और इनके हज़ारों शिष्य हो गये। उर्दू-साहित्य के इतिहास में इनका स्थान 'मीर' 'सौदा' और 'मज़हर' के समान माना जाता है। इनकी रचनाओं में 'इसरारुस्सलवात' 'वारदाते दर्द' 'नालए-दर्द' 'शमाए-महफ़िल' 'दर्द-ए-वारदात' इत्यादि रचनाएँ फ़ारसी-भाषा में हैं। उर्दू में केवल इनका एक दीवान है। वह भी बहुत बड़ा नहीं है। मगर उसकी रचना मुहावरेदार भाषा में उच्च भावों के साथ की गई है और सूफ़ी-विचार तथा इश्क़-हक़ीक़ी का उसमें वर्णन किया गया है।

दर्द की रचना—

क्या फ़र्क़ दाग़े-गुल में, गर गुल में बू न हो।
किस काम का वह दिल है, कि जिस दिल में तू न हो॥
न वह नालों की शोरिश है, न वह आहों की है धूनी।
हुआ क्या "दर्द" को प्यारे, गली क्यों आज है सूनी॥
शेख़ काबा होके पहुँचा, हम कनिश्ते दिल में हो।
दर्द-मंज़िल एक थी, कुछ राह का ही फेर था॥
हम तुझ से किस हवस की फ़लक की जुस्तजू करें।
दिल ही नहीं रहा है जो कुछ आरजू करें।

मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ीअ "सौदा"

महाकवि 'सौदा' का जन्म सन् १७११ ई० में दिल्ली के अन्दर हुआ था। यह शाह 'हातिम' के शिष्य थे। सन् १७७१ में यह दिल्ली से लखनऊ चले गये। नवाब आसफ़-उद्दौला ने इन्हें ६ हजार वार्षिक की पेंशन तथा मलिकुश्शोअरा की पदवी प्रदान की। नवाब आसफ़ उद्दौला इनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते थे और इनकी रचनाओं

को बड़े प्रेम से सुनते थे सन् १७८१ में लखनऊ के अन्दर इनका देहान्त हुआ।

महाकवि सौदा उर्दू भाषा में 'कसीदों' के पहले कवि थे। इनके कसीदों की सुन्दरता ने बड़े-बड़े फारसी कसीदाकारों की रोशनी को मन्द कर दिया। रेख्ता-भाषा में इनका 'दीवान' इनकी कविताओं का सबसे बड़ा खजाना है। जिसमें गजल, रुबाई-कोती तर्जीबन्द, मुखम्मस इत्यादि सब कुछ है। इनके अतिरिक्त इन्होंने २४ मसनवियों की रचना की है जिनमें बहुत-सी पद्य-बद्ध कहानियाँ हैं।

सौदा एक उच्चकोटि के कवि थे और उनको यह कवित्व शक्ति ईश्वर-प्रदत्त प्राप्त हुई थी। उर्दू के कविता क्षेत्र में 'कसीदे' इन्हीं ने प्रारंभ किये और ऐसे कसीदे लिखे कि समालोचक लोग इन्हें 'कसीदे का बादशाह' कहने लगे। उर्दू के प्रायः सभी उच्चकोटि समालोचकों ने इनकी प्रशंसा करते हुए इनकी उर्दू के प्रथम श्रेणी के कवियों में गणना की है। इनकी रचना—

काबू में हैं अब तेरे, गो अब किया तो फिर क्या,
लेकर उसे मिली है, कुछ दम लिया तो फिर क्या।
'सौदा' हुए जब आशिक क्या नाम आवरू का,
सुनता है ऐ दीवाने जब दिल दिया तो फिर क्या।
माँगा जो मैंने दिल को तो क्या कह गयी एक दिन,
ऐसे तो मेरे कूचे में फिरते हैं, उठा ला।
× × ×
कर दो तराजो-ज़िल्लतो मारूफ इस तरह—
ज़ाहिर तुझे कसम है, जो तू हो तो क्या करे।
मेरी आँखों में तू रहता है, तुमको क्यों बताता है,
सम्भल कर देखना, अपना कोई भी घर हुआता है।
अब के भी दिन बहार के यों ही चले गये—
फिर-फिर गुल आ चुके, पर सजन तुम चले गये।

मीर गुलामहसन 'हसन'

मीर गुलाम हसन 'हसन' भी फारसी और रेख्ता के मशहूर कवि थे। मीर दर्द और सौदा की शैली पर इन्होंने अपनी कविताएँ कीं। नवाब आसफ-उद्दौला के समय में वह लखनऊ आये और वहीं इनका सन् १७८१ में देहान्त हुआ।

इनकी रचनाओं में एक दीवान है, जिसमें करीब ७ हजार शेरों का संग्रह है। मगर इनकी विशेष प्रसिद्धि इनकी मसनवियों से हुई, जिनमें 'सिहरुल बयान' सबसे प्रसिद्ध मसनवी है। इस मसनवी में शाहजादा 'बेनज़ीर' और शाहजादी 'बद्र मुनीर' की प्रेम-कथा का वर्णन है। इस मसनवी की सीधी सादी और माधुर्य वर्णन-शैली ने इनका स्थान उर्दू-साहित्य में दृढ़ कर दिया है।

मीर तकी 'मीर'

फारसी-साहित्य में शेखसादी, फिरदौसी आदि महाकवियों को जो उच्च स्थान प्राप्त है उर्दू-साहित्य में वही स्थान "मीर" और "सौदा" को प्राप्त है।

"मीर" का जन्म सन् १७०१ के आसपास आगरा में हुआ था और दिल्ली की स्थिति खराब होने पर वे भी दूसरे कवियों की तरह सन् १७८८ के करीब लखनऊ में नवाब आसफुद्दौला के दरबार में पहुँच गये थे। नवाब ने दूसरे कवियों की तरह इनका भी वेतन बाँध दिया था जो इन्हें जीवन भर मिलता रहा। करीब सौ वर्ष की आयु में सन् १८०१ में इनका देहान्त हुआ।

मीर ने रेख्ता में करीब छः दीवान तथा बहुत सी मसनवियों और कसीदों की रचना की। इनका "अजगर नामा" 'शोलए' इश्क, 'जोशे इश्क' इत्यादि रचनाएँ भी प्रसिद्ध हैं।

महाकवि "मीर" की प्रतिभा का पूरा दर्शन उनकी गजलों में होता है। इन गजलों में "प्रसाद" "ओज" "माधुर्य" इत्यादि कविता के सभी गुणों का दर्शन होता है। इनके कुछ शेर तो इतने अच्छे बने कि वे सुभाषितों की भाँति लोगों के जबान पर चढ़ गये थे। भाषा की सफाई तथा मुहाविरों का सुन्दर प्रयोग "मीर" की अपनी विशेषता है।

एक मुसलमान समालोचक ने सौदा और मीर की तुलना करते हुए लिखा है कि—'सौदा' जहाँ एक महान कलाकारी कवि थे और उनके प्रत्येक काव्य में हँसी—खुशी ...लकार के उत्तम रूप का अतिरेक झलकता है वहाँ मीर की कविता में निराशा दुःख, वेदना और करुणा

शेख जौक एक गरीब सिपाही के पुत्र थे। अपनी प्रतिभा के बल पर अनेक विघ्न बाधाओं को रौंदते हुए इन्होंने शाही दरबार में प्रवेश पाया और सम्राट बहादुर शाह के कविता गुरु के आसन पर जा बैठे।

मासिक तो बहुत बड़ा था मगर वेतन पहले कुल चार रुपया और बाद में १) मासिक मिलता था। इसके बाद शाह की कविता सम्बन्धी छोटी छोटी फरमाइशें पूरी करने में इनका बहुत सा समय चला जाता था। इसीसे परेशान होकर इन्होंने यह शेर कहा था—

"जौक" मुरत्तिब क्यों के हो दीवां, शिकवये फुरसत किससे करें
बांधे गले में हमने अपने आप "जफर" के झगड़े हैं।

"जौक" कसीदों तथा गजल लिखने में उस्ताद थे। इनका अध्ययन काफी विस्तृत था। इतिहास तथा इस्लाम धर्म के ग्रन्थों का ये खूब मनन करते थे। भाषा सौष्ठव माधुर्य तथा ओज पूर्ण कसीदों को लिखने में जौक बहुत आगे बढ़े हुए थे।

रचना—

किसी बेकस को ऐ बेदादगर मारा तो क्या मारा
जो आपी मर रहा हो उसको गर मारा तो क्या मारा
बड़े मूँजी को मारा नफ्से अम्मारा को गर मारा
निहंगो अजदहा और शेर नर मारा तो क्या मारा
न मारा आप को जो खाक हो अकसीर बन जाता
अगर पारे को ऐ अकसीरगर मारा तो क्या मारा
दुरंगी तीर तो जाहिर न था कुछ पास कातिल के
इलाही फिर जो दिल पर ताक कर मारा तो क्या मारा

× × ×

गुल मला कुछ तो बहारें ऐ सबा दिखला गये
हसरत उन गुन्चों पर है जो बिना खिले मुरझा गये

गालिब

मिर्जा असदुल्ला खाँ गालिब का जन्म सन् १७९७ ई॰ में आगरे में हुआ था। मिर्जा गालिब उर्दू शायरी में अपनी सानी नहीं रखते। उनका जिक्र छिड़ने पर उर्दू साहित्यकों का सिर विनय से झुक जाता है, दुख। दर्द, मस्ती और शराब के उस युग में वे दार्शनिक और तत्व-वेत्ता बने रहे। इन्हीं बुलबुल के अफसाने में गालिब ने मानवीय जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्र जिस खूबी के साथ किया है कि देखकर दंग होने लगता है। कहना पड़ता है कि गालिब गालिब हैं उनका प्रत्येक शब्द मोतियों से तौलने के काबिल है।

मिर्जा गालिब की शायरी पर जितनी टीका भाष्य और तुलनात्मक समालोचनायें हुई हैं उतनी उर्दू संसार में और किसी कवि पर नहीं हुई। गालिब एक मत से सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये हैं। गालिब ने फारसी में अधिक लिखा। उर्दू में उनका एक छोटा सा दीवान है जिसमें १८ शेर हैं मगर यह छोटा सा दीवान भी किसी कबाड़िये की दुकान न होकर एक जौहरी की वह छोटी-सी दुकान है जहां पर प्रत्येक चीज हीरा और मोती के रूप में मिलती है।

गालिब को जीवन भर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा मगर ऐसे कठिन समय में भी उन्होंने अपने आत्म सम्मान को कभी नहीं खोया।

रहिए अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो
हम सुखन कोई न हो हम जुबां कोई न हो
बे दरो दीवार सा इक घर बनाया चाहिए
कोई हम साया न हो और पासबां कोई न हो
पड़िए अगर बीमार तो कोई न हो तीमारदार
और अगर मर जाइए तो नौहास्वां कोई न हो
इशरत से कतरा है दरिया में फना हो जाना
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना
यह न थी हमारी किस्मत कि विसाले यार होता
अगर और जीते रहते यही इन्तिजार होता।

इसी युग के अन्य कवियों में "जहीर" "अनवर" "शेफ्ता" सालिक नसीम मजरूह, मजरूह इत्यादि के नाम प्रसिद्ध हैं।

लखनऊ साहित्य केन्द्र

जब दिल्ली की राजनैतिक स्थिति खराब होने लगी तो यहाँ के बहुत से शायर लखनऊ के नवाबों की पनाह में लखनऊ में आ गये। अवध के नवाब भी शायरी और शायरों के बड़े प्रेमी थे और इनके कारण लखनऊ भी उर्दू भाषा का एक बड़ा साहित्यिक केन्द्र हो गया।

लखनऊ साहित्य केन्द्र के कवियों में शेख इमाम बख्श "नासिख" (मृत्यु १८३८) "मुहम्मद रजा बर्क" शेख इमदाद अली बह्र, मीर अली औसत "रश्क" इस्माइल हुसैन "मुनीर" "मिर्जा मेहन्दी हसन "आबाद" हैदरअली "आतिश" नवाब सैय्यद मुहम्मद खाँ "रिन्द" वजीर अली "सबा" नवाब आसफुद्दौला "आसफ' नवाब सआदत अली खाँ, नवाब गाजीउद्दीन हैदर और नवाब वाजिदअली शाह के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त "मर्सिया" या शोक पूर्ण काव्यों के लिखने में "ज़मीर' "खलीक" "अनीस और दबीर के नाम उल्लेखनीय हैं।

नज़ीर

दिल्ली और लखनऊ के साहित्य केन्द्रों के अतिरिक्त भारत के और भी कई स्थानों पर उर्दू साहित्य के बड़े बड़े प्रतिभाशाली शायर हुए। इन्हीं में वली मुहम्मद 'नज़ीर' भी एक प्रसिद्ध शायर थे। नज़ीर का जन्म सन् १७४ के करीब दिल्ली में हुआ और सन् १८१ में आगरे में इनका देहान्त हुआ।

उर्दू साहित्य में उस समय जो साम्प्रदायिकता की भावनाएँ पैदा हो गई थीं और उसका सम्बन्ध हिन्दी से हटाकर फारसी से और हिन्दुस्तान से हटाकर फारस से जोड़ने का जो प्रयत्न किया जा रहा था उससे महाकवि नज़ीर एकदम दूर थे। उनमें इन भावनाओं का लेश भी नहीं था। काव्य में उनकी सूझ निराली थी। उन्होंने किसी का अनुकरण नहीं किया जो कुछ लिखा मौलिक लिखा। कविता में उन्होंने हिन्दू मुसलमान का कोई भेद नहीं किया। वे मोहर्रम के उपलक्ष्य में रोये भी और होली पर डफ भी बजाया उन्होंने शबरात पर महताबियाँ छोड़ीं तो दीवाली पर दीप भी संजोए। नबी, रसूल वली पीर और पैगम्बर के लिए जी भरकर लिखा तो कृष्ण महादेव, नरसी भैरों और नानक पर भी भजनावली बनाई, जवानों और बूढ़ों को नसीहत देने बैठे तो लोग आश्चर्य में आ गये मानो कुरान हदीस, वेद गीता उपनिषद पुराण सब घोलकर पी जाने वाला कोई सिद्ध पुरुष बोल रहा है। बच्चों के लिए लिखने बैठे तो स्वयं बच्चे बन गये और तरबूज ककड़ी पतंगबाजी, बुलबुलों की लड़ाई सभी पर लिख डाला।

महाकवि नज़ीर शब्दों के जादूगर थे उनकी उपमायें कमाल की होती थीं। आगरे की ककड़ियों की तुलना शीरीं की सर्द निगाहों और लैला की उँगलियों से करना उन्हीं का काम था।

मजनूँ की सर्द आहें या लैला की उँगलियाँ हैं।
फरहाद की निगाहें या शीरीं की फसलियाँ हैं॥
आगरे की ककड़ियाँ हैं।

नज़ीर की रचना—

होली

जब फागुन रंग झमकते हों, तब देख बहारें होली की।
और डफ के शोर खड़कते हों, तब देख बहारें होली की॥
परियों के रंग दमकते हों, तब देख बहारें होली की।
खुम-शीशे-जाम झलकते हों, तब देख बहारें होली की॥
महबूब नशे में छकते हों, तब देख बहार होली की।
हो नाच रंगीली परियों का, बैठे हों गुलरू रंग भरे—
कुछ भीनी बातें होली की, कुछ नाच अदा के रंग भरे।
दिल भूले देख बहारों को और कानों में आहंग भरे॥
कुछ तबले खड़कें रंग भरे, कुछ ऐश के दम मुँह चंग भरे।
कुछ घुँघरू ताल झनकते हों, तब देख बहारें होली की॥
औ एक तरफ दिल लेने को, महबूब गवैयों के लड़के—
हर आन घड़ी गत भरते हों, कुछ घटपड़ के कुछ बढ़बढ़ के—
कुछ नाज जतावें लड़ लड़ के, कुछ होली गावें अड़-अड़ के।
कुछ लचके शोख कमर पतली कुछ हाथ चले कुछ तन फड़के—
कुछ काफिर नैन मटकते हों तब देख बहारें होली की।
यह धज सामान मोहैया हो औ बाग खिला हो फूलों का॥
हर आन शराबें ढलती हों औ ठट्ट हो रंग के डूबों का—
इस ऐश मजे के आलम में एक गोल खड़ा महबूबों का॥
कपड़े पर रंग छिड़कते हों, तब देख बहारें होली की।
गुलजार खिले हों परियों के औ मजलिस की तैयारी हो॥
कपड़ों पर रंग के छींटों से खुश रंग अजब गुलकारी हो—
मुँह लाल गुलाबी आँखें हों, औ हाथों में पिचकारी हो॥
उस रंग भरी पिचकारी को अँगिया पर तक कर मारी हो।
सीनों से रंग ढलकते हों, तब देख बहारें होली की॥

भेद फकीरी

है आशिक और माशूक जहाँ वहाँ शाह वज़ीरी है बाबा।
ना रोना है ना धोना है, ना दर्द असीरी है बाबा॥

दिन रात बहारें झूलतें हैं और ऐश फकीरी है बाबा।
जो आशिक हुए तो जाते हैं यह भेद फकीरी है बाबा
हर आन हँसी हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा॥
जब आशिक मस्त फकीर हुए, तब क्या दिलगीरी है बाबा।
कुछ जुल्म नहीं, कुछ जोर नहीं, कुछ दाद नहीं, फरियाद नहीं
कुछ कैद नहीं, कुछ बन्द नहीं, कुछ जब्र नहीं, आजाद नहीं।
शागिर्द नहीं, उस्ताद नहीं, वीरान नहीं, आबाद नहीं॥
हैं जितनी बातें दुनिया की सब भूल गये, कुछ याद नहीं–
हर आन हँसी।

जिस सिम्त नजर कर देखे है, उस दिलबर की फुलवारी है।
कहीं सब्जी की हरियाली है, कहीं फूलों की गुलक्यारी है।
दिन-रात मगन खुश बैठे हैं, और आस उसी की भारी है।
बस, आपही वह दातारी है, और आप ही वह भंडारी है।
हम चाकर जिसके हुस्न के हैं, वह दिलबर सबसे आला है।
उसने ही हमको जी बख्शा, उसने ही हमको पाला है।
दिल अपना भोला भाला है और इश्क बड़ा मतवाला है।
क्या कहिये अब 'नजीर' आगे, अब कौन समझने वाला है।
हर आन हँसी।

अमीर मीनाई

मुंशी अमीर अहमद 'अमीर मीनाई' का जन्म सन् १८२६ में लखनऊ के अन्दर हुआ। बचपन से ही इनको शेरो-शायरी का शौक था। सन् १८५७ के गदर के बाद लखनऊ के उजड़ने पर ये नवाब रामपुर के निमंत्रण पर रामपुर चले गये और वहाँ ४४ वर्षों तक नवाब के काव्य गुरु बनकर रहे।

अमीर मीनाई की शायरी सरल और आकर्षक है। उनकी भाषा मुहाविरेदार और प्रभाव युक्त है। कल्पना की उड़ान भी खूब है। उनका जीवन धार्मिक सरल और शुद्ध था। मिर्ज़ा 'दाग' के ये समकालीन थे और दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे। दोनों ही अपने जमाने के बहुत बड़े उस्ताद थे। दोनों ने रामपुर और हैदराबाद में सम्मान पायी। एक लखनवी कलाम में माहिर थे तो दूसरे को देहलवी जबान में कमाल हासिल था। शायरी के मैदान में दोनों ने खूब कमाल दिखलाया मगर एक दूसरे पर चोट नहीं की।

अमीर मीनाई की रचना—

खबरदार ऐ मुसाफिर! सौक की या राहे हस्ती है–
ठगों का देश है आबला चोरों की बस्ती है।
'अमीर' उस रास्ते से जो गुजरते हैं, वो कहते हैं–
मुहल्ला यह हसीनों का, या कस्साबों की बस्ती है।

× × ×

जो निगाह की थी जालिम, तो फिर आँख क्यों चुराई–
वही तीर क्यों न मारा, जो जिगर के पार होता।

× × ×

मस्जिद में बुलाता है हमें, जाहिदे-नाफहम–
होता जो असर होश तो, मयखाने न जाते।

× × ×

दीदारे यार का न उठेगा मजा अमीर!
जब तक दुई का परदा उठाया न जायगा।

'दाग'

नवाब मिर्ज़ा 'दाग' का जन्म सन् १८३१ में और मृत्यु १९०५ में हुई।

दाग गजलों के प्रसिद्ध शायर थे और वे सब गजलें शोखी और शरारत से भरी हुई रहती थीं। वह पहले रामपुर नवाब के यहाँ रहे और सन् १८८८ में हैदराबाद गये। तीन वर्ष के बाद वहाँ के निजाम ने इन्हें अपना मुसाहिब बनाया और फिर कविता-गुरु के पद पर प्रतिष्ठित किया। और "जहाँ उस्ताद" बुलबुले-हिन्दोस्ताना नाजिम यार-जंग, दबीरुद्दौला और फसीहुल-मुल्क की ५ प्रतिष्ठित पदवियों से विभूषित किया। इनकी तनख्वाह ढाई सौ से शुरू होकर डेढ़ हजार तक गयी।

सन् १९०५ में जब उनकी मृत्यु हुई तो सारे भारत में उर्दू साहित्यिकों में कोहराम मच गया। इनके शिष्य डा० सर इकबाल ने अपने उस्ताद की मृत्यु पर 'नोहा' लिखा जिसका एक शेर इस प्रकार है—

हूबहू खीचेगा लेकिन इश्क की तस्वीर कौन।
उठ गया नाविक फिगन मारेगा दिल पर तीर कौन।

दाग के ४ दीवान प्रकाशित हो चुके हैं जिनके नाम गुलजारे दाग, आफताबे-दाग महताबे दाग और यादगारे दाग हैं। वैसे तो सारे भारतवर्ष में 'दाग' के शिष्यों और

शिष्यों के शिष्यों का जाल सा मरा हुआ था, मगर उनके प्रधान शिष्यों में हैदराबाद के निजाम महबूब अली खाँ 'आसफ', डा० सर महमूद इकबाल नवाब सायल देहलवी, बेखुद देहलवी, आगा शायर देहलवी, नसीम भरतपुरी, जिगर मुरादाबादी इत्यादि प्रसिद्ध कवि में प्रधान थे।

'दाग' की रचनाएँ—

आइना तस्वीर का, तेरी न लेकर रख दिया—
बोसा लेने के लिए काबे में पत्थर रख दिया।
जिन्दगी में पास से, दम भर न होते थे जुदा—
कब्र में तनहा मुझे यारों ने करके रख दिया।

× × ×

मयखाने के करीब थी, मस्जिद मले को 'दाग'—
हर शख्स पूछता था कि हजरत, इधर कहाँ!

× × ×

गम से कहीं निजात मिले चैन पायें हम!
जिस खून में नहाये, तो गंगा नहायें हम।

× × ×

ऐ फलक! दे हमको पूरा गम तो खाने के लिए—
वह भी हिस्सा कर दिया, सारे जमाने के लिए।

× × ×

मर गये तो मर गये, हम इश्क में नासेह को क्या!
मौत आने के लिए, है जान जाने के लिए।

उर्दू-साहित्य का वर्तमानकाल

सन् १८५७ के गदर के पश्चात् बादशाही और नवाबी के भंग हो जाने पर उर्दू के कवियों के लिए कोई राज आश्रय स्थान नहीं रहा मगर अंग्रेजी-राज्य और अंग्रेजी भाषा का प्रचार होने के साथ-साथ उर्दू के साहित्य ने एक नवीन दिशा को ग्रहण किया।

मौलाना अल्ताफ हुसेन 'हाली' डा० मुहम्मद हुसेन 'आजाद' सर सैयद अहमद इत्यादि लोग इस विकास के अगुआ थे। इस काल में प्राचीनकाल की कविता के संकुचित क्षेत्र को आशिक-माशूक तथा विरह के रोने गाने को कम करके अन्य विषयों में भी उर्दू साहित्य का क्षेत्र बढ़ाया गया। अतिशयोक्ति तथा अनर्गल और अर्थमय बातों के बदले स्वाभाविक और यथार्थवादी वर्णन को विशेषता दी जाने लगी।

मुहम्मद हुसेन 'आजाद'

नवयुग के इन प्रवर्तकों में मौलाना मुहम्मद हुसेन 'आजाद' का नाम सबसे पहले आता है। इनका जन्म सन् १८२६ में और मृत्यु सन् १६१ में हुई। मौलवी मुहम्मद हुसेन 'आजाद' को उर्दू-साहित्य में वही स्थान प्राप्त है, जो हिन्दी-साहित्य में भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र को प्राप्त है।

तारीखे अदब-उर्दू के लेखक का कथन है कि—"उर्दू जबान पर 'आजाद' के बहुत बड़े एहसान हैं। उर्दू शायरी में इस रंग का बानी (संस्थापक) और उसमें एक नई रूह फूँकने वाला अगर कोई निःसंकोच कहा जा सकता है तो वह मुहम्मद हुसेन 'आजाद' है।"

सन् १८५७ के विद्रोह के पश्चात् दिल्ली छोड़ने पर कुछ दिन इधर-उधर भटकने के बाद एक हिन्दू-मित्र की सहायता से लाहौर के एक कालेज में 'आजाद' प्रोफेसर हो गये। १५ अगस्त सन् १८६७ को उन्होंने लाहौर में उर्दू-साहित्य की तरक्की के लिए अंजुमने उर्दू नाम की एक संस्था स्थापित की। इस संस्था का उद्देश्य उर्दू कविताओं में से व्यर्थ की अतिशयोक्ति और उपमाओं को निकाल कर बाहर करना तथा मुशायरों में से समस्या पूर्ति की प्रथा को उठा देना और उसके बदले में नैतिक धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक तथा प्राकृतिक सौन्दर्य आदि को दिखलाने की परम्परा डालना निश्चित किया गया।

मौलवी 'आजाद' पद्य की अपेक्षा गद्य को अधिक तर्जीह देते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी अधिक शक्ति गद्य के विकास में खर्च की और उसमें 'आबे हयात' नेरंगे ख्याल' 'सुखुन-दान फारस' 'दरबारे अकबरी' और निगारिस्तान' जैसी अपनी रचनाएँ भेंट कीं।

सन् १८६६ में उनकी शायरी का संग्रह नज्मे आजाद के नाम से प्रकाशित हुआ। सन् १८८६ में

हर इक वक्त का मकतबी जानते हैं,
ज़माने का तेवर वह पहचानते हैं।

मशक्कत को, मेहनत को, जो आर समझें
हुनर और पेशे को, जो ख्वार समझें
तिजारत को खेती को, दुश्वार समझें
फिरंगी के पैसे को, मुर्दार समझें

इन आसानियों चाहे और आबरू भी-
यह कौम आज डूबेगी, गर कल न डूबी।

शायरों के लिए—

वो शेर वो क़सायद का नापाक दफ्तर
अफूनतमें संडास से जो है बदतर।
ज़मीं जिससे है, ज़लज़ले में बराबर
मलिक जिससे शरमाते हैं आसमाँ पर।
हुआ इल्मों दीं जिससे ताराज सारा
वो इल्मों में इल्मे अदब है हमारा।
बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है
अबस झूठ बकना अगर नारवाँ है
तो वह महकमा जिसका काज़ी खुदा है
मुकर्रर वहाँ नेकोबद की सज़ा है,
जहन्नुम को भरदेंगे शायर हमारे।
गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे

अकबर

सैय्यद अकबर हुसैन "अकबर" इलाहाबादी का जन्म सन् १८४८ में इलाहाबाद ज़िले के एक गाँव में हुआ और उनकी मृत्यु सन् १९२१ में हुई।

उर्दू-साहित्य के अन्तर्गत व्यंग और हास्यरस के कवियों में 'अकबर' इलाहाबादी का पहला स्थान है। हास्य और व्यंग के अन्दर ही उन्होंने राजनीति समाजनीति और सारे जग को उपदेश दिया है।

रचनाएँ—

जो देखी हिस्ट्री इस बात पर कामिल यकीं आया
उसे जीना नहीं आता जिसे मरना नहीं आया।
पुरानी रोशनी में और नई में फर्क इतना है
उसे किश्ती नहीं मिलती इसे साहिल नहीं मिलता।

× × ×

तालीम लड़कियों की ज़रूरी तो है मगर,
खातूने खाना हों वे, सभा की परी न हों।
जो इल्मों मुत्तकी हों, जो हों उनके मुन्तज़िम
उस्ताद अच्छे हों मगर उस्ताद जी न हों।

× × ×

हम ऐसी कुल किताबें काबिले-ज़ब्ती समझते हैं
कि जिनको पढ़के लड़के बापको खब्ती समझते हैं।
खुदा की राह में बेशर्त करते थे सफ़र पहले
मगर अब पूछते हैं रेलवे इसमें कहाँ तक है।
मय भी होटल में पियो, चन्दा भी दो मसजिद में
शेख भी खुश रहे, शैतान भी बेज़ार न हो।

इक़बाल

डॉ. सर शेख मुहम्मद इक़बाल का जन्म सन् १८७५ में स्यालकोट पंजाब में हुआ (पूरा परिचय "इक़बाल" नाम में देखें)।

आज़ाद और हाली की शायरी में जो सचाई और सादगी थी, इक़बाल ने उसमें कल्पना, भाव और भाषा के ऐसे रंग भरे कि जिससे उर्दू साहित्य को निराला कर दिया। अपनी कविता में प्रकृति-वर्णन और दार्शनिकता के भावों को गूँथकर उन्होंने जो गुलदस्ता तैयार किया वह उर्दू साहित्य में अपूर्व है।

इक़बाल ने अपनी शायरी से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली थी। उनकी शायरी पर जर्मन सरकार ने उन्हें "डॉक्टरेट" की और भारत-सरकार ने "सर" की उपाधि प्रदान की थी।

इक़बाल की शायरी के तीन दौर हैं। पहला दौर *विलायत* जाने के पूर्व सन् १८९९ से १९०५ तक था जब वे पूर्ण रूप से भारतीय और राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत थे। दूसरा दौर १९०५ से १९०८ तक था जब वे विलायत में थे और तीसरा दौर १९०८ से १९३७ तक था, जब वे एक भारतीय के स्थान पर कट्टर मुसलमान के रूप में पूर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं से ओतप्रोत हो गए थे।

रचनाएँ (पहला दौर)

यूनानियों को जिसने हैरान कर दिया था
सारे जहाँ को जिसने इल्मोहुनर दिया था

मगर कब तक नेमत में, कमी मुकती है कन्ने की,
ये उम्मी सन्दगी है, एक शरीफाना अदावत है।
ठुकरा दे दखतों को, बेनियाजे मुरब्बा होगा,
खुदी को भ्माइदे दामन से, मर्दे बाखुदा होगा।
उठा लेती हैं लहरें, तहनशीं होता है जब कोई,
उभरना है तो गरके मौजिए सदरेफना होगा।

इसी प्रकार मुंशी नौबत राय सक्सेना 'नज़र', पं० बृजमोहन दत्तात्रय 'कैफ़ी', शेख आशिक हुसेन 'सीमाब' अकबराबादी मिर्ज़ा मुहम्मद हादी 'अज़ीज़', अहसान-बिन दानिश 'अहसान' महाराज बहादुर 'बर्क़', 'हफ़ीज़' जालन्धरी 'सागर' निज़ामी 'अख्तर' शीरानी, पं० बालमुकुन्द 'अर्श', फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़', इसरारुल हक़ 'मजाज़', 'साहिल' लुधियानवी, साकिर हुसेन 'साकिर' रघुपति सहाय 'फ़िराक़', इत्यादि शायरों ने भी अपनी अमूल्य देनों से उर्दू-साहित्य को समृद्ध बनाया।

उर्दू में गद्य-साहित्य का विकास

संसार की सब भाषाओं की तरह उर्दू में भी काव्य का विकास होने के पश्चात् गद्य का विकास होना प्रारंभ हुआ। सन् १७१२ ई० में उत्तरी भारत में फ़ज़ली की 'देह मजलिस' नामक पहली गद्य-पुस्तक निकली जो फ़ारसी के आधार पर लिखी गई थी। इसका महत्व अधिक इसलिए है कि यह उर्दू की सबसे पहली पुस्तक थी। इसके अतिरिक्त इसमें कोई और विशेषता नहीं थी।

डा० गिलक्राइस्ट

मगर वास्तव में उर्दू गद्य के पिता डा० गिलक्राइस्ट माने जाते हैं जो सन् १८ में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज के खुलने पर वहाँ के प्रिंसिपल होकर इंग्लैंड से आये थे। लार्ड वेलेस्ली ने हिन्दी और उर्दू की पाठ्य पुस्तकों की रचना का कुल भार इन्हें सौंप दिया। इस काम को इन्होंने बड़ी खूबी से सम्पन्न किया। इनके नामपर कलकत्ते में "गिलक्राइस्ट एजुकेशन ट्रस्ट" नामक संस्था की स्थापना हुई। इन्होंने अपने सहयोगियों की सहायता से उर्दू गद्य को एक निश्चित स्वरूप देने का सफल प्रयत्न किया। इनकी रचनाओं में हिन्दुस्तानी भाषा विज्ञान हिन्दुस्तानी व्याकरण तथा अंग्रेजी हिन्दुस्तानी कोष प्रधान हैं।

डॉ० गिलक्राइस्ट के मुंशी मीर अम्मन ने अमीर खुसरो कृत चहार दरवेश का उर्दू अनुवाद कर उसका नाम 'बागोबहार' रक्खा। मीर अम्मन ने इसका अनुवाद सरल और मुहावरेदार उर्दू गद्य में किया।

मीर शेरअली जाफ़री "अफ़सोस" भी फोर्ट विलियम कालेज में मुंशी थे। इन्होंने शेखसादी की गुलिस्तां का "बागे उर्दू" नाम से अनुवाद किया जो सन् १८ १ में प्रकाशित हुआ। सन् १८०५ में इन्होंने मि० हैरिंगटन की आज्ञा से 'आराइशे महफ़िल" नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा।

इसी प्रकार डा० गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से मीर बहादुर अली हुसैन ने "मीरहसन" की मसनवी "सेहरुल बयान" का गद्य रूपान्तर किया तथा हैदरबख्श हैदरी ने "तोता कहानी" और हातिमताई का उर्दू गद्य में अनुवाद किया।

लाहौर के मुंशी निहालचन्द ने भी डा० गिलक्राइस्ट की प्रेरणा पर "मज़हबे इश्क़" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया।

इसी प्रकार डा० गिलक्राइस्ट और फोर्ट विलियम कालेज के सहयोग से और भी कई लोगों ने उर्दू-गद्य के प्रारंभिक विकास में अपना योग प्रदान किया। इसके साथ ही दिल्ली में वहाबी मत के प्रसिद्ध विद्वान अब्दुल कादिर ने उर्दू भाषा में 'कुरान' का दूसरा अनुवाद 'मौज़हुल कुरान' के नाम से किया। यह अनुवाद इतना उत्तम हुआ और इसकी भाषा इतनी सुगम और मुहाविरेदार रही कि कई अन्य अनुवादों के हो जाने के पश्चात् भी इसकी लोकप्रियता में कमी न आई।

इसके पश्चात् लखनऊ के सबसे अधिक प्रसिद्ध उर्दू के गद्य-लेखक मिर्ज़ा रजब अली 'सरूर' हुए। इनका मुख्य ग्रन्थ 'फ़िसाने अजायब' है जो फ़ारसी की विशिष्ट कथा के अनुरूप एक तिलस्मी कहानी है।

इसके अतिरिक्त 'गुलज़ारे सरूर' 'शबिस्ताने सरूर' इत्यादि रचनाएँ इन्होंने काशी के महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के आश्रय में रह कर कीं।

सन् १८६७ ई० में बनारस में इनका देहान्त हुआ।

उर्दू-साहित्य के गद्य के इतिहास में इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

सर सैय्यद अहमद खाँ

भारत उर्दू के गद्य-साहित्य में नया जीवन फूँकने वाले और उसे उत्कर्ष की चोटी पर पहुँचाने वाले महान व्यक्ति सर सैयद अहमद थे।

सर सैय्यद अहमद का जन्म सन् १८१७ में दिल्ली के अन्दर हुआ था। शुरू से ही सर सैय्यद अहमद अत्यन्त प्रतिभाशाली, तीक्ष्ण बुद्धि और गंभीर मस्तिष्क के व्यक्ति थे। ब्रिटिश गवर्नमेंट की नौकरी में क्रमशः बढ़ते बढ़ते सन् १८५५ में यह बिजनौर के सदर अमीन हुए। सन् ५७ के गदर के समय में ये बिजनौर में ही थे। गदर के समय इन्होंने अंग्रेजी सरकार की बड़ी सहायता की। इसके उपलक्ष में इनको पुरस्कार में खिल्लत, मोती की माला, तलवार इत्यादि के साथ जीवन भर के लिए २) की मासिक वृत्ति मिली।

सन् १८५८ में इन्होंने विद्रोह के मूल कारणों पर 'असबाबे-बगावते-हिन्द' नामक पुस्तक लिखी जिसका अंग्रेजी अनुवाद सर आकलैंड कालविन तथा मि० ग्राहम ने सन् १८७३ में किया।

सन् १८६४ में यह अलीगढ़ गये और वहाँ पर एक समिति की स्थापना की जिसका उद्देश्य अंग्रेजी से उर्दू भाषा में पुस्तकों का अनुवाद करना था। अलीगढ़ से इन्होंने एक पत्र भी प्रकाशित किया और कुछ दिनों तक इसके सम्पादक भी रहे।

सन् १८६९ में ये इंग्लैंड गये। वहाँ इनका अच्छा सत्कार हुआ और सी० एस० आई० की पदवी प्राप्त हुई। सन् १८७० में विलायत से वापस लौटकर इन्होंने सोशल रिफार्मर (तहज़ीबुल अखलाक) नामक पत्र निकाला जिसमें धर्म सुधार सम्बन्धी लेख प्रकाशित होने लगे। इससे बहुत से मुसलमान धर्माधिकारी इनके विरुद्ध हो गये और इन्हें 'शैतानों का सेनापति' कहने लगे। इन्हें मार डालने की भी धमकी दी गई, मगर यह अपने पथ से विचलित न हुए।

सन् १८७५ में अलीगढ़ में 'मुस्लिम कालेज' की स्थापना हुई और इसके बाद इनका सारा जीवन इसी संस्था की सेवा में बीता। सन् १८८८ में इनको गवर्नमेंट से के० सी० एस० आई० की उपाधि मिली।

उर्दू-साहित्य के इतिहास में सर सैय्यद अहमद का नाम एक प्रकाश स्तंभ की तरह जगमगा रहा है। इनके मधुर स्वभाव ने तत्कालीन कई विद्वानों और कवियों को आकर्षित करके उनकी सेवाओं को साहित्य के उत्थान में लगा दिया। इनमें नवाब मुहसिनुल-मुल्क, चिराग अली, नजीर अहमद, जकाउल्ला और मौलाना 'हाली' प्रधान थे।

सर सैय्यद अहमद की रचनाओं में 'असबाबे बगावते हिन्द' 'बिजनौर का इतिहास', 'आसार' 'उस्सनादीद' इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। सन् १८५५ में इन्होंने 'आईने अकबरी' तथा 'तारीख फिरोज शाही' का सम्पादन किया। इनका सबसे बड़ा ग्रन्थ 'तफसीरुल कुरान' है। इसकी ७ जिल्दें निकली थीं, फिर भी यह अपूर्ण ही रहा। सर सैय्यद अहमद की लेखन-शैली बड़ी सरल, सुगम और प्रभावशाली थी। इनकी लेखन-शैली का परवर्ती लेखकों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सर सैय्यद अहमद की प्रेरणा से मुहसिनुल-मुल्क, मीर मेंहदी अली, विकारुल मुल्क, नवाब मुश्ताक हुसेन, मौलवी चिराग अली इत्यादि महान् लेखकों ने भी अपनी रचनाओं से उर्दू-साहित्य को बहुत समृद्ध किया।

इनके पश्चात् उर्दू-साहित्य के गद्य के इतिहास में दो प्रकाशपूर्ण नक्षत्रों की तरह प्रोफेसर मोहम्मद हुसेन 'आजाद' और मौलाना 'हाली' का नाम चमकता है, जिनका परिचय हम इसी लेख में पहले दे चुके हैं।

इनके पश्चात् शमसुल उलमा नजीर अहमद ने करीब तीन दर्जन पुस्तकें लिखकर उर्दू-साहित्य के विकास में अच्छा महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया। १९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध के यह प्रसिद्ध लेखक थे।

सर सैय्यद अहमद के साथी मौलाना शिबली नोमानी ने इस्लाम के इतिहास का गवेषणापूर्ण अनुसन्धान किया और कई ऐतिहासिक ग्रन्थों का निर्माण किया। साहित्यिक रचनाओं में 'शेरुल अजम' इनकी प्रसिद्ध रचना है जो पाँच भागों में विभाजित है और जो इनकी विद्वत्ता, मनोयोग और मनन शीलता का स्मृति-स्तम्भ

है। इनमें सारे फारसी साहित्य की आलोचना है, जो सुगम उर्दू में लिखी गई है।

इसी प्रकार सैय्यद सुलेमान नदवी, मौलवी मुहम्मद ज़काउल्ला, गुलाम इमाम शहीद, मनोहरलाल ज़ुत्शी, मथाराम निगम इत्यादि कई लेखकों ने अपनी रचनाओं से उर्दू के गद्य साहित्य को समृद्ध किया।

उर्दू की पत्र-पत्रिकायें

उर्दू-भाषा का सबसे पहला अखबार 'मिरातुल अख-बार' के नाम से सन् १८२१ में राजा राममोहन राय के प्रबन्ध में निकलना प्रारंभ हुआ।

सन् १८३८ ई० में दिल्ली से 'देहली-उर्दू अखबार' के नाम से उत्तरी भारत का पहला उर्दू अखबार निकला, जिसके सम्पादक सैय्यद बाकर हुसैन थे। यह साहित्यिक पत्र था। सन् १८३७ ई० में सर सैय्यद अहमद ने भी दिल्ली से 'सैय्यदुल अखबार' नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकाला जो ११ वर्ष तक चला।

सन् १८५० ई० में लाहौर से 'कोहेनूर' नामक साप्ताहिक पत्र निकला जिसके मालिक हरसुख राय भटनागर थे। उर्दू का एक मात्र अखबार होने से देशी राज्यों में इसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मुंशी नवलकिशोर शुरू-शुरू में इसी के आफिस में काम करते थे।

सन् १८५८ ई० में मुंशी नवलकिशोर ने लखनऊ से 'अवध अखबार' प्रकाशित किया। पं० रतननाथ 'सरशार' के सम्पादक होने से इसका प्रचार अत्यधिक बढ़ा।

सन् १८७७ में लखनऊ से हास्य-रस का सुप्रसिद्ध पत्र 'अवध पंच' निकला जो उर्दू में हास्य रस का पहला पत्र था। इसके सम्पादक मुन्शी सज्जाद हुसैन स्वयं भी हास्य रस के नवीन रूप थे। इनकी भाषा ठेठ उर्दू थी। धर्मान्धता का इनमें नाम तक न था। इसी शैली में स्वतंत्रतापूर्वक विचार प्रकट किये जाते थे।

सन् १८८१ में लखनऊ से 'हिन्दुस्तानी' नामक साप्ताहिक पत्र निकला। इसके सम्पादक गंगाप्रसाद वर्मा थे। इस पत्र में सामयिक राजनैतिक विषयों पर भी लेख छपा करते थे। इसके साथ-साथ ही लखनऊ से [illegible] हिन्द' अलीगढ़ से 'इंस्टीट्यूट गजट' और 'तहज़ीबुल एख-लाक' नामक पत्र भी प्रकाशित होने लगे।

सन् १८८७ ई० में महबूब आलम ने 'पैसा' नामक अखबार का प्रकाशन प्रारंभ किया। इस पत्र का खूब प्रचार हुआ, जिससे यह दैनिक भी हो गया और इसके दफ्तर से कुछ मासिक पत्र भी निकलने लगे।

मासिक पत्रों में भी उर्दू के कई मासिक पत्र निकले, मगर वे दीर्घजीवी नहीं हुए। फिर भी इनमें सर सैय्यद अहमद का 'तहज़ीबुल-एखलाक' लाहौर से निकलने वाला मौ० अब्दुल कादिर का 'मखज़न' हैदराबाद से निकलने वाला 'अफसाना' मुन्शी दयानारायण निगम का 'ज़माना', इत्यादि मासिक पत्रों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस ने भी उर्दू-साहित्य की जो सेवा की वह उर्दू साहित्य के इतिहास में कम महत्वपूर्ण नहीं है।

उरगपुर

भारतवर्ष के दक्षिणी प्रान्त में त्रिचनापल्ली के पास स्थित एक प्राचीन नगर जो इस समय 'उरय्यूर' के नाम से प्रसिद्ध है।

उरगपुर प्राचीन काल में पाण्ड्य-साम्राज्य की राजधानी थी। कालिदास ने इन्दुमती के स्वयंवर में एक पाण्ड्य राजा का उल्लेख किया है और उसमें उसकी राजधानी 'उरगपुर' बतलाई है। इस राजधानी को और उसके साथ-साथ पाण्ड्यों की सत्ता को भी करिकाल चोल ने ई० सन् की ८ लगभग नष्ट कर दिया पर स कई सदियों तक पाण्ड्य राजा चोलों के माण्डलिक बनकर रहे। इसका उल्लेख 'टालमी' ने भी किया है। इससे मालूम होता है कि कालिदास टालमी के पहले ईसा के पूर्व पहली सदी में हुआ था। क्योंकि उक्त पाण्ड्यों की राजधानी मदुरा का उल्लेख न कर उरगपुर का उल्लेख किया है।

११वीं सदी के प्रारम्भ में चोल-राजा राजराज ने दक्षिण भारत में अपना साम्राज्य कायम किया और उसकी तीन राजधानियों में उरगपुर भी एक राजधानी थी।

उर्फी शीराजी

शीराज का निवासी एक प्रसिद्ध कवि जो सन् १५८५ में फतेहपुर सीकरी में आया और अकबर के प्रसिद्ध दरबारी 'फैजी' की सेवा में रहने लगा। उसके पश्चात् सन् १५८८ में वह कवियों के प्रसिद्ध आश्रयदाता महाकवि रहीम खानखाना के दरबार में शामिल हो गया। इसके पश्चात् अकबर के दरबार में उसको दरबारी-कवि का स्थान मिल गया।

शीराजी फारसी-भाषा के कसीदों और गजलों का उस्ताद था। उसकी जोरदार भाषा और नवीन उपमाओं की रचना ने फारसी भाषा में एक नवीन धारा को प्रवाहित किया। गंभीर दार्शनिक विचारों को शब्द-पूर्ण मधुर भाषा में अभि-व्यक्त करना उसकी खास विशेषता थी और इसी विशेषता ने उसको लोकप्रिय बना दिया था। उसकी रच-नाओं के संग्रह में २६ कसीदे २७ गजलें १२ शेर और १८ रुबाइयाँ संग्रहित हैं।

केवल ३६ वर्ष की उम्र में सन् १५९१ में इस उदीय-मान कवि की मृत्यु हो गई।

उरस का मेला

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की स्मृति में अजमेर में लगने वाला मुसलमानों का एक विशाल मेला।

'ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के स्मारक में अजमेर के अन्त-र्गत एक बहुत बड़ी दरगाह बनी हुई है जो विश्व के समस्त सुन्नी मुसलमानों का एक महान् आकर्षण-केन्द्र है।

ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती इस्लाम के अन्तर्गत एक पहुँचे हुए फकीर थे और यह विश्वास किया जाता है कि भारतवर्ष में इस्लाम को बढ़ाने में उन्हीं का प्रधान हाथ था। इसीलिए इनके नाम के प्रति मुसलमानों की अगाध श्रद्धा है और इनकी स्मृति में जब यह मेला लगता है, तब सारे हिंदुस्तान के मुसलमानों की भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं। इस अवसर पर देश के कोने-कोने से लाखों मुसलमान यहाँ पर उपस्थित होकर ख्वाजा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और अपने तथा अपने बच्चों के लिए दुआ माँगते।

उलुगबेग

महान विजेता 'तैमूर' का पोता और सम्राट शाहरुख का पुत्र जिसका शासन काल सन् १४४७ से १४४९ तक है।

'उलुगबेग' ने अपने पिता के राजत्व-काल में ४१ वर्ष (सन् १४०९ से ४९) तक मध्य एशिया में समरकन्द के गवर्नर की तरह 'अन्तर्वेद' का शासन किया। उलुगबेग को ज्योतिष और गणित के विकास में बड़ी दिलचस्पी थी। तारों और ग्रहों के ठीक-ठीक वेध के लिए उसने एक बहुत बड़ी वेधशाला समरकन्द के पास कोहक नदी के ऊपर सन् १४२९ में बनवाई थी। इसके दरबार में वेधशाला के विद्वान काजी गयासुद्दीन, मोहिउद्दीन काशानी और मशहूरी अलाउद्दीन रहते थे। यहीं पर सन् १४३७ में ज्यो-तिष की एक महत्वपूर्ण सारिणी तैयार की गई। यह सारिणी पूर्वी देशों में बनी हुई सभी ग्रह-सारिणियों से अधिक पूर्ण और शुद्ध थी। इसका प्रथम संस्करण प्रोफेसर ग्रीव्स ने १७वीं शताब्दी के मध्यकाल में आक्सफोर्ड में छपवाया था। डा० टामस हाइड ने सन् १६६५ ई० में इसका लैटिन अनुवाद प्रकाशित कराया।

उलुगबेग के बनाये हुए महल, मस्जिद मदरसे वास्तु-कला के अत्यन्त सुन्दर नमूने हैं। जिस प्रकार उसके पिता ने हिरात को भव्य बनाया उसी प्रकार उलुगबेग ने समरकन्द को अपने समय का सबसे अधिक सांस्कृतिक केन्द्र बना दिया। उसके महलों को सजाने के लिए चीन के सुन्दर चित्रकार और कलाकारों ने आकर वर्षों तक काम किये। उसका दरबार उस समय के साहित्यकारों और कवियों से भरा पूरा रहता था।

शाहरुख की मृत्यु के पश्चात् सन् १४४७ में वह समरकन्द को छोड़कर हिरात में अपने पिता की गद्दी पर बैठा। उलुगबेग बड़े कोमल स्वभाव का आदमी था। कला और विज्ञान के पीछे वह दीवाना था मगर उसमें सैनिक और राजनैतिक योग्यता बिलकुल न थी और इसीसे वह २ वर्ष से अधिक शासन न कर सका।

पहले तो उजबक-जाति के लोगों ने समरकन्द पर आक्र-मण करके उसके सब कला-केन्द्रों को नष्ट कर दिया। उसके

बाद उसके लड़के अमुक खलीफ ने उसकी हत्या करवा दी और खुद गद्दी पर बैठ गया।

उल्लुर–एस० परमेश्वरैया

मलयालम-साहित्य के एक सुप्रसिद्ध विद्वान और कवि जिनका जन्म सन् १८७७ में और मृत्यु सन् १९४९ में हुआ।

केरल के साहित्यिक लोगों का विश्वास है कि केरली–साहित्य के तीन स्तम्भ १ आशान, २ वल्लतोल और ३ उल्लुर हैं। इनका जन्म केरल में तिरुवनन्तपुरम् के समीप उल्लुर नामक कस्बे में हुआ था। ये केरल वर्मा के आज्ञाकारी शिष्य थे। अपने कालेजी जीवन से ही इन्होंने कविताएँ बनाकर पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाना प्रारम्भ कर दिया था। सुभद्रा–शतकम्, स्यमन्तक–मणिप्रवालम्, इत्यादि इनकी उस समय की रचनाएँ हैं मगर इनके सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ उमा–केरलम् और मंगल–मञ्जरी नामक काव्य हैं।

इसके अतिरिक्त राम-चरित और कण्णश्श रामायणम् पर भी बहुत सी बातें ये लोगों के सामने लाये और उनकी भूमिकाएँ भी स्वयं लिखीं जो केरली-साहित्य की महान रचनाएँ समझी जाती हैं।

शुरू-शुरू में उल्लुर शब्दार्थकारों अर्थालंकारों और शाब्दिक मायाजाल में पड़कर अपनी कविताओं की रचना करते रहे मगर उसके बाद ज्यों ज्यों उनकी आयु बढ़ने लगी त्यों-त्यों उनकी रचनाओं में गम्भीरता का प्रवेश होने लगा। उनके अन्य काव्यों में 'कबीर दास' नामक काव्य में कबीर दास का और 'विचार धारा' नामक काव्य में एक हरिजन-बालिका का चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है।

अपने जीवन के अन्तिम काल में उन्होंने मलयालम भाषा के साहित्य पर एक बृहत् ग्रन्थ की रचना की जिसका प्रकाशन केरल-विश्व विद्यालय ने किया। मलयालम-साहित्य का इस प्रकार गवेषणात्मक और प्रामाणिक इतिहास अब तक कोई भी नहीं लिख सका था।

एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि और विद्वान गवेषक के रूप में मलयालम साहित्य में उल्लुर एस परमेश्वरैया का नाम बहुत ऊँचे स्थान पर है।

उपवदत्त

शक क्षहरात-राजवंश के दूसरे नरेश नहपान की पुत्री दक्षमित्रा का पति। जिसका दूसरा नाम ऋषभदत्त भी था। इसका समय ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी के करीब माना जाता है।

उपवदत्त के कई शिलालेख नासिक और पूना के आस-पास प्राप्त हुए हैं जिनसे पता चलता है कि उस काल में मालवा के राजाओं के आक्रमण महाराष्ट्र पर हो रहे थे और उत्तमभद्र उन्हें रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। राजा नहपान ने उत्तमभद्रों की सहायता के लिए उपवदत्त को भेजा था जिसमें उपवदत्त ने विजय प्राप्त कर सम्राट नहपान का आधिपत्य आधुनिक अजमेर तक फैला दिया था। अजमेर के पुष्कर क्षेत्र में उपवदत्त ने अनेक दान भी किये थे।

उसमान खलीफा

इस्लाम के तीसरे खलीफा जो उमर के पश्चात् खिलाफत की गद्दी पर आये। जिनका शासन-काल सन् ६४४ से ६५२ तक था।

खलीफा उसमान ने उमैय्यावंशी शासक म्वाविया को सीरिया का शासक बनाकर दमिश्क भेजा था। उसके पूर्व दमिश्क रोमन साम्राज्य की राजधानी थी और वहाँ का शासन रोमन कानून के अनुसार होता था। रोमन-सामन्तशाही और अरब कबीलाशाही शासन-पद्धतियों में एकदम भिन्नता थी। रोमन लोग शासन करते-करते आराम और विलास पसन्द हो गये थे। वहाँ की समाज-व्यवस्था ने एक निश्चित रूप ग्रहण कर लिया था। अरब कबीलाशाही सीधा-सादा और कठोर जीवन पसन्द करती थी। म्वाविया ने समझ लिया कि यहाँ के सामन्तवादी दृष्टि को कबीलाशाही दृष्टि में किसी प्रकार बदलना नहीं जा सकता, अतः उसने दमिश्क में रोमन-सामन्तवादी दृष्टि

को ज्यों का त्यों रहने दिया और स्वयं भी राजसी ठाठ से रहने लगा।

मगर पैगम्बर के दामाद और उनके कट्टर अनुगामी 'हजरत अली' को यह बात बहुत बुरी लगी। वे चाहते थे कि हमारी खलीफत चाहे रोम पर हो चाहे ईरान पर, वह अरबी फकीरों की सादगी और समानता की भावना को कभी न छोड़े। इस सैद्धान्तिक विवाद पर अली और माविया में स्थायी वैमनस्य हो गया जिसके परिणाम इस्लाम के परवर्ती इतिहास में बड़े भयंकर रूप से घटित हुए।

खलीफा उस्मान के समय में खुरासान और तुर्कों के राज्य पर भी अरबों ने प्रहार किया। सन् ६५२ में अब्दुल्ला नामक सेनापति ने अफरेयन को हराया। इसी समय दक्षिण के लोगों ने भी खलीफा की अधीनता स्वीकार कर ली। उस्मान के शासन काल में इस्लाम का रहा-सहा आदर्शवाद भी समाप्त हो चला था। उस्मान ने अपने परिवार के धन वैभव को बहुत बढ़ाया जिससे अरबों में भीतर ही भीतर असन्तोष हुए और ईर्षा बढ़ने लगी जिसके फलस्वरूप इस तीसरे खलीफा को भी कत्ल कर दिया गया।

उसमानअली पातशाह

सुप्रसिद्ध रियासत हैदराबाद के निजाम मीर महबूब अलीखाँ 'आसफ' के पुत्र उस्मान अलीखाँ जिनका जन्म सन् १८८६ में और गद्दी नशीनी सन् १९११ में हुई।

निजाम उस्मान अली पातशाह हैदराबाद स्टेट के अन्तिम शासक हैं। वे बड़े विद्याप्रेमी साहित्यसेवी और कट्टर मुसलमान मनोवृत्ति के शासक रहे। इनके समय में हैदराबाद स्टेट की शिक्षा सम्बन्धी और साहित्यिक उन्नति बहुत हुई। २२ सितम्बर सन् १९१८ को सुप्रसिद्ध उसमानिया युनिवर्सिटी की स्थापना इन्हीं के नाम पर की गयी। उर्दू भाषा के विकास में इन्होंने पूरी तरह से हाथ बटाया। प्रथम यूरोपीय महायुद्ध में ब्रिटिश गवर्नमेंट को ६ लाख रुपये का चन्दा देकर इन्होंने अपनी राजभक्ति का परिचय दिया था। द्वितीय महायुद्ध में भी इन्होंने सरकार की भरपूर मदद की।

कट्टर मुसलमान होने के कारण निजाम का आर्य समाज पर स्वाभाविक कोप रहता था। एक बार कुछ ऐसी घटना हो गई जिससे सारे हिन्दुस्तान का आर्यसमाज भड़क उठा और बाहर से निजाम स्टेट में सत्याग्रह करने के लिए हजारों सत्याग्रही आने लगे। इस सत्याग्रह से सारे निजाम राज्य में खलबली मच गई। अन्त में आर्य समाज के अनुकूल शर्तों पर निजाम को आर्यसमाज से संधि करनी पड़ी।

अंग्रेजी राज्य के द्वारा भारत को स्वाधीनता प्रदान करने के साथ ही हैदराबाद मुस्लिम षड्यन्त्रों का अड्डा हो गया और वहाँ के मुसलमान निजाम के तत्वावधान में इस सुयोग के अन्दर सारे भारत पर मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देखने लगे। 'कासिम रिजवी नामक एक महत्वाकांक्षी सरदार के नेतृत्व में 'रजा कार कौम" नामक संस्था की स्थापना हुई। इन रजाकारों ने थोड़े दिन तक हैदराबाद में बड़े आतङ्क का प्रदर्शन किया। उस समय के कासिम रिजवी के बयान ऐसे मालूम पड़ते थे मानों वह ईसा की बारहवीं सदी के अन्दर बोल रहा है। सरदार पटेल कुछ दिनों तक यह तमाशा देखते रहे उसके बाद उन्होंने हैदराबाद में पोलिस-कार्यवाही करने का आदेश दिया। चार ही दिन की कार्यवाही में सारा पासा पलट गया। बिना किसी खास लड़ाई के कासिम रिजवी गिरफ्तार कर लिया गया और निजाम ने आत्मसमर्पण कर स्वाधीन भारत में अपनी रियासत का विलीनीकरण स्वीकार कर लिया।

उसमानिया युनिवर्सिटी

हैदराबाद में निजाम स्टेट द्वारा स्थापित भारत वर्ष का एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय जिसकी स्थापना सन् १९१८ में हुई।

२२ सितम्बर सन् १९१८ के फर्मान के अनुसार हैदराबाद में 'उसमानिया यूनिवर्सिटी' की स्थापना हुई, इस युनिवर्सिटी की यह विशेषता रही कि इसमें प्रत्येक विषय की शिक्षा उर्दू के माध्यम से दी जाती है। साथ ही अंग्रेजी की शिक्षा भी अनिवार्य थी। इस युनिवर्सिटी

के साथ एक कालेज है जिसे उसमानिया युनिवर्सिटी कालेज कहते हैं। तत्कालीन भारत-सरकार ने इस विश्व विद्यालय की परीक्षाओं तथा डिगरियों को मान्यता प्रदान कर दी थी।

पाठ्यग्रन्थों के अभाव की पूर्ति के लिए इस विश्व-विद्यालय में एक अनुवाद-समिति कायम की गई जिसमें एक प्रसिद्ध विद्वान के सम्पादकत्व में आठ अनुवादक काम करते थे। पाँच वर्षों में इस समिति ने एफ ए और बी ए की परीक्षाओं के योग्य पाठ्यग्रन्थों का उर्दू में संग्रह कर डाला। प्राचीन तथा वर्तमान, प्राच्य तथा प्रतीच्य इतिहास, गणित, विज्ञान, दर्शन आदि सभी विषयों पर पुस्तकें तैय्यार की गईं। इस समिति ने १० के करीब पाठ्यग्रन्थों की उर्दू में रचना की।

निजाम स्टेट का भारत में विलयन होने के पश्चात् इस विश्व विद्यालय का रुपान्तर हो गया। अब यह केवल उर्दू का ही केन्द्र न रहकर समस्त प्रान्तीय भाषाओं का केन्द्र हो गया।

[ऊ]

ऊडरफ (टी० टी० ऊडरफ)

अमेरिका के पेंसिलवेनियाँ क्षेत्र का एक मशहूर मिस्त्री, जिसका समय सन् १८५६ के आस-पास है।

टी टी ऊडरफ ने सबसे पहले अमेरिका में रेल-गाड़ियों में सोने की सुविधा के लिए 'स्लीपिंग-कोच' गाड़ियों का आविष्कार किया। अमेरिका के सुप्रसिद्ध उद्योगपति कार्नेगी का भी इसमें सहयोग था जो उस समय पेंसिलवेनियाँ रेलवे में सर्विस कर रहे थे।

ऊमर खलीफा

इस्लाम के दूसरे प्रसिद्ध खलीफा जिनका समय सन् ६४२ से ६४४ तक है।

पैगम्बर के धर्म और शासन को आगे बढ़ाने में हजरत ऊमर का काफी हाथ था। इसलिए पैगम्बर की अत्यन्त प्रियपुत्री 'फातिमा' के पति हजरत अली को फिर भी खिलाफत से वंचित कर ऊमर को 'खलीफा' बनाया गया।

खलीफा ऊमर के समय में इस्लाम एक विशुद्ध धार्मिक संस्था के रूप में न रह कर विश्व विजयी सैनिक-संगठन के रूप में बदल चुका था। राजधानी 'मदीना' में जिधर देखो उधर ईरानी, तुर्क और रोमन-गुलाम बड़ी संख्या में दिखाई पड़ते थे। अब इस्लाम, पैगम्बर के जमाने का इस्लाम नहीं था जब कि इस्लाम स्वीकार करते ही आदमी सामाजिक समानता का अधिकारी माना जाता था। अरबी मुसलमानों और नव मुसलिमों के बीच में भेद भाव की दीवारें अब अधिक गहरी होती जा रही थीं।

हजरत ऊमर केवल दो साल तक ही खिलाफत के शासक रहे। इसी समय में इन्होंने सीरिया, फीनिशिया और जेरुसलेम पर इस्लाम की विजय का डंका बजाया इनके सेनापतियों ने मिस्र और ईरान पर धावा मार कर इस्लाम धर्म का प्रचार किया। कहा जाता है कि सिकन्दरिया का संसार प्रसिद्ध पुस्तकालय इन्हीं के समय में विध्वस्त किया गया। नील और लाल सागर के बीच की नहर इन्हीं के समय में फिर से खोली गई।

सन् ६४४ में एक ईरानी-गुलाम ने अपने परिवार और अपनी जाति पर किये गये अत्याचार का बदला लेने के लिए ऊमर को मार डाला। इसकी बड़ी जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। अरबों ने ईरानी-जाति से इसका बड़ा भयंकर बदला लिया और ईरान से जरथोस्त्री धर्म को नष्ट करने का संकल्प कर लिया।

को ज्यों का त्यों रहने दिया और स्वयं भी राजसी ठाट से रहने लगा।

मगर पैगम्बर के दामाद और उनके कट्टर अनुयायी 'हजरत अली' को यह बात बहुत बुरी लगी। वे चाहते थे कि इस्लामी सल्तनत चाहे रोम पर हो चाहे ईरान पर वह अरबी फकीरों की सादगी और समानता की भावना को कभी न छोड़े। इस सैद्धान्तिक विवाद पर अली और खलीफा में स्थायी वैमनस्य हो गया जिसके परिणाम, इस्लाम के पिछले इतिहास में बड़े भयंकर रूप से घटित हुए।

खलीफा उस्मान के समय में तुर्किस्तान और तुर्कों के राज्य पर भी अरबों ने प्रहार किया। सन् ६५१ में अबदुल्ला नामक सेनापति ने यजदगर्द को हराया। इसी समय बल्ख के लोगों ने भी खलीफा की अधीनता स्वीकार कर ली। उस्मान के शासन काल में इस्लाम का रहा-सहा आदर्शवाद भी समाप्त हो चला था। उस्मान ने अपने परिवार के धन-वैभव को बहुत बढ़ाया जिससे अरबों में भीतर ही भीतर असन्तोष बढ़ और इसी बढ़ने लगी जिसके फलस्वरूप इस तीसरे खलीफा को भी कत्ल कर दिया गया।

उसमानअली पातशाह

सुप्रसिद्ध रियासत हैदराबाद के निजाम मीर महबूब अलीखाँ 'आसफ' के पुत्र उस्मान अलीखाँ जिनका जन्म सन् १८८६ में और गद्दी नशीनी सन् १९११ में हुई।

निजाम उस्मान अली पातशाह हैदराबाद स्टेट के अन्तिम शासक हैं। वे बड़े विद्याप्रेमी साहित्यसेवी और कट्टर मुसलमान मनोवृत्ति के शासक रहे। इनके समय में हैदराबाद स्टेट की शिक्षा सम्बन्धी और साहित्यिक उन्नति बहुत हुई। २२ सितम्बर सन् १९१८ को सुप्रसिद्ध उस्मानिया युनिवर्सिटी की स्थापना इन्हीं के नाम पर की गयी। उर्दू भाषा के विकास में इन्होंने पूरी तरह से हाथ बटाया। प्रथम यूरोपीय महायुद्ध में ब्रिटिश गवर्नमेंट को ६ लाख रुपये का चन्दा देकर इन्होंने अपनी राजभक्ति का परिचय दिया था। द्वितीय महायुद्ध में भी इन्होंने सरकार की भरपूर मदद की।

कट्टर मुसलमान होने के कारण निजाम का आर्य्य समाज पर स्वाभाविक कोप रहता था। एक बार कुछ ऐसी घटना हो गई, जिससे सारे हिन्दुस्तान का आर्य्यसमाज भड़क उठा और बाहर से निजाम स्टेट में सत्याग्रह करने के लिए हजारों सत्याग्रही आने लगे। इस सत्याग्रह से सारे निजाम राज्य में खलबली मच गई। अन्त में आर्य्य समाज के अनुकूल शर्तों पर निजाम को आर्य्य समाज से संधि करनी पड़ी।

अंग्रेजी राज्य के द्वारा भारत को स्वाधीनता प्रदान करने के साथ ही हैदराबाद मुस्लिम-पन्थियों का अड्डा हो गया और यहाँ के मुसलमान निजाम के तत्वावधान में इस सुयोग के अन्दर सारे भारत पर मुसलमानी-साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न देखने लगे। कासिम रिजवी नामक एक महत्वाकांक्षी सरदार के नेतृत्व में "रजा कार दलों" नामक संस्था की स्थापना हुई। इन रजाकारों ने थोड़े दिन तक हैदराबाद में बड़े आतङ्क का प्रदर्शन किया। उस समय के कासिम रिजवी के बयान ऐसे मालूम पड़ते थे मानों वह ईसा की बारहवीं सदी के अन्दर बोल रहा है। सरदार पटेल कुछ दिनों तक यह तमाशा देखते रहे उसके बाद उन्होंने हैदराबाद में पोलिस-कार्य्यवाही करने का आदेश दिया। चार ही दिन की कार्य्यवाही में सारा पासा पलट गया। बिना किसी खास लड़ाई के कासिम रिजवी गिरफ्तार कर लिया गया और निजाम ने आत्मसमर्पण कर स्वाधीन भारत में अपनी रियासत का विलीनीकरण स्वीकार कर लिया।

उसमानिया युनिवर्सिटी

हैदराबाद में निजाम स्टेट द्वारा स्थापित भारत वर्ष का एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय जिसकी स्थापना सन् १९१८ में हुई।

२२ सितम्बर सन् १९१८ के फर्मान के अनुसार हैदराबाद में 'उस्मानिया युनिवर्सिटी' की स्थापना हुई इस युनिवर्सिटी की यह विशेषता रही कि इसमें प्रत्येक विषय की शिक्षा उर्दू के माध्यम से दी जाती है। इसके कि अंग्रेजी की शिक्षा भी अनिवार्य थी। इस युनिवर्सिटी

के साथ एक कालेज है जिसे उसमानिया युनिवर्सिटी कालेज कहते हैं। तत्कालीन भारत-सरकार ने इस विश्व विद्यालय की परीक्षाओं तथा डिगरियों को मान्यता प्रदान कर दी थी।

पाठ्यग्रन्थों के अभाव की पूर्ति के लिए इस विश्व-विद्यालय में एक अनुवाद-समिति कायम की गई जिसमें एक प्रसिद्ध विद्वान के सम्पादकत्व में आठ अनुवादक काम करते थे। पाँच वर्षों में इस समिति ने एफ ए० और बी ए की परीक्षाओं के योग्य पाठ्यग्रन्थों का उर्दू में संग्रह कर डाला। प्राचीन तथा वर्तमान, प्राच्य तथा प्रतीच्य इतिहास, गणित, विज्ञान, दर्शन आदि सभी विषयों पर पुस्तकें तैय्यार की गई। इस समिति ने १०० के करीब पाठ्यग्रन्थों की उर्दू में रचना की।

निजाम स्टेट का भारत में विलयन होने के पश्चात् इस विश्व विद्यालय का रूपान्तर हो गया। अब यह केवल उर्दू का ही केन्द्र न रहकर समस्त प्रान्तीय भाषाओं का केन्द्र हो गया।

[उ]

ऊडरफ (टी० टी० ऊडरफ)

अमेरिका के पेंसिलवेनियाँ स्टेट का एक मशहूर मिस्त्री, जिसका समय सन् १८५६ के आस-पास है।

टी टी ऊडरफ ने सबसे पहले अमेरिका में रेल-गाड़ियों में सोने की सुविधा के लिए 'स्लीपिंग-कोच' गाड़ियों का आविष्कार किया। अमेरिका के सुप्रसिद्ध उद्योगपति कार्नेगी का भी इसमें सहयोग था जो उस समय पेंसिलवेनियाँ रेलवे में सर्विस कर रहे थे।

ऊमर खलीफा

इस्लाम के दूसरे प्रसिद्ध खलीफा जिनका समय सन् ६४२ से ६४४ तक है।

पैगम्बर के धर्म और शासन को आगे बढ़ाने में हजरत ऊमर का काफी हाथ था। इसलिए पैगम्बर की अत्यन्त प्रियपुत्री फातिमा के पति हजरत अली को फिर भी खिलाफत से वंचित कर ऊमर को 'खलीफा' बनाया गया।

खलीफा ऊमर के समय में इस्लाम एक विशुद्ध धार्मिक व्यवस्था के रूप में न रह कर विश्व विजयी सैनिक-शासन के रूप में बदल चुका था। राजधानी 'मदीना' में जिधर देखो उधर ईरानी तुर्क और रोमन गुलाम बड़ी संख्या में दिखाई पड़ते थे। अब इस्लाम, पैगम्बर के जमाने का इस्लाम नहीं था जब कि इस्लाम स्वीकार करते ही आदमी सामाजिक समानता का अधिकारी माना जाता था। अरबी मुसलमानों और नव मुसलिमों के बीच में भेद भाव की दीवारें अब अधिक गहरी होती जा रही थीं।

हजरत ऊमर केवल दो साल तक ही खिलाफत के शासक रहे। इसी समय में इन्होंने सीरिया फोनिशिया और जेरूसलेम पर इस्लाम की विजय का डंका बजाया इनके सेनापतियों ने मिस्र और ईरान पर धावा मार कर इस्लाम धर्म का प्रचार किया। कहा जाता है कि सिकन्दरिया का संसार प्रसिद्ध पुस्तकालय इन्हीं के समय में विध्वस्त किया गया। नील और लाल सागर के बीच की नहर इन्हीं के समय में फिर से खोली गई।

सन् ६४४ में एक ईरानी-गुलाम ने अपने परिवार और अपनी जाति पर किए गये अत्याचार का बदला लेने के लिए ऊमर को मार डाला। इसकी बड़ी भयंकर प्रतिक्रिया हुई। अरबों ने ईरानी-जाति से इसका बड़ा भयंकर बदला लिया और ईरान से जरथोस्त्री धर्म को नष्ट करने का संकल्प कर लिया।

ऋग्वेद

वैदिक सभ्यता का सबसे आदि और पूज्य ग्रन्थ। आर्य सभ्यता के मूल स्तम्भ चार वेदों में सबसे प्रथम और प्राचीन। जिसको हिन्दू परम्परा मनुष्य कृत न मान कर अपौरुषेय मानती है।

वेद हिन्दू संस्कृति के मूलाधार हैं। ऋग्वेद इन चारों वेदों में प्राचीनतम है। ऋग्वेद एक ग्रन्थ न होकर एक विशालतम ग्रन्थ समूह है। भाषा तथा धर्म की दृष्टि से समस्त वैदिक साहित्य में यह अनुपम माना जाता है। इसके दो प्रकार के विभाग उपलब्ध होते हैं।

१—अष्टक अध्याय और सूक्त

२—मण्डल, अनुवाक और सूक्त

पूरा ऋग्वेद आठ भागों में विभक्त है जिन्हें अष्टक कहते हैं। हर एक अष्टक में आठ अध्याय हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में आठ अष्टक और चौंसठ अध्याय हैं।

दूसरे विभाग में समस्त ऋग्वेद दस भागों में विभक्त है जिन्हें मण्डल कहते हैं। मण्डल में सम्बन्धित मंत्र समूह को सूक्त कहते हैं। इन सूक्तों के समूह को ऋचायें कहते हैं। ऋग्वेद में सूक्तों की संख्या खिल सूक्तों को मिलाकर १ १२८ है तथा मंत्रों की संख्या १ ५८ है।

ऋग्वेद के अधिकांश भिन्न भिन्न कुटुम्बों से सम्बद्ध हैं। एक कुल के ऋषियों के द्वारा दृष्ट मंत्रों का समह एक मण्डल में किया गया है।

प्रथम मण्डल और दशम मण्डल में भिन्न भिन्न कुटुम्बों के ऋषियों के मंत्रों का संग्रह है। लेकिन दूसरे से लेकर सप्तम मण्डल तक एक ही कुटुम्ब के ऋषियों द्वारा दृष्ट मंत्रों का संकलन है। इन ऋषियों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं। (१) गृत्समद (२) विश्वामित्र (३) वाम देव (४) अत्रि (५) भारद्वाज और (६) वसिष्ठ। यही ऋषि दूसरे तीसरे चौथे पांचवें, छठें और सातवें मण्डल से सम्बद्ध हैं। आठवें मण्डल में कण्व और अंगिरा गोत्र के ऋषियों के मंत्र हैं। नवम मण्डल में सोम विषयक मंत्रों का ही संकलन है। सोम का नाम है पवमान अर्थात् पवित्र करने वाला। सोम विषयक होने ही से इस मण्डल का नाम पवमान मण्डल रक्खा गया है। दशम मण्डल के मंत्र नाना ऋषि कुलों से सम्बद्ध हैं इसमें केवल देवताओं की स्तुति नहीं है बल्कि अन्य विषयों का भी समावेश है। ऋग्वेद के दूसरे मण्डल से लेकर सातवें मण्डल तक का भाग सबसे प्राचीन माना जाता है और दशम मण्डल सब से अर्वाचीन माना जाता है।

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि महर्षि वेदव्यास ने वेदों के विभाग कर ऋग्वेद अपने शिष्य पैल को प्रदान किया था। पैल ने ऋग्वेद को दो भागों में विभक्त करके अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और बाष्कलि को दिया। बाष्कलि ने अपनी पढ़ी संहिता को चार भागों में बांटा और उन चार भागों को अपने चार शिष्यों को दे दिया। इन्द्रप्रमिति ने अपनी संहिता को अपने पुत्र माण्डूकेय को पढ़ाया। माण्डूकेय ने उस संहिता को अपने पुत्र शाकल्य को पढ़ाया। शाकल्य ने और पांच संहिताओं का संकलन कर अपने मुद्गल गालव वात्स्य, शालीय और शिशिर नामक पांच शिष्यों को पढ़ाया। इस प्रकार ऋग्वेद अनेक शाखाओं में विभक्त हुआ।

शौनक मुनि ने अपने चरणव्यूह नामक ग्रन्थ में लिखा है कि ऋग्वेद के आठ भेद या स्थान हैं उनके नाम (१) चर्चा (२) श्रावक-चर्चक (३) श्रवणीय (४) पार (५) क्रमपाठ (६) क्रमजट (७) क्रमरथ और (८) क्रमदण्ड हैं। ऋग्वेद की पाँच शाखायें हैं जिनके नाम (१ आश्वलायनी (२) सांख्यायनी (३) शाकल्य (४) बाष्कला और (५) माण्डूका हैं। इसी प्रकार उसके मंडल, अध्याय और सूक्तों का भी यहाँ वर्णन किया गया है। चरणव्यूह के मत से ऋग्वेद के अनेक अध्याय इस समय प्राप्त नहीं होते।

इस प्रकार चरणव्यूह में बतलाई हुई पाँच शाखाओं में

से एक सिर्फ "शाकल" शाखा इस समय उपलब्ध है। शेष का पता नहीं चलता। आज इसका पता लगाना बड़ा कठिन है कि प्राचीन काल में ऋग्वेद का क्या आकार था।

इस समय ऋग्वेद की सिर्फ शाकल या शौनक ऋषि की शाखा उपलब्ध है जिसमें १ ०८ सूक्त और १ ५८ मंत्र हैं।

ऋग्वेदिक आर्यों के देवता प्राकृतिक शक्तियों के मूर्त रूप थे। इन देवताओं म द्यौस, वरुण मित्र, सूर्य सवितृ, पूषिन, इन्द्र रुद्र, मरुत, पर्जन्य, पृथ्वी, अग्नि, सोम इत्यादि प्रमुख थे। ये सब देवता प्रकृति की भिन्न भिन्न महाशक्तियों के प्रतीक थे और सांसारिक कष्टों से बचाने विरोधियों का नाश करने, धरती को शस्य श्यामल बनाने इत्यादि अनेकानेक बातों के लिए मंत्रों द्वारा स्थान स्थान पर इनकी स्तुति की गई है।

ऋग्वेद के सूक्त छन्दोबद्ध मंत्रों में हैं। प्रत्येक मंत्र में साधारणतः चार पद हैं। छन्दों में विशेषतः त्रिष्टुभ, 'गायत्री' और 'जगती' का उपयोग हुआ है। ऋग्वेद की भाषा प्राचीनतम आर्यों की साहित्यक भाषा है। जिसका अन्तिम रूप क्लासिकल संस्कृत में विकसित हुआ। पाणिनी ने जिसका व्याकरण निर्माण कर उसे निश्चित रूप दिया। उच्च और मनोहर भाषा में ऋग्वेद के सूक्त अत्यन्त मार्मिक हैं। ऊषा के रूप में गाये गये छन्द प्राचीन साहित्य में अनुपम हैं। इन्द्र वाले मन्त्र शक्ति के परिचायक हैं और वरुण सम्बन्धी मंत्र शालीनता से ओत-प्रोत हैं। दसवें मण्डल में एक अत्यन्त मनोरम सूक्त जुआरी" का है। जिसके अन्दर हृदय स्पर्शी गायन में द्यूत सम्मोहक आकर्षण का करुण बयान किया गया है। मृत्यु सम्बन्धी मन्त्र अत्यन्त गम्भीर और रहस्यपूर्ण है। इन ऋग्वेदिक मंत्रों की रक्षा के लिए ऋषियों ने "पद" क्रम" जटा" घन आदि पाठों का निर्माण किया। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में ही वह प्रसिद्ध 'पुरुष सूक्त" है जिसमें पहली बार वर्णव्यवस्था के उदय का उल्लेख हु । है।

विश्व साहित्य की रूपरेखा

सामवेद में भी ७५ ऋचाओं को छोड़कर शेष सब मंत्र "ऋग्वेद" के हैं।

ऋग्वेद का समय

ऋग्वेद की ऋचाएँ सब एक ही समय में नहीं लिखी गईं। भिन्न भिन्न समयों में इनकी रचना हुई। फिर भी साधारणतया इसका रचना काल मैक्स मूलर ने ईस्वी सन् से १ वर्ष पहले से लेकर ई सन् से १४ वर्ष पूर्व तक बतलाया है मगर लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष और गणित के प्रबल तर्कों के आधार पर मैक्स मूलर का खंडन करते हुए ऋग्वेद के अधिकांश सूक्तों की रचना का काल ईसा से पाँच हजार से छः हजार वर्ष पूर्व तक सिद्ध किया है।

ऋतु सहार

महाकवि कालिदास द्वारा रचित उनकी पहली काव्य रचना, जिसके सम्बन्ध में कई विद्वानों की यह राय है कि यह रचना कालिदास की नहीं है। क्योंकि इसकी भाषा भाव और उपमाओं से कालिदास की अन्य रचनाओं का मेल नहीं खाता।

मगर कुछ लोगों की राय है कि कालिदास ने अपनी प्रारंभिक अवस्था में इसी काव्य से अपनी काव्य-कला का प्रारम्भ किया। यह काव्य ६ सर्गों में विभक्त है। कवि ने अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए इन छः सर्गों में ग्रीष्म से आरंभ कर वसन्त ऋतु तक छहों ऋतुओं का बड़ा स्वाभाविक अकृत्रिम और सरल भाषा में वर्णन किया है।

ऋतु सहार का सबसे पहला सम्पादन सन् १७९२ में सर विलियम जोन्स ने किया था। सन् १८४ में पी पानलेवन के द्वारा ऋतु संहार का एक लैटिन और जर्मन पद्यानुवाद सहित संस्करण प्रकाशित किया गया। निर्णय सागर प्रेस से भी संस्कृत टीका के साथ इसका संस्करण प्रकाशित हुआ था।

ऋतु विलास

मलयालम भाषा में 'वल्लतोल नारायण मेनोन के द्वारा लिखा हुआ ऋतु विलासम् नामक काव्य जो कालिदास के संस्कृत ऋतु संहार के आधार पर रचा गया।

ऋग्वेद

वैदिक सभ्यता का सबसे आदि और पूज्य ग्रन्थ। आर्य्य सभ्यता के मूल स्तम्भ चार वेदों में सबसे प्रथम और प्राचीन। जिसको हिन्दू परम्परा मनुष्य कृत न मान कर अपौरुषेय मानती है।

वेद हिन्दू संस्कृति के मूलाधार हैं। ऋग्वेद इन चारों वेदों में प्राचीनतम है। ऋग्वेद एक ग्रन्थ न होकर एक विशालतम ग्रन्थ समूह है। भाषा तथा अर्थ की दृष्टि से समस्त वैदिक साहित्य में यह अनुपम माना जाता है। इसके दो प्रकार के विभाग उपलब्ध होते हैं।

१—अष्टक अध्याय और सूक्त

२—मण्डल अनुवाक और सूक्त

पूरा ऋग्वेद आठ भागों में विभक्त है जिन्हें अष्टक कहते हैं। हर एक अष्टक में आठ अध्याय हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में आठ अष्टक और चौसठ अध्याय हैं।

दूसरे विभाग में समस्त ऋग्वेद दस भागों में विभक्त है, जिन्हें मण्डल कहते हैं। मण्डल में सम्बन्धित मंत्र समूह को सूक्त कहते हैं। इन सूक्तों के मंत्र को ऋचायें कहते हैं। ऋग्वेद में सूक्तों की संख्या खिल सूक्तों को मिलाकर १ २८ है तथा मंत्रों की संख्या १ ५८ है।

ऋग्वेद के ऋषिगण भिन्न भिन्न कुटुम्बों में उत्पन्न हैं। एक कुल के ऋषियों के द्वारा दृष्ट मंत्रों का संग्रह एक मण्डल में किया गया है।

प्रथम मण्डल और दशम मण्डल में भिन्न-भिन्न कुटुम्बों के ऋषियों के मंत्रों का संग्रह है। लेकिन दूसरे से लेकर सप्तम मण्डल तक एक ही कुटुम्ब के ऋषियों द्वारा दृष्ट मंत्रों का संकलन है। इन ऋषियों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं। (१) गृत्समद (२) विश्वामित्र (३) वाम देव (४) अत्रि (५) भारद्वाज और (६) वसिष्ठ। यहीं ऋषि दूसरे तीसरे, चौथे पांचवें, छठे और सातवें मण्डल के द्रष्टा हैं। आठवें मण्डल में कण्ववंश और अङ्गिरा गोत्र के ऋषियों के मंत्र हैं। नवम मण्डल में सोम विषयक मन्त्रों का ही संकलन है। सोम का मतलब है पवमान अर्थात् पवित्र करने वाला। सोम विषयक होने ही से इस मण्डल का नाम पवमान मण्डल रक्खा गया है। दशम मण्डल के मंत्र नाना ऋषि कुलों से सम्बद्ध हैं इसमें केवल देवताओं की स्तुति नहीं है बल्कि अन्य विषयों का भी समावेश है। ऋग्वेद के दूसरे मण्डल से लेकर सातवें मण्डल तक का अंश सबसे प्राचीन माना जाता है और दशम मण्डल सब से अर्वाचीन माना जाता है।

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि महर्षि वेदव्यास ने वेदों के विभाग कर ऋग्वेद अपने शिष्य पैल को प्रदान किया था। पैल ने ऋग्वेद को दो भागों में विभक्त करके अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और बाष्कलि को दिया। बाष्कलि ने अपनी पढ़ी संहिता को चार भागों में बांटा और उन चार भागों को अपने चार शिष्यों को दे दिया। इन्द्रप्रमिति ने अपनी संहिता को अपने पुत्र माण्डूकेय को पढ़ाया। माण्डूकेय ने उस संहिता को अपने पुत्र शाकल्य को पढ़ाया। शाकल्य ने और पांच संहिताओं का संकलन कर अपने मुद्गल गालव वात्स्य, शालीय और शिशिर नामक पांच शिष्यों को पढ़ाया। इस प्रकार ऋग्वेद अनेक शाखाओं में विभक्त हुआ।

शौनक मुनि ने अपने चरणव्यूह नामक ग्रन्थ में लिखा है कि ऋग्वेद के आठ भेद या स्थान हैं उनके नाम (१) चर्चा (२) श्रावक—चर्चक (३) श्रवणीय (४) पार (५) क्रमपाठ (६) क्रमचय (७) क्रमरथ और (८) क्रमजट हैं। ऋग्वेद की पांच शाखायें हैं जिनके नाम (१) आश्वलायनी (२) शाङ्ख्यायनी (३) शाकल्या (४) बाष्कला और (५) माण्डूका है। इसी प्रकार उसके मंडल, अध्याय और सूक्तों का भी यहाँ वर्णन किया गया है। चरणव्यूह के मत से ऋग्वेद के अनेक अध्याय इस समय प्राप्त नहीं होते।

इस प्रकार चरणव्यूह में बताई हुई पांच शाखाओं में

से एक सिर्फ "शाकल" शाखा इस समय उपलब्ध है। शेष का पता नहीं चलता। आज इसका पता लगाना बड़ा कठिन है कि प्राचीन काल में ऋग्वेद का क्या आकार था।

इस समय ऋग्वेद की सिर्फ शाकल या शौनक ऋषि की शाखा उपलब्ध है जिसमें १०२८ सूक्त और १ ५८ मंत्र हैं।

ऋग्वेदिक आर्यों के देवता प्राकृतिक शक्तियों के मूर्त रूप थे। इन देवताओं में द्यौस, वरुण मित्र, सूर्य सवितृ, पूषिन, इन्द्र, रुद्र, मरुत, पर्जन्य, पृथ्वी, अग्नि, सोम इत्यादि प्रमुख थे। ये सब देवता प्रकृति की भिन्न भिन्न महाशक्तियों के प्रतीक थे और सांसारिक कष्टों से बचाने, विरोधियों का नाश करने, धरती को शस्य श्यामल बनाने इत्यादि अनेकानेक बातों के लिए मंत्रों द्वारा स्थान-स्थान पर इनकी स्तुति की गई है।

ऋग्वेद के सूक्त छन्दोबद्ध मंत्रों में हैं। प्रत्येक मंत्र में साधारणत चार पद हैं। छन्दों में विशेषतः त्रिष्टुभ, 'गायत्री' और 'जगती" का उपयोग हुआ है। ऋग्वेद की भाषा प्राचीनतम आर्यों की साहित्यिक भाषा है। जिसका अन्तिम रूप क्लासिकल संस्कृत में विकसित हुआ। पाणिनी ने जिसका व्याकरण निर्माण कर उसे निश्चित रूप दिया। सरल और मनोहर भाषा में ऋग्वेद के सूक्त अत्यन्त मार्मिक हैं। ऊषा के रूप में गाये गये छन्द प्राचीन साहित्य में अनुपम हैं। इन्द्र वाले मंत्र शक्ति के परिचायक हैं और वरुण सम्बन्धी मंत्र शालीनता से ओत-प्रोत हैं। दसवें मण्डल में एक अत्यन्त मनोरम सूक्त" जुआरी" का है। जिसके अन्दर हृदय स्पर्शी ग्रन्थन में द्यूत सम्मोहक आकर्षण का करुण वर्णन किया गया है। मृत्यु सम्बन्धी मंत्र अत्यन्त गम्भीर और रहस्यपूर्ण है। इन ऋग्वेदिक मंत्रों की रक्षा के लिए ऋषियों ने "पद" क्रम" "जटा" घन आदि पाठों का निर्माण किया। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में ही वह प्रसिद्ध 'पुरुष सूक्त" है जिसमें पहली बार वर्णव्यवस्था के उदय का उल्लेख हु ा है।

विश्व साहित्य की रूपरेखा

सामवेद में भी ७५ ऋचाओं को छोड़कर शेष सब मंत्र "ऋग्वेद" के हैं।

ऋग्वेद का समय

ऋग्वेद की ऋचायें सब एक ही समय में नहीं लिखी गयीं। भिन्न भिन्न समयों में इनकी रचना हुई। फिर भी साधारणतया इसका रचना काल मैक्स मूलर ने ईसवी सन् से २०० वर्ष पहले से लेकर ई सन् से १४ वर्ष पूर्व तक बतलाया है मगर लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष और गणित के प्रबल तर्कों के आधार पर मैक्स मूलर का खंडन करते हुए ऋग्वेद के अधिकांश सूक्तों की रचना का काल ईसा से पाँच हजार से छः हजार वर्ष पूर्व तक सिद्ध किया है।

ऋतु संहार

महाकवि कालिदास द्वारा रचित उनकी पहली काव्य रचना जिसके सम्बन्ध में कई विद्वानों की यह राय है कि यह रचना कालिदास की नहीं है। क्योंकि इसकी भाषा, भाव और उपमाओं से कालिदास की अन्य रचनाओं का मेल नहीं खाता।

मगर कुछ लोगों की राय है कि कालिदास ने अपनी प्रारंभिक अवस्था में इसी काव्य से अपनी काव्य-कला का प्रारम्भ किया। यह काव्य ६ सर्गों में विभक्त है। कवि ने अपनी प्रिया को सम्बोधित करते हुए इन छः सर्गों में ग्रीष्म से आरंभ कर वसन्त ऋतु तक छहों ऋतुओं का बड़ा स्वाभाविक अकृत्रिम और सरल भाषा में वर्णन किया है।

ऋतु संहार का सबसे पहला सम्पादन सन् १७९२ में सर विलियम जोन्स ने किया था। सन् १८४० में पी वानबोलन के द्वारा ऋतु संहार का एक लैटिन और जर्मन पद्यानुवाद सहित संस्करण प्रकाशित किया गया। निर्णय सागर प्रेस से भी संस्कृत टीका के साथ इसका संस्करण प्रकाशित हुआ था।

ऋतु विलास

मलयालम भाषा में 'चल्लनोड नारायण मेनोन के द्वारा लिखा हुआ 'ऋतु विलासम् नामक काव्य जो कालिदास के संस्कृत ऋतु संहार के आधार पर रचा गया।

एउक्रतिदोस

मध्य एशिया में ग्रीक सेल्युकस वंश का एक सरदार जो पीछे चलकर शासक हो गया। इसका शासनकाल ईसवी पूर्व १७५ से लेकर ई० पू० १५६ तक है।

उस समय ग्रीक बैक्ट्रेरियन वंश के सम्राट दिमित्रि और सेल्युकीय वंश के राजा एंटीओक चतुर्थ के बीच में प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। एंटीओक एउक्रतिदोस का फुफेरा भाई था। एंटीओक चतुर्थ ने एउक्रतिदोस के जिम्मे दिमित्रि के राज्य को जीतने का भार सौंपा और स्वयं पश्चिम में विजय के लिए प्रस्थान किया। १६७ ई० पूर्व में एउक्रतिदोस ने सीस्तान, अराकोसिया, हिरात और बैक्ट्रिया के प्रदेश जीत लिए। उस समय दिमित्रि तक्षशिला में था। इस समाचार को सुनते ही, वह अपनी सेना लेकर बैक्ट्रिया की ओर चला। मगर रास्ते में हिन्दूकुश के पास वह एक लड़ाई में मारा गया।

अब एउक्रतिदोस का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा। उसकी शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि एंटीओक चतुर्थ भी अब उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता था। इसलिए १६६ ई० पूर्व में एउक्रतिदोस ने अपने आपको बसीलेउस मेगालोस (महाराजाधिराज) की पदवी से घोषित किया। उसने बैक्ट्रेरिया के पास अपने नाम की एक नगरी बसाई। इसके समय के जो चाँदी के सिक्के मिले हैं, उन सिक्कों की एक तरफ टोप पहने हुए एउक्रतिदोस का चेहरा है और दूसरी ओर दौड़ते हुए घोड़े पर हाथ में भाले लिए दो सवारों की मूर्तियाँ हैं। इसके ऊपर की ओर अर्ध गोलाकार पंक्ति में लिखा है 'बसीलेउस् मेगालोस' और नीचे 'एउक्रतिदोस'।

महाराजाधिराज घोषित करने के पश्चात् ई० सन् पूर्व १६५ में एउक्रतिद ने भारत की ओर अभियान किया। हिन्दूकुश पार करके वह पहले कपिशा पहुँचा। वहाँ दिमित्रि के पुत्र अन्तिमाक से उसकी मुठभेड़ हुई। अन्तिमाक युद्ध में मारा गया और कपिशा एउक्रतिदोस के हाथ में आई।

उसके बाद उसने गान्धार को जीता। इस युद्ध में वहाँ का राजा अपोलोदोत मारा गया। उसका भारत स्थित भी उसने जीत लिया। लेकिन झेलम से जहाँ मिनान्डर की सीमा शुरू होती थी वहाँ मिनान्डर ने उसे आगे बढ़ने नहीं दिया।

इसके बाद एउक्रतिद को पता लगा कि पार्थियन राजा मिथ्रदात ने उसके राज्य पर हमला करके हिरात नदी के पश्चिमी भाग को छीन लिया है। यह खबर सुनकर एउक्रतिद भारत छोड़कर अपने राज्य की तरफ रवाना हुआ जहाँ ई० सन् पूर्व १५६ में मिथ्रदात के साथ लड़ाई करते हुए मारा गया।

एउथुदिम

मध्य एशिया में ग्रीक बैक्टेरियन वंश का एक राजा जिसका समय ई० पू० २२५ से १८९ तक है।

सिकन्दर महान् की मृत्यु के पश्चात् उसका मध्य एशिया का साम्राज्य सेल्यूकस इत्यादि उसके सेनापतियों में बँट गया। मगर सेल्यूकस के पश्चात् उसके पुत्र एन्टीओक प्रथम और उसके पौत्र एन्टीओक द्वितीय के समय में यह शासन कमजोर हो गया। जिसका फायदा उठाकर बैक्ट्रिया के गवर्नर दियोदोत ने ग्रीक-बैक्ट्रियन राजवंश की स्थापना की।

दियोदोत बैक्ट्रिया का गवर्नर होने के साथ-साथ एन्टीओक द्वितीय का दामाद भी था और दियोदोत की पुत्री 'एउथुदिम' को ब्याही थी।

दियोदोत प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र द्वितीय दियोदोत राज्य को ठीक तरह से नहीं सम्हाल सका। उसका जमाई एउथुदिम उसका भारी प्रतिद्वन्द्वी था। अन्त में उसने दियोदोत द्वितीय को मार डाला और स्वयं राज्य का मालिक बन बैठा।

एउथुदिम और उसके पुत्र दिमित्रि का शासनकाल ग्रीक बैक्ट्रियन राजवंश के बड़े वैभव का समय था। उसके साम्राज्य में आधुनिक ताजिकिस्तान, उजबेकिस्तान, तुर्कमानिस्तान, अफगानिस्तान, चीस्तान इत्यादि के बहुत से हिस्से सम्मिलित थे।

उसके बाद एउथुदिम ने अपनी सेना और फौज को बढ़ाकर अपने राज्य को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया। उत्तर में उसकी सीमा सोग्द और फरगाना तक थी। फरगना की उपजाऊ खेती और पशुओं की उत्पत्ति के लिए बहुत प्रसिद्ध थी। लेकिन इससे भी अधिक उसकी समृद्धि का कारण चीन को जाने वाला रेशम-पथ था जो कि इसके भीतर से गुजरता था।

उस समय बैक्ट्रिया (बाह्लीक देश) जैसा भी उतना भरा-पूरा ऐसा देश नहीं था। अपनी उर्वरता के कारण इसे पोलिसिमेलस (बहु मुल्यवान) कहा जाता था। अपनी हजारों नहरों के कारण इसका नाम सहस्रभुज और हजारों नगरों के कारण इसका नाम सहस्रनगर भी पड़ गया था। इस राज्य के अन्दर बदख्शां में पद्मराग मणि की खानें, खुरासान में फिरोजे की खानें और ययग्रन में वैदूर्य-मणि जैसी मूल्यवान खानें थीं। इन सब कारणों से एउथुदिम का राज्य अत्यन्त सम्पत्तिशाली और वैभवपूर्ण हो गया था।

ग्रीक बैक्ट्रेरियन राजाओं के सिक्के सोने के नहीं, बल्कि बड़े ही सुन्दर चाँदी के होते थे। मुद्रा में सुन्दर रूप अंकित करना एउथुदिम के समय में जिस उच्च कोटि पर पहुँचा था वह फिर नहीं पहुँच सका।

एउथुदिम मैंडर नदी के तट पर मेग्नेशिया नगरी के युद्ध में ई० सन् १८८ में मारा गया। उसकी मृत्यु के कुछ पहले ऐंटीओक तृतीय ने उसे कई बार पराजित किया और उसके साम्राज्य के बहुत से हिस्सों को कब्जे में कर लिया पर अन्त में इन दोनों के बीच में सन्धि हो गई और ऐंटीओक तृतीय ने एउथुदिम के पुत्र दिमित्रि को अपनी कन्या देने का वचन दिया।

एकनाथ

दक्षिण भारत के एक सुप्रसिद्ध सन्त अनेक धर्मग्रंथों के रचयिता, जिनका जन्म सन् १५३३ ई० में पैठण नामक स्थान पर हुआ और मृत्यु सन् १५९९ में हुई।

एकनाथ सुप्रसिद्ध भक्त भानुदास के प्रपौत्र और सूर्यनारायण के पुत्र थे। इनका जन्म मूल नक्षत्र में हुआ था। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि इनके जनमते ही इनके पिता का देहान्त हो गया और कुछ समय पश्चात् इनकी माता का भी देहान्त हो गया। इसलिए इनके लालन-पालन का भार इनके पितामह चक्रपाणि के ऊपर पड़ा।

एकनाथ बचपन से ही बड़े श्रद्धालु और भगवद् भक्त थे। यह १२ वर्ष की अवस्था से ही किसी सद्‌गुरु की तलाश में थे।

उस समय देवगढ़ के हाकिम जनार्दन स्वामी की भगवनिष्ठा, विद्वत्ता और सदाचार की सब दूर बड़ी प्रशंसा थी। एकनाथ भी किसी ईश्वरी प्रेरणा से प्रेरित होकर बिना किसी के कहे-सुने देवगढ़ चले गये और सन् १५४५ में जनार्दन स्वामी के शिष्य बन गये। ६ वर्ष तक ये गुरु के पास रहे और वहाँ पर उन्होंने ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और श्रीमद्‌भागवत आदि सद्‌ग्रन्थों का अध्ययन किया, जिससे उनको आत्मा बहुत शान्त हुई।

कहा जाता है कि इसके कुछ ही दिनों के बाद एकनाथ को 'दत्तात्रेय' भगवान् का साक्षात्कार हुआ। इसके पश्चात् कुछ दिनों के लिए ये गुरु की आज्ञा से शूलभंजन पर्वत पर तपस्या करने चले गये। तपस्या के पश्चात् वे सन्त समागम और भागवत धर्म का प्रचार करने के लिए तीर्थ यात्रा पर निकले और वर्षों से वापस लौटकर अपनी जन्मभूमि पैठण में आकर इन्होंने गुरु की आज्ञा से अपना विवाह किया। इनकी धर्मपत्नी गिरिजाबाई भी बड़ी धर्म परायणा थीं।

सन्त एकनाथ के जीवन की कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जो उनकी उदार भावनाओं और निष्पक्ष विचार धारा का परिचय देती हैं।

(१) एक समय सन्त एकनाथ के घर पर उनके पिता का श्राद्ध था। जब रसोई तैयार हो गई तो वे ब्राह्मणों

की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़े हुए थे। इसी समय एक तरफ से प्रकृत जाति के ४—५ महार उधर से निकले वहाँ पर मिठाई की सुगन्धि को पाकर वे कहने लगे—"कैसी बढ़िया सुगन्ध आ रही है, भूख न हो तो भी भूख लग जाय, पर ऐसा भोजन हम लोगों के भाग्य में कहाँ !"

यह सुनकर एकनाथ ने तुरन्त उन महारों को बुलाकर अच्छी तरह भोजन करा दिया और जो बचा वह भी उनको दे दिया। ब्राह्मणों के लिए फिर से दूसरी रसोई बनाई गई। मगर जब निमन्त्रित ब्राह्मणों को यह बात मालूम हुई तो वे बड़े क्रोधित हुए और एकनाथ को फटकार कर कहा कि—"तुम्हारे जैसे पतित के यहाँ हम लोग भोजन नहीं करेंगे।" एकनाथ ने उन्हें विनय सहित समझाया कि यह रसोई ब्राह्मणों के लिए दोबारा बनाई गई है। आप लोग भोजन कीजिए, मगर ब्राह्मण नहीं रुके और चले गये। तब लाचार होकर यथा विधि श्राद्ध का संकल्प करके उन्होंने पितरों का तर्पण किया। एकनाथ के भक्तों का विश्वास है कि उस समय स्वर्ग से स्वयं पितरों ने प्रकट होकर उस अन्नान्न को ग्रहण किया।

(२) काशी की यात्रा करके सन्त एकनाथ जब प्रयाग का गंगाजल काँवड़ में लेकर रामेश्वर जा रहे थे तब एक रेतीले मैदान में एक गधा मारे प्यास के छटपटा रहा था। एकनाथ ने तुरन्त अपने काँवड़ से गंगा जल लेकर के उसके मुँह में डाला। गधा चंगा होकर वहाँ से चला गया। एकनाथ के साथी प्रयाग के गंगाजल का ऐसा दुरुपयोग देखकर बड़े दुखी हुए। तब एकनाथ ने हँसते हुए उनसे कहा कि – मित्रो ! जीवन भर से बराबर सुन रहे हो कि भगवान घट घट के वासी हैं और फिर भी ऐसे नादान बनते हो—ऐसा ज्ञान किस काम का ! काँवड़ का जल जो गधे ने लिया, वह सीधे श्री रामेश्वरजी पर चढ़ गया !' महात्मा मोरोपन्त ने सन्त एकनाथ के इस कृत्य को छप्पन भोग के समान पुण्य प्रद बतलाया है।

(३) पैठण में एक वेश्या थी। वह बड़ी सुन्दर और कला में पारंगत थी, कभी-कभी वह एकनाथ के कीर्तन में आया करती थी। एक बार एकनाथ ने भागवत का पिंगला आख्यान कहा। उसे सुनकर उस वेश्या को वैराग्य हो गया और अपने कर्मों पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। एक दिन जब एकनाथ गोदावरी से स्नान कर उसी रास्ते से आ रहे थे तब उसने उनसे अत्यन्त विनीत भाव से कहा—महाराज ! क्या इस पापिन का घर भी आप के चरणों से पवित्र हो सकता है। एकनाथ ने सुनते ही स्वाभाविक रूप से हँसकर कहा कि इसमें कौन सी दुर्लभ बात है। यह कह कर उन्होंने उस वेश्या के घर में प्रवेश किया उसे राम कृष्ण हरि का मन्त्र दिया और अनुष्ठानों के द्वारा सब पापों को नष्ट करने की विधि बतलाई और उस वेश्या को पाप कर्मों से मुक्त कर दिया।

एकनाथ के जीवन की इस घटना को सुनकर स्वयं ही में बुद्ध और आम्रपालिका की घटना स्मृति-पट पर अंकित हो जाती है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति का जैसा अनूठा समन्वय सन्त एकनाथ के जीवन में दिखाई देता है उतना बहुत कम सन्तों के जीवन में दिखाई पड़ेगा। एकनाथ जितने ऊँचे दर्जे के सन्त थे उतने ही ऊँचे दर्जे के कवि और साहित्यकार भी थे। इनकी प्रखर या बहुमुखी, रचनाशील प्रतिभा का कवि महाराष्ट्र में इनसे पहले कोई पैदा नहीं हुआ। इन्होंने मराठी भाषा के माध्यम से जनता को जाग्रत करने का प्रयत्न किया।

एकनाथ की रचनाओं में भागवत, भावार्थ रामायण, रुक्मिणी स्वयंवर, चतुःश्लोकी भागवत, पौराणिक आख्यान और सन्त चरित्र इत्यादि उल्लेखनीय हैं। भागवत इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है, जिसका सम्मान काशी के पण्डितों ने भी किया है। ये प्रथम मराठी कवि थे जिन्होंने लोक भाषा में रामायण पर वृहद् ग्रन्थ की रचना की। लोकरंजन करते हुए लोकजागरण करना इनका मुख्य ध्येय था जिसमें इन्हें बहुत बड़ी सफलता मिली। इसीलिए इन्हें महाराष्ट्र में युग प्रवर्तक कवि कहा जाता है।

एकहार्ट जोहानेस

सुप्रसिद्ध जर्मन रहस्यवादी दार्शनिक, जिसका जन्म १३वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जर्मनी के 'होचहीम' नगर में हुआ।

एकहार्ट यूनानी दार्शनिक अरस्तू और प्लोटिनस के दार्शनिक सिद्धान्तों का पोषक था। ईश्वर के सम्बन्ध में उसने गंभीर अध्ययन किया था। उसके मतानुसार ईश्वर की सत्ता सर्वव्यापी है और उस सत्ता के सिवाय दूसरी किसी भी वस्तु का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। संसार के प्रत्येक प्राणी का अस्तित्व ईश्वर की सत्ता पर ही अवलम्बित है। ईश्वर सब शक्तिमान है और उसमें किसी गुण या विशेषता की कल्पना करना गलत है, क्योंकि इस प्रकार की कल्पना से उसकी सर्व शक्तिमत्ता सीमाबद्ध हो जाती है।

ईश्वरीय सत्ता की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति मानव-प्राणी में हुई है जो सृष्टि का उत्तम प्राणी है। हालांकि उसकी सत्ता सृष्टि के प्रत्येक जीव में व्याप्त है। मानव-प्राणी का अन्तिम प्रयत्न परमात्मा ईश्वर से एकता प्राप्त करना है, यह तभी सम्भव है जब आत्मज्ञान के द्वारा मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को और ईश्वर के अस्तित्व को समझ ले।

एकहार्ट की उपरोक्त विचार धारा भारतीय तत्वज्ञान से इतनी मिलती जुलती है कि ऐसा मालूम होता है कि इस प्रसिद्ध दार्शनिक के ऊपर अरस्तू के साथ-साथ भारतीय तत्वज्ञान की भी छाप पूरी तरह से पड़ी थी।

एक्लेसिया (Ecclesia)

प्राचीन काल में एथेन्स की प्रजातान्त्रिक सरकार के दो प्रमुख अंग थे। एक्लेसिया और बाउल (Boule)। एक्लेसिया जनता की सभा का नाम था और प्रभुसत्ता सम्पन्न अधिकार इसी संस्था के हाथ में थी।

एक्लेसिया के काम शासन-कर्ताओं के प्रबन्ध की जाँच करना, खाद्य तथा सुरक्षा के विषयों पर विचार करना, देशद्रोह के अपराधी तथा उस की सभी सम्पत्ति का विवरण सुनना इत्यादि विषयों से सम्बन्ध रखते थे।

एक्लेसिया के अधिवेशन में विचार किये जाने वाले कार्यक्रमों की सूची बाउल नामक संस्था तैयार करती थी। इस तैयार की हुई सूची पर ही एक्लेसिया विचार कर सकती थी पर बाउल द्वारा तैयार की गयी कार्यक्रम की सूची के विषयों को मंजूर करने, या मंजूर करने या संशोधित करने का सम्पूर्ण अधिकार एक्लेसिया को था। एक्लेसिया का सदस्य १८ वर्ष से अधिक उम्र का एथेन्स का प्रत्येक नागरिक होता था।

उन दिनों एथेन्स की जनता १० भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त थी। इन दसों वर्गों में से प्रत्येक वर्ग अपने ५० ५ सदस्य चुनता था और एक वर्ग के ५० सदस्य एक वर्ष के दसवें भाग तक काम करते थे। इसलिए इन्हें 'पिट्रानीज' कहा जाता था। ये पेट्रानीज ही शेष ६ वर्गों में से प्रत्येक वर्ग से एक सदस्य लेकर उनके साथ बैठकर परिषद का कार्य करते थे। पेट्रानीज का अध्यक्ष इन्हीं ५० सदस्यों में लाटरी के द्वारा केवल एक दिन के लिये चुना जाता था। यही सभा का भी अध्यक्ष होता था। सभा का अधिवेशन *प्रातःकाल* पौ फटने के समय सार्वजनिक चौराहे पर या बाजार में प्रारंभ होता था। कार्य आरम्भ होने से पहले एक वेदी पर सूअर की बलि देकर तथा उसके रक्त से मण्डप की परिधि खींचकर ईश्वर से विघ्न-बाधाओं को दूर करने की प्रार्थना की जाती थी। ये सब उपचार होने के पश्चात सभा का अध्यक्ष राजदूत की सभा की कार्य सूची के सम्बन्ध में परिषद की रिपोर्ट पढ़ने का आदेश देता था। रिपोर्ट पढ़ी जाने के बाद अध्यक्ष इस बात पर सदस्यों के मत लेता था कि रिपोर्ट को पूरी तरह से स्वीकार कर ली जाय या उस पर वाद विवाद हो। मतदान हाथ उठाकर होता था। इस मत संग्रह को प्रोकीरोटोनिया कहते थे। उसके बाद बहस आरम्भ होती थी। प्रत्येक सदस्य को अपने विचार प्रकट करने, बहस प्रारंभ करने तथा संशोधन उपस्थित करने का अधिकार प्राप्त था। मगर इस अधिकार का दुरुपयोग करने पर कठोर दण्ड निर्धारित था और सभी अवैध प्रस्ताव 'पीट्रानीज' के द्वारा रद्द कर दिये जाते थे। बहस के अन्त में हाथ उठाकर मतदान किए जाते थे। मतदान का निश्चय अध्यक्ष करता था। जिन अधिवेशनों में किसी खास व्यक्ति के ऊपर लगाये गये आरोपों पर विचार करना होता था वहाँ पर गुप्त मतदान की व्यवस्था थी। सामान्य बैठकों में एक्लेसिया को वैदेशिक नीति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे जिनमें शान्ति और युद्ध के प्रश्नों पर निर्णय तथा राजदूतों की

न्युक्ति तथा बर्खास्तगी एवं जल तथा स्थल सेना के समो अधिकार इसके हाथ में थे।

एकातेरिना प्रथम (रूस की साम्राज्ञी)

रूस के प्रसिद्ध ज़ार महान पीटर की प्रेम की पत्नी और पीटर के पश्चात् रूस की साम्राज्ञी जिसका शासनकाल सन् १७२५ से सन् १७२७ तक है।

पीटर महान अपनी मृत्यु के समय यह निश्चय नहीं कर सका कि शासन का उत्तराधिकारी किसे बनाया जाय। वह अपने मृत युवराज अलेक्सी के पुत्र को राज्याधिकारी के योग्य नहीं समझता था और अपनी पत्नी एकातेरिना को भी सिंहासन की उत्तराधिकारिणी बनाने में आनाकानी कर रहा था। एलिज़ाबेथ और अन्ना नाम की अपनी दो पुत्रियों को अधिकार देने के बारे में भी वह अन्तिम निश्चय नहीं कर पाया था कि उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु पर दरबारियों के एक प्रभावशाली वर्ग ने उसकी पत्नी एकातेरिना को रूस के सिंहासन पर बिठा दिया।

एकातेरिना प्रथम में शासन करने की क्षमता नहीं थी। अपने दो वर्ष के शासन में वह दरबारियों के हाथ में खेलती रही।

उसके राज्यकाल की प्रधान घटना रूसी दूत मण्डल का सावा नामक एक राजपुरुष की अधीनता में चीन की राजधानी पेकिंग भेजा जाना था। यह दूत मण्डल सन् १७२७ में भेजा गया। इस दूत मण्डल को अब तक भेजे गये सभी दूत मण्डलों से अधिक सफलता प्राप्त हुई। सावा ने २७ अगस्त १७२७ को चीन सरकार के द्वारा जिस सन्धि पर हस्ताक्षर कराने में सफलता पाई वह संधि करीब १२५ आगामी वर्षों तक मान्य रही। इसी संधि पत्र के द्वारा रूस और चीन की सीमा पूर्व में क्याख्ता से पेगून नदी के मुहाने तक और पश्चिम में क्याख्ता से सुरिनाव पवत माला के एक डांडे शाबिनादाबेग तक निर्धारित की गई। पेकिंग में एक स्थायी राजदूतावास की स्थापना की गई और उसमें रूसी लोगों को अपने धर्म के अनुसार पूजा पाठ करने की स्वाधीनता मिल गई।

सन् १७२७ में एकातेरिना प्रथम की मृत्यु हो गई।

एकातेरिना द्वितीय (रूस की साम्राज्ञी)

रूस के ज़ार पीटर तृतीय की पत्नी जो अपने नालायक पति को मरवा कर रूस के सिंहासन पर बैठी। इसका समय सन् १७६२ से सन् १७९६ तक था।

पीटर तृतीय एक अयोग्य, आलसी और अकर्मण्य शासक था। उसकी पत्नी उसकी आदतों को देखकर समझ गई थी कि वह रूस के सिंहासन को खोकर रहेगा। इसलिए पीटर के खिलाफ रूसी अधिकारियों का जो षड्यन्त्र चल रहा था उसमें वह स्वयं शामिल हो गई। ग्यारह के अफसर ओरलोव भाई उस षड्यन्त्र के मुखिया थे। २८ जून १७६२ को बड़े सवेरे उन्होंने एकातेरिना को पीटर वर्ग में लाकर साम्राज्ञी घोषित कर दिया। पीटर तृतीय ने सिंहासन से इस्तीफा दे दिया मगर थोड़े ही दिनों बाद वह मार डाला गया।

एकातेरिना द्वितीय एक कुशल शासन संचालिका थी। जिस समय वह गद्दी पर बैठी उस समय राज्य की व्यवस्था अस्त व्यस्त हो रही थी। खजाना खाली था। मरम्मत न होने से खंती खराब और किले खराब हो रहे थे। कृषक और कारखाने के मज़दूरों में बड़ा असन्तोष फैला हुआ था।

एकातेरिना ने धीरे धीरे इस असन्तोष को दूर करने का प्रयत्न किया। वह हवा के रुख को पहचानने वाली स्त्री थी। पश्चिम में जिन नवीन विचारों की धारा बह रही थी और जिस साहित्य का निर्माण हो रहा था उसका वह बड़ी अभिरुचि से अध्ययन करती थी। यूरोप के प्रसिद्ध विचारक वाल्टेयर, मान्टेस्क्यू और अन्य श्रेष्ठ विचारकों के साथ उसका पत्र व्यवहार था जो अपनी स्वतन्त्र विचार धारा के द्वारा सामन्तवादी व्यवस्था पर प्रहार कर रहे थे।

एकैतारिना द्वितीय राजकाज में सीधा भाग लेती थी वह स्वयं अपने हाथ से नवीन कानूनों और राजाज्ञाओं का मसविदा बनाती थी। साहित्य में उसकी दिलचस्पी थी और वह स्वयं एक पत्रिका निकालती थी। एकैतारिना का शासन सामन्तों और अमीरों के लिए रूसी इतिहास में सुनहरा समय था।

शासन पर आते ही एकेतारिना को अनेक राजनैतिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। फ्रांस और आस्ट्रिया रूस की बढ़ती हुई शक्ति को बड़ी चिन्ता की नजर से देखते थे। पोलैण्ड उस समय बड़ा निर्बल हो रहा था और प्रत्येक राष्ट्र उसको निगलने का प्रयत्न कर रहा था। एकातेरिना भी सावधान थी उसने माँग की कि पोलैण्ड में ग्रीक पन्थ के अनुयायियों तथा प्रोटेस्टेण्टों को रोमन कैथोलिकों के बराबर अधिकार दिया जाय। पोलैण्ड ने जब इस माँग को अस्वीकार कर दी तो रूस ने अपनी सेनाएँ पोलैण्ड में भेज दीं। लाचार हो पोलैण्ड की सरकार को रूस की माँग मंजूर करनी पड़ी। इसी समय एकातेरिना ने पोलैण्ड को करीब-करीब अपने संरक्षण में ले लिया। यह देख कर आस्ट्रिया और प्रशिया को बड़ी चिंता हुई। अन्त में रूस आस्ट्रिया और प्रशिया ने एक समझौता करके पोलैण्ड को आपस में बाँट लिया। सन् १७७१ में इस प्रकार पोलैण्ड का पहला बंटवारा हुआ जो प्रथम महायुद्ध के पहले तक चलता रहा।

टर्की के साथ पहला युद्ध

फ्रान्स के बहकावे में आकर टर्की के सुलतान ने सन् १७६८ में रूसी राज-दूत को बुलाकर कहा कि रूस अपनी सेना पोलैण्ड से हटा ले। रूस के इन्कार करने पर रूसी राजदूत को जेल में बन्द कर दिया। इधर क्रीमिया के खान ने भी तुर्की सुलतान के इशारे पर सन् १७६९ में दक्षिण रूस की सीमाओं पर लूट मार शुरू कर दी।

तब रूस का प्रसिद्ध प्रधान सेनापति रोम्यान्त्सेव एक बड़ी सेना लेकर दक्षिण की तरफ बढ़ा। प्रसिद्ध सेनापति सुवारोव भी उसका सहायक था। सुवारोव सभी काल के रूसी सेनापतियों का शिरोमणि माना जाता था। रूसी सेनापति को पता लगा कि लारगा नदी के समीप ही ८ तुर्क सेना छावनी डाले पड़ी हुई है। रूसी सेना में उस समय केवल १ सिपाही थे। लेकिन सेनापति ने अचानक आक्रमण करके तुर्की सेना को परास्त कर दिया। इसके दो सप्ताह बाद एक ओर से अरसी हजार तातारों की सेना ने और दूसरी ओर डेढ़ लाख तुर्क सेना ने रूसी सेना को बुरी तरह घेर लिया। रूसी सेना इस महा प्रबल को देखकर घबड़ाने लगी उस समय सेनापति रूम्यान्त्सेव का धैर्य देखने काबिल था। उसने ललकार कर सेना में जोश भरा और रूसियों की उस छोटी सी सेना ने उन दोनों सेनाओं को पराजित कर उस भूमि पर कब्जा कर लिया। इस अत्यन्त गौरव पूर्ण काम के लिए जनरल रूम्यान्त्सेव को 'जा-दुनाइस्की'' की पदवी प्राप्त हुई। स्थल पर इस तरह सफलता प्राप्त करके जल में भी रूसी बेड़े ने सारे तुर्की बेड़े को नष्ट कर दिया और सन् १७७१ में सारे क्रीमिया प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया।

किसान विद्रोह

इसी समय पुगाचेफ नामक एक भूत-पूर्व सैनिक अधिकारी ने अपने आपको पीटर तृतीय कहते हुए सन् १७७३ ई० में अपनी एक सेना का संगठन करना प्रारम्भ किया। हजारों किसान उसकी सेना में भरती होने लगे। पहले वह अपनी सेना को लेकर ओरेन बर्ग की ओर गया और गैरीसन को अधिकार में कर उसने किले पर अधिकार कर लिया। उसके बाद उसने ओरेनबुर्ग नगर पर घेरा डाल दिया जो छः महीने तक चलता रहा। इस समय उसकी सेना में और भी बहुत से किसान और मजदूर आ कर भरती हो गये। धीरे-धीरे यह विद्रोह एक किसान युद्ध के रूप में बदल गया। पुगाचेफ ने अपनी सेना में भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों को अलग २ दलों में संगठित करली, फिर भी इन लोगों के पास अस्त्र शस्त्र और सैनिक अनुशासन की बहुत कमी थी। पुगाचेफ अपनी घोषणाएँ पीटरतृतीय के नाम से निकालता था।

कई लड़ाइयों में हार-जीत होने के बा अन्त में रूस की सुशिक्षित सेना ने पुगाचेफ द्वारा संगठित किसान विद्रोह को छिन्न भिन्न कर दिया और जार की सेना पुगाचेफ को हाथ पैर बांध कर एक लकड़ी के पिंजड़े में बन्द कर मास्को ले आई जहाँ सन् १७७५ में उसे फाँसी दे दी गई।

टर्की से दूसरा युद्ध

क्रिमिया के लोग धर्म और जाति से तुर्कों के सम्बन्धी थे। इसलिए क्रिमिया पर रूस का अधिकार का सहन करना तुर्कों के लिए असम्भव था और फ्रांस उसे बराबर रूस के विरुद्ध भड़का रहा था। एकातेरिना भी आस्ट्रिया के साथ

संधि कर युद्ध तैयारी कर रही थी। सन् १७८७ में टर्की ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में रूस के सेनापति जनरल सुवारोव ने स्थान स्थान पर बड़ी वीरता से टर्की सेना को हराया। अन्त में सन् १७९० में रूसी सेना ने डैन्यूब के मुहाने पर टर्की के मजबूत किले "इस्मायल" को घेर लिया। यहाँ पर बड़ी विकट लड़ाई हुई पर अन्त में रूसी सेना ने इस्माइल पर अधिकार कर लिया। जिस समय स्थल युद्ध में जनरल सुवारोव विजय पर विजय प्राप्त कर रहा था उस समय जनरल उशाकोव के नेतृत्व में रूस की जल सेना भी टर्की के जंगी बेड़े पर विजय प्राप्त कर रही थी। इस प्रकार दोनों तरफ से टर्की पर गहरी मार पड़ रही थी। अन्त में सन् १७९१ में टर्की ने जास्सी की सन्धि की जिसमें क्रिमिया पर रूस का अधिकार स्वीकार किया गया और दक्षिणी बुग तथा डनीस्टर के बीच की भूमि भी रूस को दे दी गई। इस संधि से काला सागर के समग्र उत्तरी तट पर रूस का अधिकार हो गया।

विदेश नीति—एकाटेरिना का शासन काल रूसी साम्राज्य के भारी विस्तार का शासनकाल था। इस काल में साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक हुआ। फ्रांस और टर्की के साथ रूस की हमेशा नोक-झोंक होती रही। स्वीडन से भी उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे। चीन से भी इन दिनों रूस के सम्बन्ध बिगड़ गये थे। मगर एकाटेरिना ने अपना दूत पएकव भेजकर चीन के साथ में संधि की कुछ शर्तें जोड़कर चीन से अपने सम्बन्ध सुधार लिए।

एकाटेरिना के समय में ही यूरोप में फ्रांस की प्रसिद्ध राज्य क्रांति हुई। इस क्रांति के विरोध में एकाटेरिना बड़ी मजबूती से जमी रही। उसने दृढ़ता के साथ घोषित किया कि मैं कभी भी चमारों (मजदूरों) का शासन न होने दूँगी। मगर यह कैसा विचित्र संयोग था कि आगे चलकर उसी एकाटेरिना की गद्दी पर आने वाला रूस का सबसे शक्तिशाली शासक लेनिन चमार का ही लड़का था। फ्रांस के लुई सोलहवें को जब मृत्यु दण्ड दिया गया तो सबसे पहले एकाटेरिना ने फ्रांस से अपने सम्बन्ध विच्छेद किया। फ्रांस में रहने वाले सभी रूसियों को बुला लिया और क्रांति के समर्थक फ्रांसीसियों को रूस से निकाल दिया।

एकाटेरिना के समय में रूस में शिक्षा साहित्य और विज्ञान की बहुत उन्नति हुई। इसी समय में रूस के पहले वैज्ञानिक "लोमोनोसोव" का अन्तिम समय व्यतीत हुआ। यह रूस का पहला और महान वैज्ञानिक था जो एक मछुवे के घर में पैदा हुआ था और इसकी जाति का होने से बड़ी कठिनाई से शिक्षा प्राप्त कर पाया था। इसके द्वारा रसायनशास्त्र और भौतिकशास्त्र में किये गये कई आविष्कारों का लाभ परवर्ती पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने उठाया। उसने कई प्रयोग करके रंगीन काँच बनाने की पद्धति का आविष्कार किया। लोमोनोसोव ने श्वेत सागर से होकर पूर्वीय एशिया को अभियान भेजने का नक्शा तैयार किया था।

लोमोनोसोव की प्रतिभा के बारे में महाकवि "पुश्किन" ने लिखा है कि—"असने असाधारण बुद्धिबल के साथ असाधारण इच्छा शक्ति को रखते हुए लोमोनोसोव ने शिक्षा की सभी शाखाओं का अवगाहन किया। उसमें ज्ञान की असाधारण पिपासा थी। वह इतिहासकार, साहित्यकार व्याकरणशास्त्री रसायनशास्त्री, धातुशास्त्री, चित्रकार और कवि था।"

इसी युग में रूस में सुमारोकोव (१७१८-१७७७) देनिस फोनविजिन (१७४५-१७९२) देर्जाविन (१७४३-१८१६) और करमजिन (१७६६-१८२६) इत्यादि साहित्यकारों ने पैदा होकर रूसी साहित्य को समृद्ध किया।

इस प्रकार १४ वर्ष तक विशाल देश रूस का सफल शासन करने के बाद सन् १७९६ में रूस की इस प्रसिद्ध साम्राज्ञी का देहान्त हुआ।

एक्विनस टॉमस (सेण्ट टॉमस एक्विनस)

मध्ययुग में यूरोप का एक महान् लेखक दार्शनिक धर्मनिष्ठ और तत्वचिन्तक जिसका जन्म सन् १२२७ में और मृत्यु सन् १२७४ में हुई।

टॉमस एक्विनस, प्रखर मध्ययुग का शिष्य और यूनान के महान् दार्शनिक अरिस्टोटल का प्रखर व्याख्याता था। उसने अरस्तू के सिद्धान्तों के साथ क्रिश्चियानिटी के सिद्धान्तों का समन्वय करने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। यह आश्चर्य उसने एक ऐसी दर्शन प्रथा की रचना करके

किया जिसमें विज्ञान, दर्शन, धर्मशास्त्र और विश्व तथा ईश्वर एक ही सूत्र में ग्रथित हो गये।

उसने अपनी इस नवीन विचारधारा की सिद्धि के लिए सुम्मा थियोलाजिका (Summa Theologica) नामक महान् ग्रन्थ की रचना की जो तीन भागों में समाप्त हुआ और जिसमें करीब दस लाख शब्द हैं। यह ग्रंथ उन विचार तरङ्गों की महान् सरिता है जिसमें प्लेटो और अरिस्टोटल की दर्शनधाराओं के साथ रोमन कानून, क्रिश्चियानिटी के सिद्धान्त और पोप तथा प्रसिद्ध धर्मशास्त्रियों की भिन्न भिन्न विचारधाराओं का एक ही स्थान पर संगम हुआ है। यह ग्रन्थ सिर्फ राजनीति का ग्रन्थ ही नहीं है। प्रत्युत इसमें समस्त जीवन के दर्शनपर विचार किया गया है। जिसमें राजसंस्था, धर्मसंस्था, कानून इन सब चीजों का और इन चीजों के पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन किया है।

टॉमस एक्विनस अरस्तू के सिद्धान्तों का महान् व्याख्याता होने पर भी उसका अन्ध अनुयायी नहीं है। जहाँ वह उसमें किसी चीज की कमी देखता है तुरन्त उसका विवेचन करता है। अरस्तू अपने तत्वज्ञान में दर्शन शास्त्र को ज्ञान का सर्वोच्च शिखर मानता है और विवेक को उसका सर्वोत्कृष्ट साधन समझता है, जहाँ एक्विनस उससे एक मंजिल और ऊपर चढ़ता है। दर्शन और विज्ञान दोनों को पूरी तरह स्वीकार करते हुए भी वह उनके ऊपर धर्म के तत्व की और स्थापना करता है जिसका आधार विवेक नहीं श्रद्धा और अन्तर्दर्शन है। वह कहता है कि विज्ञान तथा दर्शन जिस प्रणाली का प्रारम्भ करते हैं उसकी परम सिद्धि धर्मशास्त्र के द्वारा होती है। विवेक की पूर्ण सिद्धि श्रद्धा है। ये दोनों साथ मिलकर ज्ञान मन्दिर का निर्माण करते हैं मगर कहीं भी वे एक दूसरे से नहीं टकराते।

अरस्तू मनुष्य की बुद्धि को ही उसका सर्वोच्च तत्व मानता है मगर टॉमस के मतानुसार मनुष्य का सर्वोच्च भाग उसकी बुद्धि नहीं आत्मा है। ईश्वर का ज्ञान या आत्मा की मुक्ति बुद्धि के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती। अरस्तू के दर्शन में मुक्ति, श्रद्धा तथा अनुकम्पा के तत्वों को कोई स्थान नहीं है क्योंकि बुद्धि या मस्तिष्क से भिन्न किसी भी तत्व के अस्तित्व पर उसने चिंतन किया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। मगर एक्विनस ने अरस्तू के सब तर्कों को मान्यता देते हुए भी यह कहा कि "उसकी दृष्टि अनुकम्पा के उस जगत् तक न जा सकी जो प्राकृतिक जगत् से परे है।"

राज्य की स्थिति के सम्बन्ध में भी यह अरस्तू के तर्कों को अस्वीकार नहीं करता। वह राज्य के सम्बन्ध में ईसाई धर्म की इस विचारधारा का कायल नहीं है कि समाज में राज्यसत्ता का जन्म पाप और मनुष्य के अधःपतन के कारण हुआ है। अरस्तू के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए राज्य संस्था को वह समाज के एक स्वाभाविक विकास का परिणाम समझता है। अरस्तू के इस सिद्धान्त का भी वह समर्थन करता है कि राज्य, समाज व्यवस्था का एक विधेयात्मक अंग है और उसका उद्देश्य नागरिकों के लिए उत्कृष्ट जीवन की व्यवस्था करना है, मगर टॉमस की विचारधारा में राज्य को जिस उत्कृष्ट जीवन की रचना करना है वह धार्मिक सिद्धान्त के प्रकाश में होना चाहिए। सांसारिक सुख के ऊपर एक श्रेष्ठ तथा उच्चतर पारलौकिक सुख की स्थापना होना चाहिए। इस ध्येय की पूर्ति के लिए किसी धर्म संस्थान या चर्च की अनिवार्य आवश्यकता होती है जो ऐसे जीवन की प्राप्ति के लिए आवश्यक मार्ग दर्शन कर सके।

एक पूर्ण मानव समाज की रचना के लिए उसके दो मजबूत पाये होने चाहिए। लौकिक उन्नति के लिए राजसंस्था और पारलौकिक उन्नति के लिए धर्मसंस्था। इन दोनों में से दूसरी का नियंत्रण पहली संस्था पर होना चाहिए।

टॉमस एक्विनस के इस सिद्धान्त को समझने के लिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह उस युग में पैदा हुआ था जब कि यूरोप में रोमन पोप और राज्यसंस्था के बीच जोरदार संघर्ष चल रहा था और ये दोनों संस्थाएँ अपनी-अपनी सर्वोपरिता सिद्ध करने के लिए जोरदार दलीलें दे रही थीं। पोप जोरदार होता था तो वह राजा को दण्ड देता था जैसा कि सम्राट हेनरी और ग्रेगरी इसी

झेंड के समय में हुआ था और यदि राजा जोरदार होता था तो पोप को झुकना पड़ता था। यह संघर्ष करीब पाँच शताब्दियों तक यूरोप में बराबर चलता रहा।

इसी संघर्ष के सम्बन्ध में उस समय के कई तत्व-चिन्तकों ने राज्य-संस्था और धर्म संस्था के पारस्परिक सम्बन्धों पर अपने विचार प्रकट किये थे। टॉमस एक्विनस भी ऐसे ही तत्व चिन्तकों में से एक था जिसने राज्य संस्था की अपेक्षा धर्म संस्था के महत्त्व को स्वीकार किया था। फिर भी वह उस समय में प्रचलित इस धारणा का समर्थक नहीं था कि सम्राट अपना अधिकार पोप से प्राप्त करता है यद्यपि वह पोप के "प्लेनीच्यूडो पोटेस्टेटिस" के सिद्धान्त का समर्थन करता है और यह मानता है कुछ स्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं जिनमें पोप सम्राट को पदच्युत कर सकता है। फिर भी वह पोप को राज्य के ऊपर प्रत्यक्ष नियन्त्रण देने के पक्ष में नहीं है। वह चर्च के सर्व मान्य आध्यात्मिक अधिकारों को कानूनी प्रभुत्व का रूप नहीं देना चाहता। निरे लौकिक विषयों में वह राज्य संस्था के नियन्त्रण का ही समर्थक है। वह यह भी स्वीकार करता है कि एक सुखी लौकिक जीवन का आधार आर्थिक सुव्यवस्था पर स्थित है इस लिए राज्य को विवश होकर आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है। राज्य का कर्तव्य व्यापार को नियमित करना, और उचित मजदूरी और मूल्य निर्धारित करना और समाज में ऐसी स्थिति उत्पन्न करना है जिससे नागरिक नैतिक और बौद्धिक रूप से श्रेष्ठ मनुष्य बन सकें।

इस प्रकार सेंट टॉमस एक्विनस ने अपनी विचारधारा में अरस्तू की विचारधारा का धड़ लेकर उस पर पोप या धर्म संस्था की श्रेष्ठता का सिर जोड़कर एक नई आकृति का निर्माण कर दिया। वह अरस्तू के प्राकृतिक दर्शन को स्वीकार करता है मगर साथ ही कहता है कि प्राकृतिक जगत ही सम्पूर्ण जगत नहीं है इसके ऊपर एक और अनुकम्पा का जगत है जिसमें मानव के कल्याण के लिए ईश्वर की अनुकम्पा प्रवाहित होती रहती है। उसका कथन है कि इसी प्रकार आचार शास्त्र के सम्बन्ध में भी अरस्तू ने मनुष्य को अपने प्राकृतिक लक्ष्य और आनन्द प्राप्ति का ठीक मार्ग दर्शन किया है मगर इस क्षेत्र में भी वह ईसाई धर्म द्वारा प्रतिपादित इस तत्त्व को नहीं देख पाया कि मनुष्य का एक अति प्राकृतिक लक्ष्य भी है जो कि पारलौकिक आनन्द और मोक्ष को प्राप्त करना है। वास्तव में इहलौकिक आनन्द का उद्देश्य इसी लक्ष्य के अधीन होना चाहिए। इस प्रकार सभी पूर उसने अरस्तू के सिद्धान्तों पर ईसाई धर्म के सिद्धान्तों को निरूपण करने का प्रयत्न किया है।

समाज की सुव्यवस्था के लिए कौन सी राज्य पद्धति कल्याणकारी हो सकती है इस पर भी अरस्तू से उसका मतभेद है। अरस्तू के द्वारा किये हुए राज्यों के वर्गीकरण जैसे राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र, प्रजातन्त्र इत्यादि के शुद्ध तथा निकृष्ट रूपों के विवरण में वह अरस्तू को मान्य करता है परन्तु जहाँ अरस्तू समाज कल्याण के लिए पोलिटी अथवा मध्य वर्ग तन्त्र को राज्य का सर्वश्रेष्ठ और आदर्शात्मक रूप मानता है वहाँ टॉमस एक्विनस "राजतन्त्र" का पक्षपाती है। उसका मत है कि अन्य प्रकार के राज्यों की अपेक्षा राजतन्त्र में उद्देश्य की एकता अधिक रहती है और वह समाज की एकता को कायम रख सकता है। अरस्तू की इस आपत्ति का वह कथन है कि एक व्यक्ति के हाथों में शक्ति केन्द्रीभूत होने से अत्याचारी तन्त्र का भय प्रत्यक्ष हो जाता है। परन्तु जनतन्त्र के परिणामस्वरूप पैदा होने वाले नागरिक झगड़े तथा अव्यवस्था की अपेक्षा वह अत्याचारी तन्त्र का खतरा उठाना अधिक पसन्द करता है। इसके अतिरिक्त उसका यह भी विचार है कि शक्ति एक ट्रस्ट है और राजा ट्रस्ट की शर्तों का पालन करता है या नहीं इस बात की निर्णायक जनता है। इसलिए राजतन्त्र के भ्रष्ट होकर अत्याचारी तन्त्र में बदलने की शंका कम हो जाती है।

टामस एक्वीनस की कानून-सम्बन्धी विचारधारा

टामस की विचारधारा में संसार का संगठन एक 'पिरामिड' की तरह है जिसके शिखर पर ईश्वर विराजमान है। इसकी प्रत्येक चीज, चाहे वह कितनी ही तुच्छ क्यों न हो एक उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए है और वह उद्देश्य है—सम्पूर्ण की पूर्णता। कोई भी वस्तु उस सम्पूर्ण से अलग नहीं है। इसलिए मानवी कानून को उसी प्रणाली का एक अंग होना चाहिए जिसके द्वारा ईश्वर संसार के ऊपर शासन करता है।

विश्वव्यापी सत्य का एक भाग होने के नाते मानवीय कानून का भी विवेक सम्मत होना आवश्यक है।

टामस ने अपनी योजना में कानून के ४ भेद किये हैं। १—शाश्वतकानून २—प्राकृतिक कानून ३—दैवी कानून और ४—मानवीय कानून।

(१) शाश्वत कानून—वह कानून है जिसके अनुसार ईश्वर ने ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है और जिसके द्वारा वह उसको कायम रखता है। संसार की जड़ और चेतन सारी सृष्टि इस कानून के अनुसार चलती है। मनुष्य की सीमित बुद्धि इस कानून को पूर्णरूप से समझने में असमर्थ है। फिर भी ईश्वर इस कानून का कुछ आभास प्राकृतिक कानून के रूप में मनुष्य को देता है ताकि मनुष्य उसका अनुसरण कर सृष्टि के साथ अपना समन्वय कर सके।

(२) प्राकृतिक कानून—शाश्वत कानून का आभास जो ईश्वर ने मनुष्य को दिया है, उसके आधार पर उत्तम कार्यों को अपनाने और अशुभ कार्यों से बचने की मनुष्य को प्रेरणा मिलती है। इस प्रेरणा को नैसर्गिक कानून कहते हैं। यह नैसर्गिक कानून मानव-जीवन के लक्ष्य और मानव संस्थाओं के माप को निर्धारित करता है। मगर जीवन के लक्ष्य पर पहुँचने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है उन साधनों का निर्धारण यह नहीं करता।

(३) दैवी कानून—नैसर्गिक कानून के द्वारा जिन आधारभूत सिद्धान्तों पर मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर करता है उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उन साधनों का मार्ग-दर्शन दैवी तथा मानवीय कानून करते हैं। दैवी कानून के द्वारा मनुष्य को ईश्वर के वे आदेश प्राप्त होते हैं जिनको मनुष्य अपनी अन्तर्बुद्धि के द्वारा प्राप्त करता है। यह कानून मानव बुद्धि की खोज नहीं, बल्कि उसको मिला हुआ ईश्वर प्रदत्त उपहार है। यह कानून जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को ही विशेष रूप से निर्देशित करता है। विभिन्न देशों, समयों और जातियों में यह कानून भिन्न-भिन्न रूप से प्रदर्शित होता है। जब कि नैसर्गिक कानून मानव-मात्र के लिए एक है।

(४) मानवीय कानून—मनुष्य की बुद्धि के द्वारा निर्मित एक विधेयात्मक कानून है। दैवी कानून और नैसर्गिक कानून के जो मूलभूत तत्त्व मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उनको अपने चिन्तन और अध्ययन के द्वारा समाज के अनुकूल विस्तृत करके उसकी रूपरेखा का निर्धारण किया जाता है। इन मानवीय कानूनों में कोई ऐसी बात न होनी चाहिये, जो मनुष्य के विवेक और बुद्धि के विरुद्ध हो। इन कानूनों को दैवी और नैसर्गिक कानूनों के सिद्धान्तों से विपरीत नहीं होना चाहिये। न्याय-पूर्ण और धर्म निहित कानून ही नागरिकों के लिए मान्य होना चाहिए। मानवीय कानूनों को धर्म निहित होने के लिये उनकी रचना नैसर्गिक आधार शिला पर होनी चाहिए। यदि कोई कानून नैसर्गिक कानून के अनुसार नहीं है तो नागरिक उसकी अवज्ञा कर सकता है और ऐसा करने में उसे दण्ड न मिलना चाहिए। मानवीय कानून समाज के संरक्षक राजा द्वारा लागू किया जाता है। परन्तु कानून बनाने में राजा मनमानी नहीं कर सकता उसे कुछ सीमाओं के अन्दर रह कर यह कार्य करना पड़ता है और यह ध्यान रखना पड़ता है कि मानवीय कानूनों में कोई बात बुद्धि और विवेक के विरुद्ध न हो। इसके अतिरिक्त कानून बनाने का राजा का अधिकार केवल लौकिक विषयों तक ही सीमित होना चाहिये। आध्यात्मिक विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राजा को न होना चाहिये। मानवीय कानून उस क्षेत्र से अलग रखा गया है, जो दैवी कानून की परिधि के अन्तर्गत है।

टॉमस एक्विनस और गुलामी की प्रथा

टामस मानव-समाज को लक्ष्य और उद्देश्य की एक ऐसी व्यवस्था समझता था जिसमें निकृष्ट उत्कृष्ट की सेवा करता है और उत्कृष्ट-निकृष्ट का मार्ग दर्शन करता है। कई पुराने तत्त्व चिन्तकों के सदृश टामस भी दासता को पाप का दैविक दण्ड समझता है और उसे उचित और स्वाभाविक मानता है और अरस्तू और आगस्टाइन की भाँति वह भी इस प्रथा का समर्थक है।

सेंट टामस एक्विनस की विचारधारा का मूल्यांकन करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि वह सन्यासी वर्ग का एक व्यक्ति था और उस युग में एक महान् विचारक होते हुए भी ईसाई धर्म की मान्यताओं

से अत्यन्त प्रभावित था। अपनी विचारधारा का निर्धारण करते समय अरस्तू के ग्रन्थों की व्याख्या करते समय, राजनैतिक चिन्तन करते समय, पोप के अधिकारों का निर्णय करते समय अर्थात् जीवन के हरेक पक्ष में ये मान्यताएँ उसके सम्मुख रहीं थीं और इन मान्यताओं के प्रभाव से कभी भी वह अपने को अलग नहीं कर सका। इन्हीं मान्यताओं के कारण वह हमेशा पोप का समर्थक रहा। इन्हीं मान्यताओं के प्रकाश में उसने अरस्तू के पाण्डित्य और सेंट अगस्टाइन के उपदेशों में जो समन्वय स्थापित किया वह समग्र मानवीय इतिहास में उसकी एक महान देन है। उसी के द्वारा यूरोप में अरस्तू के विज्ञान वाद का प्रचार हुआ। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि यदि उसकी बुद्धि रोमन चर्च की मान्यताओं से इतनी अधिक प्रभावित न होती तो संभव है मानव समाज को उसकी विचारधारा से जो कुछ प्राप्त हुआ है उससे कहीं कुछ अधिक प्राप्त होता।

एक्स–रे

ऐसी पारदर्शक (Opaque) किरणें जो कई पदार्थों के अन्दर प्रवेश करके उसके भीतर का चित्र प्रस्तुत कर देती हैं। ऐसी किरणों से चिकित्सा में जो यंत्र तैयार किया जाता है उसे एक्स रे मशीन कहते हैं। एक्स रे का आविष्कार सन् १८६५ में जर्मनी के वैज्ञानिक विलियम कोनराड रंटजन ने किया।

बिजली के चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोगों में एक्स रे का बड़ा महत्व है। इन किरणों का आविष्कार हो जाने से सर्जरी अब पहले की अपेक्षा नहीं रही। गले या पेट के भीतर कोई या पैसा अटक जाय, शरीर के अन्दर कहीं फोड़ा या कैन्सर हो जाय या कहीं की हड्डी टूट जाय तो उसके स्थान को निश्चित करने में डाक्टरों को अब अनुमान का आधार लेने की जरूरत नहीं पड़ती। फट से एक्स रे मशीन के सामने खड़ा करके रोगी के शरीर के भीतरी हिस्से का फोटो लिया जा सकता है। जिसमें हर चीज स्पष्ट दिखलाई देती है।

इन पारदर्शक एक्स किरणों की खोज जर्मनी के रंटजन नामक एक वैज्ञानिक ने की। इस वैज्ञानिक के नाम पर ही इन किरणों को रंटजन रे भी कहते हैं। रंटजन एकबार कांच की नलिका में अपने प्रयोग कर रहा था। उसको अनुभव हुआ कि वायु का दबाव बहुत कम होने पर कांच की नली में से जो किरणें आती हैं उनसे बेरियम प्लेटिनो साइनाइड्स नामक रासायनिक पदार्थ के स्फटिक प्रकाश देने लगते हैं और साथ ही नलिका के नजदीक काले कागज में लिपटी हुई फोटो की प्लेट उस ही वक्त वो उस काले कागज का भेदन करके उस प्लेट पर प्रकाश के धब्बे पड़ते हैं। मामूली तौर से काले कागज में लिपटी हुई फोटो प्लेट पर प्रकाश की किरणों का असर नहीं होता। इसलिए रंटजन ने यह निर्णय किया कि इस फोटो प्लेट पर कोई न दिखाई देने वाली किरणें असर कर रही हैं और इन किरणों में ऐसी शक्ति है कि वे काले आवरण को भेदन कर अन्दर की प्लेट पर असर डाल सकती हैं। उसने यह भी निश्चय कर लिया कि ये किरणें अवश्य नापसंद किरणें नहीं हो सकतीं। उसे यह भी मालूम पड़ा कि ये किरणें कांच की नली में से आ रही हैं। परन्तु इन किरणों के विषय में कोई जानकारी न होने से उसने इनका नाम एक्स-रे रक्खा।

एक्स रेज अत्यन्त भेदन शक्तिशाली होती हैं। वे अल्यूमिनियम के पत्तर में से पार हो सकती हैं। लेकिन सीसे (Lead) की पतली चद्दर के भेदन की शक्ति इनमें नहीं होती, इसलिए एक्स किरणों की प्रयोगशाला के साधन सीसे के बनाये जाते हैं। ये किरणें लकड़ी, मांस, कागज, चमड़ा आदि चीजों को भेदकर सरलता से उनके पार हो सकती हैं पर हड्डी, हीरा, वगैरह कठिन पदार्थों में से पार नहीं हो सकतीं। शरीर के भीतर के रोगों का फोटो इन किरणों के द्वारा लिया जाता है।

ये किरणें किसी भी प्रकार का विद्युत भार वहन नहीं कर सकतीं। ये किरणें हवा को विद्युत भार वाली बनाती हैं। इन किरणों पर चुम्बकीय क्षेत्र का असर नहीं पड़ता। ये किरणें जब धातुओं पर पड़ती हैं तब उनमें से इलेक्ट्रॉन निकलते हैं।

रायटजन के द्वारा एक्स-रे का आविष्कार होते ही सम्पूर्ण वैज्ञानिक विश्व का ध्यान एक्स रे की ओर आकृष्ट हुआ। अपारदर्शी ठोस पदार्थों में से पार होने का एक्स-रे का गुणधर्म अत्यन्त महत्वपूर्ण था और इस गुणधर्म का उपयोग विज्ञान के अनेक विभागों में हो सकता था इस कारण संसार की अनेक प्रयोगशालाओं में इन किरणों पर विशेष अध्ययन होने लगा।

एङ्गलर हाइनरिख

जर्मनी का एक वनस्पति शास्त्री डॉ० एङ्गलर हाइनरिख जिसका जन्म सन् १८४४ में और मृत्यु सन् १९१ में हुई।

एङ्गलर हाइनरिख एक प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री थे। सिलेसिया में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् वे म्यूनिख की वानस्पतिक संस्था के संरक्षक नियुक्त हुए। यहाँ पर इन्हें वनस्पति शास्त्र का विशेष अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् बर्लिन वानस्पतिक उद्यान के ये संचालक नियुक्त हुए जहाँ पर सन् १९२१ तक इन्होंने काम किया। इस क्षेत्र में विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन्होंने संसार का भ्रमण भी किया। वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में इनकी खोजें और रचनाएं बहुमूल्य साबित हुईं।

एजवर्थ-मेरिया

आयरलैंड की एक प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका। जिसका जन्म सन् १७६७ में और मृत्यु सन् १८४९ में हुई।

एजवर्थ मेरिया के प्रसिद्ध उपन्यास "कासिलरेकरेंट" और "बेलिंडा" के प्रकाशन ने आयरलैंड के सामान्य नागरिक जीवन को काफी प्रभावित किया। इनके पात्रों के सजीव चित्रण में लेखिका को काफी सफलता मिली है। सर वाल्टर स्कॉट के समान प्रसिद्ध उपन्यासकारों ने मेरिया की लेखन शैली की बड़ी प्रशंसा की है। मेरिया का "पेरेन्ट्स असिस्टेन्ट" नामक ग्रन्थ भी बहुत प्रसिद्ध है जो छः भागों में प्रकाशित हुआ है।

एजिडियस रोमेनस
(Egidius Romanus)

यूरोप में मध्ययुग का एक प्रसिद्ध विचारक जो तेरहवीं सदी के अन्त में हुआ।

एजिडियस रोमन चर्च और पोप के कट्टर समर्थकों में से एक था। उस समय का यूरोपियन इतिहास राजसंस्था और धर्मसंस्था या राजा और पोप के संघर्षों से भरा हुआ है। पोप की शक्ति अनियंत्रित थी और कुछ स्वाभिमानी राजा उसकी शक्ति को किसी रूप में नियंत्रित करना चाहते थे।

यही संघर्ष उस समय सारे यूरोप के इतिहास को प्रभावित कर रहा था और बड़े-बड़े विचारक, तत्त्वचिन्तक और लेखक इसी विषय पर अपनी रचनाएँ करते थे। एक्विनस थामस का परिचय ऊपर दिया जा चुका है जिन्होंने अपनी संसार प्रसिद्ध रचना 'सुम्मा थियोलोजिका'' में पोप के अधिकारों का खुला समर्थन किया है।

एजिडियस रोमेनस एक्विनस से भी पोप का समर्थन करने में बहुत आगे है। इसकी पुस्तक 'डी पोटेस्टेट एक्लेसियास्टिका' (De Potestate Ecclesiastica) सन् ११ १ में प्रकाशित हुई। इस ग्रन्थ में धर्मशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र के आधार पर पोप की प्रभुता का स्पष्ट शब्दों में समर्थन किया है। इस ग्रन्थकार के सिवा दूसरे किसी भी लेखक ने इतने स्पष्ट शब्दों में पोप का समर्थन नहीं किया। एजिडियस ने तो स्पष्ट शब्दों में पोप को समस्त विश्व के आध्यात्मिक तथा लौकिक समस्त विषयों का सर्वोच्च स्वामी माना है और समस्त राजाओं को उसके अधीन माना है।

उसने बतलाया है कि ईश्वर की अनुकम्पा केवल चर्च के द्वारा ही प्राप्त की जाती है और चर्च की सब शक्तियाँ आवश्यक रूप से पोप की हैं और किसी की नहीं। पोप चर्च का उच्चतम अधिकारी है इसलिए उसे सर्वोच्च शक्ति प्राप्त है। पोप की असाध्य और अनुपम शक्तियाँ उसके पद के कारण हैं वे उसके व्यक्तिगत चरित्र के ऊपर निर्भर नहीं करतीं।

इस प्रकार एकिविलस ने ज्याकिमस परिन के कम्पनी से भी पोप को मुक्त कर दिया है।

स्पष्ट दिखाई देता है कि एकिविलस के समान पोप के कट्टर और अन्य अनुयायियों के समर्थन के कारण ही रोमन चर्च की स्थिति असन्त अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी हो गई। उन दिनों पोप लोगों ने अपनी स्वेच्छाचारिता से यूरोपीय इतिहास में जो दृश्य उपस्थित किये उनके कारण धीरे-धीरे रोमन चर्च और पोप के प्रति लोगों में विरक्ति और घृणा के भाव जगने लगे और जिनकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यूरोप के समाज में "जॉन विक्लिफ" "जिन मही" "मार्टिन लूथर" "जेविन्स" इत्यादि महान् शक्तियों का उदय हुआ जिन्होंने अपनी महान् प्रतिभा से पोप के तख्ते को पलट दिया। क्रिया जितनी होती है प्रतिक्रिया उससे भी बलवती होती है।

एजेसिलास

प्राचीन स्पार्टा के ग्रीक गणतन्त्र का प्रसिद्ध राजा जिसका समय ईसवी सन् पूर्व ४४ से ६६ तक है।

ग्रीक डोमीनियन लोगों के राजा आर्किडेमस के दो पुत्र थे। एजिस और एजेसिलास। आर्किडेमस की मृत्यु के पश्चात् राज्य का उत्तराधिकारी 'एजिस' हुआ मगर कुछ समय के पश्चात् उसकी भी मृत्यु हो गई। एजिस को कोई जायज सन्तान न होने की वजह से राजगद्दी का उत्तराधिकारी 'एजेसिलास' हुआ। एजेसिलास लँगड़ा था और लँगड़े आदमी को स्पार्टा की गद्दी पर बिठाना निषिद्ध था।

एजेसिलास के गद्दी पर बैठने के समय डियोपिथीज नामक एक ज्योतिषी ने देववाणी का हवाला देते हुए उसके गद्दी पर बैठने का विरोध किया। उसने निम्न लिखित देववाणी का हवाला दिया—

"ऐ महान स्पार्टा देश! तुममें स्वयं चाहे कोई कमी न हो पर इस बात का ख्याल रखना कि कोई लँगड़ा शासक तुम्हारा अधिपति न बनने पावे नहीं तो तुम अकारण बड़ी विपत्ति में फँस जाओगे और तुम्हें घोर युद्ध का सामना क———गा।"

मगर चूँकि लँगड़ा होने के अतिरिक्त एजेसिलास में राज्य शासन के योग्य सभी गुण विद्यमान थे। वह बड़ा परिश्रमी नीतिज्ञ और हँसमुख स्वभाव का था। स्पार्टा के नागरिक उसे चाहते भी थे और भाग्य उसके अनुकूल भी था। इसलिए वह राजा घोषित कर दिया गया।

उस समय एफर और एल्डर नाम के अधिकारी स्पार्टा में राजाओं की शक्ति का नियन्त्रण करने के लिये रखे जाते थे। इन लोगों का राजाओं से प्रायः हमेशा झगड़ा चलता रहता था। एजेसिलास ने प्रतिद्वन्दिता मिटाने के लिये एफर और एल्डर लोगों को चतुराई के साथ अपने वश में कर लिया और इस प्रकार राज्य के आन्तरिक झगड़ों से वह मुक्त हो गया। उस समय ईरान देश के अन्तर्गत सम्राट् अर्तार्षय द्वितीय का शासन था और ईरान के साथ ग्रीस के झगड़े हमेशा की तरह बराबर चलते रहते थे।

एजेसिलास के गद्दी पर बैठने के कुछ ही समय पश्चात् एशिया से खबर आई कि ईरान का राजा बड़े जोरों से बड़ा युद्ध की तैयारी कर रहा है और वह स्पार्टन लोगों के हाथ से समुद्र का आधिपत्य छीन लेना चाहता है। तब एजेसिलास ने भी अपनी सैनिक तैयारी करके ईरान की सेनाओं के तरफ बढ़ना प्रारम्भ किया। उसने कई स्थानों पर ईरान के सामन्तों की सेनाओं को पराजित किया। एक साल भर तक लगातार वह लड़ाइयों में फँसा रहा मगर इसी समय अपने देश में विद्रोह हो जाने का समाचार सुन कर उसे वापस लौटना पड़ा। इसके बाद उसने आसपास के कई छोटे बड़े राज्यों पर कब्जा कर लिया।

थीबीज और आर्गेस के शासकों ने भी स्पार्टा के विरुद्ध लड़ाई छेड़ रखी थी। उस समय थीबीज लोगों का नेता ऐपामिनानडस नामक व्यक्ति था जो उस समय अपने दार्शनिक विचारों और वीरता के कारण बहुत प्रसिद्ध था। मगर इसके साथ ही वह कुशल सैनाध्यक्ष भी था। वह थीबन जाति का प्रतिनिधि बनकर सन्धि की इच्छा से स्पार्टा में एजेसिलास के पास में आया। मगर एजेसिलास ने उसका बड़ा अपमान किया और गुस्से में आकर थीब्स देश के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

ईपामिनानडस ने भी इस चैलेंज को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप ल्यूक्ट्रा के मैदान में थीबन और लेसी-

ग्रोमीनियन सेनाओं के बीच में बड़ी भयंकर लड़ाई हुई। इस लड़ाई में लेसीडोमीनियन लोगों की बड़ी बुरी तरह पराजय हुई और एक हजार स्पार्टन लोग इस लड़ाई में मारे गये।

इस पराजय के बाद एजेसिलास की प्रतिष्ठा दिन-पर दिन कम होती गई और लोगों के मन में यह आशंका होने लगी कि एक लंगड़े आदमी को अपना राजा न बना कर इस लँगड़े एजेसिलास को राजा बनाया, इसी से देवी ने हमारे ऊपर यह आपत्ति डाली है। फिर भी सब लोग एजेसिलास की प्रसिद्धि और उसकी योग्यता के इतने कायल थे कि मन में शंका उठने पर भी उन्होंने शासन को एजेसिलास के हाथ में सौंप दिया।

एजेसिलास के सम्मुख इस समय सबसे बड़ी कठिनाई उन भगोड़ों के सम्बन्ध में थी जो युद्धभूमि से प्राण बचा कर भाग आये थे। इनकी संख्या इतनी ज्यादा थी और इनमें कितने ही ऐसे प्रभाव शाली व्यक्ति भी थे कि जिनको कानून के अनुसार दण्ड देना आसान काम न था।

इस अपराध के सम्बन्ध में स्पार्टा का कानून बहुत सख्त था। रणभूमि से भागने वाले लोग इस कानून के अनुसार सब प्रकार के सम्मानों से वंचित किये जाते थे। उनके साथ विवाह सम्बन्ध करना भी बुरा समझा जाता था। रास्ते में चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार था कि यदि वह चाहे तो मौका होने पर इन भगोड़ों को लूट घेरे। इसके सिए कानून की कोई मनाई न थी। इसके अतिरिक्त इस कानून के अनुसार ऐसे लोगों को बिना नहाये धोये और फटे पुराने कपड़े पहन कर ही बाहर निकलने की इजाजत थी। वे अपनी आधी दाढ़ी ही बनवा सकते थे। आधी उन्हें वैसी ही रखनी पड़ती थी।

इस कठोर कानून के साथ उन अपराधियों का अनुशासन करना खतरे से खाली न था। खास कर ऐसे समय में जब कि राज्य को अधिक से अधिक सैनिकों की आवश्यकता थी। एजेसिलास ने ऐसे कठिन समय में कानून में कोई परिवर्तन नहीं किया। उसने जनता के सम्मुख घोषणा की कि सिर्फ आज दिन भर के लिए यह कानून स्थगित किया जाता है। कल से यह फिर चालू कर दिया जायगा। इस विलक्षण उपाय के द्वारा उसने कानून को भी विनष्ट होने से बचा लिया और नागरिकों की बदनामी भी न होने दी।

इस कलंक को धोने के लिए उसने तुरन्त आर्केडिया प्रान्त पर हमला कर दिया और बड़ी सतर्कता के साथ प्रत्यक्ष युद्ध का अवसर बचाते हुए उसने मेंगीनियन लोगों के एक छोटे से गाव पर अधिकार कर लिया और स्पार्टन-सैनिकों पर लगे हुए उस कलंक को धो डाला।

मगर थीबन लोगों ने उसका पीछा नहीं छोड़ा और ईपामिनानडस ने ४ हजार सैनिकों के साथ लेकोनियों पर आक्रमण कर दिया और बिना किसी विरोध के यूरोटस नदी तक बल्कि स्पार्टा के बिल्कुल पास तक उस पवित्र भूमि को बर्बाद डाला और लूट लिया जिसको अब तक किसी शत्रु ने स्पर्श तक नहीं किया था।

एजेसिलास नहीं चाहता था कि मेरे आदमी इस इस तूफान का सामना करके तबाह हों, इसी से उसने शत्रु का प्रतिरोध नहीं किया। केवल नगर के मुख्य-मुख्य मार्गों की रक्षा का प्रबन्ध कर दिया। थीबन लोग उसकी भर्त्सना कर रहे थे और चिल्ला चिल्ला कर कह रहे थे कि तुमने ही इस युद्ध की आग प्रज्ज्वलित की है एवं अपने देश वासियों पर यह आपत्ति बुलाई है। अब तुम में हिम्मत हो तो आओ और अपने देश की रक्षा करो।

बाहर तो यह हालत थी और नगर के अन्दर भी विद्रोह हो रहे थे। स्वयं उसको भी अपने रिगत वैभाव को याद करके बड़ी ग्लानि हो रही थी। उसे दिखाई दे रहा था कि जब वह सिंहासनासीन हुआ था तब स्पार्टा कितनी उन्नति के शिखर पर था और उसकी शक्ति कितनी बढ़ी हुई थी मगर आज उसके जीते जी ही स्पार्टा की यह दुर्दशा हो रही है।

मगर ऐसे समय में भाग्य ने उसकी सहायता की जब शत्रु की सेना ने नगर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से यूरोटस नदी को पार करने का इरादा किया। उसी समय अधिक बर्फ के गिरने के कारण नदी में भयंकर बाढ़ आ गई और थीबन सेना की हिम्मत उसे पार करने की न हुई। सिर्फ ईपामिनानडस ने कुछ बहादुर सिपाहियों के साथ नदी को पार किया और नगर में प्रवेश कर उसने बहुत कोशिश की कि एजेसिलास बाहर निकल कर युद्ध

इस प्रकार एर्किमिस ने व्यक्तिगत चरित्र के बन्धनों से भी पोप को मुक्त कर दिया है।

स्पष्ट दिखाई देता है कि एर्किमिस के समान पोप के चतुर और अन्य अनुयायियों के समर्थन के कारण ही रोमन चर्च की स्थिति अत्यन्त अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी हो गई। उन दिनों पोप लोगों ने अपनी स्वेच्छाचारिता से यूरोप के इतिहास में जो दृश्य उपस्थित किये उनके कारण धीरे-धीरे रोमन चर्च और पोप के प्रति लोगों में विरक्ति और घृणा के भाव बढ़ने लगे और जिनकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यूरोप के समाज में "जॉन विक्लिफ" "जिन गडो" "मार्टिन लूथर" "रेमिनस" इत्यादि महान् हस्तियों का उदय हुआ जिन्होंने अपनी महान् प्रतिभा से पोप के तख्त को पलट दिया। क्रिया जितनी होती है प्रतिक्रिया उससे भी व्यापक होती है।

एजेसिलास

प्राचीन स्पार्टा के लेसी डीमनराज्य का प्रसिद्ध राजा जिसका समय ईसवी सन् पूर्व ४४ से ३६ तक है।

लेसी डोमीनियन लोगों के राजा आर्कीडेमस के दो पुत्र थे। एजिस और एजेसिलास। आर्कीडेमस की मृत्यु के पश्चात् राज्य का उत्तराधिकारी 'एजिस' हुआ मगर कुछ समय के पश्चात् उसकी भी मृत्यु हो गई। एजिस को कोई जायज सन्तान न होने की वजह से राजगद्दी का उत्तराधिकारी 'एजेसिलास' हुआ। एजेसिलास लँगड़ा था और लँगड़े आदमी को स्पार्टा की गद्दी पर बिठाना निषिद्ध था।

एजेसिलास के गद्दी पर बैठने के समय डियोपिथीज नामक एक ज्योतिषी ने देववाणी का हवाला देते हुए उसके गद्दी पर बैठने का विरोध किया। उसने निम्न लिखित देववाणी का हवाला दिया—

"हे महान स्पार्टा देश! तुममें तब चाहे कोई कमी न हो पर इस बात का ध्यान रखना कि कोई लँगड़ा शासक तुम्हारा अधिपति न बनने पाये नहीं तो तुम अथाह बड़ी विपत्ति में फँस जाओगे और तुम्हें घोर युद्ध का सामना करना पड़ेगा।"

मगर चूँकि लँगड़ा होने के अतिरिक्त एजेसिलास में राज्य शासन के योग्य सभी गुण विद्यमान थे। वह बड़ा परिश्रमी, धीमिक और हँसमुख स्वभाव का था। स्पार्टा के नागरिक उसे चाहते भी थे और भाग्य उसके अनुकूल भी था। इसलिए वह राजा घोषित कर दिया गया।

उस समय एफर और एल्डर नाम के अधिकारी स्पार्टा में राजाओं की शक्ति का नियन्त्रण करने के लिये रखे जाते थे। इन लोगों का राजाओं से प्रायः हमेशा झगड़ा चलता रहता था। एजेसिलास ने प्रतिद्वन्द्विता मिटाने के लिये एफर और एल्डर लोगों को चतुराई के साथ अपने वश में कर लिया और इस प्रकार राज्य के आन्तरिक झगड़ों से वह मुक्त हो गया। उस समय ईरान देश के अन्तर्गत सम्राट् अर्टाजरक्सीज का शासन था और ईरान के साथ ग्रीस के झगड़े हमेशा की तरह बराबर चलते रहते थे।

एजेसिलास के गद्दी पर बैठने के कुछ ही समय पश्चात् एशिया से खबर आई कि ईरान का राजा बड़े जोरों से एक युद्ध की तैयारी कर रहा है और वह स्पार्टन लोगों के हाथ से समुद्र का आधिपत्य छीन लेना चाहता है। तब एजेसिलास ने भी अपनी सैनिक तैयारी करके ईरान की सेनाओं के तरफ चलना प्रारम्भ किया। उसने कई स्थानों पर ईरान के सामन्तों की सेनाओं को पराजित किया। एक साल भर तक लगातार वह लड़ाइयों में फँसा रहा मगर इसी समय अपने देश में विद्रोह हो जाने का समाचार सुन कर उसे वापस लौटना पड़ा। इसके बाद उसने ग्यसपाठ के कई छोटे बड़े शहरों पर कब्जा कर लिया।

थीबीज और एथेन्स के शासकों ने भी स्पार्टा के विरुद्ध लड़ाई छेड़ रखी थी। उस समय थीबीज लोगों का नेता ईपामिनानडस नामक व्यक्ति था जो उस समय अपने दार्शनिक विचारों और विद्वत्ता के कारण बहुत प्रतिष्ठित था। मगर इसके साथ ही वह कुशल सेनानायक भी था। वह थीबन जाति का राजदूत बनकर सन्धि की इच्छा से स्पार्टा में एजेसिलास के पास में आया। मगर एजेसिलास ने उसका बड़ा अपमान किया और गुस्से में आकर थीब्स देश के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

ईपामिनानडस ने भी इस चैलेंज को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप ल्यूक्ट्रा के मैदान में थीबन और लेसी-

बोसोमियन सेनाओं के बीच में बड़ी भयंकर लड़ाई हुई। इस लड़ाई में लेसीडीमोनियन लोगों की बड़ी बुरी तरह पराजय हुई और एक हजार स्पार्टन लोग इस लड़ाई में मारे गये।

इस पराजय के बाद एजेसिलास की प्रतिष्ठा दिन पर दिन कम होती गई और लोगों के मन में यह आशंका होने लगी कि एक भले चंगे आदमी को अपना राजा न बना कर इस लँगड़े एजेसिलास को राजा बनाया, इसी से देवी ने हमारे ऊपर यह आपत्ति डाली है। फिर भी सब लोग एजेसिलास की प्रसिद्धि और उसकी योग्यता के इतने कायल थे कि मन में शंका उठने पर भी उन्होंने अपने को एजेसिलास के हाथ में सौंप दिया।

एजेसिलास के सम्मुख इस समय सबसे बड़ी कठिनाई उन भगोड़ों के सम्बन्ध में थी जो युद्धभूमि से प्राण बचा-कर भाग आये थे। इनकी संख्या इतनी ज्यादा थी और इनमें कितने ही ऐसे प्रभाव शाली व्यक्ति भी थे कि जिनको कानून के अनुसार दण्ड देना आसान काम न था।

इस अपराध के सम्बन्ध में स्पार्टा का कानून बहुत सख्त था। रणभूमि से भागने वाले लोग इस कानून के अनुसार सब प्रकार के सम्मानों से वंचित किये जाते थे। उनके साथ विवाह सम्बन्ध करना भी बुरा समझा जाता था। रास्ते में चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार था कि यदि वह चाहे तो भेंट होने पर इन भगोड़ों को पीट दे। इसके लिए कानून की कोई मनाई न थी। इसके अतिरिक्त इस कानून के अनुसार ऐसे लोगों को फटे पुराने पैबन्द लगे मैले कुचैले कपड़े पहन कर ही बाहर निकलने की इजाजत थी। वे अपनी आधी दाढ़ी ही बनवा सकते थे। आधी उन्हें वैसी ही रखनी पड़ती थी।

इस कठोर कानून के साथ उन अपराधियों का अनुशासन करना खतरे से खाली न था। खास कर ऐसे समय में जब कि राज्य को अधिक से अधिक सैनिकों की आवश्यकता थी। एजेसिलास ने ऐसे कठिन समय में कानून में कोई परिवर्तन नहीं किया। उसने जनता के सम्मुख घोषणा की कि सिर्फ आज दिन भर के लिए यह कानून स्थगित किया जाता है। कल से यह फिर चालू कर दिया जायगा। इस विलक्षण उपाय के द्वारा उसने कानून को भी विनष्ट होने से बचा लिया और नागरिकों की बदनामी भी न होने दी।

इस कलंक को धोने के लिए उसने तुरन्त आर्केडिया प्रान्त पर हमला कर दिया और बड़ी सतर्कता के साथ प्रत्यक्ष युद्ध का अवसर बचाते हुए उसने मेंटीनियन लोगों के एक छोटे से गांव पर अधिकार कर लिया और स्पार्टन-सैनिकों पर लगे हुए उस कलंक को धो डाला।

मगर थीबन लोगों ने उसका पीछा नहीं छोड़ा और ईपामिनानडस ने ४ हजार सैनिकों के साथ लेकोनिया पर आक्रमण कर दिया और बिना किसी विरोध के यूरोटस नदी तक बल्कि स्पार्टा के बिल्कुल पास तक उस पवित्र भूमि को कुचल डाला और लूट लिया जिसको अब तक किसी शत्रु ने स्पर्श तक नहीं किया था।

एजेसिलास नहीं चाहता था कि मेरे आदमी इस इस तूफान का सामना करके तबाह हों, इसी से उसने शत्रु का प्रतिरोध नहीं किया। केवल नगर के मुख्य-मुख्य मार्गों की रक्षा का प्रबन्ध कर दिया। थीबन लोग उसकी भर्त्सना कर रहे थे और चिल्ला चिल्ला कर कह रहे थे कि तुमने ही इस युद्ध की आग प्रज्वलित की है एवं अपने देश वासियों पर यह आपत्ति बुलाई है। अब तुम में हिम्मत हो तो आओ और अपने देश की रक्षा करो।

बाहर तो यह हालत थी और नगर के अन्दर भी विद्रोह हो रहे थे। स्वयं उसको भी अपने विगत वैभव को याद करके बड़ी ग्लानि हो रही थी। उसे दिखाई दे रहा था कि जब वह सिंहासनासीन हुआ था तब स्पार्टा कितनी उन्नति के शिखर पर था और उसकी शक्ति कितनी बढ़ी हुई थी मगर आज उसके जीते जी ही स्पार्टा की यह दुर्दशा हो रही है।

मगर ऐसे समय में भाग्य ने उसकी सहायता की जब शत्रु की सेना ने नगर पर आक्रमण करने के उद्देश से यूरोटस नदी को पार करने का इरादा किया। उसी समय अधिक बर्फ के गिरने के कारण नदी में भयंकर बाढ़ आ गई और थीबन सेना की हिम्मत उसे पार करने की न हुई। सिर्फ ईपामिनानडस ने कुछ बहादुर सिपाहियों के साथ नदी को पार किया और नगर में प्रवेश कर उसने बहुत कोशिश की कि एजेसिलास बाहर निकल कर युद्ध

इस प्रकार एग्निडियस ने व्यक्तिगत चरित्र के कमजोरी से भी पोप को मुक्त कर दिया है।

स्पष्ट दिखाई देता है कि एग्निडियस के समान पोप के कट्टर और अन्य अनुयायियों के समर्थन के कारण ही रोमन चर्च की स्थिति अस्वस्थ अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी हो गई। उन दिनों पोप लोगों ने अपनी स्वेच्छाचारिता से यूरोपीय इतिहास में जो दृश्य उपस्थित किये उनके कारण धीरे धीरे रोमन चर्च और पोप के प्रति लोगों में विरक्ति और घृणा के भाव जमने लगे और जिनकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यूरोप के समाज में "जॉन विक्लिफ", "जॉन हस" "मार्टिन लूथर" "रेमिलन" इत्यादि महान् शक्तियों का उदय हुआ जिन्होंने अपनी महान् प्रतिभा से पोप के तख्ते को पलट दिया। क्रिया जितनी होती है प्रतिक्रिया उससे भी बलवती होती है।

एजेसिलास

प्राचीन स्पार्टा के सेती योमनवंश का प्रसिद्ध राजा जिसका समय ईसवी सन् पूर्व ४४ से ३६ तक है।

सेती लोमीनियन लोगों के राजा आर्कीडेमस के दो पुत्र थे। एजिस और एजेसिलास। आर्कीडेमस की मृत्यु के पश्चात् राज्य का उत्तराधिकारी 'एजिस' हुआ मगर कुछ समय के पश्चात् उसकी भी मृत्यु हो गई। एजिस को कोई जायज सन्तान न होने की वजह से राजगद्दी का उत्तराधिकारी 'एजेसिलास' हुआ। एजेसिलास लँगड़ा था और लँगड़े आदमी को स्पार्टा की गद्दी पर बिठाना निषिद्ध था।

एजेसिलास के गद्दी पर बैठने के समय डियोपिथीज नामक एक ज्योतिषी ने देववाणी का हवाला देते हुए उसके गद्दी पर बैठने का विरोध किया। उसने निम्न लिखित देववाणी का हवाला दिया—

"हे महान स्पार्टा देश! तुममें चाहे कोई कमी न हो पर इस बात का ध्यान रखना कि कोई लँगड़ा शासक तुम्हारा अधिपति न बनने पावे नहीं तो तुम अपार बड़ी विपत्ति में फँस जाओगे और दुर्दैव और युद्ध का सामना करना पड़ेगा।"

मगर चूँकि लँगड़ा होने के अतिरिक्त एजेसिलास में राज्य शासन के योग्य सभी गुण विद्यमान थे। वह बड़ा परिश्रमी नीतिज्ञ और हँसमुख स्वभाव का था। स्पार्टा के नागरिक उसे चाहते भी थे और भाग्य उसके अनुकूल भी था। इसलिए वह राजा घोषित कर दिया गया।

उस समय एफर और एफ़र नाम के अधिकारी स्पार्टा में राजाओं की शक्ति का नियन्त्रण करने के लिये रखे जाते थे। इन लोगों का राजाओं से प्रायः हमेशा झगड़ा चलता रहता था। एजेसिलास ने प्रतिद्वन्द्विता मिटाने के लिये एफर और एफ़र लोगों को चतुराई के साथ अपने वश में कर लिया और इस प्रकार राज्य के आन्तरिक झगड़ों से वह मुक्त हो गया। उस समय ईरान देश के अन्तर्गत सम्राट क्षयार्ष द्वितीय का शासन था और ईरान के साथ ग्रीस के झगड़े हमेशा की तरह बराबर चलते रहते थे।

एजेसिलास के गद्दी पर बैठने के कुछ ही समय पश्चात् एशिया से खबर आई कि ईरान का राजा बड़े जोरों से जल युद्ध की तैयारी कर रहा है और वह स्पार्टन लोगों के हाथ से समुद्र का आधिपत्य छीन लेना चाहता है। तब एजेसिलास ने भी अपनी सैनिक तैयारी करके ईरान की सेनाओं के तरफ बढ़ना प्रारम्भ किया। उसने कई स्थानों पर ईरान के सामन्तों की सेनाओं को पराजित किया। एक साल भर तक लगातार वह लड़ाइयों में फँसा रहा मगर इसी समय अपने देश में विद्रोह हो जाने का समाचार सुन कर उसे वापस लौटना पड़ा। इसके बाद उसने आसपास के कई छोटे बड़े राज्यों पर कब्जा कर लिया।

थीबीज और एथेंस के शासकों ने भी स्पार्टा के विरुद्ध लड़ाई छेड़ रखी थी। उस समय थीबीज लोगों का नेता 'ईपामिनानडस' नामक व्यक्ति था जो उस समय अपने दार्शनिक विचारों और विद्वत्ता के कारण बहुत प्रसिद्ध था। मगर इसके साथ ही वह कुशल सेनानायक भी था। वह थीबिज जाति का राजदूत बनकर सन्धि की इच्छा से स्पार्टा में एजेसिलास के पास में आया। मगर एजेसिलास ने उसका बड़ा अपमान किया और गुस्से में आकर थीब्स देश के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

ईपामिनानडस ने भी इस चैलेंज को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप ल्यूक्ट्रा के मैदान में थीब्स और सेती-

सीलोन के समान ब्रिटिश-साम्राज्य के महान उपनिवेशों को पूर्ण स्वाधीन घोषित करने का साहसपूर्ण कदम उठाया।

एटली के इस साहसपूर्ण कदम से समस्त संसार के उपनिवेशवादी राष्ट्रों और उपनिवेशों में तूफान की सी स्थिति पैदा हो गई। उपनिवेशों की जनता में जागृति की महान लहर आई और कहीं शान्ति से और कहीं क्रान्ति से शोषित और शासित जनता ने अपनी आजादी प्राप्त की। मि एटली के इस साहसपूर्ण कदम के अनुकरण से थोड़े ही समय में संसार के अधिकांश उपनिवेशों ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली और जो थोड़े बहुत उपनिवेश बच गये हैं, वे भी इस पथ पर तेजी के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

संसार से उपनिवेशवाद का कलंक धोने में जिन लोगों ने राजशक्ति को ओर से सक्रिय और साहसपूर्ण कदम उठाया, उनमें मि एटली का नाम पहला और महत्वपूर्ण है।

एडमंड बर्क (Edmund Burke)

इंग्लैंड का एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, महान वक्ता और लेखक जिसका जन्म सन् १७२९ ई में आयरलैंड की राजधानी 'डब्लिन' में हुआ।

डब्लिन कालेज की शिक्षा समाप्त कर लेने पर 'एडमंड बर्क' के पिता ने उसको कानून की डिग्री प्राप्त करने के लिए लन्दन भेजा मगर कानून की पढ़ाई में बर्क का चित्त नहीं लगा और उसका ध्यान ग्रन्थ लेखन और पत्रकारिता की ओर लगा। उसने अपना पहला ग्रन्थ विंडिकेशन ऑफ नेचुरल सोसायटी, (Vindication of Natural Society) को बिना अपना नाम दिये ही प्रकाशित करवाया। सन् १७२९ में बर्क आयरलैंड के मंत्री श्री 'हैमिल्टन' का प्राइवेट सेक्रेटरी बन कर डब्लिन गया। वहाँ उसने छः वर्ष तक काम किया। वहाँ पर इसे शासन प्रबन्ध का भारी व्यावहारिक ज्ञान हो गया।

सन् १७६५ के पश्चात् वह इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री श्री 'राकिंघम' का प्राइवेट सेक्रेटरी बन गया। इसके बाद ही उसका हाउस ऑफ कामन्स' में प्रवेश हुआ और यहीं से उसका राजनीतिक जीवन में प्रवेश हुआ। इंग्लैण्ड की 'हिग पार्टी' का वह एक प्रमुख सदस्य और नेता था। उसका पहला भाषण इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट में अमेरिकन मामलों के ऊपर हुआ। यह भाषण इतना तर्कपूर्ण, प्रभावशाली और युक्तियुक्त था और इससे बर्क को ऐसी ख्याति प्राप्त हुई, जो अब तक या इससे पहले किसी वक्ता को नहीं हुई थी।

एडमण्ड बर्क के राजनैतिक जीवन में इंग्लैण्ड के इतिहास में १४ अत्यन्त महत्वपूर्ण और युगान्तरकारी घटनाएँ हुईं। इन घटनाओं पर एडमण्ड बर्क ने जो विचार प्रदर्शित किये, उसने उसके राजनैतिक जीवन को अत्यन्त प्रकाश पूर्ण बना दिया।

उस समय इंग्लैंड के सिंहासन पर जार्ज तृतीय शासन कर रहा था और वह अपने प्रभाव को बढ़ाने तथा पार्लियामेंट की शक्ति को सीमित करने के लिए दोहरे मंत्रिमण्डल की पद्धति को जारी करना चाहता था। जिससे एक शुद्ध राजा के व्यक्तिगत आदेशों के अनुसार जनता की सामान्य भावना के विरुद्ध रहते हुए भी राजा और मंत्रियों की अनुमति के बिना ही शासन कर सकता था। इसके लिये ब्रिटेन के संविधान में परिवर्तन करना जरूरी था। एडमंड बर्क इसके विरुद्ध था। उसका कहना था कि जनता की स्वतन्त्रता तथा भलाई पार्लियामेंट के सदस्यों की सच्चरित्रता तथा सतर्कता के ऊपर निर्भर करती है। पार्लियामेंटरी सरकार के विधान की प्रक्रिया को बदलना सम्पूर्ण समाज के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और बुनियादी बात का विरोध करना है। इसके लिए उसने 'थाट्स ऑन दी काजेज ऑफ प्रेजण्ट डिस कान्टेण्ट्स (Thoughts on the causes of present discontents) नामक ग्रन्थ की रचना की जो सन् १७७ में प्रकाशित हुआ। उसमें उसने एक स्थान पर लिखा है—"हमारा विधान एक ऐसे सूक्ष्म सन्तुलन एक ऐसी नाजुक स्थिति में उपस्थित है, जिसके चारों ओर गिरानेवाली चट्टानें और गहन समुद्र भरा हुआ है। इस संविधान को यदि हम एक तरफ अधिक झुकने के खतरे से बचाने की कोशिश करते हैं तो उसके दूसरी ओर झुकने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। ब्रिटेन की वर्तमान शासन-व्यवस्था के समान

करे मगर उसका प्रयत्न व्यर्थ हुआ और देश को वीरान करते हुए वह वापस लौट गया।

इसके पश्चात् अपनी सारी बुद्धि और साहस का प्रयोग करके भी एजेसिलास स्पार्टा की प्राचीन कीर्ति को न लौटा सका और न उसे पुनः गौरव के शिखर पर चढ़ा सका। लंगड़े शासक के सम्बन्ध में ज्योतिषी की भविष्यवाणी सही निकली।

लाइकरगस ने स्पार्टा के लिए जिस व्यवस्था का निर्माण किया था वह शान्ति एकता और नागरिकों के सात्विक जीवन के उपयुक्त थी। स्पार्टन लोगों का पतन तभी हुआ जब उन्होंने विदेशों पर आधिपत्य स्थापित करना और अनियन्त्रित भाव से राज्य करना प्रारंभ किया।

ईपामिनानडस ने जब मेसिनी प्रान्त को पुनः स्वतंत्र कर दिया और भगे हुए नागरिकों को फिर से वहाँ बसने के लिए आमन्त्रित किया तब स्पार्टन लोग मन मसोस कर यह सब देखते रहे। क्योंकि उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे थीबन लोगों का मुकाबला करते। एजेसिलास स्पार्टन लोगों की दृष्टि में बहुत गिर गया था। क्योंकि मेसिनी प्रान्त जो स्पार्टा के ही बराबर था और सारे ग्रीस में सब से अधिक उपजाऊ था एजेसिलास के शासन काल में ही स्पार्टा के आधिपत्य से निकल गया।

इसके पश्चात् ईपामिनानडस ने बड़े कौशल से स्पार्टा पर अधिकार करने की योजना भी बनाई थी पर एजेसिलास की तत्परता से वह किसी प्रकार बच गया।

इसके कुछ दिन पश्चात् ईपामिनानडस की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद फिर चारों ओर शान्ति स्थापित हो गई। लेकिन एजेसिलास का स्पार्टा का वह साम्राज्य करीब करीब नष्ट हो चुका था जो इसके राज्यारोहण के समय प्राप्त हुआ था।

८ वर्ष की अवस्था में अफ्रीका के उत्तरी तट की मरुभूमि में एजेसिलास का देहान्त हुआ। लेसीडीमन में इसने ४१ वर्ष तक राज्य किया। इनमें से ३ वर्ष तक तो समूचे ग्रीस में यह सबसे बड़ा और सबसे शक्तिशाली राजा माना जाता था। आस-पास के राज्यों पर अधिकार करके अपने साम्राज्य का उसने बहुत विस्तार कर लिया था। ल्यूक्ट्रा की लड़ाई के पहले सारा ग्रीस उसे अपना अद्वितीय सेनापति समझता था। उसके शव को स्पार्टा की प्रथा के अनुसार लेसीडीमन में लाकर राजकीय सम्मान के साथ दफनाया गया।

एटली

क्लीमेंट एटली, ग्रेट ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री, मजदूर दल के नेता और राजनीतिज्ञ, जिनका जन्म सन् १८८३ में हुआ।

क्लीमेंट एटली का ग्रेट ब्रिटेन के राजनैतिक इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है और विश्व के इतिहास में भी उनको इस बात का गौरव प्राप्त है कि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सत्ता के हाथ में आते ही उन्होंने संसार से उस उपनिवेशवाद को समाप्त कर देने का संकल्प किया, जो पाँच शताब्दियों से संसार के एक बहुत बड़े मानव-समूह को अपने फौलादी पंजे में कसे हुए था।

क्लीमेंट एटली का जन्म सन् १८८३ ई० में हुआ और सन् १९ ५ में उन्होंने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की। सन् १९ ७ में वे इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के सदस्य हो गये। पहले महायुद्ध में उन्होंने फ्रांस के निकट मेजर की हैसियत से कई लड़ाइयाँ लड़ीं। सन् १९२२ में लेबर पार्टी के टिकिट से वे 'पार्लियामेंट' के सदस्य चुने गये। सन् १९३१ के चुनाव में जब मजदूर दल की सरकार बनी तब वे युद्ध विभाग के उपसचिव बनाये गये। द्वितीय महायुद्ध के समय 'चर्चिल' के मंत्रिमण्डल में मि० एटली भी मंत्री थे।

युद्ध के समाप्त होने पर इंग्लैंड में जब नये चुनाव हुए तो उन चुनावों के परिणामों ने समस्त संसार ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि द्वितीय महायुद्ध के महान् विजेता और ग्रेट ब्रिटेन के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चर्चिल को इंग्लैंड की जनता ने चारों खाने चित कर दिया और मजदूर गवर्नमेंट को विजयी घोषित कर दिया। मजदूर दल के नेता मि० एटली ब्रिटेन सरकार के प्रधानमंत्री हुए। प्रधानमंत्री के होने के साथ ही उन्होंने मानवीय स्वाधीनता के प्रश्न को सम्मुख रखकर उपनिवेशवाद के कलंक को मिटाने का मजबूत कदम उठाया और भारतवर्ष, बर्मा तथा

चीनोन के समान ब्रिटिश-साम्राज्य के महान उपनिवेशों को पूर्ण स्वाधीन घोषित करने का साहसपूर्ण कदम उठाया।

पटेली के इस साहसपूर्ण कदम से समस्त संसार के उपनिवेशवादी राष्ट्रों और उपनिवेशों में तूफान की सी स्थिति पैदा हो गई। उपनिवेशों की जनता में जागृति की महान लहर आई और कहीं शान्ति से और कहीं क्रान्ति से शोषित और दलित जनता ने अपनी आजादी प्राप्त की। मि पटेली के इस साहसपूर्ण कदम के अनुकरण से थोड़े ही समय में संसार के अधिकांश उपनिवेशों ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली और जो थोड़े बहुत उपनिवेश बच गये हैं, वे भी इस पथ पर तेजी के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

संसार से उपनिवेशवाद का कलंक धोने में जिन लोगों ने राजशक्ति की ओर से सक्रिय और साहसपूर्ण कदम उठाया उनमें मि पटेली का नाम पहला और महत्वपूर्ण है।

एडमंड बर्क (Edmund Burke)

इंगलैण्ड का एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, महान वक्ता और लेखक जिसका जन्म सन् १७२९ ई में आयरलैण्ड की राजधानी 'डब्लिन में हुआ।

डब्लिन कालेज की शिक्षा समाप्त कर लेने पर 'एडमंड बर्क' के पिता ने उसको कानून की डिग्री प्राप्त करने के लिए लन्दन भेजा मगर कानून की पढ़ाई में बर्क का चित्त नहीं लगा और उसका ध्यान ग्रन्थ लेखन और पत्रकारिता की ओर लगा। उसने अपना पहला ग्रन्थ 'विन्डिकेशन ऑफ नेचुरल सोसायटी, (Vindication of Natural Society) को बिना अपना नाम दिये ही प्रकाशित करवाया। सन् १७५९ में बर्क आयरलैण्ड के मंत्री श्री 'हैमिल्टन' का प्राइवेट सेक्रेटरी बन कर डब्लिन गया। वहाँ उसने छः वर्ष तक काम किया। वहाँ पर उसे शासन कार्य का काफी व्यावहारिक ज्ञान हो गया।

सन् १७६५ के पश्चात् वह इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री श्री 'राकिंघम' का प्राइवेट सेक्रेटरी बन गया। इसके बाद ही उसका 'हाउस ऑफ कामन्स' में प्रवेश हुआ और यहीं से उसका राजनीतिक जीवन में प्रवेश हुआ। इंग्लैण्ड की 'ह्विग पार्टी' का वह एक प्रमुख सदस्य और नेता था। उसका पहला भाषण इंगलैण्ड की पार्लियामेंट में अमेरिकन मामलों के ऊपर हुआ। यह भाषण इतना तर्कपूर्ण, प्रभावशाली और युक्तियुक्त था और इससे बर्क को ऐसी ख्याति प्राप्त हुई, जो अब तक या इससे पहले किसी वक्ता को नहीं हुई थी।

एडमण्ड बर्क के राजनैतिक जीवन में इंग्लैण्ड के इतिहास में १४ अत्यन्त महत्वपूर्ण और युगान्तरकारी घटनाएँ हुई। इन घटनाओं पर एडमण्ड बर्क ने जो विचार प्रदर्शित किये, उसने उसके राजनैतिक जीवन को अत्यन्त प्रकाश पूर्ण बना दिया।

उस समय इंग्लैंड के सिंहासन पर जार्ज तृतीय शासन कर रहा था और वह अपने प्रभाव को बढ़ाने तथा पार्लियामेंट की शक्ति को सीमित करने के लिए दोहरे मंत्रिमण्डल की पद्धति को जारी करना चाहता था। जिससे एक गुट राजा के व्यक्तिगत आदेशों के अनुसार जनता की सामान्य भावना के विरुद्ध होते हुए भी राजा और मंत्रियों की अनुमति के बिना ही शासन कर सकता था। इसके लिये ब्रिटेन के संविधान में परिवर्तन करना जरूरी था। एडमंडबर्क इसके विरुद्ध था। उसका कहना था कि जनता की स्वतन्त्रता तथा महान् पार्लियामेंट के सदस्यों की सच्चरित्रता तथा सतर्कता के ऊपर निर्भर करती है। पार्लियामेंटरी सरकार के विधान की प्रक्रिया को बदलना सम्पूर्ण समाज के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और बुनियादी बात का विरोध करना है। इसके लिए उसने 'थाट्स ऑन दी काजेज ऑफ प्रेजेन्ट डिस कान्टेन्ट्स (Thoughts on the causes of present discontents) नामक ग्रन्थ की रचना की जो सन् १७७० में प्रकाशित हुआ। उसमें उसने एक स्थान पर लिखा है—

"हमारा विधान एक ऐसे सूक्ष्म सन्तुलन एक ऐसी नाजुक स्थिति में उपस्थित है जिसके चारों ओर तिरछी चट्टानें और गहन समुद्र भरा हुआ है। इस संविधान को यदि हम एक तरफ अधिक झुकने के खतरे से बचाने की कोशिश करते हैं तो उसके दूसरी ओर झुकने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। ब्रिटेन की जटिल शासन-व्यवस्था के समान

शासन व्यवस्था में कोई मौलिक परिवर्तन करना ऐसी कठिनाइयों से भरा हुआ है कि जिसमें कोई विचार-शील व्यक्ति उसका निश्चय करने को, कोई दूरदर्शी व्यक्ति उसे क्रियान्वित करने को और कोई ईमानदार व्यक्ति उसका वचन देने को एकदम तैयार नहीं हो सकता।"

बर्क के राजनैतिक जीवन के समय इंग्लैंड के इतिहास में दूसरी महत्वपूर्ण घटना इंग्लैंड के विरुद्ध अमेरिकन जनता का विद्रोह था। उस समय प्रधान मंत्री लार्ड नार्थ के सामने अमेरिका की समस्या सबसे ज्यादा संकटपूर्ण थी। एडमंड बर्क ने इसके सम्बन्ध में 'स्पीच ऑन कान्सिलियेशन विथ अमेरिका (Speech on conciliation with America) नामक रचना सन् १७७५ में प्रकाशित की। इसमें उसने अमेरिका के प्रति ब्रिटेन की अनुदार-नीति का विरोध किया। एक प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र होने के नाते ब्रिटिश पार्लियामेंट का उपनिवेशों के ऊपर कर लगाने के अधिकार का तो बर्क ने विरोध नहीं किया, पर जिन परिस्थितियों में वे कर लगाये गये थे, उसकी उसने निन्दा की। उसने कहा—"सवाल यह नहीं है कि तुम्हें कर लगाकर उपनिवेशों की प्रजा को पीड़ित करने का अधिकार है या नहीं बल्कि मुख्य सवाल यह है कि वहाँ की प्रजा को सुखी बनाने का तुम्हारा कर्तव्य है या नहीं। सवाल यह नहीं है कि कानून के अनुसार हम क्या कर सकते हैं। बल्कि सवाल यह है कि ईसाइयत, न्याय और विवेक के अनुसार हमें क्या करना चाहिए। राजनीति में बुद्धिमत्ता को उदारता के साथ चलना चाहिए। एक महान साम्राज्य और एक संकीर्ण हृदय साथ साथ नहीं चल सकते। उसने यह भी कहा कि दमन नीति का अवश्यम्भावी परिणाम यह होगा कि उपनिवेश साम्राज्य के हाथ से निकल जायेंगे।'

इस प्रकार बर्क ने इंग्लैंड की पार्लियामेंट से न्याय, मानवता तथा शान्ति की रक्षा के लिये अमेरिकन उपनिवेशों की ओर से ११ वर्ष तक संघर्ष किया।

इसी प्रकार भारतवर्ष में किये गये वारन हेस्टिंग्ज, के अत्याचारों के विरुद्ध उसने सन् १७८८ से १७९५ तक लगातार ७ वर्ष जोरदार संघर्ष किया। वारन हेस्टिंग्ज के द्वारा जिस निर्दयता के साथ भारतवासियों पर अत्याचार किये गये और जितनी बेरहमी से भारत-वासियों को तंग किया गया, उसका वर्णन बर्क ने ऐसी भावपूर्ण प्रभावशाली, जोरदार शब्दों में किया कि पार्लियामेंट के सदस्य चकित हो गये।

इन सब विषयों के विवाद में एडमंड बर्क ने मानवता न्याय और उदारता की नींव पर ही अपनी विचार धारा की सृष्टि की थी।

बर्क के राजनैतिक जीवन की तीसरी महत्वपूर्ण घटना फ्रांस की राज्यक्रान्ति थी। इस क्रान्ति पर उसने 'रिफ्लेक्शन्स ऑन दि रिवोल्यूशन इन फ्रान्स (Reflections on the Revolution in France) नामक ग्रन्थ की रचना की जो फ्रांस की राज्यक्रान्ति के दूसरे वर्ष सन् १७९० में प्रकाशित हुआ।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के सम्बन्ध में एडमंड बर्क के विचार नये तुले और रचनात्मक होने पर भी अपनी ह्विग पार्टी के साथियों से बिलकुल भिन्न थे और यह भिन्नता इतनी जोरदार थी कि उसके लिए उसे अपनी पार्टी को छोड़कर अपने विरोधी 'टोरी दल' में सम्मिलित होना पड़ा।

जिस लक्ष्य को सामने रखकर फ्रांस की राज्यक्रान्ति आरम्भ हुई उस लक्ष्य का बर्क पूर्णतः समर्थक था मगर लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वहाँ के लोगों ने जिन साधनों का—हिंसा और गुण्डागर्दी के जिन उपायों का सहारा लिया उनके बर्क एक दम खिलाफ था। उसने देखा कि फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने राज्य तथा समाज के मूलभूत आधार को ही संकट में डाल दिया और भूत तथा वर्तमान में एक दरार पैदा कर दी, जिसके परिणाम स्वरूप स्वयं फ्रेंच राष्ट्र का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। इस स्थिति का अपने ग्रन्थ में बर्क ने जो विश्लेषण किया वह उसकी दूरदर्शिता, राजनैतिक सूझबूझ और व्यवहार कुशलता का परिचायक था। हालांकि बहुत से प्रगतिशील कहलाने वाले लोगों ने उसकी इस विचारधारा को असम्बुद्धित प्रतिगामी और अनुत्तरदायी बतलाया। फिर भी उसकी भविष्यवाणी सब भविष्यत् सही निकली। क्रांति का प्रारम्भ होने के पहले ही जबकि राजा सिंहासन पर आरूढ़ था और क्रांति का आतंक प्रारम्भ नहीं हुआ था

उसने मतवतंत्र, अराजकता, युद्ध तथा अन्त में तानाशाही की भविष्यवाणी कर दी थी।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के सम्बन्ध में मतभेद हो जाने के कारण उसने अपनी ह्विग-पार्टी और अपने पुराने मित्रों से तुरन्त सम्बन्ध विच्छेद कर लेने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं की। उसका विश्वास था कि यदि कोई पार्टी या कोई मित्र राष्ट्र के कल्याण के विरुद्ध जाती हुई दिखलाई दे तो उससे सम्बन्ध रखने में कोई तथ्य नहीं। राष्ट्र का कल्याण मुख्य उद्देश्य है पार्टी और अन्य वस्तुएँ सिर्फ साधन मात्र हैं।

एडमंड बर्क को बहुत से प्रगतिगामी लोग रूढ़िवादी और पुरानी लकीर का फकीर कहते हैं। क्योंकि उसकी राजनीति और राज्य सम्बन्धी विचार उन लोगों के विचारों से मेल नहीं खाते थे। उसका विश्वास था कि समाज में राज्य तथा राज्य संस्थाओं की उत्पत्ति क्रमागत विकास का परिणाम है जिसे व्यक्तिगत रूप से जानना या समझना बहुत कठिन है। इन संस्थाओं का निर्माण किसी एक समय या किसी एक व्यक्ति-समूह के द्वारा नहीं किया गया। बल्कि भिन्न भिन्न समयों में अनेकानेक महान मस्तिष्कों के परिश्रम से इनके अस्तित्व का निर्माण हुआ। जो भी व्यक्ति इन संस्थाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके इन भावनाओं और आदर्शों को नष्ट करना चाहते हैं वे भारी भूल करते हैं। कोई भी नवीन संस्था सुचारु रूप से कार्य न कर सकेगी, यदि उसमें ऐसे ही आदर्श तथा भावनायें उत्पन्न करने की सामर्थ्य न हो।

बर्क परिवर्तन का विरोधी नहीं था। परन्तु वह जोशीली और अविवेक पूर्ण भावनाओं के आधार पर क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का विरोधी था। हरेक परिवर्तन को सन्तुलन कायम रखते हुए विवेक के साथ करने का वह पक्षपाती था। वह भावनाओं के प्रवाह में बहने वाला नहीं था। उसकी मान्यता थी कि राज्य तथा समाज का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है। वह मनुष्य की कृत्रिम रचना नहीं है। वह चाहता था कि शासन के नियमों की जटिलता का हल निर्विकल्प बुद्धि से नहीं हो सकता। इसलिए एक राजनीतिज्ञ को निर्विकल्प बुद्धि का भक्त होने की अपेक्षा चतुर, व्यवहार कुशल और इतिहास का पारदर्शी विद्वान होना ज्यादा आवश्यक है।

धर्म के सम्बन्ध में भी एडमंड बर्क के विचार बिल्कुल स्पष्ट थे। उसका विचार था कि बिना धर्म भावना के कोई भी व्यक्ति एक अच्छा नागरिक नहीं हो सकता। प्रत्येक समाज और सरकार को वह विश्व की ईश्वरीय नैतिक व्यवस्था का एक अंग समझता था। इसी कारण उसका धार्मिक दृष्टिकोण उपयोगिता वादियों के दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न था।

एडमंड बर्क को समाजवाद तथा लोकतंत्री सिद्धान्तों में अधिक विश्वास नहीं था। उसके मतानुसार प्रभुता-सम्पन्न जनता के ऊपर कोई नियंत्रण नहीं लगाया जा सकता। जन साधारण द्वारा किये गये अपराधों के लिए किसी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। जन साधारण भी किसी समय उतना ही अत्याचारी और दमनकारी हो सकता है, जितना कि राजा या विशिष्ट वर्ग। सरकार का सर्वोत्तम रूप वह कुलीन तंत्र को मानता था। और राजतंत्र पर उसे इसलिए विश्वास था कि उसकी परंपरा, भक्ति सदाचार और बुद्धिमत्ता की नींव पर रहती है।

अपने अपील फ्राम दी न्यू टु दी ओल्ड विग्स नामक पुस्तक में वह लिखता है कि यदि हमारी यह इच्छा है कि मनुष्य समाज शान्त और सुखी रहे तो हमको उसे एक ऐसे अनुशासन में रखना होगा जिसका संचालन बुद्धिजीवी और उदार भावनाओं के लोग करते होंगे। उस संचालन में धनी लोग गरीबों की सहायता, और ज्ञानी लोग अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करेंगे और उनकी रक्षा करेंगे।

एडमंड बर्क का विश्लेषण करते हुए 'वॉल्सी' नामक विद्वान ने लिखा है कि—"यह सब कुछ होते हुए भी इंग्लैण्ड के राजकीय विचारों के इतिहास में बर्क का अस्तित्व एक महान और प्रतिभापूर्ण अस्तित्व है। उसमें 'हॉब्स की तर्क शैली' की गंभीर अवलोकन शक्ति तथा मीन की नैतिक आदर्शवादिता के न होते हुए भी उसमें इन सब महान् गुणों का एक बड़ा भाग पाया जाता है। अपने समय की राजनैतिक विचार धारा को उसने एक ऐसी नवीन दिशा, भावना तथा उसकी जटिलता का

पूर्ण ज्ञान प्रदान किया जो किसी भी राजनीतिज्ञ में नहीं पाया जाता।

सन् १७९७ में इस महान् राजनीतिज्ञ का देहान्त हुआ।

एडवर्ड

इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध राजा 'अल्फ्रेड महान' का लड़का जिसने सन् ९ १ से सन् ९२५ ई० तक राज्य किया। उस समय आधा इंग्लैण्ड डेन लोगों के आधीन था।

एडवर्ड ने गद्दी पर बैठते ही अपने राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ किया। एडवर्ड की बहिन एथिलफ्लीडा, जो मर्सिया के राजा को ब्याही थी और अब वैधव्य की दशा में थी, बड़ी बलवती स्त्री थी। उसकी सहायता से एडवर्ड ने बहुत जल्दी चैस्टर और कई स्थान डेन लोगों से ले लिए और जब एथिलफ्लीडा मर गई तो मर्सिया का आधा भाग भी एडवर्ड को मिल गया। इससे एडवर्ड बहुत शक्तिशाली हो गया।

एडवर्ड कन्फेसर

इंग्लैंड के राजा इथिलरेड अनरेडी का पुत्र, एडवर्ड कन्फेसर जिसने सन् १ ४२ से १ ६६ ई० तक राज्य किया।

एडवर्ड का लालन पोषण नारमण्डी में हुआ था। इसलिए कई अंशों में नारमन लोगों का प्रभाव इसके हृदय पर जमा हुआ था। अंग्रेजों से इसको कुछ घृणा सी थी। इसीसे राज्य के उच्चपद नारमन लोगों को ही दिये जाते थे। कैंटरबरी का बड़ा पादरी भी एक नारमन को ही बनाया गया था। राजसभा में अंग्रेजी भाषा की जगह फ्रेंच-भाषा बोली जाती थी। इन सब बातों को देखकर अंग्रेज लोग इससे बहुत नाराज रहा करते थे। फलस्वरूप वैसेक्स के राजा 'गोडविन' ने कुछ संगठन करके नारमन लोगों को राज्य से निकाल दिया और एडवर्ड केवल नाम मात्र का राजा रह गया।

एडवर्ड कन्फेसर के जीवन का सब से महत्वपूर्ण कार्य वेस्ट मिनिस्टर के गिर्जे का निर्माण है। यह गिर्जाघर लन्दन का एक प्रसिद्ध गिर्जा है। इसकी नींव एडवर्ड कन्फेसर ने डाली थी।

एडवर्ड प्रथम

इंग्लैंड के प्लांटेजेनेट राजवंश के हेनरी तृतीय का पुत्र एडवर्ड प्रथम, जिसका शासन काल सन् १२७२ से १३ ७ तक है।

एडवर्ड सर्वांग सुन्दर और लम्बा वीर पुरुष था। अपने पिता की मृत्यु के समय यह एशिया के अन्तिम युद्ध के समय जेरूसलेम में था। वहाँ से उसे इंग्लैण्ड पहुँचते-पहुँचते दो वर्ष लग गये। जिस समय यह और उसकी पत्नी 'एलीनर' लन्दन में पहुँचे तो उनका बड़े आदर से सत्कार किया गया। निःसन्देह 'एडवर्ड प्रथम' इंग्लैण्ड के मध्यकालीन राजाओं में सर्वश्रेष्ठ था।

शासन पर आते ही उसने प्रजा के हितकारी कार्यों को करना प्रारम्भ किया। यह बहुत बुद्धिमान था। उसने विदेशियों को कभी उच्च पदाधिकारी नहीं बनाया। उसने प्रजा के साथ कभी ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की जिसका वह पालन न कर सके।

सन् १२९५ ई० में उसने इंग्लैंड में पार्लमेंट की स्थापना की और उसके 'हाउस आफ लार्ड्स' और 'हाउस आफ कामन्स' नाम के दो विभाग कायम किए। एडवर्ड ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि बिना कामन्स सभा की स्वीकृति के किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जायगा। उसके इस कार्य से कामन्स सभा का झुकाव उसकी ओर हो गया था और उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी।

इसी समय रोमन चर्च के पोप ने यह आज्ञा दी कि कोई पादरी राजाओं को कोई कर न दे। एडवर्ड ने इस पर बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया और कह दिया कि तुम यदि कर नहीं देना चाहते हो तो हम भी अपने न्यायालयों में तुम्हारे मुकदमे न करेंगे। इस पर पादरी लोग बड़े भयभीत हो गये और मजबूर होकर उन्होंने कर देना स्वीकार किया।

एडवर्ड प्रथम ने वेल्स के राज्य को जीतकर अपने अधीन कर लिया। उसने अपने पुत्र राजकुमार एडवर्ड

को 'प्रिन्स ऑफ वेल्स' की पदवी से विभूषित किया। तब से इंग्लैंड नरेश का सबसे बड़ा पुत्र 'प्रिन्स ऑफ वेल्स' कहलाता है।

स्काटलैंड के राजा एलेक्जेंडर तीसरे की मृत्यु पर वहाँ की राजगद्दी के लिए 'जान बेलियल' और 'राबर्ट ब्रूस' के बीच में झगड़ा चला। स्काटलैंड वालों ने एडवर्ड प्रथम को फैसला करने के लिए बुलाया। एडवर्ड ने इस शर्त पर फैसला करना स्वीकार किया कि स्काटलैंड इंग्लैंड के सरदार का आधिपत्य स्वीकार कर ले। स्काटलैंड के मंजूर करने पर एडवर्ड प्रथम ने जान बेलियल को स्काटलैंड के राजा बनाने की व्यवस्था दे दी। एडवर्ड ने यह भी माँग की कि स्काटलैंड के फैसलों के विरुद्ध इंग्लैंड में अपील हुआ करे। इस पर स्काटलैंड वाले बहुत बिगड़ गये और जान बेलियल को अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने को मजबूर कर दिया। अंग्रेजों ने बेलियल को परास्त करके गद्दी से उतार दिया और अंग्रेजी शासक नियुक्त कर दिया।

एडवर्ड स्काटलैंड से वह पत्थर भी उठा लाया जिसे भाग्य शिला (Stone of destiny) के नाम से पुकारते हैं। स्काटलैंड के राजाओं का अभिषेक इसी पत्थर पर हुआ करता था। एडवर्ड प्रथम के समय से यह पत्थर लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर गिर्जे में रखा हुआ है। इंग्लैंड के राजाओं का अभिषेक इसी पत्थर पर हुआ करता है। स्काटलैंडवालों का विश्वास है कि यह पत्थर जहाँ जायेगा, वहीं स्काटलैंड का भाग्य भी जायगा।

३ वर्ष पीछे इंग्लैंड का राजा ही स्काटलैंड का सम्राट् हो गया और इस प्रकार स्काटलैंड वालों का यह विचार सत्य निकला।

एडवर्ड के द्वारा स्काटलैंड पर अधिकार कर लेने से वहाँ के लोगों में इंग्लैंड के प्रति विद्रोह की भावनाएँ फूट पड़ीं। पहले विलियम वॉलेस नामक व्यक्ति ने और उसके बाद राबर्ट ब्रूस ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया यद्यपि ये दोनों विद्रोह निर्दयतापूर्वक दबा दिये गये पर इसी विद्रोह का कार्य पूरा करने के लिए एडवर्ड प्रथम गया तो रास्ते ही में उसकी सन् १३ ७ में मृत्यु हो गई।

एडवर्ड द्वितीय

पहले एडवर्ड की मृत्यु पर उसका लड़का एडवर्ड द्वितीय के नाम से इंग्लैंड की गद्दी पर बैठा। इसका शासन काल सन् १३०७ से १३२७ तक था। इसे अपने ऐशो आराम और विषय-वासना से फुरसत नहीं थी। शासन कार्य में इसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि स्काटलैंड के राबर्ट ब्रूस ने अपनी शक्ति बढ़ाकर अंग्रेजों की सेनाओं को बैनकबर्न की लड़ाई में पूरी तरह हरा कर स्काटलैंड को स्वतंत्र कर दिया इसके बाद फिर अंग्रेज स्काटलैंड को न ले सके। एडवर्ड द्वितीय की इस अयोग्यता को देखकर उसे गद्दी से उतार दिया गया और उसकी जगह उसका पुत्र एडवर्ड तृतीय के नाम से इंग्लैंड की गद्दी पर बैठा।

एडवर्ड तृतीय

तृतीय एडवर्ड सन् १३२७ में गद्दी पर बैठा और १३७७ तक अर्थात् ५० वर्ष तक इसने राज्य किया।

तृतीय एडवर्ड के शासनकाल की प्रधान घटनाएँ फ्रांस के साथ शतवर्षीय युद्ध और जॉन विक्लिफ के द्वारा रोमन चर्च के खिलाफ चलाया हुआ आन्दोलन था।

शतवर्षीय युद्ध का कारण यह था कि फ्रांस नरेश चौथे फिलिप की लड़की इजाबेला एडवर्ड तृतीय की माता थी। जब चौथे फिलिप की मृत्यु के पश्चात् उसके तीनों लड़के भी निःसंतान मर गये तो फ्रान्स की गद्दी का हक एडवर्ड तृतीय को जाता था। पर फ्रांस वाले किसी अंग्रेजी सम्राट को अपना राजा बनाना नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होंने उसी वंश के एक और व्यक्ति को छठे फिलिप के नाम से फ्रांस की गद्दी पर बैठा दिया लड़ाई का मुख्य कारण यही था और वैसे भी इंग्लैंड वाले फ्रांस वालों से चिढ़े हुये थे। फ्रांस फ्लैंडर्स पर अधिकार करना चाहता था। जो कि अंग्रेजों का प्रधान व्यापारिक केन्द्र था। यह युद्ध सन् १३३८ से १३७७ तक और सन् १४१५ से १४५३ तक चला।

पहला सामुद्रिक युद्ध बेलजियम के स्लूज नामक स्थान पर हुआ जिसमें इंग्लैंड की भारी विजय हुई। इस युद्ध में

और इटली के साथ मिलकर उसने अपना एक संघ बना लिया था। लाचार इंग्लैण्ड को भी अपने पुराने दुश्मन फ्रांस और रूस के साथ समझौता करना पड़ा। सन् १९०४ में उसने फ्रांस के साथ और सन् १९०७ में रूस के साथ इंग्लैण्ड के समझौते हुए।

इसके सिवाय सप्तम एडवर्ड के राज्यकाल में मजदूरी की दशा सुधारने, शिक्षा विधान में सुधार करने, वृद्धावस्था में पेंशन देने इत्यादि अनेक प्रकार के कानूनों का निर्माण हुआ।

सप्तम एडवर्ड स्वयं शान्तिप्रिय थे और उनका शासन काल भी सारे साम्राज्य में शान्ति के साथ ही बीता। यद्यपि युद्ध के बादल गड़गड़ाने लग गये थे। सन् १९१ में इनकी मृत्यु हुई।

एडवर्ड अष्टम

इंग्लैण्ड के सम्राट जार्ज पंचम के पुत्र जो सन् १९३६ में इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठे।

एडवर्ड अष्टम की शिक्षा तथा सामरिक शिक्षा समुचित रूप से सम्पन्न हुई। प्रथम महायुद्ध में उन्होंने युद्ध सम्बन्धी विशेष अनुभव प्राप्त किया। सन् १९१९ से १९२९ तक उन्होंने संसार के विभिन्न देशों की यात्रायें कीं। इससे उनका सम्मान बहुत बढ़ गया।

सन् १९३६ में ये गद्दी पर बैठे मगर कुछ समय पश्चात् उनके सामने एक कठिन वैधानिक प्रश्न उपस्थित हो गया। मिसेज सिमसन नामक एक अमेरिकन युवती से उनका प्रेम हो गया और वे उससे विवाह करना चाहते थे, मगर इंग्लैण्ड के राजवंशीय विधान के अनुसार वे ऐसा विवाह नहीं कर सकते थे। अब उनके सामने प्रश्न यह था कि यदि सम्राट की गद्दी पर रहते हैं तो यह विवाह नहीं हो सकता और यदि विवाह करते हैं तो सम्राट की गद्दी नहीं रह सकती। अष्टम एडवर्ड ने अपने प्रेम की वेदी पर सम्राट पद का बलिदान कर दिया और मिसेज सिमसन से विवाह कर विंडसर के ड्यूक बन गये।

एडवर्ड जेनर

माता (चेचक) के टीके का आविष्कारक सुप्रसिद्ध अंग्रेज डॉक्टर। जिसका जन्म सन् १७४९ में और मृत्यु सन् १८२३ में हुई।

एडवर्ड जेनर का जन्म इंग्लैण्ड के ग्लाउ सेस्टर शायर नामक स्थान पर हुआ था। पौधों और पक्षियों के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि थी।

एडवर्ड जेनर जब १९ वर्ष के थे तब उन्होंने यह अनुभव किया कि दुधारी गायों को दुहने के कारण जिन ग्वालिनों के हाथ में चेचक निकल आती है वे फिर कभी सारे शरीर में चेचक से आक्रान्त नहीं होती। उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि गायों की चेचक, मनुष्यों की चेचक और घोड़े की ग्रीज ये एक ही तरह की बीमारियाँ हैं।

कई वर्षों पश्चात् सन् १७९६ में उन्होंने पूरे साहस के साथ प्रयोग के रूप में जेम्स फिप्स नामक बच्चे पर अपने प्रसिद्ध टीके का प्रयोग किया। जेम्स उस समय आठ वर्ष का था। उसके माता पिता को एडवर्ड जेनर पर इतना विश्वास था कि उन्होंने एक ग्वालिन के हाथ के फफोले के साथ का टीका उस बच्चे को लगाने की अनुमति दे दी। दो मास के पश्चात् वह बच्चा चेचक के साथ से तो प्रसिद्ध हुआ मगर उसे चेचक नहीं निकली।

सन् १७९८ में जेनर ने अपने आविष्कार को प्रकाशित कर दिया इस टीके के प्रचार से सारे इंग्लैण्ड में बड़ा हो हल्ला मचा। शुरू शुरू में कई टीके गलत लग जाने से बहुत से लोगों का नुकसान भी हुआ मगर धीरे धीरे सन् १८०५ में एडवर्ड जेनर के टीके के प्रभाव से चेचक से मरने वालों की संख्या आधी रह गई। इसके पश्चात् तो सारे संसार में इस टीके का प्रचार हो गया।

एडवर्ड जेनर इस टीके के मूल आविष्कारक नहीं थे। उनसे पहले सन् १७१८ में मेरी वर्ट्ली मान्टेग्यू ने भी चेचक के साव से टीका लगाने की पद्धति का आविष्कार किया था मगर उसे सफलता नहीं मिली और उसके प्रयोग से कई जान चली गई।

एडवर्ड लिटन

(Edward Lyton)

अंग्रेजी साहित्य में रोमहर्षक और ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रसिद्ध लेखक जिसका जन्म सन् १८ १ में और मृत्यु १८७१ में हुई।

एडवर्ड लिटन के उपन्यासों में 'दी लास्ट डेज आफ पाम्पेयी' "रिएन्जी" 'दी कमिंगरेस" इत्यादि उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हैं।

एडवर्ड गिबन

(Edward Gibbon)

अठारहवीं सदी में अंग्रेजी साहित्य का प्रसिद्ध इतिहास लेखक जिसका जन्म सन् १७३७ में और मृत्यु १७९४ में हुई।

एडवर्ड गिबन का लिखा हुआ "फाल आफ दी रोमन एम्पायर' अंग्रेजी साहित्य के ऐतिहासिक क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हुआ। एडवर्ड गिबन की रचनाओं ने उस समय के साहित्य को बहुत प्रभावित किया। उसकी लिखी हुई आत्मकथा या आत्मोपकथाओं ने अंग्रेजी गद्य शैली को एक नवीन मोड़ दिया।

एडवर्ड फिट्ज़रलेण्ड

उन्नीसवीं सदी का एक प्रसिद्ध कवि जिसने 'उमरख़ैयाम' की ७५ रुबाइयों का अंग्रेजी में छन्द-बद्ध अनुवाद कर अमर ख्याति प्राप्त की। इसका जन्म सन् १८ ९ में और मृत्यु १८८३ में हुई।

इन रुबाइयों के अनुवाद से उसे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। उसके अनुवाद में वह माधुर्य, स्वाभाविकता और ओज पाया जाता है कि अनुवाद होते हुए भी साहित्य जगत् में वह अमर हो गया। इस अनुवाद के सम्बन्ध में अधिकारी लोगों की राय है कि वह मूल से भी अधिक सुन्दर बन गया है।

एडम्स-जॉन

अमेरिका के द्वितीय राष्ट्रपति जिनका जन्म सन् १७३५ में और मृत्यु सन् १८२६ में हुई।

एडम्स जॉन संविधान के निर्माता थे अमेरिकन संविधान की रचना में इनका भी महत्वपूर्ण सहयोग था। ये अमेरिका के सुप्रसिद्ध थामस जेफर सन् और अलेक्जेंडर हैमिल्टन के साथी थे मगर बाद में गम्भीर मतभेद हो जाने से परस्पर विरोधी हो गये।

इंग्लैंड के द्वारा अमेरिका में जारी किये हुए "स्टाम्प-एक्ट" का विग दल के नेता के रूप में इन्होंने बड़े जोरों से प्रतिवाद किया।

एडम्स सन् १७९६ में संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गये मगर कुछ तो उस समय की कठिन और विलक्षण राजनीतिक परिस्थिति के कारण और कुछ अपनी दुराग्रहपूर्ण प्रकृति के कारण वह अपनी पार्टी के संगठन को स्थिर न रख सके। हैमिल्टन के साथ इनका विरोध हो गया। जिसके कारण इनका राष्ट्रपतित्व अधिक कीर्तिपूर्ण न रहा।

इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप सन् १८ में जब वह दुबारा राष्ट्रपति पद के लिए खड़े हुए तो उस समय के प्रसिद्ध नेता 'थामस जेफरसन' के मुकाबले में इनको करारी हार खानी पड़ी।

सन् १८२६ में इनका देहान्त हुआ।

एडमंड स्पेंसर

अंग्रेजी भाषा का युगान्तरकारी कवि, जिसका जन्म सन् १५५२ में और मृत्यु सन् १५९९ में हुई।

एडमंड स्पेंसर उस समय में हुआ जिस समय की अंग्रेजी-साहित्य में रेनेसाँस या पुनर्जागरण का युग कहते हैं। वह अधिकतर आयर्लैंड के लिसेस्टर के 'अर्ल' के संरक्षण में रहा। उसकी कविताओं में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों की धारायें अविरल रूप से बहती हैं। उसकी कवितायें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर निर्मित की गई हैं और

यद्यपि आज के युग में इस तरह की पृष्ठभूमि अपना महत्व खो चुकी है फिर भी 'स्पेंसर की काव्य अभिव्यञ्जना, छन्द, माधुर्य और कल्पना की उड़ान आज के पाठक को भी प्रभावित करती है।

एडमंड स्पेंसर की रचनाओं में 'दि शेपर्ड्स कैलेण्डर' और 'दि फेयरी क्वीन' बहुत प्रसिद्ध हैं। फेयरी क्वीन की नायिका तो उसने स्वयं रानी एलिज़ाबेथ को बनाया है। फेयरी क्वीन ने स्पेंसर के परवर्ती अंग्रेज कवियों को काफी प्रभावित किया।

एण्ड्रू मारवेल

अंग्रेज़ी-भाषा का एक प्रसिद्ध कवि जिसका जन्म सन् १६२१ में और मृत्यु सन् १६७८ में हुई।

ऐंड्रू मारवेल ने अपनी रचनाओं में क्रामवेल और चार्ल्स द्वितीय के समय के इंग्लैण्ड का मुन्दर भाषा में वर्णन किया है। प्युरिटन होने के कारण उसकी कविताओं में व्यंग और तानेबाजी का विशेष समावेश पाया जाता है।

एण्टवर्प

पश्चिमी यूरोप के बेलजियम राज्य की राजधानी।

एन्टवर्प नगर की स्थापना ईसा की ६वीं शताब्दी के करीब हुई थी। यहाँ के निवासी उस समय गेनमेरियन कहलाते थे। १४वीं शताब्दी का बना हुआ 'नैट्रोडेम' नामक गिर्जाघर एन्टवर्प का सबसे प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान है। यह गाथिक स्थापत्य-कला का उत्तम नमूना है। इसमें एक विशाल मीनार बनी हुई है, जिसकी ऊँचाई ४ सौ फीट है। गिर्जे के इस विशाल भवन का क्षेत्रफल ७ हजार वर्ग फीट है। इस भवन में प्रसिद्ध चित्रकार रूबेन्स की चित्रकला देखने के योग्य है।

आधुनिक एन्टवर्प यूरोप के अत्यन्त सुन्दर और विकसित नगरों में से एक है। यह नगर खाई और विशाल दुर्गों से घिरा हुआ है और व्यापारिक दृष्टि से इसका महत्व बहुत अधिक है।

एडम्स जॉन क्विंसी

अमेरिका के द्वितीय राष्ट्रपति एडम्स जान के पुत्र 'एडम्स जॉन क्विंसी जिनका जन्म सन् १७६७ ई० में और मृत्यु सन् १८४८ में हुई।

सन् १८१७ में जब 'जेम्स मनरो' संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए तब 'जानक्विंसी' उनके राजमंत्री बने।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध 'मनरो-सिद्धान्त' के स्थापक 'एडम्स क्विंसी ही थे, यह सिद्धान्त उन्हीं का बनाया हुआ था, जो 'मनरो-सिद्धान्त' के नाम से अमेरिका में प्रसिद्ध हुआ। इसकी वजह से इनकी कीर्ति अमेरिका में बहुत बढ़ गई और मनरो के बाद जब अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव हुआ तो एडम्स जॉन क्विंसी अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गये। वो इस पद पर सन् १८२५ से १८२९ तक रहे। सन् १८२९ में वे इस पद से अलग हुए।

एडम्स जॉन क्विंसी का राष्ट्रपति काल अधिक प्रकाशपूर्ण नहीं रहा। ऐंड्रू जैक्सन के साथ उनकी प्रतिद्वन्दिता ने बहुत कड़ा रूप ग्रहण कर लिया था।

पर उसके बाद सन् १८३१ से गुलामों के अधिकारों के लिए वे लड़ते रहे और उसमें इन्हें काफी सफलता भी मिली।

एडम्स जॉन काउच

इंग्लैंड का एक प्रसिद्ध ज्योतिषी, जिसका जन्म सन् १८१९ में और मृत्यु सन् १८९२ में हुई।

'एडम्स काउच ने आकाशीय यूरेनस' नामक ग्रह के सम्बन्ध में कुछ नवीन अनुसन्धान किये। उसको पता लगा कि यूरेनस से भी अधिक ऊँचाई पर एक दूसरा प्रभावशाली ग्रह है जिसके प्रबल आकर्षण से यूरेनस नामक ग्रह कभी-कभी अपने मार्ग से विचलित हो जाता है।

सन् १८४५ में उसने इस नवीन ग्रह की स्थिति के सम्बन्ध में अपने अनुसन्धान तैयार करके कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी में भेजे। मगर उसके दुर्भाग्यवश इसी समय

फ्रांस के लेवेरियर नामक ज्योतिषी ने भी इसी ग्रह पर अपना अनुसन्धान करके जर्मन ज्योतिषी गेले के पास खोज करने के लिये भेज दिया और इस खोज के परिणाम स्वरूप इस ग्रह का नाम 'लिवेरियर' रख दिया गया मगर पीछे जाकर इंग्लैंड के ज्योतिषियों के प्रयत्न से इसका नाम बदलकर 'नेपच्यून' रखा गया और इस खोज का श्रेय एडम्स और लेवेरियर दोनों को मिला।

इसके बाद भी एडम्स ने कैम्ब्रिज वेध शाला में ग्रहों के सम्बन्ध में और भी कई महत्त्वपूर्ण खोजें कीं।

एडिसन जोसेफ
(Joseph Addison)

अंग्रेजी भाषा का प्रसिद्ध गद्य लेखक, निबन्धकार और समालोचक और पत्रकार, जिसका जन्म सन् १६७२ में और मृत्यु सन् १७१६ में हुई।

एडिसन जोसेफ ने अंग्रेजी साहित्य में निबन्ध-लेखन का एक नवीन स्तर कायम किया। सन् १७११ से प्रारम्भ होने वाली अपनी 'स्पेक्टेटर' नामक पत्रिका में प्रकाशित होने वाले इनके लेखों ने अंग्रेजी साम्राज्य में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की और इन्हीं के बल पर इन्होंने काफी धन और यश कमाया हालांकि यह पत्रिका केवल साल भर तक ही चली। इसके बाद इनका ध्यान रंगमंच की ओर भी गया। वहाँ पर इनके लिखे हुए "केटो" नामक ट्रेजिडी का सफल अभिनय हुआ।

एडीसन जोसेफ का वैवाहिक जीवन अत्यन्त दुःखमय रहा तथा शराब के अत्यधिक व्यसन ने इनके स्वास्थ्य को जर्जर कर दिया। फलस्वरूप सन् १७१६ में इनकी बड़ी दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति में मृत्यु हो गई।

एडीसन (टामस अल्वा एडीसन)

संसार का महान वैज्ञानिक और आविष्कारक जिसका जन्म सन् १८४७ को ११ फरवरी को अमेरिका के 'मिलान' नामक नगर में हुआ।

इनके पिता का नाम सेमुअल एडीसन और माता का नाम नैंसी इलियट था। एडीसन का स्वास्थ्य बचपन से खराब रहता था इसलिये ये स्कूल नहीं भेजे गये। इस कारण इन्हें जो कुछ शिक्षा मिली वह घर पर ही माता के द्वारा मिली। घर पर ही पुस्तकें पढ़ पढ़ कर उन्होंने स्वतन्त्र रूप से विचार करने की शक्ति प्राप्त करली। उन्होंने बिना गणितशास्त्र के ज्ञान के ही अपने धैर्य और परिश्रम से सैकड़ों आविष्कार कर लिए। शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा वह प्रयोगात्मक व्यावहारिक ज्ञान को अधिक महत्व देते थे।

एडीसन ने १० वर्ष की अवस्था में ही रसायनशास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। विज्ञान कला के बारे में वे जो कुछ भी पढ़ते उसे वे अपने प्रयोगों के द्वारा क्रियात्मक रूप देकर अनुभव प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते थे। यही कारण है कि इस छोटी सी अवस्था में ही इन्होंने अपने घर पर एक छोटी सी प्रयोगशाला खोल ली थी।

एडीसन रेल में समाचार पत्र बेचा करते थे और इसी आमदनी से अपनी प्रयोगशाला का खर्च चलाते थे। पत्र विक्रेता की स्थिति से सन्तुष्ट न रह कर इन्होंने गार्ड के डिब्बे से एक निजी समाचार पत्र निकालना प्रारम्भ किया। इस पत्र का आदि से लेकर अन्त तक सारा काम अकेले एडीसन को ही करना पड़ता था। इसी डिब्बे में एडीसन ने एक प्रयोग शाला भी स्थापित कर ली थी।

एक दिन कुछ प्रयोग करते समय रेल के तख्ते पर किसी विस्फोटक द्रव्य के गिर जाने से डिब्बे में आग लग गई। गार्ड ने आकर उनको दो तमाचे लगाये और प्रयोग शाला की शीशियों को बाहर फेंक दिया। फल यह हुआ कि उनकी प्रयोगशाला भी नष्ट हो गई और थप्पड़ लगने से वे एक कान से बहरे भी हो गये पर वे इस घटना से विचलित न हुए, बल्कि अपना काम करते रहे।

इसके बाद उन्होंने अपने इंजिन ड्राइवर मित्रों से इंजिन की मैशीनरी का ज्ञान प्राप्त किया और तार घर में जाकर तार का काम भी सीखा।

इसके पश्चात् न्यूयार्क की 'गोल्ड इण्डीकेटर कम्पनी' में उनको सर्विस लग गई। एक दिन वहाँ की मशीन में कुछ खराबी हो गई, जिसे वहाँ के इंजिनियर ठीक नहीं कर सके। एडीसन ने अपने कौशल-पूर्ण दिमाग से उस मशीन को ठीक कर कम्पनी के मालिक पर अपनी धाक जमा दी।

इसके बाद उन्होंने कम्पनी के कार्य में सुविधा उत्पन्न करने वाले कई आविष्कार किये। इन आविष्कारों से प्रसन्न होकर कम्पनी के मालिक ने युवक एडीसन से उन आविष्कारों का मूल्य मांगने को कहा। एडीसन उन आविष्कारों का मूल्य ५ हजार डालर माँगना चाहते थे, मगर उन्हें यह रकम माँगने का साहस नहीं हुआ और मालिक से कह दिया कि वह जो कुछ मुनासिब समझें, दे दें। कम्पनी के मालिक ने पूछा—क्या ४ हजार डालर काफी होंगे? एडीसन अपनी इस आकस्मिक समृद्धि से चकित होकर बड़ी खुशी से घर लौटे।

एडीसन ने टेलिग्राम के काम में बहुत सी इजादें कीं। एक ही तार पर कई सम्वाद भेजने की विधि उन्होंने निकाली। बिजली की रोशनी के लिये छोटे-छोटे लैम्पों का इजाद करने में उन्होंने दिन-रात एक कर दिया। लड़ाई के दिनों में उन्होंने युद्ध-सामग्री सम्बन्धी आविष्कार कर देश की बड़ी सेवा की।

मगर 'ग्रामोफोन' के आविष्कार ने एडीसन को संसार में बहुत प्रसिद्ध कर दिया। सन् १८७७ में उन्होंने ग्रामो फोन का आविष्कार किया। इस आविष्कार को देखकर एडीसन के सहकारी लोगों के हर्ष का पारावार न रहा। वे लोग उनके चारों ओर मण्डल बांध कर नाचने लगे पर एडीसन ने जब तक इस मशीन को उपयता की चरम सीमा तक नहीं पहुँचा दिया, तब तक उन्होंने साँस नहीं ली।

इस यन्त्र का आविष्कार टेलीफोन से ही हुआ था। टेलीफोन के किसी यन्त्र को एडीसन एक सूई की सहायता से सुधार रहे थे। सहसा उसमें कुछ शब्द उत्पन्न हुआ। उससे एडीसन ने यह तत्व निकाला कि सूई के कंपनों से किसी पत्तर में कम्पन उत्पन्न कर के शब्द उत्पन्न किया जा सकता है। सन् १९१ में अनेक सुधारों के बाद ग्रामोफोन को वर्तमान रूप मिला।

२१ अक्टूबर सन् १८७९ ई० को एडीसन ने ४ घंटे से अधिक समय तक बिजली से जलने वाला 'फिलामेण्ट' लैम्प विश्व को भेंट किया। १८८१ में उन्होंने एडिसन प्रकार की नींव को जो कालान्तर में वर्तमान रेडियो युग का जन्मदाता सिद्ध हुआ। पचपन वर्षों में एडीसन ने प्रकाश उष्मा और शक्ति के लिए विद्युत् के उत्पादन और तीन तारों वाली वितरण प्रणाली के साधनों और विधियों पर प्रयोग किये। भूमि के नीचे केबुल के लिए विद्युत के तार को रखने और ढकने में लपेटने की पद्धति को ढूँढी। डायनुमा और मोटरों में सुधार किये। सन् १८९१ ई में इन्होंने 'चलचित्र' कैमरे को पेटेन्ट' कराया एवं इन चित्रों को प्रदर्शित करने के लिए 'कैनेटोस्कोप' का आविष्कार किया। मेनलो पार्क वेस्ट आरेंज के कारखानों में एडीसन ने ५ वर्ष के अथक परिश्रम से १०३३ आविष्कारों को पेटेन्ट कराया। इसके उपलक्ष में 'पनामा पैसेफिक प्रदर्शिनी, ने २१ अक्टूबर सन् १९१५ ई को एडीसन-दिवस का आयोजन कर के विश्व-कल्याण के लिए सबसे अधिक आविष्कारों के आविष्कर्ता इस महान वैज्ञानिक को सम्मानित किया।

१८ अक्टूबर सन् १९३१ ई० को विश्व के इस महान् वैज्ञानिक ने इस संसार से विदा ली।

एण्ड्रूज (सी० एफ०)

एक सेवाभावी ईसाई सन्त, साहित्यकार जिनका जन्म सन् १८७१ में इंग्लैंड के एक निर्धन परिवार में हुआ था और जिनके जीवन का अधिकांश समय भारत की सेवा में बीता था।

श्री एण्ड्रूज ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक ईसाई सन्त की तरह मानव सेवा का मार्ग ग्रहण कर लिया था। उनके जीवन का अधिकांश समय भारत ही में व्यतीत हुआ। सन् १९०४ में पहली बार वे भारत आये थे और उसके बाद उनके जीवन के करीब ३६ वर्ष इसी देश की सेवा में व्यतीत हुए।

सन् १९१३ में जब महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में जाकर सत्याग्रह संग्राम का प्रारम्भ किया था, उस समय श्री एण्ड्रूज ने स्वयं अफ्रीका पहुँच कर 'जनरल स्मट्स' के साथ समझौता कराने में महात्मा गांधी को पूरी सहायता की। सन् १९१९ में उन्होंने पहले पहल भारत की स्वाधीनता के लिये अपनी आवाज बुलन्द की। वास्तव में भारत की मानसिक और सांस्कृतिक चेतना का उन्होंने संसार के सामने प्रदर्शित किया था।

शर्तबन्दी गुलामी की दीर्घ कालीन प्रथा को मिटाने का प्रतिकोष भ थ उन्हीं को था। इस दिशा में यद्यपि महात्मा गांधी और माननीय गोखले ने भी बहुत प्रयत्न किया था किन्तु सी एफ एण्ड्रूज का योगदान इस क्षेत्र में बहुत मूल्यवान माना जाता है। इस प्रथा में हमारे देश के सैकड़ों हजारों आदमियों को अंगरेज भूमिपति बहका बहका कर मारीशस ट्रिनिडाड ब्रिटिश गायना, फिजी, ट्रिनीडाड इत्यादि उपनिवेशों में भेज दिया करते थे और उनके साथ अत्यन्त अमानुषिक व्यवहार किया जाता था।

सी एफ एण्ड्रूज वास्तव में एक ईसाई सन्त की तरह थे। इनके समकालीन व्यक्ति इन्हें प्रभु ईसा का सच्चा शिष्य मानते थे। भारत के ईसाई इन्हें ईश्वरीय दूत मानते थे। इन्होंने अपना सारा जीवन दीन हीन और पीड़ितों की सेवा में ही लगाया था। मानवतावादी दृष्टिकोण से ही वे दरिद्र लोगों की सेवा करते थे।

साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्र में भी एण्ड्रूज की सेवायें बहुमूल्य थीं। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के शान्ति-निकेतन में कई सालों तक उन्होंने अंग्रेजी पढ़ाने का कार्य किया था। अपनी रचना के द्वारा उन्होंने रवीन्द्र नाथ की रचनाओं का विदेशों में काफी प्रचार किया। उनके द्वारा लिखी हुई दर्जनों रचनाओं ने साहित्य को समृद्ध किया। उनके सैकड़ों लेख संसार भर के पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे। उनका राजनैतिक क्षेत्र में आना एक संयोग की बात थी। उनका वास्तविक क्षेत्र तो नैतिक और आध्यात्मिक ही था। उनकी वाणी में ईसाई मत के उसूलों की कोरी दुहाई ही नहीं रहती थी बल्कि उनका मानवतावादी दृष्टिकोण सुस्पष्ट होता था। महात्मा गांधी ने उनके प्रति श्रद्धांजलि देते हुये कहा था—

'जबतक अंग्रेज जाति में एक भी एण्ड्रूज विद्यमान है हम अंग्रेज से घृणा नहीं कर सकते।'

एडगर-एलेन पोयें (Edgar Allan poe)

अमेरिका का एक प्रसिद्ध साहित्य निर्माता जिसका जन्म सन् १८०९ में और मृत्यु सन् १८४९ में हुई।

एडगर-एलेन-पो के पिता एक प्रसिद्ध अभिनेता और माता अभिनेत्री थी। इसकी शिक्षा इंग्लैंड में हुई थी और एक पत्रकार के रूप में पहले-पहल यह साहित्य के क्षेत्र में आया था। साहित्यिक क्षेत्र के अन्तर्गत इसने सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक—दोनों ही क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

'रोमांस' और 'बुद्धिवाद' दोनों का सामञ्जस्य करके इसने 'यूरेका' के नाम से एक गद्य-पद्यात्मक शैली का साहित्य में सृजन किया। उसकी गद्य और पद्य की इन कृतियों ने यूरोपियन साहित्य को काफी प्रभावित किया।

एडिनबरा

स्कॉटलैंड की राजधानी।

एडिनबरा स्कॉटलैंड की राजधानी और एक मशहूर शहर है। स्कॉटलैंड का इतिहास एक बड़ा जटिल इतिहास है। जिस समय एँगिल तथा सेक्सन जाति के लोग ब्रिटेन में आये। उस समय फोर्थ के मुहाने के उत्तर के पहाड़ी प्रदेश में पिक्ट' नामक जाति के लोग बसे थे। पश्चिमी तट पर एक छोटा सा राज्य, आयरिश गेल्स लोगों का था जो स्कॉट कहलाते थे।

९ वीं सदी के प्रारम्भ में पिक्ट लोगों ने स्कॉट लोगों को अपना शासक मान लिया और तभी से इतिहास लेखकों ने हाईलैंड नामक प्रदेश को स्कॉटलैंड लिखना प्रारम्भ कर दिया था।

स्कॉटलैंड के इतिहास में यह एक बड़े महत्व की घटना थी कि उसके राजा लोग हाईलैंड में न रहकर लोलैंड में रहे और उन्होंने अपनी राजधानी दुर्भेद्य दुर्गान्वित एडिन बरा को नियत किया। विलियम विजेता के सिंहासन पर बैठते ही अनेक प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली नामन अमीर लोग भी इंग्लैंड की सीमा को पार कर लोलैंड में आकर बसे। इन्होंने अपने बड़े-बड़े दुर्ग स्थापित किये। इन दुर्गों में बेलियल तथा ब्रूस के दुर्ग अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जिन्होंने बाद को स्कॉटलैंड की स्वतन्त्रता के लिए बड़े-बड़े युद्ध किये।

एण्डर्सन-कार्ल-डेविड

अमेरिका के एक प्रसिद्ध भौतिक वैज्ञानिक, जिनका जन्म सन् १९ ५ में न्यूयार्क में हुआ।

सन् १९२७ से इन्होंने अन्तरिक्ष किरणों के बारे में अपने अनुसन्धान प्रारम्भ किये सन् १९३२ में अनेक अनुसन्धानों के बाद वे इस निर्णय पर पहुँचे कि अन्तरिक्ष किरणों की 'उर्जा' जब पदार्थ में परिवर्तित होती है तो एक 'इलेक्ट्रान के साथ उतनी ही धन विद्युत मात्रावाला दूसरा कण भी उत्पन्न होता है, जिसे इन्होंने 'पाजिट्रान' का नाम दिया।

पाजिट्रान का भार ठीक इलेक्ट्रान के भार के बराबर होता है। पाजिट्रान की इस खोज के उपलक्ष में सन् १९३६ में इनको भौतिक विज्ञान का 'नोबुल' पुरस्कार प्रदान किया गया।

एडम-गोटलाव

डेनमार्क का प्रसिद्ध साहित्यकार जिसका जन्म सन् १७७९ में और मृत्यु सन् १८५० में हुई।

डेनमार्क के साहित्य में एडम-गोटलाव की स्थिति शेक्सपियर के समान मानी जाती है। ९ वर्ष की आयु से ही उसने अपनी काव्य-शक्ति का परिचय देना प्रारंभ किया। किसी भी स्कूल से उसने बाकायदे शिक्षा नहीं ग्रहण की। परन्तु निजी तौर से उसने प्राचीन और नवीन साहित्य का गंभीरता से अध्ययन किया।

इसके पश्चात् इसकी अनेक रचनाएं प्रकाशित हुई, जिनसे डेनमार्क का साहित्य आलोकित हो उठा। इन कृतियों में अलादीन नामक कृति बहुत प्रसिद्ध हुई।

एण्डर्सन-हान्स क्रिश्चियन

डेनमार्क का एक प्रसिद्ध बाल साहित्यकार जिसका जन्म सन् १८०५ और मृत्यु सन् १८७५ में हुई।

डेनमार्क के साहित्य में एण्डरसन-हान्स-क्रिश्चियन की कहानी बड़ी आश्चर्य-जनक है। बचपन से ही इसमें काव्य-प्रतिभा का विकास हो रहा था। शुरू-शुरू में कठपुतलियों के ऊपर रचना करके इसने अपनी कल्पना-शक्ति का परिचय दिया।

इसके पश्चात् इसकी इच्छा गायक बनने की हुई और वह इस इच्छा से कोपेनहेगेन आया। इसके बाद गायक बनने की अभिलाषा को छोड़कर इसने 'रायल-थियेटर' में नृत्य सीखना प्रारंभ किया। सन् १८२९ ई० में इसकी पहली कृति 'फॉटराइज' प्रकाशित हुई मगर उसकी बड़ी कड़ी आलोचना हुई जिसकी वजह से यह इटली चला गया।

वहाँ से वापस लौटने पर इसकी कृति 'इम्प्रोवाइ जेटोरेन' प्रकाशित हुई जिसमें इसको अच्छी सफलता मिली।

इसके बाद इसने क्रिसमिस के अवसर पर परियों की कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। इन कहानियों से उसकी ख्याति सारे यूरोप में हो गई।

विश्व के बाल-साहित्य में इस लेखक का सबसे पहला स्थान है। विश्व की लगभग सभी भाषाओं में इसकी परियों की कहानियों के अनुवाद हो चुके हैं। इसकी अन्य रचनाओं में 'फाउ-राइज [illegible] 'दी इम्प्रोवाइ जेटोरेन 'ए निक्स बुक विदाउट पिक्चर्स' 'ओ' और मार [illegible] इत्यादि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

एण्ड्रू कानगी

अमेरिका का प्रसिद्ध धनकुबेर और [illegible] जिसका जन्म सन् १८३५ में स्काटलैण्ड के डनफर्म्लिन नामक स्थान में हुआ था।

[illegible] कार्नेगी का पिता विलियम कार्नेगी [illegible] का काम करता था। कार्नेगी का नाना थामस मारीसन अपने समय का एक प्रसिद्ध [illegible] और [illegible] था। वह 'प्रीच [illegible]' नामक एक पत्र भी निकालता था।

[illegible]

तब कार्नेगी के पिता ने अमेरिका जाने का निश्चय किया और अपना सब सामान ४ पौंड में नीलाम करके कुछ धन लेकर 'विस्कासेट' नामक जहाज पर सवार होकर यह परिवार अमेरिका पहुँचा।

वहाँ पर कार्नेगी के पिता ने टेबुल क्लाथ बुनने का और उसकी माता ने जूतों की मरम्मत करने का काम शुरू किया, मगर इससे उनका खर्च चलने में बड़ी कठिनाई होती थी। तब कार्नेगी ने स्कॉटलैंड निवासी मि० ब्लेक स्टॉक के कपड़े के कारखाने में काम करना प्रारंभ किया। सुबह से शाम तक कड़ा परिश्रम करने पर उसे एक सप्ताह में १ डालर २० सेंट मजदूरी मिलती थी।

उसके बाद सन् १८५० ई० में कार्नेगी ने पीट्सबर्ग के तार-घर में तार बाँटने की नौकरी कर ली। तार बाँटने के काम से उसका परिचय उस नगर के कई प्रसिद्ध पुरुषों से हो गया। एक वर्ष तक काम करने के बाद कार्नेगी ने तार उतारने और भेजने का काम भी सीख लिया। फिर वह शीघ्र ही सहायक-तार बाबू की नौकरी पर लग गया और उसे २५ डालर मासिक वेतन मिलने लगा।

१९ वर्ष की अवस्था में कार्नेगी ने तार घर की नौकरी छोड़कर रेलवे में नौकरी कर ली। वहाँ पर भी कार्नेगी ने अपनी बुद्धिमत्ता से अपने अफसर मि० स्कॉट को बहुत खुश कर लिया और एक वर्ष बाद ही जब मि० स्कॉट दो सप्ताह की छुट्टी लेकर घर गये तो अपना काम कार्नेगी को सिपुर्द कर गए।

इसके बाद मि० स्कॉट के सहयोग से कार्नेगी ने एक कम्पनी के ५ सौ डालर के शेयर खरीद कर पहले-पहल व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन दिनों कम्पनियाँ मासिक 'डिविडेण्ड' बाँटा करती थीं। एक दिन कार्नेगी को अपने शेयरों के डिविडेण्ड के रूप में १० डालर का चेक प्राप्त हुआ। कार्नेगी ने अपने आत्म-चरित में लिखा है कि—"मैं उस चेक को जीवनपर्यन्त नहीं भूल पाया। पूँजी के व्यवसाय में लगाने पर यही पहली बार मुझे नफे के रूप में मिला था। यह डालर मेरे पसीने की कमाई के नहीं थे। मैंने मन में सोचा कि यह मुर्गी तो सोने का अंडा देती है।"

इसके बाद रेलवे की सर्विस में कार्नेगी ने मि० स्कॉट के संरक्षण में बहुत तरक्की की। उन्हीं दिनों 'उडरफ' नामक मिस्त्री ने रात्रि भ्रमण करते समय मुसाफिरों के लिए सोने की सुविधा के लिए 'स्लीपिंग-कोच' गाड़ी का आविष्कार किया था। इस गाड़ी का विज्ञापन उसने कार्नेगी को दिखाया और कार्नेगी ने उसको दो गाड़ियाँ बनाने का कंट्राक्ट रेलवे कम्पनी से दिलवाया। इस व्यवसाय में उसने आठवाँ हिस्सा कार्नेगी का भी रखा। सोने वाली गाड़ियों की माँग चारों ओर से जारी हुई और कार्नेगी को भी इसमें अच्छा लाभ हुआ।

सन् १८५९ ई० में कार्नेगी के मालिक मि० स्कॉट रेलवे-कम्पनी के वाइस-प्रेसिडेन्ट बना दिये गये जिसके लिए उन्हें फिलाडेल्फिया जाना पड़ा। उस समय कार्नेगी की अवस्था २४ वर्ष की थी। मि० स्कॉट ने कार्नेगी के लिए रेलवे के पीट्सबर्ग-विभाग का सुपरिंटेंडेंट बनाने की सिफारिश कर दी। सन् १८५९ ई० की पहली दिसम्बर को कार्नेगी पीट्सबर्ग के सुपरिंटेंडेंट नियुक्त कर दिये गये।

सन् १८६१ ई० में गुलामी की प्रथा के सम्बन्ध में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में भयंकर गृह युद्ध छिड़ गया। मि० स्कॉट उस समय युद्ध के सहायक-मंत्री नियुक्त किये गये। उन्होंने अपनी सहायता के लिए एन्ड्रू कार्नेगी को बुला भेजा। उस समय बाल्टीमोर होकर जाती हुई 'यूनियन' की सेना पर आक्रमण शुरू हो गया था और बाल्टीमोर तथा अनापोलिस जंक्शन के बीच की रेलवे लाइन काट दी जाने से वाशिंगटन नगर से सम्बन्ध विच्छेद हो गया था। कार्नेगी के जिम्मे इसी लाइन की मरम्मत का काम सौंपा गया था। इस काम को कार्नेगी ने बड़ी तत्परता के साथ पूरा किया। इस कार्य से प्रेसिडेन्ट लिंकन के साथ कार्नेगी का सीधा सम्पर्क हुआ। प्रेसिडेन्ट लिंकन इनकी मेज के निकट आकर बैठते थे और तार के द्वारा युद्ध की जो खबरें आती थी, उन्हें बड़े ध्यान से सुनते थे।

गृह-युद्ध के समय लोगों के पास बहुत पैसा हो गये थे। फिर भी लोग सामान नहीं खरीद सकते थे। नये रेल-पथों के अभाव में अमेरिकन रेलवे की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। इस अभाव का अनुभव करके कार्नेगी ने सन् १८६४ ई० में

पीट्सबर्ग में रेल-पटरी बनाने का एक कारखाना खोला। इसके साथ ही मि० मिलर के साझे में इन्होंने रेल के डिब्बे बनाने का कारखाना पीट्सबर्ग में ही खोल दिया।

इस कम्पनी को इतनी सफलता हुई कि सन् १९०६ में इस कम्पनी के एक सौ डालर के हिस्से का दाम ३ हजार डालर हो गया।

सन् १८६२ ई० में रेलवे के लिए लोहे के पुल बनाने के लिए कार्नेगी के प्रयत्न से 'पाइपर कम्पनी' की स्थापना हुई। सन् १८६३ ई० में यह कम्पनी 'स्टोन ब्रिज कम्पनी' में मिला दी गई, जहाँ पर लोहे के बड़े-बड़े पुल अधिक संख्या में तैयार होने लगे।

इसके बाद तो कार्नेगी का भाग्य सर्वतोमुखी रूप से चमक उठा। उन्होंने कई बड़े-बड़े पुलों का ठेका लेकर उनको बड़ी सफलता के साथ बनाया और उसके बाद ही कार्नेगी ने लोहे के व्यापार में प्रवेश किया।

लोहे का व्यापार

कार्नेगी ने थॉमस मिलर, हेनरी फिप्स, और एण्ड्रू क्लोमन के साथ शुरू में लोहे की एक छोटी सी मिल की स्थापना की। सन् १८६७ में इस कारखाने के साथ और एक दूसरा कारखाना मिलाकर उसका नाम यूनियन आयरन मिल रखा गया।

सन् १८६८ में कार्नेगी का ध्यान पेन्सिलवेनिया के तेल कूपों की तरफ आकर्षित हुआ। उन्होंने चालीस हजार डालर में वहाँ के तेलकूपों को खरीद लिया। इस उद्योग में उनको एक वर्ष में दस लाख डालर का लाभ हुआ और तेलकूपों का मूल्य पचास लाख डालर हो गया। इसके पहले ही सन् १८६५ में [illegible] कम्पनी की नौकरी से त्याग पत्र दे चुके थे।

गृह युद्ध की समाप्ति पर अमेरिकन सरकार ने [illegible] के उद्योग को [illegible] के लिए [illegible] १८ [illegible] कर दिया। इससे भी कार्नेगी [illegible] हुआ। इसके पश्चात् [illegible] और [illegible] व्यापार में [illegible] प्रवेश किया और [illegible] करने लगे।

न्यूयार्क में उस समय सट्टे का व्यवसाय बड़े जोर शोर से चलता था। इनका आधिक्य देखने पर इनको भी सट्टे बाजी के लिए लोगों ने प्रेरना शुरू किया मगर कार्नेगी अपने सिद्धान्त पर इतने दृढ़ थे कि उन्होंने जीवन भर शेयरों की सट्टे बाजी में हाथ नहीं डाला। इस विषय में उनका कहना था कि—

'जो लोग किसी वस्तु के उत्पादन में संलग्न हैं उन्हें भूल से भी फाटके बाजी का नाम न लेना चाहिए। उद्योग की सफलता के लिए शान्त मन की आवश्यकता है। फाटकेबाज लोगों का मन भावों के चढ़ाव उतार पर क्षण क्षण में चंचल होता रहता है। फाटकेबाजों को अभाव में भाव और भाव में अभाव दिखाई पड़ता है। वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान उन्हें नहीं होने पाता। पर्वत को वे राई की तरह और राई को पर्वत की तरह देखते हैं। फिर शान्त और गम्भीर विचार वे कैसे कर सकते हैं। फाटकेबाजी से वस्तुओं के मूल्य में व्यर्थ की वृद्धि होती है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से इससे कुछ भी उत्पादन नहीं होता।'

इसके बाद कार्नेगी को मिसीसीपी नदी पर पुल बनाने का तथा और भी कई बड़े-बड़े कण्ट्रैक्ट मिले। जिनसे इन्हें लाखों डालर का लाभ हुआ।

इसी समय सन् १८६८ में कार्नेगी ने अपने जीवन का एक कार्यक्रम निश्चित कर कुछ आदर्श निश्चित किए। इस कार्यक्रम के सम्बन्ध में उनकी डायरी इस प्रकार है—

"सेंट निकोलस होटल न्यूयार्क दिसम्बर १८६८ ई०। अभी मैं तैंतीस वर्ष का ही हूँ पर मेरी आय [illegible] डालर सालाना की हो चुकी है। [illegible] दो वर्षों [illegible] काम करूँगा जिससे मेरी यह आय निश्चित हो जाय। इसके बाद मैं अधिक धन कमाने का प्रयत्न नहीं करूँगा। [illegible] के बाद आमदनी का [illegible] में खर्च किया करूँगा। [illegible] के लिए व्यवसाय से हाथ खींच लूँगा। [illegible] में [illegible] [illegible] करना [illegible]।"

[illegible] के सामने [illegible] रहता [illegible]। [illegible] धन [illegible] है। [illegible] मनुष्य [illegible] जीवन को [illegible] जैसा व्यवहार होता है वैसा [illegible]

में नहीं होता। मैं जिस आदर्श को सामने रक्खूँगा उसमें आवश्यकता से कम चाहूँगा। अतएव आदर्श स्थिर करते समय मुझे ऐसी बातों पर ध्यान रखना होगा जिससे मेरा चरित्र उन्नत हो। यदि मैं बहुत अधिक दिनों तक धनोपार्जन के पीछे विकल बना रहूँगा तो मेरा सुधार असम्भव हो जायेगा।'

सन् १८७० में कार्नेगी ने इस्पात के विशाल कारखाने की स्थापना की। इस कार्य में उन्हें इंग्लैंड के प्रसिद्ध व्यवसायी मि० हाग टॉम से बड़ी सहायता मिली। इस्पात के कारखाने को सुचारु रूप से चलाने के लिए कच्चे माल की अनिवार्य आवश्यकता होती है। इसलिए उन्होंने बहुत-सी लोहे की खानों को खरीद लिया। लोहे के स्थान पर इस्पात का व्यवहार प्रारम्भ हो जाने से कार्नेगी की कम्पनी को बड़ा लाभ हुआ। उन्होंने आस पास के कई और लोहे के कारखानों को खरीद कर "कारनेगी ब्रदर्स एण्ड को" के नाम से एक विशाल कम्पनी का सूत्रपात किया।

इस कम्पनी में सन् १८८८ में कारनेगी ने दो करोड़ डालर की पूँजी लगाई थी सन् १८९७ में यह पूँजी चार करोड़ पचास लाख डालर की हो गई। सन् १८८८ में इस कम्पनी में ६ लाख टन वार्षिक इस्पात का उत्पादन होता था सन् १८९७ में यही उत्पादन बढ़कर बीस लाख टन वार्षिक हो गया।

कार्नेगी महसूस करते थे कि इस औद्योगिक उन्नति में सबसे प्रधान हाथ मजदूरों का है। इसलिए मजदूरों के साथ उन्होंने हमेशा भाई-चारे का सम्बन्ध रक्खा और उनकी मांगों को हमेशा उदारता के साथ मंजूर करते रहे। इसलिए उनके कारखानों में मजदूर-हड़तालों की नौबत बहुत कम आई।

कार्नेगी-कम्पनी के इतिहास में शायद पहली और अन्तिम बार एक भीषण हड़ताल हुई। उस समय कारनेगी अपनी पत्नी के साथ स्काटलैण्ड की यात्रा पर गये हुए थे। इसी से यह हड़ताल होने की नौबत आई। मगर उस समय अमेरिका में सर्वसाधारण लोगों की यह धारणा हो गई थी कि कार्नेगी अमेरिका में ही हैं और वे अनुचित रूप से मजदूरों को दबाना चाहते हैं। चारों ओर लोगों ने उनको बदनाम करना प्रारम्भ किया। पर कुछ दिनों के बाद वास्तविक स्थिति का पता लगने पर यह बदनामी दूर हो गई। मजदूरों को बिना किसी शर्त के हड़ताल तोड़ना पड़ा।

अब कार्नेगी ने धन कमाना बन्द कर उसका सदुपयोग करने की तरफ ध्यान दिया। उन्होंने अपनी कम्पनी को बेच दिया। सार्वजनिक कामों के लिए उनके द्वारा खर्च किये गये धन की मोटी-मोटी रकमें इस प्रकार हैं।

१—मिल के मजदूरों पर आई वाली आकस्मिक विपत्ति के समय उनकी सहायता के लिए चालीस लाख डालर देकर एक फण्ड की स्थापना की और दस लाख डालर मजदूरों के लिए विभिन्न क्षेत्रों में पुस्तकालय स्थापित करने के लिए दिये।

२—२८ जनवरी १९०२ को वाशिंगटन नगर में सुप्रसिद्ध कार्नेगी इन्स्टीट्यूशन की स्थापना हुई। इसके लिए कार्नेगी ने १ करोड़ ५० लाख डालर दिये। १८ अप्रैल १९०४ को प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट के प्रयत्न से अमेरिका की व्यवस्थापिका सभा ने एक कानून बनाकर इस संस्था की स्थिति को अचल बना दिया। इस संस्था के सदस्य अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वानों में से चुने जाते हैं। साहित्य, विज्ञान, कला-कौशल तथा अन्य विषयों में अन्वेषण और अनुसन्धान की गति को बढ़ाना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है। इसी संस्था की ओर से कैलिफोर्निया के विल्सन पर्वत के ऊपर ५८८६ फीट की ऊँचाई पर एक विशालकाय वेधशाला की स्थापना की गई है। इस वेधशाला के द्वारा आकाशीय नक्षत्रों की खोज के सम्बन्ध में समय समय पर बड़े आश्चर्यजनक अन्वेषण हुए हैं।

३—पचास लाख डालर की सहायता देकर कारनेगी ने एक वीर-स्मारक कोष की स्थापना की। इस कोष से उन वीरों को पुरस्कार दिया जाता है जो अपने जीवन को संकट में डाल विपत्तिग्रस्त मनुष्यों का उद्धार करते हैं या किसी दुर्घटना से आहत व्यक्ति के परिवार को सहायता दी जाती है। इस कोष की शाखाएँ, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी इटली, बेल्जियम इत्यादि अनेक देशों में खोली गई थीं।

४—नीग्रो लोगों के उद्धारक बुकर-टी-वाशिंगटन स्कगी विद्यालय को कारनेगी ने साठ लाख डालर देकर उसकी स्थिति को मजबूत कर दिया।

५—साठ लाख डालर की लागत से इन्होंने अमेरिका के समस्त गिरजाघरों को ७६८९ वाद्ययन्त्र भेंट दिये। क्योंकि उनका विश्वास था कि संगीत से लोगों का मन शान्त और प्रसन्न रहता है।

६—सन् १९१ में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का उद्योग करने के लिए एक करोड़ डालर का दान देकर "कारनेगी एण्डोमेण्ट फौर इण्टर नेशनल पीस" नामक संस्था की स्थापना की।

७—पन्द्रह लाख डालर देकर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना के लिए हेग में कारनेगी ने एक शान्ति मन्दिर का निर्माण करवाया।

कारनेगी के इन सार्वजनिक कार्यों से प्रभावित होकर फ्रान्स गवर्नमेंट ने इन्हें नाइट कमाण्डर ऑफ दी लीजन ऑफ ऑनर (Knight commander of the Legion of Honor) की उपाधि प्रदान की। हॉलैण्ड और डेनमार्क की सरकारों ने भी अपने राष्ट्र की सर्वोच्च उपाधियों से इन्हें विभूषित किया।

२२ अप्रेल सन् १८८७ को कारनेगी ने ५२ वर्ष की उमर में २८ वर्षीय मिस व्हिटफिल्ड से विवाह किया। इतनी प्रौढ़ आयु में विवाह करने पर भी उनका दाम्पत्य जीवन अत्यन्त सुख पूर्ण व्यतीत हुआ। अपनी पत्नी के लिए श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए स्वयं कारनेगी ने एक स्थान पर लिखा है।

मेरी माता और भाई के वियोग के कुछ समय पश्चात् ही मिसेस कारनेगी ने जीवन संगिनी बन मेरे जीवन को बिलकुल बदल दिया। मेरा जीवन उनके संग से इतना आनन्द-पूर्ण हो गया है कि उसके बिना जीने की मैं कल्पना ही नहीं कर सकता। इन बीस वर्षों के सम्पर्क से उनकी पवित्रता चातुर्य और बुद्धिमत्ता की गहराई का मुझे पूरा पता लग गया है। वह दिन रात लोगों के हित के साधन के लिए व्यग्र रहती हैं। इन बीस वर्षों में यही मेरे जीवन का आधार रही हैं।"

सन् १९१९ में कारनेगी का ८४ वर्ष की उम्र में देहान्त हुआ।

दीनहीन परिवार में पैदा होकर, एक जुलाहे का लड़का चपरासी की एक छोटी सी नौकरी से जीवन का प्रारम्भ कर अपनी अनवरत कर्मशीलता दीर्घव्यवसाय ईमानदारी और उच्च चरित्र के द्वारा किस प्रकार "कारनेगी" बन जाता है यह एक ऐसा तथ्य है जो इतिहास के लिए प्रेरणा दायक हो सकता है।

एण्ड्रोसोव

रूस निवासी एक प्रसिद्ध चिकित्सक प्रो एण्ड्रोसोव। जिन्होंने सर्जरी के क्षेत्र में कई प्रकार के नवीन यन्त्रों का आविष्कार करके शल्य-क्रिया को अत्यन्त सरल और सुविधाजनक बना दिया है।

डा एण्ड्रोसोव का जन्म सन् १९ ७ में रूस में हुआ। उनके बनाये हुए यन्त्रों से आपरेशन क्रिया अत्यन्त सरल हो गई है। इन यन्त्रों की सहायता से फेफड़ों का आपरेशन जो मामूली तौर से चार-पाँच घण्टे का समय लेता है केवल बीस पचीस मिनिट में सम्पन्न किया जा सकता है। सन् १९६१ तक रूस में वे १८ से ऊपर पेचीदे आपरेशन इन यन्त्रों की सहायता से सफलतापूर्वक सम्पन्न कर चुके हैं।

इन यन्त्रों को डा एण्ड्रोसोव ने इंजीनियर स्मरनोव की सहायता से तैयार किया है। इन यन्त्रों को चिकित्सा-जगत में 'स्टुटनिक' के नाम से पुकारा जाता है। अमरीका और कनाडा में भी रूसी विधि के अनुसार ये यन्त्र तैयार किये जा रहे हैं।

भारतवर्ष में भी डा एण्ड्रोसोव ने सन् १९६१ के फरवरी मास में देहली के अन्दर अपने यन्त्रों की क्षमता का प्रदर्शन किया। केवल एक घण्टे में उन्होंने एक युवक के शरीर में तीन आपरेशन करके दिखलाए। उनका यह प्रदर्शन यहाँ के चिकित्सा जगत में अत्यन्त चमत्कारिक माना गया है।

एथेन्स

ग्रीस देश की राजधानी और यूरोप का एक अत्यन्त प्राचीन सांस्कृतिक नगर जहाँ से यूनान देश की प्राचीन महान् संस्कृति का जन्म हुआ।

एथेन्स नगर का नामकरण यूनानियों की पूज्य देवी 'अथीना' के नाम पर हुआ ऐसा माना जाता है।

एथेन्स का वास्तविक और क्रमबद्ध इतिहास ईसा सन से ५ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होता है जबकि ईरान के तत्कालीन सम्राट् दारा ने भारी-भारी सेना के साथ ईरान पर दो बार (ई पू ४९ और ई पू ४८० में) आक्रमण किया था। इसी समय थरमापोली की प्रसिद्ध घाटी ने मातृ भूमि के लिए जूझने वाले यूनानी वीरों को अमर कर दिया था।

इसी समय से एथेन्स के इतिहास का स्वर्णयुग प्रारम्भ होता है, और थेमिस्टोक्लीज के नेतृत्व में एथेन्स के अन्तर्गत साम्राज्यवादी युग का प्रारम्भ होता है और इसका पूरा विकास 'पैरिक्लीज' के युग में होता है।

पैरिक्लीज का नाम एथेन्स के इतिहास में एक तेजस्वी नक्षत्र की तरह जगमगाता है। उसके नेतृत्व ने एथेन्स के वैभव को उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। उसके युग में एथेन्स ने सर्वतोमुखी उन्नति का जो युग देखा वह अत्यन्त लुभावना था। व्यापार का उत्कर्ष उन्नति की अन्तिम मंजिल पर था और साहित्य दर्शन ज्ञान विज्ञान सभी क्षेत्रों में आश्चर्यजनक उन्नति हो रही थी।

अरस्तू ने उस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि "लोग ईरानी युद्धों के पश्चात् सफलता और आत्म गौरव के अभिमान से भरे हुए उन्नति की घुड़दौड़ में तेजी से बढ़ रहे थे। एथेन्स उन्नति या संस्कृति का एक महान् केन्द्र बन गया था जिसकी ओर दूर और नज़दीक के सभी विद्वान तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति आकृष्ट हो रहे थे। जिनमें 'सोफिस्ट' लोग प्रधान थे।

इस युग में एथेन्स के अन्तर्गत साम्राज्यवादी वैभव के साथ-साथ जनतन्त्र की भावनाओं का भी बड़ी तेजी से विकास हुआ। सारे नगर राज्यों में एथेन्स के नगर राज्य में ही जनतन्त्र का सबसे उत्तम रूप पाया जाता था। एथेन्स के सार्वजनिक जीवन का भी इस युग में अर्थात् ईसासे करीब ४५ वर्ष इसी बहुत विकास हुआ।

परन्तु इसी समय एथेन्स के इतिहास ने एक जोरदार ठोकर खाई एथेन्स और स्पार्टा के बीच में एक भयंकर युद्ध छिड़ा और उसमें एथेन्स की करारी हार हुई। इस पतन काल में एथेन्स का जन तन्त्र ऐसे लोगों के हाथ में चला गया जो जन-तन्त्र को स्वार्थ-सिद्धि तथा शक्ति हथियाने का एक जरिया समझते थे। इस प्रकार एथेन्स के जन-तन्त्र ने आततायी-तन्त्र का रूप ग्रहण कर लिया।

इसी काल में (Thurty tarrants) तीस अत्याचारियों का शासन-काल आया जिसने महान् कर्तव्य परायण कर्मठ, दार्शनिक और विद्वान् सुकरात को केवल इसलिए मृत्यु का दण्ड दे दिया कि उसने उनकी ऐसी आज्ञाओं को मानने से इन्कार कर दिया जिन्हें वह गैर-कानूनी और अन्याय पूर्ण समझता था।

सोफिस्ट विचारधारा

इसी युग में एथेन्स के अन्दर सोफिस्ट विचार धारा का प्रादुर्भाव हुआ। जिसने दीर्घकाल तक एथेन्स और आस-पास के लोगों को प्रभावित किया। सोफिस्ट लोग एथेन्स के अन्दर शिक्षकों के रूप में बाहर से आते थे। जो लोग उनसे शिक्षा लेना चाहते थे उनको वे पढ़ाकर शिक्षित करते थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सोफिस्ट विचारधारा ने यूनान के राजनैतिक विकास में अपना प्रभावशाली पार्ट अदा किया। इन लोगों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित ऐसी नैतिक धारणाओं मान्यताओं, रूढ़ियों तथा परंपराओं का जोरदार विरोध किया जिन्हें युक्ति और तर्क के द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता था। विलियम डब रैंट नामक एक अमेरिकन-लेखक लिखता है कि "सोफिस्ट लोगों ने व्याकरण तथा न्याय-शास्त्र का आविष्कार किया। उन्होंने द्वन्द्ववाद (Dialectic) का विकास किया तर्क के बल से पक्षों का विश्लेषण किया और लोगों के प्रमाणात्मक बातों को पकड़ने और स्वयं उनको प्रयोग करने की कला सिखाई।"

सोफिस्ट लोगों की सबसे महत्त्वपूर्ण देन 'मानववाद' का सिद्धान्त है। वे मनुष्य को ही मानव-विचार और अध्ययन का मुख्य केन्द्र मानते थे और इसी मानववाद के सिद्धान्त का निरूपण करने में आचार-शास्त्र, राजनीति शास्त्र, दर्शनशास्त्र, भाषण तथा वक्तृत्व-कला ऐसी सब विद्याओं का प्रयोग करते थे। मानव-अध्ययन को विचार का केन्द्र बनाने का श्रेय यूनान के इतिहास में सोफिस्ट विचारधारा को ही प्राप्त है।

सोफिस्ट-विचार धारा निरपेक्ष सत्य के समान किसी चीज के अस्तित्व को संसार में स्वीकार नहीं करती। ये लोग हमेशा सापेक्ष सत्य के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। उनके मत से ऐसा कोई सिद्धान्त, कोई धारणा, कोई विचार और कोई नियम मानवीय ज्ञान में नहीं हो सकता जो प्रत्येक देश, काल और सभी स्थिति में सर्वमान्य हो। न्याय का कोई ऐसा निरपेक्ष और निरापद सिद्धान्त इस जगत में नहीं हो सकता जो हर जगह और हर काल में लागू हो सके। सोफिस्ट लोगों की यह विचार धारा भारतवर्ष में प्रचलित जैनधर्म के सिद्धान्त 'स्याद्वाद' या 'सापेक्षवाद' से किसी अंश में मिलती जुलती थी।

सोफिस्ट लोगों की इस विचारधारा ने राज्य के स्वरूप, कानून के स्वरूप और उसकी मान्यता के बारे में यूनान में जितनी भी प्राचीन और परम्परागत धारणाएँ थीं उन सब में एक उथल-पुथल सी मचा दी।

सोफिस्ट-विचार धारा के अनुसार राज्य एक कृत्रिम वस्तु है जिसे मनुष्य ने प्राकृतिक नियम के विरुद्ध एक स्वार्थ की पूर्ति के लिये बनाया। एक राज्य जिस बात का निषेध करता है दूसरा उसी को करने का आदेश देता है। ऐसे कानूनों को न तो हम ईश्वरीय मान सकते हैं और न किसी निरपेक्ष न्याय सिद्धान्त की अभिव्यक्ति ही उन्हें कह सकते हैं।

इस सोफिस्ट विचार-धारा ने मनुष्य की चिन्तन-शक्ति के विकास का [illegible] दिया और उसी के [illegible] हम एथेन्स के इतिहास में [illegible] विश्वविख्यात [illegible] महान [illegible] को अवतीर्ण होते हुए देखते हैं। जिन्होंने [illegible] से न केवल एथेन्स को, न केवल यूनान को, न केवल यूरोप को, बल्कि सारे विश्व को प्रकाशित किया।

सुकरात

सुकरात के सम्बन्ध में यह कहावत है कि वह दर्शन-शास्त्र को स्वर्ग से उतार कर भूतल पर ले आया। सुकरात का जन्म ईसवी सन् से ४६९ वर्ष पूर्व और मृत्यु ईसवी सन् से ३९९ वर्ष पूर्व हुई। सुकरात उन महान् विभूतियों में प्रथम था जिन्होंने एथेन्स के इतिहास को अत्यन्त गौरवान्वित किया।

एथेन्स के निवासी सुकरात को भी सोफिस्ट विचार धारा का दार्शनिक मानते थे। क्योंकि उसमें भी विलक्षण तर्कना-शक्ति शब्दों में चमत्कार उत्पन्न करने की प्रतिभा और वाक्-चातुर्य उत्तम कोटि का था। उसकी तर्क शक्ति भी विलक्षण थी। फिर भी सोफिस्ट लोगों के मूल सिद्धांतों से सुकरात के सिद्धान्तों में कई स्थानों पर मौलिक मत भेद थे।

सुकरात के मतानुसार धर्म और सत्य के दो रूप होते हैं। एक सापेक्ष दूसरा निरपेक्ष। सापेक्ष धर्म और सत्य का आधार व्यक्तिगत मत और विश्वास है। जिस प्रकार मनुष्य के मत और विश्वास में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार सापेक्षिक धर्म और सत्य में भी संशोधन और परिवर्तन होता रहता है। बदली हुई परिस्थितियों में यह भी बदल जाते हैं। इसके विपरीत निरपेक्ष धर्म और सत्य का आधार मानव की शाश्वत बुद्धि है जो हमेशा एक रस और एक रूप रहती है।

राजनैतिक विचारों के सम्बन्ध में सुकरात देश प्रजातंत्र के विरुद्ध था जो प्रत्येक व्यक्ति को शासन-कार्य के योग्य समझता है। पासा फेंक कर या लाटरी डाल कर अधिकारियों के चुने जाने की प्रथा का भी वह विरोधी था। [illegible] है और शासन कार्य [illegible] की [illegible] होता है [illegible] है। [illegible]

ग्रन्थ में विस्तार के साथ किया है। (सुकरात का पूरा वर्णन 'सुकरात' नाम के साथ इस ग्रन्थ के क्रमशः भागों में देखिये।)

सुकरात के समय में एथेन्स के अन्दर ३० अत्याचारियों का शासन था। प्रजातंत्र के नाम पर वहाँ अत्याचारी तंत्र का बोलबाला हो रहा था। ऐसे अत्याचारी लोग सुकरात की स्पष्टता और निर्भीक विचारधारा को कैसे सहन कर सकते थे। नतीजा यह निकला कि कुछ झूठे अभियोग लगाकर इस महान् तत्ववेत्ता और दार्शनिक को उन लोगों ने मृत्युदण्ड दे दिया और इस प्रकार एथेन्स का इतिहास इस महान् पुरुष की हत्या से कलंकित हो गया।

सुकरात के शिष्य महान तत्ववेत्ता अफलातून और अफलातून के शिष्य महान् तत्ववेत्ता अरस्तू हुए जिन्होंने राजनीतिशास्त्र आचार शास्त्र समाज शास्त्र और दर्शन शास्त्र को मन्थन करके अपने रिपब्लिक (अफलातून) और पॉलिटिक्स (अरस्तू) नामक महान् ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों में इन महान् दार्शनिकों ने जिन महान् सिद्धान्तों को निरूपण किया तो हजारों वर्ष बीत जाने पर भी, आज भी संसार के राजनीतिज्ञों का मार्ग प्रदर्शन कर रहे हैं। अफलातून और अरस्तू की राजनीति का अध्ययन किए बिना आज के युग में भी कोई व्यक्ति राजनीति का पारंगत नहीं माना जा सकता। (इन दोनों महान् राजनीतिज्ञों का विस्तृत अफलातून और अरस्तू नामों के अन्तर्गत इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में देखिये।)

इसके पश्चात् मकदूनिया के राजा फिलिप्स और उसके पुत्र सिकन्दर महान् के द्वारा यूनान के नगर राज्यों का पराजय होने पर वहाँ की राजनैतिक विचार धारा ने एक नया मोड़ लिया और उसके परिणाम स्वरूप अफलातून और अरस्तू के द्वारा प्रतिपादित 'नगर राज्य' का सिद्धान्त धीमा पड़ गया। क्योंकि नगर राज्य अत्यन्त छोटा होने के कारण बाहरी आक्रमणों से अपनी रक्षा नहीं कर सकता था। नगर-राज्य का समय मानो बीत चुका था। किसी भी प्रकार के सुधार से उस समय की आवश्यकताओं के अनुसार नहीं ढाला जा सकता था। इसके लिए एक अधिक व्यापक और अधिक संगठित राजनैतिक इकाई की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

इसी समय एथेन्स में 'एपीक्युरियस' का प्रादुर्भाव हुआ। एपीक्युरियस के सिद्धांत 'एपीक्युरियनिज्म' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन सिद्धान्तों का प्रवर्तन ईस्वी सन् से ३ ६ वर्ष पूर्व एपीक्युरियस ने किया था। एपीक्युरियस के सिद्धान्तों का सार यह है कि—"जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य अधिकतम सुख और आनन्द की प्राप्ति करना है। मनुष्य को जहाँ तक हो सके सार्वजनिक जीवन की दुश्चिन्ताओं से बचना चाहिए। क्योंकि समाज का आधार स्वाभाविक सामाजिकता और सहयोग की भावना नहीं। मनुष्य स्वभावतः एक स्वार्थी प्राणी है और उसमें कोई सामाजिक प्रवृत्तियाँ नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपना हित-साधन करना चाहता है। दूसरों के हितों से उसका प्रायः संघर्ष होता रहता है और इसी संघर्ष से बचने के लिए कानून की आवश्यकता होती है।"

एथेन्स के नागरिक जीवन में वेश्याओं की स्थिति

ईसा से पूर्व पाँचवीं और चौथी शताब्दी में एथेन्स के नागरिक जीवन में वेश्याओं की स्थिति बड़ी अद्भुत बन गई थी। मानवीय इतिहास में कभी और किसी समय वेश्याओं को इतना सम्मान नसीब नहीं हुआ जितना यूनान में उन दिनों वेश्याओं को प्राप्त हो गया था।

इन वेश्याओं का आदर्श 'एफ्रोडिते' देवी जुपिटर की कन्या और प्रेम की देवी (Goddess of Love) मानी जाती थी। कामदेव (Cupid) उसका लड़का समझा जाता था। यूनान की वेश्याएँ अनुपम सुन्दरी होती थीं। इसलिए लोग इन्हें एफ्रोडिते देवी का रूप समझकर इनका आदर करते थे। उन दिनों एथेन्स में 'फ्राइन' नामक वेश्या एफ्रोडिते की प्रतिनिधि समझी जाती थी।

फ्राइन पर एथेन्स नगर के युवकों को भ्रष्ट करने का मुकदमा चर एथेन्स के न्यायालय में चला। उस समय फ्राइन के वकील ने न्यायाधीश के सामने कोई दलील न देकर सिर्फ उसका घूँघट उठा दिया। घूँघट के उठते ही उसकी सुन्दरता अदालत में छिटक गई। न्यायाधीश भी उसकी सुन्दरता को देखकर चकरा गये और उसे बिना किसी प्रमाण के ही छोड़ दिया।

उस काल में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, कवि और लेखक इन वेश्याओं के सम्पर्क में रहते थे। समाज की इस अवस्था को देखकर कई प्रवीण और ऐश्वर्याकांक्षिणी स्त्रियों ने इस भाव को ग्रहण कर लिया था इन वेश्याओं के कारण विवाह एक तुच्छ और कमीनी चीज समझी जाने लगी थी।

आदर और प्रतिष्ठा के इस वातावरण में इन वेश्याओं ने सौंदर्य के साथ-साथ अपनी ज्ञान-प्रतिभा को बढ़ाना भी प्रारम्भ किया।

'एसपेसिया' नामक वेश्या उन दिनों सौंदर्य और विद्या में प्रथम मानी जाती थी। यूनान के तत्कालीन शासक और लेखक 'पेरिक्लीज' से उसका उत्कट प्रेम था। पेरिक्लीज की कई रचनाओं में भी उसका हाथ बतलाया जाता है।

महात्मा सुकरात ने भी अपनी रचना में 'दियोतिमा' नामक वेश्या के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है।

तत्त्ववेत्ता एपीक्यूरियस के विद्यालय में भी बहुत सी वारांगनाएँ ज्ञान प्राप्त करने के लिए जाती थीं। जिनमें 'लिओंशियन' नामक वेश्या के साथ उसकी बहुत घनिष्ठता थी। एथेन्स के इतिहास में वेश्याओं का यह अध्याय ऐसा है जो संसार के इतिहास में कहीं भी न मिलेगा।

एथेन्स का शासन-प्रबन्ध

एक्लेसिया और बाउल नामक दो संस्थाओं के द्वारा एथेन्स का शासन-प्रबन्ध होता था। एक्लेसिया जनता की संस्था का नाम था और इसके सदस्य १८ वर्ष के ऊपर उम्र के एथेन्सवासी सभी नागरिक (दासों को छोड़कर) होते थे। यह सभा सभी कर्मचारियों की नियुक्ति पदच्युति तथा और सब सत्ता की व्यवस्था विदेश-नीति का संचालन इत्यादि सारे महत्त्वपूर्ण कार्यों को करती थी। (एक्लेसिया का पूरा बयान इसी भाग में एक्लेसिया के नाम के साथ देखें।)

दास प्रथा

ऊपर हम एथेन्स में प्रचलित महान् संस्कृति की उस संस्कृति का निरूपण करने वाले महान् तत्त्व-चिन्तकों का विवेचन कर चुके हैं। मगर इसके साथ ही यह भी एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि संस्कृति के इस उन्नत युग में भी एथेन्स में दास-प्रथा का बड़ा जोर था और मानवतावादी सभी तत्त्व-चिन्तकों ने अपने ग्रन्थों में इस प्रथा का समर्थन किया है।

बल्कि यहाँ तक कहा जाता है कि एथेन्स के राजनैतिक जीवन का आधार ही दास-प्रथा थी। यह दास-प्रथा यूनानी सभ्यता का एक प्रधान अंग मानी जाती थी। प्रत्येक नगर में काफी बड़ी संख्या में दास रहते थे। उन्हें कोई राजनैतिक और नागरिक अधिकार प्राप्त न थे और वे नागरिकता की परिधि से बाहर समझे जाते थे। मानवता का समर्थन करने वाले तत्त्व-चिन्तक इस महान् अमानुषिक दास-प्रथा का कैसे समर्थन करते होंगे, यह आज के युग में समझ पाना भी बड़ा कठिन है, मगर यह एक वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य है जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।

एथेन्स नगर में ४ हजार नागरिकों के साथ ८ हजार दास रहते थे। इसीसे पता चलता है कि यहाँ दास प्रथा कितने भयंकर रूप में थी।

रोमन आक्रमण

स्पार्टा के साथ एथेन्स की लड़ाइयाँ १ वर्ष तक चलती रहीं। इन लड़ाइयों ने एथेन्स की शक्ति को बहुत क्षीण कर दिया। उसके पश्चात् संसार-प्रसिद्ध रोमन-साम्राज्य के आक्रमण ने एथेन्स को रोमन साम्राज्य का एक प्रदेश या अंग बना दिया। मगर रोम के सम्राटों को भी एथेन्स की संस्कृति ने बहुत प्रभावित किया। उन्होंने यहाँ की संस्कृति को नष्ट न कर उसे और भी वैभवपूर्ण बनाया। एथेन्स में कई भवनों का निर्माण किया और एथेन्स के तत्त्व-वेत्ताओं को अपना गुरु बनाकर रोम के निवासियों ने अपनी ज्ञान-पिपासा को शान्त किया।

रोमन काल में समय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एथेन्स में एक वायु-मन्दिर बनाया गया था। जिसमें जलघड़ी इत्यादि कई यन्त्र लगे हुए थे। रोमन-सम्राट् हेड्रियन ने भी एथेन्स का नव-निर्माण किया था और एक पुस्तकालय भी बनवाया था।

मगर एथेन्स के दिन बदल चुके और भयंकर समय तब आया जब युद्ध-जाति के लोगों ने कुस्तुन्तुनिया को जीत कर यूनान पर भी अपना अधिकार कर लिया। यह

समय १५वीं शताब्दी के मध्य से १८वीं शताब्दी के मध्य तक रहा। इस युग में तुर्क–आक्रमणकारियों ने एथेन्स के सुन्दर भवनों और मूर्तियों को तोड़ डाला और उनमें से बहुतों को मस्जिद और हरम के रूप में परिवर्तित कर दिया।

जगत्प्रसिद्ध मूर्तिकार फीडियस के द्वारा निर्मित एथेन्स की मन्दिर-मणि पार्थेनन बारूद का गोदाम बना और एक दिन बारूद में विस्फोट हो जाने से उसकी छत उड़ गई। इतने तूफानों से गुजरने के बाद भी एथेन्स में जो कुछ बच गया है उसे देखकर आज भी संसार के यात्री यूनानी कला के लिए दाँतों तले उँगली दबाते हैं।

तुर्कों की पराजय के पश्चात् एथेन्स में आधुनिक युग का प्रारंभ हुआ। नगर पुनः शीघ्रता से बढ़ने लगा और सन् १६१८ में इसकी जनसंख्या पुनः चार लाख हो गई। इस समय यह प्राचीन नगरी पुनः उन्नति के पथ पर आरूढ़ है। यहाँ पर एकेडेमी विश्व-विद्यालय राष्ट्रीय पुस्तकालय संग्रहालय इत्यादि अनेक भवनों का निर्माण हो चुका है और प्राचीन संस्कृति का यह महान् केन्द्र फिर से पुनर्जीवन को प्राप्त कर रहा है।

एन (इंग्लैण्ड की महारानी)

इंग्लैण्ड की महारानी जिसका शासन-काल सन् १७ २ से सन् १७१४ तक रहा।

सन् १६८८ में इंग्लैण्ड के अन्तर्गत एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मगर बिना रक्तपात की क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति में इंग्लैण्ड की जनता ने अपने राजा जेम्स तृतीय को उसकी अयोग्यता और स्वेच्छाचारिता के कारण गद्दी से उतार कर उसकी जगह उसके दामाद विलियम आरेञ्ज और उसकी पत्नी मेरी को संयुक्त रूप से इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर बिठा दिया। उसी समय इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध स्वतन्त्रता पत्र (डिक्लेरेशन ऑफ राइट्स) की घोषणा की गई जिससे इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट के अधिकारों में और विस्तार हो गया। इस क्रान्ति का दूसरा महत्त्वपूर्ण परिणाम प्रोटेस्टेन्ट धर्म की अन्तिम विजय थी। जिसके अनुसार यह तय किया गया कि अब इंग्लैण्ड की गद्दी का अधिकारी प्रोटेस्टेन्ट मतावलम्बी ही होगा। सन् १७ २ में घोड़े पर से गिर जाने के कारण विलियम तृतीय की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर उसकी साली एन इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठी।

महारानी ऐन में अंग्रेज जाति के सभी प्रधान-प्रधान गुण विद्यमान थे इस कारण इंग्लैण्ड की जनता में वह बहुत लोकप्रिय हो गयी।

इसके पूर्व सन् १७ में स्पेन के नरेश द्वितीय चार्ल्स की मृत्यु हुई और मृत्यु के पहले वह अपने समूचे स्पेन के राज्य का उत्तराधिकारी अपने नाती और फ्रान्स के ड्यूक के पोते फिलिप को घोषित कर गया। इस घटना से इंग्लैण्ड को बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि यदि फिलिप स्पेन और फ्रांस दोनों के विस्तृत साम्राज्य का एकाधिकारी हो जाता है तो सारे यूरोप का शक्ति संतुलन बिगड़ जाता है और फ्रांस और स्पेन की सम्मिलित शक्ति सारे यूरोप को रौंद डालने में समर्थ हो सकती है। विलियम तृतीय इस चीज को सहन नहीं कर सकता था इसलिए उसने स्पेन का आधा साम्राज्य स्पेन के राजा के दूसरे नाती आस्ट्रिया के राजकुमार को दिलाने के लिए आस्ट्रिया और जर्मनी के सहयोग से युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

जिस लड़ाई की तैयारी तृतीय विलियम ने बड़ी उत्सुकता और मजबूती के साथ की थी, वह लड़ाई रानी एन के समय में प्रारम्भ हुई। इस लड़ाई में ब्रिटिश, डच और जर्मन सेना का संयुक्त और प्रधान सेनापति 'मार्लबरो' (*Marlborough*) को बनाया गया। मार्लबरो का नाम संसार के प्रधान विजेता और सेनाध्यक्षों में गिना जाता है।

सन् १७ ४ में मार्लबरो ने एकाएक राइन नदी को पार करके आस्ट्रिया की सेना की सहायता से डेन्यूब नदी के तीर पर ब्लेनहिम नामक स्थान पर फ्रांस की सेना को बुरी तरह पराजित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी भर से फ्रांस वाले भगा दिये गये। सन् १७ ६ में उसने रेमीलीज में फ्रांस वालों को फिर से पराजय दी। इससे मार्लबरो को बड़ी कीर्ति हुई। इधर इंग्लैण्ड के जहाजी बेड़े के अध्यक्ष सर जार्ज 'रूक' ने जिब्राल्टर पर अधिकार कर लिया तब से अभी तक जिब्राल्टर अंग्रेजों के अधिकार में चला आता है।

मार्लबरो ने सन् १७०८ में ओडोनार्ड के मैदान में और सन् १७०९ में मालप्लेका के मैदान में फ्रांस वालों को फिर हराया।

मगर मार्लबरो की वजह से ह्निगपार्टी के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर रानी ने उसे अपने पद से हटा दिया और उसके पश्चात् जो पार्लमेंट निर्वाचित हुई, उसमें टोरी दल का बहुमत हो गया।

टोरी-दल के अधिकार पर आते ही फ्रांस से संधि कर ली। जो 'यूट्रेक्ट की संधि' के नाम से मशहूर है। इस संधि के अनुसार जिब्राल्टर, माइनोर्का, नोवास्कोशिया और न्यूफाउण्डलैण्ड अंग्रेजों को मिले। उन्हें स्पेन के उपनिवेशों में व्यापार करने के अधिकार भी प्राप्त हुए। फिलिप स्पेन का राजा बना रहा मगर स्पेन और फ्रांस के राज्य मिल नहीं सके।

रानी ऐन के समय में ही स्काटलैण्ड से भी एक झगड़ा खड़ा हुआ। स्कॉटलैण्ड और इंग्लैण्ड की राजगद्दी एक होने पर भी वहाँ की पार्लमेंटें अलग अलग थीं। स्काटलैण्ड वालों को इंग्लैण्ड में व्यापार करने की सुविधा नहीं थी। उनके माल पर टैक्स भी बहुत अधिक था, इसलिए स्काटलैण्ड वालों ने कहा कि हम अपनी गद्दी ऐन को नहीं देंगे। अपना दूसरा राजा चुनेंगे। इंग्लैण्ड वालों ने घबराकर स्काटलैण्ड को व्यापार की पूरी स्वाधीनता दे दी। जिसके परिणामस्वरूप सन् १७०७ में यूनियन ऐक्ट, पास हुआ जिसके अनुसार इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड की पार्लमेंटें एक कर दी गईं।

महारानी ऐन के समय में ही इंग्लैण्ड की सामुद्रिक शक्ति यूरोप में सबसे बढ़ गई। हॉलैण्ड और फ्रांस की जलशक्ति कमजोर पड़ जाने से इस क्षेत्र में इंग्लैण्ड का कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा।

सन् १७१४ में महारानी ऐन की मृत्यु हो गई।

एन रेडक्लिफ
(Mrs Ann Redcliffe)

अठारहवीं सदी की मशहूर उपन्यास-लेखिका मिसेज एन रेडक्लिफ जिसका जन्म १७६४ में और मृत्यु सन् १८२३ में हुई।

मिसेज रेडक्लिफ लोम-हर्षक और भयानक तथा रहस्य पूर्ण भय का संचार करने वाले गोथिक उपन्यासों की लेखिका थी। इसके उपन्यासों में "दी मिस्ट्रीज ऑफ उडोल्फो" ने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की। इस लेखिका की निसर्गप्रिय काव्य-परम्परा ने अंग्रेजी-साहित्य के बड़े-बड़े लेखकों को भी प्रभावित किया।

एन्थनी ट्रोलोप
(Anthony Trollope)

उन्नीसवीं सदी का प्रसिद्ध अंग्रेज उपन्यासकार जिसका जन्म सन् १८१५ में और मृत्यु सन् १८८२ में हुई।

एन्थनी ट्रोलोप के उपन्यासों में "दी वार्डेन", और "बारचेस्टर टावर्स" नामक उपन्यास प्रसिद्ध हैं।

एनी बीसेण्ट

विश्व में थियोसोफिस्ट-सिद्धान्तों का प्रचार करने वाली तथा भारत के राजनैतिक क्षेत्र में साम्राज्यवादी अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने वाली संसार-प्रसिद्ध आइरिश महिला एनी बीसेण्ट, जिनका जन्म सन् १८४७ की पहली अक्टूबर को हुआ।

एनी बीसेण्ट के पिता का नाम विलियम-पेनवुड था और वे इंग्लैण्ड में चिकित्सा-विज्ञान की प्रैक्टिस करते थे। एनी बीसेण्ट के बाल्य-काल का नाम एमिल उड था। इनकी शिक्षा मिस मेरियट के निरीक्षण में हुई। मिस मेरियट की प्रशंसा करते हुए एनी बीसेण्ट ने अपनी आत्म कथा में लिखा है कि— मैं शब्दों के द्वारा नहीं कह सकती कि मैं उनकी कितनी ऋणी हूँ। केवल ज्ञान ही के लिए नहीं, किन्तु उस प्रेम के लिए जिसके कारण मैं अभी तक सर्वदा अध्ययन में रत रहती हूँ।"

सन् १८६७ में मिस उड का विवाह मि० बेसण्ट नामक एक दोहरे पादरी के साथ हुआ। इस विवाह से श्रीमती एनी बीसेण्ट को एक पुत्र और एक कन्या हुई, पर इनका वैवाहिक जीवन सुख और शान्ति-पूर्ण नहीं रहा जिसके परिणाम सन् १८७३ में इनका आपस में सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

उसके बाद एनी बीसेण्ट की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो गई। इसी समय एनी बीसेण्ट का चार्ल्स ब्रेडलाफ के साथ परिचय हुआ जो कि उस समय 'नेशनल सेक्युलर-सोसायटी' के प्रेसिडेण्ट थे। एनी बीसेण्ट के जीवन पर चार्ल्स ब्रेडलाफ का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

इस सम्बन्ध में वह अपनी आत्मकथा में लिखती हैं कि—"इनकी मित्रता के कारण मि० ब्रेडलाफ की मैं कितनी ऋणी हूँ, यह बतलाना मेरी शक्ति के बाहर है। उनकी बुद्धिमत्ता की बहुत सी बातें मुझे स्मरण हैं। वे मेरे कठोर और मधुर समालोचक थे। मेरी वक्तृत्व-शक्ति की भयंकर-सुगमता से जो दुःखद परिणाम हो सकते थे उनसे उन्होंने मुझे बचाया। जब मैं अनायास उपलब्ध प्रशंसा से मदान्ध होने लगी, तब मेरे दोषों से उन्होंने मुझे सावधान किया। निस्सार विचारों के प्रति उनकी तिरस्कार ने तथा उनके गंभीर विचार ने मेरा बड़ा उपकार किया है और मेरी पुस्तक में जो सार विषय है वह उन्हीं की कृपा का फल है।"

जीवन के कठोर संघर्ष और कटु अनुभवों ने एनी बीसेण्ट को घोर नास्तिक बना दिया। मि० ब्रेडलाफ और एनी बीसेण्ट के द्वारा इंग्लैण्ड में प्रचारित नास्तिकता के सिद्धान्तों का यह परिणाम निकला कि वहाँ की जनता जो कुछ समय पहले नास्तिकता के प्रति अत्यन्त असहिष्णु थी—वह अब बहुत कुछ सहिष्णु हो गई। आज नास्तिक-मत के प्रति इंग्लैण्ड में जो सहनशीलता पैदा हो गई है वह अधिकतर इन्हीं लोगों के परिश्रम का फल है।

इन्हीं दिनों से एनी बीसेण्ट ने व्याख्यानों के द्वारा और पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखकर अपने विचारों का प्रचार करना प्रारंभ किया। इनके व्याख्यानों से प्राचीन धर्माधिकारियों में बड़ा क्षोभ पैदा और उन्होंने एनी बीसेण्ट के सम्बन्ध में बहुतसा उल्टा-सीधा प्रचार किया।

सन् १८७७ में इन्होंने 'नौल्टन पाम्फलेट' (The Knowlton Pamphlet) नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की, जिसके लिए बड़ा हल्ला मचा और इनपर इस पुस्तिका के लिए मुकदमा चलाया गया। यद्यपि इस मुकदमें में यह छूट गई पर इसमें उनको बड़ी परेशानी उठानी पड़ी।

थियोसोफिकल सोसायटी में प्रवेश

एनीबीसेंट सन् १८८९ की १ मई को एच० पी० ब्लॉवट्स्की द्वारा स्थापित 'थियोसोफिकल सोसायटी' या ब्रह्मविद्या प्रचारिणी सभा की सदस्या हुई और जीवनभर इस संस्था की इन्होंने दिल खोल कर सेवा की। अपनी अद्भुत कार्यशीलता से इस महान नारी ने सारे संसार में घूम घूम कर इस सोसायटी की शाखाएँ स्थापित करवाईं। संसार भर में योग और ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्रचारित किया। अपने सैकड़ों व्याख्यानों में उन्होंने इस विद्या के रहस्यों को समझाने का प्रयत्न किया।

नास्तिकता के वातावरण में से निकली हुई एक नारी के द्वारा ब्रह्म विद्या का इस प्रकार प्रचार करना संसार की एक आश्चर्यजनक घटना है।

एनीबिसेंट ने ब्रह्मविद्या या थियोसोफिकल सिद्धान्त के ऊपर अनेकों पुस्तकें लिखीं। इनमें से एक पुस्तक का नाम 'ऐंशेण्ट विज़डम' (Ancient Wisdom) है। इसमें ब्रह्मविद्या विषयक सिद्धान्तों का सारांश है।

इनकी दूसरी रचना 'स्टडी इन कान्शसनेस' (Study in Consciousness) नामक पुस्तक अध्यात्मशास्त्र का अच्छा परिचय कराने वाली है। इस पुस्तक में चैतन्य, निष्ठा, वासना और चित्तविकार के विकास का क्रमबद्ध विवेचन किया गया है।

इनकी तीसरी रचना 'थियोसोफी ऐंड दी न्यू साइकालोजी' नामक पुस्तक भी इस विषय में एनी बीसेण्ट की महान् देन है। अपनी रचनाओं के अतिरिक्त एनी बीसेण्ट ने और भी कई बड़े-बड़े थियोसोफिकल विद्वानों की रचनाओं का सोसायटी की तरफ से प्रकाशन किया तथा स्थान-स्थान से कई पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं।

हिन्दू-धर्म के सम्बन्ध में भी एनी बीसेण्ट के हृदय में बड़ी श्रद्धा और आदर था। महाभारत के ऊपर उन्होंने 'दि स्टोरी ऑफ दी ग्रेट वार' नामक ग्रन्थ की रचना की जो छप कर बड़ा लोकप्रिय हुआ।

इनकी दूसरी लोकप्रिय पुस्तक 'आदर्श राजा रामचन्द्र' (Ram Chandra the Ideal King) है। जिसमें बनारस सेण्ट्रल हिन्दू-कालेज में उनके दिये हुए व्याख्यानों का संग्रह है।

श्रीमद्भगवद्गीता का अंग्रेजी—अनुवाद भी एनी-बीसेण्ट ने कर के अल्पमूल्य स्वल्प मूल्य के ऊपर उसका प्रचार किया।

इस प्रकार थियोसोफिकल सोसायटी का विश्वव्यापी प्रचार करके उन्होंने संसार में सोसायटी को अमर कर दिया और उसके साथ वह स्वयं भी अमर हो गईं। भारतवर्ष में इस सोसायटी की कई शाखाएँ हैं। शिक्षा–प्रचार के लिए इस सोसायटी की ओर से कई कालेज भी चल रहे हैं और बहुत से उपयोगी साहित्य का प्रकाशन भी होता है।

सन् १६०७ में ये प्रसिद्ध विश्व-थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्षा बन गईं।

भारतीय राजनीति में प्रवेश

वैसे तो मि० ब्रेडलाफ के समय से ही एनी बीसेण्ट का सारा जीवन गरीबों और भारतवासियों की सेवा में ही व्यतीत हुआ लेकिन इण्डियन नेशनल काँग्रेस में वह सबसे पहले सन् १६१४ में प्रविष्ट हुईं। उस समय काँग्रेस के नेतागण ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की नीति पर पुरस्कार के रूप में कुछ अधिकार प्राप्त करते रहने का प्रयत्न करते रहते थे।

जब प्रथम महायुद्ध में जर्मन-सेना के आक्रमणों का जिस अद्भुत वीरता धैर्य और सहनशीलता के साथ सफलतापूर्वक मुकाबला किया उससे एशिया और यूरोप के देशों में भारत-वासियों की धाक बैठ गई। भारतीय फौजों द्वारा की गई युद्ध में सेवाओं की इस महानता का भारतीय मस्तिष्क पर जो असर पड़ा वह यह था कि कुछ भारतवासियों के हृदय में तो अंग्रेज सरकार के द्वारा इन सेवाओं के बदले में पुरस्कार-रूप कुछ अधिकार प्राप्त करने की भावना जाग्रत हुई और कुछ के हृदय में अधिकारों की भावना जाग्रत हो गई।

वह दूसरे प्रकार चलने वाले दल के लोगों में से थे पर श्रीमती एनी बीसेण्ट दूसरे दल के लोगों में थीं।

इस सम्बन्ध में बोलते हुए एक बार एनी बीसेण्ट ने कहा था—

भारत की राजभक्ति के लिए पुरस्कार देने की बात कही गई थी, लेकिन भारत अपने पुत्रों के रक्त और पुत्रियों के गर्म-गर्म आँसुओं के साथ कोई सौदेबाजी या मोल तौल करना पसन्द नहीं करता। वह तो एक राष्ट्र की हैसियत से न्याय पाने के अधिकार का दावा करता है, जो कि साम्राज्य के अन्तर्गत सारे लोगों को प्राप्त है। युद्ध के पहले भी भारत ने इसी की माँग की थी। लड़ाई के दिनों में भी उसने इसे ही माँगा था और युद्ध के बाद भी वह इसे ही माँगेगा, लेकिन पुरस्कार के रूप में नहीं, वह इसे अपने अधिकार के रूप में चाहता है। इसमें भूल नहीं करना चाहिए।'

श्रीमती एनी बीसेण्ट जब अपने थियोसोफी के क्षेत्र से राजनीति के मैदान में कूदीं तब उन्होंने अपने साथ नये विचार, नई योग्यता, नवीन भावना नया दृष्टिकोण और संगठन का एक बिल्कुल ही नया ढंग लेकर काँग्रेस-क्षेत्र में पदार्पण किया। उनका व्यक्तित्व तो पहले से ही सारे जगत में महान् था। पूर्व और पश्चिम के देशों में नये और पुराने खयाल के लोगों में लाखों की संख्या में उनके भक्त और अनुयायी थे। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपने पीछे इतने प्रबल भक्त अनुयायियों और अथक कार्य-शक्ति के होते हुए, उन्होंने भारतीय राजनीति को एक नवीन राजनैतिक जीवन प्रदान किया।

उस समय काँग्रेस में नरम और गरम दल दोनों का तीव्र संघर्ष चल रहा था। श्रीमती बीसेण्ट ने दोनों दलों को एक प्लेटफार्म पर लाने का बहुत प्रयत्न किया, मगर उसमें उन्हें सफलता नहीं हुई।

तब लोकमान्य तिलक ने काँग्रेस से पृथक ११ अप्रैल सन् १६१६ को होमरूल लीग की स्थापना कर उसमें काँग्रेस के विधान को स्वीकार किया मगर लोकमान्य का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था और वे भारत में विस्तृत प्रचार कार्य नहीं कर सकते थे।

ठीक ऐसे ही नाजुक समय में श्रीमती एनी बीसेण्ट धार्मिक एवं लोक राजनीति के क्षेत्र में उतर पड़ीं। उन्होंने अपनी सारी शक्तियाँ होमरूल में झोंक दीं। इसके प्रचार के लिए उन्होंने न्यू इण्डिया नामक दैनिक पत्र और उसके बाद 'कामन वील' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। होमरूल की आवाज को सारे भारत

में उनका नंबर पहला है। इसके लिए सारे देश में एक छोर से दूसरे छोर तक उन्होंने तूफान मचा दिया।

कांग्रेस का कार्य जिस मन्दगति से चल रहा था उससे श्रीमती बीसेंट को सन्तोष नहीं था। वह एक तेज तर्रार और चोटी वाली संस्था चाहती थीं। इसके लिए मद्रास के गोखले-हाल में १ सितम्बर सन् १९१६ को श्रीमती एनी बीसेंट की 'होमरूल लीग' की स्थापना हुई। इस संस्था ने सन् १९१७ तक धड़ाके से श्रीमती बीसेंट के द्वारा निर्धारित प्रणाली पर काम किया। वह तीन वर्ष के लिए इस संस्था की अध्यक्षा चुनी गई थीं।

होमरूल की आवाज देश के सुदूर स्थानों तक पहुँच गई और सर्वत्र होमरूल लीगों की स्थापना हो गई थी। श्रीमती बीसेंट के हाथों में प्रेस की शक्ति खूब ही बढ़ी। यद्यपि 'प्रेस एक्ट' के अनुसार दमनचक्र भी खूब ही चला। उनके न्यू इंडिया और कामनवील नामक पत्रों की २ हजार की जमानतें जब्त कर ली गईं।

एक ओर यह हो रहा था दूसरी ओर होमरूल का प्रचार जंगल की आग की तरह सारे देश में फैल रहा था। स्त्रियाँ भी उसमें बड़े जोर शोर से भाग लेने लगीं।

सन् १९१७ में कलकत्ता-कांग्रेस के सभापति पद से दिये गये भाषण में श्रीमती बीसेंट ने कहा था कि— 'स्त्रियों के इस आन्दोलन में बहुत बड़ी संख्या में भाग लेने तथा कष्ट सहने और त्याग करने के कारण 'लीग' की शक्ति दसगुनी बढ़ गई थी। हमारी लीग के सबसे अच्छे रँगरूट और सबसे अच्छे रँगरूट बनाने वाली स्त्रियाँ ही थीं।

दक्षिण के विशाल मन्दिरों और पवित्र तीर्थ-स्थानों में 'होमरूल' के लिए की जाने वाली प्रार्थनाओं के कारण होमरूल धर्म के साथ एकाकार हो गया है। वहाँ से यह देहात के मन्दिरों में भी फैल रहा है और साधु सन्यासी तक उसका प्रचार कर रहे हैं।'

इसके फलस्वरूप १५ जून सन् १९१७ को श्रीमती एनी बीसेंट, अरण्डेल और वाडिया को ब्रिटिश सरकार ने नजरबन्द कर दिया। मगर इससे होमरूल के आन्दोलन में और भी तेजी आ गई। मि. जिन्ना भी उसमें सम्मिलित हो गये। पंडरीनाथ काशीनाथ तैलंग न्यू इंडिया के सम्पादक बनकर मद्रास पहुँच गये और होमरूल आन्दोलन विद्युत-गति से दिन-दूना रात-चौगुना चारों ओर फैलने लगा।

मगर इसी समय इंग्लैंड के मंत्रिमण्डल की ओर से भारत-सचिव मि. माण्टेग्यू ने एक घोषणा की जिसमें ब्रिटिश-नीति का अन्तिम ध्येय भारत को 'उत्तरदायित्व पूर्ण शासन' देना बताया गया और श्रीमती बीसेंट तथा उनके सह योगियों को मुक्त कर दिया गया।

इसके बाद श्रीमती एनी बीसेंट का रुख परिवर्तित हो गया। माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड घोषणा' के खिलाफ कांग्रेस के मंच से नेताओं ने विरोध प्रकट किया वहाँ एनी बीसेंट ने इस घोषणा का समर्थन किया और कहा कि हमें मि. माण्टेग्यू का साथ देना चाहिये।

उसके बाद सन् १९१७ में कलकत्ता कांग्रेस की सभा-नेत्री के पद से उन्होंने जो भाषण दिया वह भारत के स्वशासन पर लिखा हुआ एक सुन्दर निबन्ध है।

उसके बाद सन् १९१८ के पहले पाँच महीनों में श्रीमती बीसेंट ने कांग्रेस के अध्यक्षपद से अथक परिश्रम किया। उसके बाद जून सन् १९१८ में सुप्रसिद्ध माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट से कांग्रेस वालों में बड़ा तीव्र मतभेद पैदा हुआ। बहुत से लोग अपने अपने ढंग से इसकी आलोचना करने लगे। श्रीमती एनी बीसेंट भी इस समय इस बात को महसूस करने लगीं कि उनकी विचारधारा का मेल न तो सरकार के साथ ही खाता है न जनता के साथ ही। सरकार उनकी उग्रता को पसन्द नहीं करती थी और जनता उनके सिद्धान्त से नाखुश थी। सितम्बर सन् १९१८ को होने वाली बंबई-कांग्रेस में उनका अच्छा प्रभाव था, मगर दिसम्बर सन् १९१८ को होनेवाली दिल्ली की कांग्रेस में वे चन्द पिछड़ गई और इसके बाद धीरे-धीरे उनका प्रभाव क्षीण होता चला गया और वे राजनैतिक क्षेत्र से करीब-करीब रिटायर्ड हो गईं।

एनियुस क्विंटस

लेटिन-भाषा का एक कवि, जिसका जन्म ई० सन् पूर्व २३९ में और मृत्यु ई० सन् पूर्व १६६ में हुई।

एनियुस क्विंटस लेटिन—साहित्य का जनक माना जाता है। वह ग्रीक और लेटिन दोनों ही भाषाओं का पण्डित माना जाता था। उसने अपने वीर काव्य 'एनाल्स' की रचना राष्ट्रीय भावनाओं के आधार पर की। उसने अपना यह काव्य १८ सर्गों और ६ सौ पद्यों में रचा। प्राचीन मान्यता के अनुसार उसकी और भी रचनाएँ थीं, जिसमें २२ दु:खान्त नाटकों, २ सुखान्त नाटकों और १ ऐतिहासिक नाटक के उद्धरण मिलते हैं। पर उसके परवर्ती कवियों पर उसकी रचनाओं का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। लेटिन भाषा का आदिकवि होने के कारण सिसरो और क्विंटीलियन जैसे महान लेखकों ने भी उसके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जली दी है।

एग्नेसी मेरिया

इटली देश की, गणित-शास्त्र की विदुषी एक प्रसिद्ध महिला जिसका जन्म सन् १७१८ में और मृत्यु सन् १७९९ में हुई।

एग्नेसी मेरिया १४ वर्ष की उम्र से ही दर्शन शास्त्र और गणित पर मौलिक रूप से अध्ययन करने लग गई थी। २० वर्ष की आयु में उसने संसार छोड़ दिया और एकान्त में गणित का अध्ययन करने लगी।

ऐसी किम्वदन्ती है कि एक बार एग्नेसी गणित के एक समीकरण पर विचार करते-करते सो गई। रात्रि में निद्रावस्था में ही उसने कागज पर इस समीकरण के निष्कर्ष फल को अंकित कर लिया। प्रातःकाल उसे बड़ा आश्चर्य हुआ जब उसने अपने गणित के हल को कागज पर लिखा हुआ देखा।

एग्नेसी की प्रधान रचना उसका लिखा हुआ इस्टी त्यूजिरोनी एनालिटिका युसोडेंगा जिवोर्टेंट इटालियाना है जो दो भागों में प्रकाशित हुआ है।

सन् १७५२ ई० में १४ वें पोप बेनेडिक्ट ने मिलन के विश्वविद्यालय में अपने स्थान पर एग्नेसी की नियुक्ति की।

एग्नेसी का देहान्त सन् १७९९ में हुआ।

एपीरस

उत्तरी यूनान का एक प्राचीन जिला, जो इस समय अल्बेनिया राज्य का दक्षिणी हिस्सा है। एपीरस का इतिहास यूनान के प्राचीन इतिहास से मिला हुआ है।

ई० सन् पूर्व की ४ थी शताब्दी में एपीरस की राजकुमारी ओलम्पिया का विवाह मकदूनिया के राजा फिलिप द्वितीय से हुआ था। यही ओलम्पिया सिकन्दर महान की माता थी।

एपीरस में ई० सन् पूर्व की ३ री शताब्दी में 'अलेक्जेण्डर' नामक एक राजा हुआ जिसने मकदूनिया के राजा ऐंटीगोनस को पराजित किया था। अलेक्जेण्डर और ऐंटीगोनस—ये दोनों राजा उस समय हुए जिस समय भारत में महान प्रतापी सम्राट् 'अशोक' का साम्राज्य चल रहा था।

एपीक्युरियस

प्राचीन यूनान में एपीक्युरियनिज्म-सिद्धान्त का पुरस्कर्ता। इसका जन्म ई० सन् पूर्व ३४२ में तथा मृत्यु ई० सन् पूर्व २७१ में हुई।

एपीक्युरियस-सिद्धान्त का प्रारंभ एपीक्युरियस ने ई० सन् पूर्व ३०६ में एथेन्स नगर के अन्तर्गत किया था। इस सिद्धान्त को एरिस्टीपस (Aristipus) द्वारा स्थापित 'साइरेनिज्म' का ही एक विकसित रूप कहा जा सकता है।

एपीक्युरियस ने ई० सन् पूर्व ३०६ में एथेन्स नगर के अन्दर अपना विद्यालय स्थापित किया। इस विद्यालय की खास विशेषता यह भी कि इसमें उसने दासों और स्त्रियों का प्रवेश भी प्रारंभ कर दिया जो कि उस समय की यूनानी-परंपरा के विरुद्ध था। इस विद्यालय के विद्यार्थियों में कई वारंगनाएँ भी थीं जिनमें से 'लिओंटियन' नामक वीरांगना के साथ उसकी अधिक घनिष्ठता थी।

एपीक्युरियस लगभग ३६ वर्षों तक एथेन्स में रहा। उसकी शिष्य-मण्डली उसको देवता के समान पूज्य समझती थी।

एपीक्युरियस के सिद्धान्त का प्रधान लक्ष्य विशुद्ध भौतिकवादी था। जीवन के अन्दर आनन्द की प्राप्ति उसका प्रधान ध्येय था। दुःख और चिन्ता के अभाव को वह सुख समझता था। सामाजिक जीवन से अधिक-से-अधिक अलग रहकर ही वह सुख प्राप्त किया जा सकता है—ऐसा उसका विश्वास था। उसका कथन था कि मनुष्य को जहाँ तक हो सके, सार्वजनिक जीवन की दुश्चिन्ताओं से बचना चाहिये।

उसके सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य स्वभावतः एक स्वार्थी प्राणी है और उसमें कोई सामाजिक प्रवृत्तियाँ नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपना हित-साधन करना चाहता है, जिसका दूसरों के हितों से प्रायः संघर्ष रहता है। इस संघर्ष को मिटाने के लिए ही मनुष्य आपस में मिलकर समझौता कर लेते हैं कि वे आपस में एक दूसरे को हानि नहीं पहुँचायेंगे। इसी समझौते में से राज्य की उत्पत्ति होती है। अतएव राज्य का आधार समयानुकूल आवश्यकता है मानव-स्वभाव नहीं।

एपीक्युरियस को इस बात में कोई दिलचस्पी न थी कि राज्य की कौन सी पद्धति समाज के लिए हितकर हो सकती है। फिर भी वह राजतन्त्र का अधिक पक्षपाती था।

एपीक्युरियस इन्द्रिय-सुख को ही प्रधान सुख मानता था। अमरत्व सुख की कल्पना को वह भ्रान्ति समझता था। देवताओं और प्राचीन परंपराओं के ऊपर भी उसका विश्वास नहीं था। ईश्वर और धर्म का भी वह मनुष्य जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं मानता था। उसका कहना था कि सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सभी बाधाओं से ऊपर उठकर जीवन का आनन्द उठाना चाहिए। अपने जीवन क्षणों में किसी प्रकार की कमी न आने देना चाहिए। अपने सारे कामों का लक्ष्य उसी ओर रखना चाहिए। फिर भी जीवन के हरेक क्षेत्र में अति नहीं होना चाहिये। मर्यादा हीन जीवन में दुःख उठाना पड़ता है।

एफेबस

प्राचीन यूनान में तरुण नवयुवकों के सैनिक-संगठन का नाम, जिसका प्रारंभ ईसवी सन् पूर्व ३३५ के करीब हुआ, माना जाता है।

उन दिनों एथेन्स में १८ वर्ष की अवस्था के पश्चात् प्रत्येक नवयुवक को प्रारंभिक सैनिक-शिक्षा अनिवार्य रूप से ग्रहण करनी पड़ती थी। ऐसे नवयुवकों को 'एफेबस' कहा जाता था। एक वर्ष तक कठोर अनुशासन में इन नवयुवकों को सैनिक-शिक्षण ग्रहण करना पड़ता था। उसके बाद एक वर्ष तक उन्हें दुर्ग-रक्षण आदि का व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता था। सैनिक-शिक्षा की समाप्ति के पश्चात् प्रत्येक नवयुवक को एक भाला और एक ढाल प्रदान की जाती थी और शपथ दी जाती थी कि वह इन शस्त्रों की लाज को जन्म भर निभायेगा।

एमिली ब्रोण्टे

(Emily Bronte)

उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी-साहित्य में मौलिक उपन्यासों का सृजन करने वाली एक प्रसिद्ध-लेखिका जिसका जन्म सन् १८१८ में और मृत्यु सन् १८४८ में हुई।

एमिली ब्रोण्टे की एक बहन शार्लोट ब्रोण्टे और थी। अंग्रेजी-साहित्य में मौलिक उपन्यासों के रचने में इन दोनों बहनों ने काफी नाम कमाया। एमिली ब्रोण्टे का उदरिंग हाइट्स नामक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध है।

एम्पायर स्टेट बिल्डिंग

अमेरिका में मनुष्य के हाथों से बनी हुई संसार की सबसे ऊँची इमारत। इस इमारत में १०२ मंजिलें हैं और इसकी ऊँचाई टेलीविजन के स्तम्भों को मिलाकर १४७२ फुट है जो कुतुबमीनार की ऊँचाई से छगुनी अधिक ऊँची है।

आधुनिक वस्तु-कला के इस आश्चर्य को देखने के लिए संसार के सब भागों से लाखों व्यक्ति आते हैं—जिनसे लगभग एक लाख डालर की वार्षिक आय होती है।

इस इमारत को खड़ा करने के लिए जो ढाँचा तैयार किया गया उसमें ६ • टन इस्पात लगा। इसके बरामदों और कमरों में जो संगमरमर लगा है, उसकी पूर्ति के लिए फ्रान्स, इटली, बेलजियम और जर्मनी की कई खानें एक वर्ष तक अपना सारा संगमरमर न्यूयार्क को भेजती रहीं। इस इमारत में टेलीविजन और बिजली के जो तार लगाये गये हैं, उनकी कुल लम्बाई १२ मील है। पानी के लिए जो नल फिट किये गये हैं उनकी लम्बाई ५ मील है। सारी मंजिलों में जो सीढ़ियाँ बनी हुई हैं उनकी संख्या १८६ है। लेकिन ऊपर नीचे आने जाने के लिए बिजली के लिफ्ट भी लगे हुए हैं, इन लिफ्टों की संख्या ७२ है। इमारत के कमरों को छोड़कर सार्वजनिक रोशनी के लिए सारी इमारत में १ बल्ब लगे हुए हैं।

सन् १९४९-५ के लगभग एक हवाई जहाज इस इमारत से टकरा गया। टक्कर के जोर से विमान का एक इंजिन निकल कर ऊपर की मंजिल के एक दरवाजे में घुस गया और दूसरे दरवाजे से निकल गया। इस दुर्घटना में १४ व्यक्ति मरे मगर इमारत को कोई नुकसान नहीं हुआ। यहाँ तक कि इससे केवल ७ मंजिल ऊपर पुस्तक पढ़ते हुए एक लड़के को इस दुर्घटना का ज्ञान भी नहीं हुआ।

अब तक इस इमारत पर लगभग पाँच सौ बार कड़कती हुई बिजली गिरी मगर इसको कोई नुकसान नहीं पहुँचा।

इस इमारत पर सात लाख पौण्ड की लागत से २२२ फुट ऊँचा टेलिवीजन का एक मीनार कई कम्पनियों ने मिलकर स्थापित किया है जो ऊँचाई में १७ मंजिल की इमारत के बराबर और घेरे में आठ वर्ग फुट है।

इस इमारत के ऊपर जो रोशनियाँ रात में चमकती हैं वे हवाई जहाज पर १ मील दूरी से और साधारण मनुष्य को ८ मील दूर से दिखलाई पड़ती हैं।

अमेरिका के कुशल इन्जीनियरों ने इस विशाल बिल्डिंग को न्यूयार्क के एक ऐसे घने मुहल्ले में जहाँ पर प्रति दिन ४ हजार गाड़ियाँ और दो लाख पैदल व्यक्ति गुजरते हैं—रहने या कारोबार में किसी भी प्रकार की स्थायी या अस्थायी बाधा डाले बिना १ अक्तूबर १९२९ को प्रारम्भ कर १ मई १९३१ को सम्पूर्ण कर दिया।

एपेलोडोरस (Appolodorus)

प्राचीन यूनान का प्रसिद्ध चित्रकार जिसने सबसे पहले चित्रों में रोगिंग करने की प्रथा चलाई। उसकी चित्रकला का उत्कृष्ट नमूना 'पूजा में लीन पुरोहित' नामक चित्र में मिलता है।

एबेयर

जर्मन-गणराज्य का पहला राष्ट्रपति, जो प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् ९ नवम्बर १९१८ को जर्मन-गणराज्य की घोषणा पर अस्थायी समाजवादी सरकार का चान्सलर बनाया गया।

उस समय जर्मन राष्ट्र की स्थिति बड़ी अस्त-व्यस्त हो रही थी और जगह-जगह विद्रोह और उपद्रव हो रहे थे। दिसम्बर और जनवरी में होने वाले उपद्रवों को 'एबेयर' ने साहस-पूर्वक कुचल दिया, जिसके परिणामस्वरूप जर्मन 'रीसस्टाग' ने सन् १९२५ में एबेयर को दूसरी बार जर्मन-गणराज्य का राष्ट्रपति चुन लिया।

मगर भीतर ही भीतर एबेयर के खिलाफ षड्यन्त्र और साजिशें चल रही थीं। लोगों को यह पसन्द नहीं था कि एक मोची का लड़का, जिसको किसी भी प्रकार की उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं है, जर्मन राष्ट्र का राष्ट्रपति बने। उसके विरोधियों ने उस पर विश्वासघात इत्यादि के भयंकर आरोप लगाए, इससे एबेयर के दिल पर बड़ा सदमा पहुँचा और इसी सदमे में सन् १९२५ में ही उसकी मृत्यु हो गई।

एमडेन

जर्मनी का एक लड़ाकू जहाज जिसने सन् १९१४ के प्रथम महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रों के अनेक जहाज डुबोकर भयंकर आतंक मचा दिया था। इसी 'एमडेन' जहाज ने उस समय मद्रास पर भी गोलाबारी की थी।

एमडन

पश्चिमी जर्मनी का एक प्रसिद्ध नगर और बन्दरगाह।

इस बन्दरगाह में बड़े-बड़े जहाजों को लंगर डाल कर ठहरने की बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। पश्चिमी जर्मनी में यह तीसरे नम्बर का बन्दरगाह है। इस नगर में १६वीं शताब्दी का बना हुआ टाउन-हाल जर्मनी की सुन्दरतम बनी हुई इमारतों में से एक है।

एमहर्स्ट

ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में भारत का गवर्नर जनरल जो सन् १८२३ में भारतवर्ष में आया।

लार्ड एमहर्स्ट के समय के शासन की प्रधान घटना बर्मा के साथ अंग्रेज सरकार की लड़ाई थी। २४ फरवरी सन् १८२४ को बर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की गई। अंग्रेजी सेना सर आर्चीबाल्ड कैम्पबेल के नेतृत्व में समुद्री मार्ग से रवाना हुई और उसने रंगून पर अधिकार कर लिया। इसके बाद कैम्पबेल ने अराकान टेनासिरम् और आसाम पर भी कब्जा कर लिया।

सन् १८२५ में वह थल और जल दोनों मार्गों से इरावदी नदी की ओर बढ़ा। बर्मा का राजा पराजित हुआ और उसका सेनापति बुन्देला लड़ाई में मारा गया। तीन सप्ताह बाद होकर बर्मा की राजधानी प्रोम पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। उसके बाद फरवरी सन् १८२६ में 'यान्डबू' की सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार बर्मा के राजा ने अराकान और टेनासरिम के परगने अंग्रेजों को दे दिये और कछार तथा आसाम पर से अपना अधिकार उठा लिया।

लार्ड एमहर्स्ट सन् १८२८ में वापस लौट गया।

एलिनबरा

ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में भारत का गवर्नर जनरल जो सन् १८४२ में भारतवर्ष में आया।

लार्ड आकलैण्ड की गलत नीति के कारण अफगानिस्तान में अंग्रेजों की जो करारी पराजय हुई, उससे असन्तुष्ट होकर कम्पनी के डॉयरेक्टरों ने लार्ड आकलैण्ड को वापस बुला लिया गया और उसकी जगह पर एलिनबरा गवर्नर जनरल होकर आया।

उस समय गजनी में कर्नल पामर की बुरी दुरवस्था हो रही थी। इससे घबरा कर एलिनबरा ने अपनी सेनाओं को अफगानिस्तान से वापस आने का आदेश दिया। इतने में वहाँ के अमीर शाह शुजा को अफगानों ने मार डाला, जिससे एलिनबरा की नीति की चारों ओर निन्दा होने लगी। तब एलिनबरा ने जनरल पोलक और जनरल नॉट को काबुल और गजनी होते हुए वापस अफगानिस्तान जाने को लिखा।

इन दोनों सेनापतियों ने काबुल पहुँचकर उस बाजार को नष्ट कर दिया जहाँ पर मैगनाटन की लाश टाँगी गई थी।

उसके बाद ये सेनाएँ बड़ी धूमधाम से गजनी से सोमनाथ का फाटक लेकर आईं। यह फाटक आगरे लाया गया पर देखने पर मालूम हुआ कि न तो यह चन्दन का है न सोमनाथ का।

इसके बाद एलिनबरा ने सिन्ध के अमीरों को सन् १८४३ में मियानी के युद्ध में पराजित कर सिन्ध को अंग्रेजी-राज्य में मिला लिया।

इसके पश्चात् उसने महाराजपुर नामक स्थान पर मराठों को पराजित कर ग्वालियर-राज्य का प्रबन्ध एक कौंसिल के हाथों में सौंप दिया।

सन् १८४४ में एलिनबरा वापस बुला लिया गया।

एर्लिक पोल

जर्मनी का मशहूर डाक्टर और वैज्ञानिक जिसने उपदंश-रोग की चिकित्सा पर विजय पाने के लिए 'सिल्वर इंजेक्शन (६ ६)' नामक प्रसिद्ध टीके का आविष्कार किया।

'एर्लिक पोल' का जन्म सन् १८५४ में और मृत्यु सन् १९१५ में हुई। यह यहूदी जाति का वैज्ञानिक था और चिकित्सा-शास्त्र के अनुसन्धानों के लिए बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाने को तैयार रहता था। सिर्फ १४ वर्ष की तरुण अवस्था में जब रोगों के कीटाणुओं पर अनुसन्धान

करने के लिए इसने अपने शरीर में क्षय-कीटाणुओं को प्रविष्ट कर लिया और क्षय-रोग से ग्रसित हो गया।

सन् १८८६ में इस वैज्ञानिक ने अपनी एक प्रयोग-शाला स्थापित की और मनुष्य की रोग-निवारक-शक्ति या 'इम्युनिटी पावर' पर इसने अनुसन्धान किये।

सन् १६ ९ में एलिक पोल ने उपदंश-रोग पर अपने सुप्रसिद्ध अनुसन्धान का निर्माण किया और उसका नाम 'सिक्स हंड्रड सिक्स' रखा।

इस आविष्कार के द्वारा संसार में हजारों उपदंश ग्रस्त रोगियों ने इस महाभयंकर व्याधि से छुटकारा पाकर राहत की साँस ली। यही औषधि आगे चलकर 'साल्वारसन' और उसके बाद 'नेवर २ ५' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

एलिजाबेथ (रूस सम्राज्ञी)

रूस के सुप्रसिद्ध 'ज़ार' पीटर महान् की पुत्री जो सन् १७४१ में रूस की राजगद्दी पर बैठी।

एलिजाबेथ के शासन-काल में रूसी-सामन्तों का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था और भूमिपतियों के फायदे के लिए कई नये नियम और कानून बनाये गये।

एलिजाबेथ को अपने आनन्द और मौज के सिवाय किसी काम से कोई वास्ता नहीं था। उसके यहाँ नाच-गान और शराब की महफिलें लगातार होती थीं। इसने अपना विवाह नहीं किया लेकिन एक यूक्रेनी कज़्ज़ाक-एलक्सी राज मोवस्की [illegible] हमेशा कृपापात्र बना रहा। यह बड़ा शौकीन था और कहा जाता है कि जब यह मरा तब इसके [illegible] में १५ हजार भिन्न-भिन्न प्रकार की पोशाक निकलीं।

एलिजाबेथ ने अपना उत्तराधिकारी अपने भतीजे 'कार्ल पीटर उलरिच' को बनाया जो उसकी मृत्यु के बाद [illegible] बना था। सम्राज्ञी एलिजाबेथ ने उसका विवाह जर्मन-राजकुमारी [illegible] के साथ कर दिया जो कि आगे चलकर रूस के इतिहास में 'कैथरिना [illegible]' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सम्राज्ञी एलिजाबेथ के समय में रूसी और [illegible] [illegible] की सेना को सन् १७५७ में युद्ध में पराजित किया और सन् १७६ में कुछ समय के लिए बर्लिन पर भी अधिकार कर लिया।

सम्राज्ञी एलिजाबेथ के समय में रूस का साहित्यिक और कलात्मक विकास भी जारी हुआ। इसी समय में इटालियन शिल्पकार 'रास्ट्रेली' के निरीक्षण में मास्को का सुप्रसिद्ध 'शीत-प्रासाद (विंटर पैलेस)' बनाया गया। इसी के समय में मास्को-विश्व-विद्यालय की स्थापना हुई और रूसी-रंगमञ्च का विकास हुआ।

एलिजाबेथ प्रथम (इंग्लैण्ड की महारानी)

इंग्लैण्ड के ट्यूडर राजवंश की इतिहास प्रसिद्ध महारानी एलिजाबेथ। जिसने अपने प्रबल व्यक्तित्व और बुद्धिमानी से इंग्लैण्ड के इतिहास में एक नवीनयुग का सूत्रपात किया।

महारानी एलिजाबेथ सन् १५५८ में इंग्लैण्ड के राज सिंहासन पर बैठी। यह इंग्लैण्ड के राजा आठवें हेनरी की दूसरी पत्नी एनीबोलेन की पुत्री थी।

एलिजाबेथ की पूर्ववर्ती रानी मेरी ट्यूडर ने एलिजाबेथ को कारागार में डाल रखा था। अपने राज्याभिषेक का समाचार एलिजाबेथ को कारागार के अन्दर ही मिला था।

राजसिंहासन पर आते ही एलिजाबेथ को कई विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा। अभी-अभी इंग्लैण्ड मेरी ट्यूडर के शासन से बाहर निकला था जिसने अपनी कट्टर धार्मिकता की धुरी पर अनेकों प्राटेस्टेंट लोगों को भी [illegible] किया था।

एलिजाबेथ प्रोटेस्टेंट माता की सन्तान होने से स्वभावतः प्रोटेस्टेंट थी, मगर अपनी राजनैतिक सूझ-बूझ के कारण उसने धार्मिक कट्टरता को महत्व न देकर एक [illegible] का मूल्यांकन राष्ट्रीय हित की दृष्टि से किया। प्रोटेस्टेंट होने पर भी उसने रोमन कैथोलिकों पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया। [illegible] राष्ट्रीय एकता की नीति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उचित समझा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सन् १५५ में उसने [illegible] द्वारा सुधारवादी धर्म घोषित किया [illegible] [illegible] [illegible] धर्म को राष्ट्रव्यापी बनाया गया।

इसके अतिरिक्त छठे एडवर्ड के समय की प्रार्थना-पुस्तक में कुछ संशोधन करके ऐक्ट आफ यूनीफार्मेटी के द्वारा उस पुस्तक के सिवाय किसी अन्य पुस्तक का प्रयोग सब धार्मिक गिरिजाघरों में करने की मनाही कर दी। साथ ही एडवर्ड षष्ठ के द्वारा निर्मित ४२ धाराओं वाले धर्म नियम (The 42 Articales of Religion) में से तीन आपत्तिजनक धारायें निकाल कर उसे फिर से लागू कर दिया।

मगर एलिजाबेथ के इस कार्य से कट्टरपंथी धर्मनेता अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और अर्ल आफ नार्थम्बरलैंड के नेतृत्व में वहाँ की रोमन कैथोलिक जनता ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को "उत्तरी विद्रोह" कहा जाता है। इन विद्रोहियों ने गिरजाघरों पर धावा कर दिया प्रार्थना पुस्तकों को फाड़ डाला और कैथोलिक पद्धति के अनुसार प्रार्थना करना प्रारंभ कर दिया। एलिजाबेथ ने सेना भेजकर तुरन्त इस विद्रोह का दमन कर दिया और बहुत से विद्रोहियों को प्राणदण्ड की सजा दे दी।

इस विद्रोह के दूसरे ही वर्ष रोमन चर्च के पोप ने घोषणा की कि एलिजाबेथ को धर्मच्युत किया जाता है और उसे गद्दी से उतारा जाता है। ऐसा करने में पोप का यह अभिप्राय था कि सब रोमन कैथोलिक शासक और प्रजा एलिजाबेथ को गद्दी से उतारने में सहायता दें।

लेकिन पोप की इस घोषणा का कोई असर नहीं हुआ। क्योंकि इस समय तक प्रोटेस्टेन्ट धर्म बहुत अधिक फैल चुका था और इंगलैण्ड स्काटलैण्ड नीदरलैण्ड, स्वीडन नार्वे डेनमार्क, जर्मनी, हंगरी, स्विटजरलैण्ड प्रोटेस्टेन्ट हो चुके थे। केवल फ्रान्स और स्पेन के शक्तिशाली राष्ट्र रोमन कैथोलिक थे मगर वे भी अपने घरेलू झगड़ों में ऐसे उलझे हुए थे कि उन्हें बाहर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं था।

इसी समय 'जोन विकार्ड' नामक एक कैथोलिक प्रचारक ने इंगलैण्ड की जनता में रानी एलिजाबेथ के विरुद्ध प्रचार के भाव भरना प्रारम्भ किये और रोमन कैथोलिक लोगों को अपने धर्म पर दृढ़ रहने का उपदेश देने लगा। इसमें उसे काफी हद तक सफलता भी मिली। वह ऐलानकर एलिजाबेथ घबरा गई। क्योंकि वह जानती थी कि पोप का अभिप्राय होते ही यह भार जाती जायेगी। अतः उसने रोमन कैथोलिकों के विरुद्ध कई कड़े कानून पास किये। विकार्ड को कैद करके उसकी अस्थियाँ खींच कर लोहे की शलाकाओं से इसलिए लटका दिया गया कि वह अपने साथियों के नाम बतला दे। मगर उसने नहीं बतलाये और एक दिन अपने मित्रों की सहायता से कैद खाने से निकल भागा। इस पर बहुत से अन्य रोमन कैथोलिकों को फाँसी दे दी गई।

इस दमन से कैथोलिक और भी बिगड़ उठे। उन्होंने महारानी एलिजाबेथ को मारने के और भी कई षड़यन्त्र किये। मगर भाग्य ने हर जगह एलिजाबेथ का साथ दिया सब षड़यन्त्रकारी पकड़ लिये गये और उनके नेताओं को मृत्यु दण्ड दिया गया।

ये सारे षड़यन्त्र मेरी स्टुअर्ट—जो कि उन दिनों इंगलैण्ड की कैद में बन्द थी—को इंगलैण्ड की राजगद्दी पर बिठाने के लिए हो रहे थे। इसलिए लोगों का यह विश्वास हो गया कि जब तक मेरी स्टुअर्ट जीवित रहेगी एलिजाबेथ का प्राण संकट नहीं टलेगा। अन्त में उस पर अभियोग चलाया गया उसे प्राण दण्ड की सजा हुई और सन् १५८७ में उसका सिर काट लिया गया। इस प्रकार धर्मद्वेष की स्थिति से तो किसी प्रकार एलिजाबेथ ने मुक्ति पाई।

स्कॉटलैण्ड की समस्या

इंगलैण्ड के इतिहास में स्कॉटलैण्ड की समस्या बहुत समय से एक सिरदर्द की तरह रहती आई थी। एलिजाबेथ के समय में भी स्कॉटलैण्ड की समस्या ने उसे बड़ा परेशान किया।

स्कॉटलैण्ड और फ्रान्स की महारानी मेरी स्टुअर्ट इंगलैण्ड के सिंहासन पर भी अपना दावा पेश कर रही थी। क्योंकि वह सप्तम हेनरी की लड़की मारगरेट की पोती थी। एलिजाबेथ को वह सिंहासन की अधिकारिणी नहीं समझती थी। क्योंकि रोमन कैथोलिक मत के अनुसार एलिजाबेथ का अष्टम हेनरी से विवाह नाजायज और अधर्म युक्त था। मेरी कट्टर कैथोलिक थी और वह फ्रान्स, स्काटलैण्ड और इंगलैण्ड—तीनों देशों से प्रोटेस्टेन्ट धर्म को समूल नष्ट कर रोमन [illegible] स्थापना देना चाहती थी।

मगर मेरी के असाधारण रूप और उसके हीन चरित्र से कुछ ऐसी घटनायें हो गईं जिसने उसके प्रभाव को एकदम नष्ट कर दिया। अपने पति फ्रान्स के राजा फ्रांसिस द्वितीय की मृत्यु हो जाने पर वह स्काटलैण्ड लौट आई और यहाँ आकर उसने अपने चचेरे भाई डार्नले से विवाह कर लिया जिससे उसे एक पुत्र हुआ। मगर कुछ समय पश्चात् वह 'अर्ल आफ बाथवेल' पर अनुरक्त हो गई और डार्नले से छुटकारा पाने का उपाय सोचने लगी। थोड़े ही दिनों बाद एडिनबरा से कुछ दूर कर्कफील्ड नामक स्थान पर डार्नले का मकान किसी ने बारूद से उड़ा दिया और उसकी लाश लोगों को बाहर के बाग में पड़ी हुई मिली। उसके कुछ समय बाद मेरी ने बॉथवेल से शादी कर ली।

इससे लोगों को पक्का विश्वास हो गया कि डार्नले की हत्या मेरी और बाथवेल की साजिश से हुई है। स्कॉटलैण्ड के लोग प्रेस बेटिरियन होने के कारण मेरी से पहले से ही चिढ़े हुए थे। इसलिए उन्होंने तुरन्त उसे राजच्युत कर दिया। मेरी भाग कर इंग्लैण्ड आई मगर एलिज़ाबेथ ने उसे एक दुर्ग में कैदी की तरह रख दिया।

यहाँ जेल के भीतर से ही मेरी ने अपने रोमन कैथोलिक लोगों की सहायता से एलिज़ाबेथ के विरुद्ध अनेक षड़यन्त्र करवाये जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है मगर उनमें उसे सफलता नहीं हुई और अन्त में कानून की आज्ञा के द्वारा उसको मृत्युदण्ड दिया गया।

इस प्रकार इस दूसरी विपत्ति पर भी एलिज़ाबेथ के भाग्य ने विजय पाई।

स्पेन के साथ युद्ध

सन् १५८० में स्पेन और पुर्तगाल के सिंहासन मिल जाने के कारण स्पेन की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। स्पेन का राजा फिलिप बहुत दिनों से इंग्लैण्ड के सिंहासन पर अपने दाँत गड़ाए बैठा था। मेरी ट्यूडर के साथ उसने विवाह ही इसलिए किया था। मेरी के मर जाने पर उसने एलिज़ाबेथ से भी विवाह का प्रस्ताव किया। मगर एलिज़ाबेथ के इन्कार कर देने पर उसने स्काटलैण्ड की मेरी स्टुअर्ट पर निगाह डाली। कहा जाता है कि मेरी स्टुअर्ट ने फिलिप को लिख दिया था कि यदि तुम मुझे कैद से मुक्त करके इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठा दो तो मैं तुमसे विवाह कर लूँगी। पोप की एलिज़ाबेथ विरोधी घोषणा भी उसके लिए बड़ी सहायक थी। इतने पर भी मेरी के जीतेजी वह कुछ नहीं कर सका।

मेरी के मरते ही फ्रान्स वाले भी स्पेन की मदद पर आ गये। स्पेन ने इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने के लिए 'आर्मेडा' नामक विशाल जहाजी बेड़ा तैयार करवाया।

इधर एलिज़ाबेथ ने सर फ्रांसिस ड्रेक, सर वाल्टर रेले, हाकिन्स इत्यादि सामुद्रिक डाकुओं की मदद से स्पेन के जहाजों को डुबोना और परेशान करना प्रारंभ किया।

सन् १५८८ के जुलाई मास में आर्मेडा का विशाल जहाजी बेड़ा, जिसमें १३१ जहाज और हजारों सैनिक थे, इंग्लिश चैनल में प्रकट हुआ। फिलिप ने घोषणा की कि हमारे आक्रमण का उद्देश्य सिर्फ कैथोलिक मत की रक्षा करना है। उसे उम्मीद थी कि इस घोषणा से इंग्लैण्ड के किनारे पर पहुँचते ही सारे रोमन कैथोलिक अंग्रेज हमसे आ मिलेंगे। ऐसी विकट परिस्थिति में एलिज़ाबेथ ने बड़े धैर्य और बुद्धिमत्ता से काम लिया। उसने अपने जहाजी बेड़े का सर्वोच्च आफिसर लार्ड 'हावर्ड' नामक एक रोमन कैथोलिक को बनाया। इससे इस लड़ाई ने धार्मिक की जगह राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर लिया।

आर्मेडा ने इंग्लिश चैनल में पहुँचते ही लड़ाई प्रारंभ कर दी। ७ और ८ अगस्त को भयंकर लड़ाई हुई। ऐसे समय में प्रकृति ने इंग्लिश चैनल में ऐसा भयंकर तूफान पैदा किया जो अंग्रेजों के पक्ष में और स्पेन के विरुद्ध पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि आर्मेडा की बुरी तरह पराजय हुई। उसके बहुत से जहाज नष्ट हो गये और बहुत से स्काटलैंड की ओर भाग गये।

आर्मेडा के नष्ट होने पर स्पेन ने और कई बार इंग्लैंड पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया, मगर एलिज़ाबेथ के भाग्य ने हमेशा उसका साथ दिया और वह हमेशा विजयी हुई और इसी समय से एक बलवान राष्ट्र के रूप में इंग्लैण्ड की नींव पड़ी। इसी समय से धार्मिक मतभेदों को भुलाकर लोग राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अपने देश के जीवनरक्षण का विचार करने लगे।

एलिजाबेथ के समय में देश की सर्वांगीण उन्नति हुई। इसी समय इंग्लैण्ड की जल शक्ति की मजबूत नींव पड़ी और थोड़े ही दिनों में इंग्लैण्ड की जल शक्ति विश्व की समस्त जल-शक्तियों में एक महत्तम जल शक्ति मानी जाने लगी।

अभी तक यूरोप में पुर्तगाल और स्पेन वाले ही समुद्र की लम्बी-लम्बी यात्राएँ किया करते थे मगर अब अंग्रेज-समुद्र-यात्रियों ने भी लम्बी लम्बी यात्राएँ शुरू कीं। इनमें से वाल्टर रेले हाकिन्स और सर फ्रांसिस ड्रेक के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।

एलिजाबेथ का काल साहित्यिक उन्नति के लिए भी बहुत प्रसिद्ध है। महाकवि एडमण्ड स्पेंसर मार्लो जान्सन शेक्सपियर के समान साहित्यिक तथा पुरस्कार कलाकार भी इसी एलिजाबेथ के समय में पैदा हुए। बेकन, सिडनी, हैक्लिन आदि विद्वान भी इंग्लैण्ड को इसी युग की देन हैं।

अन्तिम में एलिजाबेथ के युग को इंग्लैण्ड के इतिहास में स्वर्णयुग कहा जा सकता है।

एलिजाबेथ द्वितीय

इंग्लैण्ड की वर्तमान महारानी, जो जार्ज षष्ठ की मृत्यु के बाद सन् १९५२ में इंग्लैण्ड के राज सिंहासन पर आसीन हुईं।

इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर आने वाली यह छठी महिला शासिका है। महारानी एलिजाबेथ का जन्म २१ अप्रैल सन् १९२६ ई० को इंग्लैण्ड की राजधानी लन्दन में हुआ। उस समय किसी को यह आशा न थी कि यह लड़की कभी इंग्लैण्ड की गद्दी पर बैठेगी। क्योंकि उस समय युवराज (प्रिंस आफ वेल्स) उनके पिता के बड़े भाई थे। परन्तु २ जनवरी सन् १९३६ को एडवर्ड अष्टम के राजगद्दी त्याग देने से ब्रिटेन का इतिहास और एलिजाबेथ का भाग्य बदल गया और इनके पिता जार्ज षष्ठ के राजा बनने पर ११ वर्षीय एलिजाबेथ युवराज्ञी बन गईं।

सन् १९४७ ई० में एलिजाबेथ का विवाह फिलिप माउण्टबेटन के साथ हुआ। विवाह के एक दिन पहले माउण्टबेटन को 'एडिनबरा का ड्यूक' बना दिया गया।

महारानी एलिजाबेथ के समय में इंग्लैण्ड की राजनीति विश्वव्यापी कम्युनिज्म की बाढ़ को रोकने में लगी हुई है। इसके लिए इंग्लैण्ड फ्रांस और अमेरिका ने अपना एक संगठन बना लिया है और इस संगठन में विश्व के अनेक राष्ट्रों को भी सम्मिलित कर रहे हैं। बीच में मिस्र-सरकार के द्वारा स्वेज नहर बन्द कर देने के कारण इंग्लैण्ड और फ्रांस ने मिलकर मिस्र पर हमला किया था। मगर इसमें उन्हें बहुत नीचा देखना पड़ा।

पिछले ८ वर्षों में रानी एलिजाबेथ द्वितीय ने ब्रिटेन-राज और राष्ट्र मंडल की अध्यक्षा के रूप में अपने उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्य को अत्यन्त सुन्दर ढंग से निभाया है। उनके शासन काल में घाना और नाइजीरिया के अफ्रीकी राष्ट्रों को स्वतन्त्रता मिली और राष्ट्र-मंडल में पहलीबार काले अफ्रीका को प्रतिनिधित्व मिला।

एलिजाबेथ बरेट
(Elizabeth Barrett)

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी साहित्य की काव्य-तारिका। अंग्रेजी के महाकवि ब्राउनिंग की प्रेमिका जिसका जन्म सन् १८०६ में और मृत्यु १८६१ में हुई।

उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी काव्य-साहित्य में एलिजाबेथ बरेट का एक विशिष्ट स्थान है। महाकवि ब्राउनिंग से सम्बन्धित होने के कारण भी इसकी काव्य प्रतिभा का काफी विकास हुआ पर उनसे परिचय होने के पहले भी यह काव्य क्षेत्र में काफी चमक चुकी थी और इसी चीज के कारण इन्हें महाकवि ब्राउनिंग के सम्पर्क में आने का अवसर मिला।

एल्फ्रेड बर्नहार्ड नोबल

डाइनामाइट नामक भयंकर विस्फोटक द्रव्य के आविष्कारक एल्फ्रेड नोबल।

'डाइनामाइट' का आविष्कार जितने आकस्मिक और आश्चर्यजनक ढंग से हुआ इसकी कहानी भी वैज्ञानिक

इतिहास में एक अनोखी घटना है। अल्फ्रेड नोबल नाइट्रोग्लिसरिन नामक विस्फोटक द्रव्य को पैक बन्द करके कहीं बाहर भेज रहे थे। उन्होंने इस पात्र का मुंह भुरभुरी मिट्टी से बन्द कर दिया। इस पात्र में दरार होने के कारण वह भुरभुरी मिट्टी नाइट्रोग्लिसरीन से मिल गई। अचानक बड़े जोर से विस्फोट हुआ और उस पात्र के टुकड़े-टुकड़े हो गये। बस इसी सिद्धान्त पर अल्फ्रेड नोबल ने नाइट्रो ग्लिसरीन और भुरभुरी मिट्टी के मिश्रण से डायनामाइट का आविष्कार किया जो आज संसार में प्रथम श्रेणी के विस्फोटक द्रव्य के रूप में उपयोग में लिया जाता है। अल्फ्रेड बर्नहार्ड नोबल डायनामाइट के आविष्कर्ता होने के साथ ही साथ उदारचेता महान् पुरुष भी थे। उन्हें उस व्यक्ति के रूप में सदा स्मरण किया जायेगा जिसने शान्तिपूर्ण प्रयासों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार देने की प्रथा प्रारम्भ की। ये सफल वैज्ञानिक होने के साथ ही कविता, कहानी और उपन्यास लेखक भी थे। उनके द्वारा घोषित अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार "नोबल-प्राइज" के नाम से प्रति वर्ष दिये जाते हैं।

एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग

सुप्रसिद्ध एण्टी बायोटिक औषधि पेनिसिलिन का आविष्कारक एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग जिसने पेनिसिलिन के आविष्कार से सारे एलोपैथिक चिकित्सा-विज्ञान को एक नवजीवन और नवीन रूप दे दिया।

पेनिसिलिन का आविष्कार भी विचित्र और आकस्मिक संयोगों में एकाएक हुआ। एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग अपनी प्रयोगशाला में एक सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा बैक्टीरियल कल्चर या कीटाणु-संवर्धन के प्लेट को देख रहे थे। इस प्लेट पर कुछ विषैले कीटाणु पाले जा रहे थे। इस प्लेट पर किसी संयोग से फफून्द लग गयी। तब उनके सहायक ने कहा कि यह प्लेट खराब हो गई है क्योंकि इस पर फफून्द लग गई है। मगर जब एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग ने ध्यान से उस प्लेट को देखा तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस फफून्द से कई सब खतरनाक कीटाणु नष्ट हो गये हैं। आश्चर्य के साथ यह जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता भी हुई कि उस फफून्द में विषैले कीटाणुओं को नष्ट करने की भारी क्षमता है और उसी आधार शिला पर उन्होंने पेनिसिलिन नामक प्रसिद्ध एण्टी बायोटिक औषधि का आविष्कार कर डाला जो आज सारे एलोपैथिक चिकित्सा विज्ञान की आधारभूत मूलवस्तु हो गई है।

एलेक्जेण्डर ड्यूमा

फ्रांस का एक सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक, जिसका जन्म सन् १८०२ की २४ जुलाई को हुआ।

एलेक्जेण्डर ड्यूमा के जीवन की कहानी बड़ी विचित्र है। वैसे तो ये फ्रेंच थे मगर इनकी दादी के नीग्रो जाति की होने से इनका रूप-रंग एकदम काला, भद्दा और हब्शियों के समान था।

पढ़ने-लिखने का इन्हें बिलकुल शौक नहीं था। स्कूल जाने में हमेशा बहानेबाजी करते रहे। किसी प्रकार एक पादरी ने इन्हें पढ़ा लिखाकर शिक्षित किया।

एक दिन इनकी माँ ने इनको पादरी बन जाने के लिए कहा, इस बात से इन्हें बड़ा डर लगा और ये घर से भाग गये और एक वकील के यहाँ जाकर नौकरी कर ली।

उसी समय से इनकी रुचि साहित्य की ओर लगी और इन्होंने उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया।

इस क्षेत्र में इनकी कला ने खूब उन्नति की और इनकी रचनाएँ फ्रांस के साहित्य में शीघ्रता से लोकप्रिय होने लगीं और साहित्य के क्षेत्र में यह "उपन्यासों के जादूगर" नाम से प्रसिद्ध हो गये।

उपन्यासों का चरित्र-चित्रण करने में इनकी लेखनी कहीं रुकती नहीं थी, धारावाही रूप से बढ़ती जाती थी। इससे इनकी रचनाएँ एक के बाद एक शीघ्रता से प्रकाशित होने लगीं। वे कहते थे कि "उपन्यास लेखन मेरे लिए उतना ही सहज है जितना आम के वृक्ष के लिए फल देना" और इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक वर्ष में साठ उपन्यास लिख डाले।

एकबार फ्रांस के सम्राट् एलेक्जेण्डर तृतीय ने ड्यूमा से पूछा कि "मि० ड्यूमा अब तक तुमने कितनी पुस्तकें

लिखी है ?" तो उन्होंने उत्तर दिया "नहीं श्रीमान् कोई बारह सौ !"

ड्यू मा के इस कथन पर कोई विश्वास नहीं कर सकता। एक लेखक के द्वारा अपने जीवन में बारह सौ पुस्तकें लिखना कदापि सम्भव नहीं हो सकता। लेकिन असल बात यह समझी जाती है कि ड्यू मा स्वयं तो थोड़ा कुछ लिखते थे लिखते ही थे मगर अपने सहयोगियों को भी कथा-प्लाट देकर वे रचनाएँ करवाते थे और वे रचनाएँ भी उन्हींके नाम से छपती थीं। आगस्ट मार्के नामक उनके सहयोगी का इस सम्बन्ध में प्रमुख नाम लिया जाता है। एकबार इसी प्रकार की किसी रचना में कोई आपत्तिजनक भूल रह गई। उस भूल पर जब उनका ध्यान आकर्षित किया गया तो उन्हें खूब आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा मैंने तो यह पुस्तक अभी तक देखी भी नहीं है। शायद आगस्ट ने ही यह भूल की है। मैं उसकी खबर जरूर लूँगा।

ड्यू मा के एक साथ छ:-छ: भिन्न-भिन्न कथानक के उपन्यास भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे और उन सबको वह बराबर सामग्री भेजते रहते थे। इतने पर भी उनके यात्रा सम्बन्धी तथा रोमान्स के कार्य बराबर चलते रहते थे।

ड्यू मा का चरित्र अत्यन्त गिरा हुआ था। चलती हुई लड़कियों से छेड़छाड़ करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। कहा जाता है कि अपनी चरित्र-विषयक इस दुर्बलता के कारण ७ बार तो वे मरते मरते बचे और करीब २ बार जेल जाने से बचे। उनका कहना था कि मैं करीब ५ बच्चों का पिता हूँ। अपनी इसी कमजोरी के कारण इतने धन्धों को निपटा पर भी उन्हें जिन्दगी भर परेशान रहना पड़ा।

अलेक्जेण्डर ड्यू मा की भरमारी रचनाओं में उनका 'थ्री मस्केटियर्स' नामक उपन्यास विश्व साहित्य की अमर कृतियों में माना जाता है।

एवरेस्ट

गिरिराज हिमालय का सबसे ऊँचा शिखर, जिसका प्राचीन नाम गौरीशंकर था और जिसकी ऊँचाई २९ २ फीट है।

गौरीशंकर शिखर को पहले तिब्बती भाषा में 'चोमो-लुग्मा' नाम से पहचाना जाता था। 'चोमोलुग्मा' शब्द का अर्थ 'पृथ्वीमैया' होता है।

पर सन् १८५२ में जब इसकी खोज की गई उस समय खोज करने वाली कम्पनी के अधिकारी सर जार्ज एवरेस्ट के नाम पर हिमालय के इस सर्वोच्च शिखर का नाम माउण्ट एवरेस्ट रक्खा गया।

पर वास्तव में इस शिखर का सबसे पहला शोधक राधानाथ सिकदार नामक एक गरीब ब्राह्मण था। वह [illegible] में रहता था और सर जार्ज एवरेस्ट के हाथ के नीचे ओवरसियर की नौकरी करता था। राधानाथ ने ही पहले-पहल इस शिखर की खोज की। उस समय एवरेस्ट तो यहाँ हाजिर भी नहीं थे वे रिटायर्ड होकर विलायत चले गये थे और उनके स्थान पर सर एण्ड्रयू वो अफसर होकर आ गये थे। इन्हीं के आग्रह से राधानाथ के द्वारा खोजे हुए इस शिखर का नाम भूतपूर्व अधिकारी एवरेस्ट के नाम पर रक्खा गया।

एवरेस्ट आरोहण

मनुष्य जाति की जिज्ञासा वृत्ति इतिहास में हमेशा अत्यन्त प्रबल रही है। इस जिज्ञासा वृत्ति को शान्त करने के लिए इस जाति के लोगों ने हमेशा जान को खतरे में डालने वाली बड़ी से बड़ी जोखिमें उठाई हैं।

एवरेस्ट शिखर का आरोहण भी इस जाति की जिज्ञासा वृत्ति का एक ज्वलन्त उदाहरण है और इस सर्वोच्च शिखर के ऊपर पहुँचने में इन लोगों ने कितनी भयंकर परिस्थितियों का सामना किया कितनों ने अपनी जानें गँवाईं, कितने उस बरफ में गल गये मगर अन्त में किस प्रकार मंजिले मकसूद पर पहुँच कर अपना झण्डा गाड़ा इसकी एक बड़ी लम्बी और दिलचस्प कहानी है।

सन् १९२१ में सबसे पहला एवरेस्ट आरोहण का काम प्रारम्भ किया गया। इस पहली टुकड़ी के नेता [illegible] के

कर्नल हावर्ड बेरी नामक व्यक्ति की इस टुकड़ी ने पूरी ताकत लगा कर २२८६ फुट तक की ऊँचाई की मंजिल पार की मगर उसके बाद वातावरण ऐसा बिगड़ा कि इन्हें मजबूरन वापस लौटना पड़ा। इस आरोहण में डा केलास नामक एक आरोहक की मृत्यु हो गई।

इसके बाद नार्टन और मेलरी की अध्यक्षता में सन् १९२२ में दूसरा आरोहण प्रारम्भ हुआ। इस टुकड़ी का पहला पड़ाव १६६ फुट की ऊँचाई पर और चौथा पड़ाव २१ ० फुट की ऊँचाई पर पड़ा। पर उसके बाद स्थिति बहुत विषम हो गई।

कड़कड़ाती सरदी और बरफ की भयानक विषमता का सामना करना था पैर अकड़ रहे थे उनमें घाव पड़ गये थे शरीर की शक्ति भी विद्रोह कर रही थी फिर भी नार्टन और मेलरी आगे बढ़ते रहे। वे २६९८५ फुट की ऊँचाई तक पहुँच गये पर उसी समय बरफ पिघलने लगा और उसकी नदी बहने लगी तब उन्हें लाचार वापस लौटना पड़ा।

इसके बाद जनरल ब्रूस के नेतृत्व में एक टुकड़ी इस मार्ग पर अग्रसर हुई। २७१ फुट तक का आरोहण तो इसने सफलता पूर्वक कर लिया मगर आगे हवामान बिगड़ जाने से इन्हें वापस लौटना पड़ा। फिर एकबार इस टुकड़ी में से कुछ लोग आगे बढ़े मगर इन्हें बरफ के तूफानों का सामना करना पड़ा। बड़ी कठिनाई से इ में से दो व्यक्ति जीवित लौटे। तब निरुपाय हो जनरल ब्रूस को आरोहण रोकना पड़ा।

सन् १९२४ में जनरल ब्रूस ने फिर दूसरी बार अपना प्रवास प्रारम्भ किया। पहले के अनुभव के आधार पर इस बार सब साधन जुटाये गये। आरोहकों में उत्साह भी खूब था मगर आगे जाकर नेता के मर जाने से इस टुकड़ी को भी वापस लौटना पड़ा।

इसके बाद 'नार्टन और 'समरवेल ने यात्रा प्रारम्भ की। २८२ फुट की ऊँचाई तक जा पहुँचे एवरेस्ट की चोटी सामने ही नजर आ रही थी पर उसी समय पैरों ने धोखा दिया और बरफ के प्रकाश से नार्टन की कांति चली गई। अन्धे नार्टन को बड़ी कठिनाई से समरवेल को सहारा देता हुआ वापस लाया और आरोहण अधूरा ही रहा।

उसके पश्चात् मेलरी और इरविन ने आरोहण की तैयारी की। इनके साहस को सफलता मिल जावेगी ऐसी सबको आशा थी। नीचे खड़े हुए लोगों ने २८२ फुट की ऊँचाई पर इन्हें देखा भी, मगर इसके बाद इनका क्या हुआ यह आज तक किसी को पता नहीं लग सका।

इसके बाद सन् १९२५ से १९ तक एवरेस्ट आरोहण के करीब दस प्रयत्न और हुए, मगर पूरी सफलता किसी को नहीं मिली।

अन्त में सन् १९५३ आया।

इस वर्ष की मई मास की २९ तारीख को कर्नल हॉनहंट नामक अंग्रेज की टुकड़ी ने एवरेस्ट आरोहण में पहली बार सम्पूर्ण विजय प्राप्त की।

इस टुकड़ी के साथ रहने वालों में से नैपाल के निवासी शेरपा तेना सिंह और एडमण्ड हिलरी नामक न्यूजी लैंड के निवासी को एवरेस्ट के ऊपर पहली बार पैर रखने का जय प्राप्त हुआ।

तेना सिंह इसके पहले भी सन् १९३६ से लेकर १९५ तक छः बार भिन्न,भिन्न टुकड़ियों के साथ एवरेस्ट आरोहण के प्रयत्न में सम्मिलित हो चुका था। उसे इस विषय का गहरा अनुभव भी हो गया था मगर जिस समय यह टुकड़ी आरोहण प्रारम्भ करने वाली थी उस समय तेना सिंह पटना के अस्पताल में बीमारी हालत में पड़ा हुआ था। उस समय उसकी जाने की इच्छा नहीं थी। मगर हिमालय क्लब की सेक्रेटरी श्रीमती हैंडरसन के विशेष दबाव पर वह इस टुकड़ी में जाने को तैयार हुआ।

१९५३ के माच मास में अपने बीस शेरपा साथियों के साथ तेना सिंह इस टुकड़ी में शामिल हुआ। काठमांडू के सामने से इस टुकड़ी ने चढ़ना प्रारम्भ किया। बीच में एक स्थान पर एक महीने का पड़ाव डाला गया। जिससे ऊपर आने वाली कम आक्सिजन वाली हवा को सहन करने की आदत डाली जा सके।

अप्रैल की इक्कीस तारीख को पहले पड़ाव के पश्चात् चार पड़ाव तक यह आरोहण बिना कठिनाई के पार हुआ। चौथा पड़ाव २२ फुट की ऊँचाई पर था खुराक में जामकेक, बिस्कुट, शक्कर और नीम्बू का रस लेते हुए यह

पार्टी तेजी से दक्षिण की ओर बढ़ने लगी। इस पार्टी को दल दल की टुकड़ियों में विभाजित कर व्यवस्थित चढ़ाई की सारी जिम्मेदारी तेना सिंह को सौंप दी गई।

२७,९ फुट की ऊँचाई पर तेना सिंह की सलाह से नौवां पड़ाव डाला गया। यहाँ पर तम्बू खड़े करने में तेना सिंह और हिलेरी को कठिन परिश्रम करना पड़ा। तम्बू पूरे तैयार भी नहीं हुए थे कि हवा के तेज झपाटे ने उन्हें झकझोर डाला। बड़ी कठिनाई से उन लोगों ने तम्बुओं को उड़ने से बचाया।

सवेरा होने पर प्राण वायु की नलिकाएँ भर कर हाथ में कुल्हाड़ी लेकर, कमर में रस्सी बाँध कर तेना सिंह और हिलेरी की यह जोड़ी आगे बढ़ी। पीछे के साथी तो पिछले पड़ाव में अभी आराम ही कर रहे थे। अब इन दोनों की मंजिल सामने दिखाई दे रही थी लेकिन आगे का चढ़ाव अत्यन्त विषम और कठिन था। लगभग खाई के बराबर ऊँची बरफ की चढ़ाई पर मजबूती से पाँव जमा कर बढ़ना अत्यन्त खतरे से भरा हुआ था। एक पैर भी चूक जाय या फिसल जाय तो सीधे दस हजार फीट नीची गहरी खाई उनको निगल जाने को तैयार बैठी थी।

इसी समय आक्सीजन के टैंक खराब हो गये और सामने ही डेढ़ सौ फुट का ऊँचा एक डरावना बरफ का शिला खण्ड मार्ग में आ गया। इस समय तेना सिंह और हिलेरी का साहस दर्शनीय था। उन्होंने साहस न छोड़कर किसी प्रकार आगे बढ़ना जारी रक्खा। कभी तेना सिंह और कभी हिलेरी आगे हो जाता मगर ५० फुट से ज्यादा अन्तर इन्होंने अपने बीच में नहीं पड़ने दिया।

अन्त में ये दोनों साहसी वीर एवरेस्ट की चोटी पर पहुँच गये। बरसों की साधना सफल हुई। इसके बाद उन्होंने यहाँ पर कई झण्डे लगाये और महान् हिमालय को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।